

३५

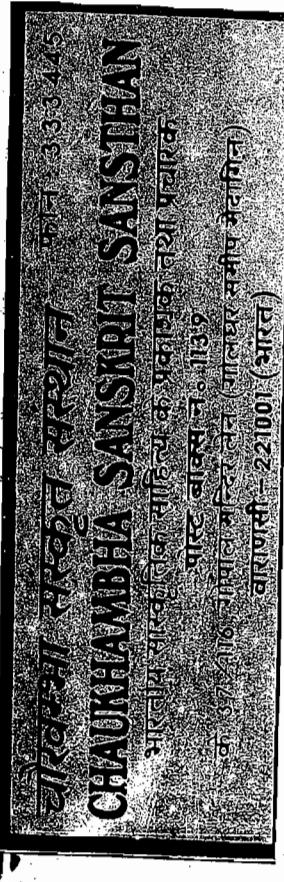
# शाल्य विज्ञान

‘नव्य शाल्य विज्ञान सहित’

(प्रथम भाग)

Y. M. T. & R. C. S. Ayurvedic Medical College Bombay-21.	Acc. No. ३७०६ Coll No
लेखक	सुरेन्द्र कुमार
सुरेन्द्र कुमार	क्रमांक of Purchase १५१२।१७
भूतपूर्व अनुसंधान अधिकारी, C.C.R.A.S.	G.A.M.S.(Pb.); D.A.Y.M.; Ph.D.(B.H.U.); प्राध्यापक, शाल्य विभाग, गवनमेन्ट आयुर्वेदिक कालेज, पटियाला(पंजाब)

आयुर्वेदिक, एलोचिक, संस्कृत एवं  
धार्मिक पुस्तकों के प्रकाशक एवं विक्रेता





**COLLECTION OF VARIOUS**  
→ HINDUISM SCRIPTURES  
→ HINDU COMICS  
→ AYURVEDA  
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with  
By  
Avinash/Shashi

Icreator of  
hinduism  
server)



प्रकाशक :

नाथ पुस्तक भंडार  
रेलवे रोड, रोहतक-124001  
हूरभाष:- 77812, निवास 77811

नवीन संस्करण

### समर्पित

लेखक को विद्यार्थी बहुत ही प्रिय हैं, अतः उन्होंने को  
समर्पित है, लेखक की यह संरचना

—लेखक

मूल्य : 90-00

३७०६

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

मुद्रक :-

वेदव्रत शास्त्री  
आचार्य क्रिटिंग प्रेस,  
गोहाना रोड, रोहतक  
फोन:- ५८८७४

## प्रथम संस्करण

लेखक, अपने विद्यार्थी जीवन में शाल्य तन्त्र के अध्ययन में उत्पत्त हुई कठिनाइयों को समझ रखते हुए, तथा अध्यापक के रूप में विद्यार्थियों को इस विज्ञान को समझाने में हो रही परेशानियों को देखते हुए ही इस पुस्तक की रचना के लिए प्रबुद्ध हुआ है। प्रबुद्ध संरचना में लेखक ने अपनी विद्वता न दिखाते हुए केवल विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को ही समझ रखा है।

मर्म या बहिट उपक्रमों जैसे आयुर्वेद के गार्भीर विषयों को तात्त्विकादि के रूप में तथा नव्यमत हारा उन्हें अति सरल ढंग से समझाकर इस प्रकार से लिखा है जिससे कि सब विद्यार्थियों को आयुर्वेद के शाल्य विषयों का पूर्ण ज्ञान हो सके। जिन शाल्य विषयों का आयुर्वेद में पर्याप्त बर्णन नहीं है, उन्हें नव्य विज्ञान से पूरा किया गया है। आधुनिक विज्ञान के शब्दों को हिन्दी तथा अंग्रेजी दोनों भाषाओं में दिया गया है ताकि आयुर्वेद में या आधुनिक विज्ञान में रुचि रखने वाले दोनों प्रकार के विद्यार्थी वर्ग इसे आसानी से समझ सकें। इसे अधिक सरल बनाने के लिए 100 से अधिक चित्रों का प्लेट्स रूप में या आवश्यक ग्रन्तिसार भाषा प्रवाह के साथ-साथ दिया गया है।

आयुर्वेद के शाल्य विज्ञान के प्रत्येक विषय को आधुनिक ढंग से शीर्षकों एवं उपशीर्षकों (Headings and sub-headings) के रूप में प्रस्तुत किया गया है, ताकि आधुनिक युग के विद्यार्थी को आयुर्वेद के शाल्य तन्त्र के प्रत्येक विषय को याद करने तथा परीक्षा में प्रस्तुत करने में सुगमता रहे।

इस पुस्तक में भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद् के पाठ्यक्रम का पूर्ण रूप से समावेश है। इसमें रक्ताधान (Blood transfusion), संज्ञानाश (Anaesthesia), स्तनधता (Shock) इत्यादि आवश्यक आधुनिक विषयों का भी विस्तार से वर्णन किया गया है ताकि विद्यार्थियों की आवश्यकता की पूर्ति एक ही पुस्तक से हो सके।

शिक्षक, विद्यार्थी तथा अन्य पाठक गण इस पुस्तक के विषयों को और अच्छा बनाने के लिए जो स्वरूप सुझाव देंगे, उसके लिए लेखक उनका आभारी होगा।

—लेखक

## विषय-सूची

### अध्याय—1

पृष्ठ संख्या

### हमारे प्रकाशन एवं प्रसारित पुस्तकें

प्रो० ताराचन्द शर्मा

प्रारम्भिक पदार्थ परिचय

2 " "

प्रारम्भिक रस परिचय

3 " "

शायुवेद का परिचयात्मक इतिहास

4 " "

शायुवेदीय पदार्थ व्यवेचन

5 " "

शायुवेदीय शारीर रचना विज्ञान

6 " "

शायुवेदीय मुभाषित साहित्यम्

7 " "

शल्य विज्ञान (प्रथम भाग)

8 " "

शल्य विज्ञान (द्वितीय भाग)

9 " "

इन्फॉर्मेशन चाट (इन्फूज़ियन विज्ञान)

10 " "

शायुवेदीय चिकित्सादर्श

11 " "

सरल शिवराज विज्ञप्ति दीपिका

12 " "

कुमार सम्बन्ध चर्तुर्थ संग

13 " "

शायुवेदीय शारीर क्रिया विज्ञान

14 " "

श्रमिनव शारीर क्रिया विज्ञान

15 " "

स्वस्त्रण्यवत्तम्

16 " "

कौमारग्रहत्यम्

17 " "

चिकित्सा दीपिका (द्वितीय भाग)

18 " "

शारोग्य विज्ञान तथा जन-स्वास्थ्य

19 " "

रस दत्तण (प्रथम भाग)

20 " "

रस दमण (द्वितीय भाग)

21 " "

रस नाराच क्रियात्मक पुस्तिका

22 " "

रस बिन्दु सर्वत्र रस शास्त्र

23 " "

माधव निदान

24 " "

माधव निदान निदान एवं चिकित्सा

25 " "

शायुवेदीय द्रव्यगुण विज्ञान

26 " "

शायुवेदीय शल्य विज्ञान (प्रथम भाग)

27 " "

शल्य विज्ञान (द्वितीय भाग)

28 " "

शल्य विज्ञान (द्वितीय भाग)

29 " "

शल्य विज्ञान (प्रथम भाग)

30 " "

रोग विज्ञान (द्वितीय भाग)

31 " "

विकृति विज्ञान

32 " "

शरीर रचना पुस्तिका (प्रथम भाग)

33 " "

अधिनव मानस रोग विज्ञान

34 " "

संस्थित शालाकाय तन्त्र

35 " "

रासायन एवं बाजोकरण विवेचन

36 " "

राजेन्द्रप्रकाश भट्टाचार्य

37 " "

रासायन एवं बाजोकरण विवेचन

38 " "

श्वासोदय

39 " "

रामचार्मण विज्ञान

40 " "

रामचार्मण विज्ञान

41 " "

रामचार्मण विज्ञान

42 " "

रामचार्मण विज्ञान

43 " "

रामचार्मण विज्ञान

44 " "

रामचार्मण विज्ञान

45 " "

रामचार्मण विज्ञान

46 " "

रामचार्मण विज्ञान

47 " "

रामचार्मण विज्ञान

48 " "

रामचार्मण विज्ञान

49 " "

रामचार्मण विज्ञान

50 " "

रामचार्मण विज्ञान

51 " "

रामचार्मण विज्ञान

52 " "

रामचार्मण विज्ञान

53 " "

रामचार्मण विज्ञान

54 " "

रामचार्मण विज्ञान

55 " "

रामचार्मण विज्ञान

56 " "

रामचार्मण विज्ञान

57 " "

रामचार्मण विज्ञान

58 " "

रामचार्मण विज्ञान

59 " "

रामचार्मण विज्ञान

60 " "

रामचार्मण विज्ञान

61 " "

रामचार्मण विज्ञान

62 " "

रामचार्मण विज्ञान

63 " "

रामचार्मण विज्ञान

64 " "

रामचार्मण विज्ञान

65 " "

रामचार्मण विज्ञान

66 " "

रामचार्मण विज्ञान

67 " "

रामचार्मण विज्ञान

68 " "

रामचार्मण विज्ञान

69 " "

रामचार्मण विज्ञान

70 " "

रामचार्मण विज्ञान

71 " "

रामचार्मण विज्ञान

72 " "

रामचार्मण विज्ञान

73 " "

श्वासोदय

74 " "

श्वासोदय

75 " "

श्वासोदय

76 " "

श्वासोदय

77 " "

श्वासोदय

78 " "

श्वासोदय

79 " "

श्वासोदय

80 " "

श्वासोदय

81 " "

श्वासोदय

82 " "

श्वासोदय

83 " "

श्वासोदय

84 " "

श्वासोदय

85 " "

श्वासोदय

86 " "

श्वासोदय

87 " "

श्वासोदय

88 " "

श्वासोदय

89 " "

श्वासोदय

90 " "

श्वासोदय

91 " "

श्वासोदय

92 " "

श्वासोदय

93 " "

श्वासोदय

94 " "

श्वासोदय

95 " "

श्वासोदय

96 " "

श्वासोदय

97 " "

श्वासोदय

98 " "

श्वासोदय

99 " "

श्वासोदय

100 " "

श्वासोदय

101 " "

श्वासोदय

102 " "

श्वासोदय

103 " "

श्वासोदय

104 " "

श्वासोदय

105 " "

श्वासोदय

106 " "

श्वासोदय

107 " "

श्वासोदय

108 " "

श्वासोदय

109 " "

श्वासोदय

110 " "

श्वासोदय

111 " "

श्वासोदय

112 " "

श्वासोदय

113 " "

श्वासोदय

114 " "

श्वासोदय

115 " "

श्वासोदय

116 " "

श्वासोदय

117 " "

श्वासोदय

118 " "

श्वासोदय

119 " "

श्वासोदय

120 " "

श्वासोदय

121 " "

श्वासोदय

122 " "

श्वासोदय

123 " "

श्वासोदय

124 " "

श्वासोदय

125 " "

श्वासोदय

126 " "

श्वासोदय

127 " "

श्वासोदय

128 " "

श्वासोदय

129 " "

श्वासोदय

130 " "

श्वासोदय

131 " "

श्वासोदय

132 " "

श्वासोदय

133 " "

</

अध्याय—13	चिकित्सा कर्म (चिकित्थ कर्म)	पृष्ठ संख्या 205-210
अध्याय—14	यन्त्र (Blunt instruments)—उपयन्त्र	211-229
अध्याय—15	शस्त्र (Sharp instruments)—अनुशस्त्र	230-241
अध्याय—16	योग्या (शल्य कर्मचार्यास Operative surgery)	242-244
अध्याय—17	विशिखानुप्रवेश (Entrance in medical practice)	245-248
अध्याय—18	संज्ञानाश (Anaesthesia)	249-270
अध्याय—19	निर्जीवाणकरण (Sterilization)	271-277
अध्याय—20	क्षार कर्म	278-282
अध्याय—21	उपचार कर्म	283-285
अध्याय—22	रक्त विकापणः—जलैका, श्वग, अतारु, प्रच्छन एवं उपचारित कर्म	286-297
अध्याय—23	स्त्रिवेद्य	298-310
अध्याय—24	प्रनष्ट शल्य (Foreign bodies)	311-318
अध्याय—25	ब्रण बन्धन (Bandaging)	319-329
अध्याय—26	रोगी की सेवा (Patient's care)	330-341
अध्याय—27	प्रयोग शालीय परीक्षण	342-360
परिशिष्ट—	मुश्तुत संहिता की वाणिज्यकानन्तुसार विषय सूची (Alphabetical index)	361-382

# 1 शल्य तन्त्र की उत्पत्ति

1. आशुर्वद का ज्ञान सर्वप्रथम (ब्रह्मा)को स्वयं से हुआ था। इस ज्ञान के आधार पर ब्रह्मा ने जिस हस्तिहता का निर्माण किया उसे ब्रह्म-संहिता कहा गया, परन्तु यह संहिता प्राप्त नहीं है।
2. मुश्तुत के अनुसार ब्रह्मा ने एक लालू इलौक तथा दस्त हजार अष्ट्यामों वाली अस्त्रिवन्ती का ज्ञान (दक्ष प्रजापति)को दिया था।
3. दक्ष प्रजापति से आशुर्वद का चिकित्सा सम्बन्धी ज्ञान वैदिक संहिताओं में बहुतायत से उपलब्ध होता है। अस्त्रिवन्ती कुमार दो ऊँड़वाँ माई थे जोकि अति मुन्द्र थे तथा सदा ही युक्ता रहते थे। इन्हें स्वर्ण के वैद्य साना जाता था। अस्त्रिवन्ती कुमारों द्वारा देवताओं पर किए गये अतेक शल्य सम्बन्धी चिकित्सा कर्मों का उल्लेख वेदों में प्राप्त होता है जैसे—

  - (i) बेल राजा की पत्नी विशपता की युद्ध में टांग कट जाने पर अस्त्रिवन्ती कुमारों ने उसको एक हल्की सी धातु की टांग लगा दी थी।
  - (ii) विशपता नामका अविवतीभ्यामात् जंघा योजनम् । (क्षुग्येद)
  - (iii) उपनिषदों में प्राप्त वर्णन के अनुसार रुद्ध द्वारा यज्ञ का पिर काटे जाने पर अस्त्रिवन्ती कुमारों ने उसका सिर किर से जोड़ दिया था।
  - (iv) अस्त्रिवन्ती कुमारों ने ही कृजाइब को, पिता के शाप के कारण अन्धा होने पर अंखें प्रदान की थीं।
  - (v) इन्होंने पूष्ण के हृदे दांतों को ठीक किया था।
  - (vi) अस्त्रिवन्ती कुमारों ने दधीचि का सिर काटकर फिर उसे धोड़े का सिर लगाकर युनः उसका अपना सिर लगाया था।
  - (vii) अस्त्रिवन्ती कुमारों ने देवताओं की व्याधियों को नष्ट किया तथा उन्हें योद्धन प्रदान किया था।

4. अस्त्रिवन्ती कुमारों से यह परम्परागत ज्ञान (इन्द्र)को प्राप्त हुआ, जिसे कि देवताओं का राजा माना जाता है।

इन्द्र ने आयुर्वेद का ज्ञान तीन विभिन्न सम्प्रदाय प्रवर्तक और्ध्वियों को प्रदान किया जो कि निम्नलिखित हैं—

(i) धन्वन्तरि (ii) मारद्वाज (iii) काशयप

(i) धन्वन्तरि:—इनसे शल्य सम्बद्धाय का प्राइमर्स हुआ। धन्वन्तरि 'काशी नरेश' के विषय में दो युक्तिगां प्राप्त होती हैं जैसे : अहं हि धन्वन्तरि रिरादिदेवो ..... (मैं ही आदि देव धन्वन्तरि हूँ) तथा मया तिवह प्रदेयमधिम् (मैंने जो यह ज्ञान याचकों को देना है)। इन अभिमानी शब्दों के अनुसार धन्वन्तरि दिवोदास से एक राजा का बोध होता है जो कि उपर्युक्त कथनानुसार काशी के राजा थे। अत्य कथा के अनुसार मगवान् धन्वन्तरि जो। कि विष्णु के अंश माने जाते हैं तथा समुद्र मरथन के समय अवतार के रूप में आविभूत हुए थे, वे दिवोदास धन्वन्तरि से मिलते हैं। अवतार के रूप में आविभूत हुए थे, वे दिवोदास धन्वन्तरि का मत दिया गया है तथा शल्य चरक संहिता में अनेक स्थानों पर धन्वन्तरि का अधिकार कहा गया है, साध्य रोग की असाध्य अवस्था में धन्वन्तरियों का अधिकार कहा गया है, इससे तथा मुश्तुत संहिता में अत्रि कृष्ण का कोई वर्णन नहीं मिलता। इससे दिवोदास धन्वन्तरि, आत्रेय या अनिवेश के पूर्व (1000 ई० पू०) का सिद्ध होता है। इनका समय 1000 से 1500 ई० पू० माना जाता है।

हरिवंश पुराण के अनुसार काशीराज की वंशावली में धन्वन्तरि एक सम्प्रदाय विशेष माना गया है जो कि काशी नगरी से सम्बन्धित है। यह वंशावली इस प्रकार है।

काशी—दीर्घतमा—धन्व—धन्वन्तरि—केतुमान—मीमरथ—दिवोदास प्रतिदीन—वर्तम—अलक्ष्मी—पीत्र तथा पितामह के नाम से 'धन्वन्तरि दिवो-

दास' नाम पड़ा। धन्वन्तरि को यज्ञपि आयुर्वेद का पूर्ण ज्ञान था तथापि उन्हें अत्युचित वाले मनुष्यों के लिए इसे संक्षिप्त करके आठ अंगों में विभक्त कर दिया, जैसे : शल्य तन्त्र, शालोक्य तन्त्र, काय-चिकित्सा, भूत विद्या, कोमार भूत्य, अग्न तन्त्र, रसायन तन्त्र एवं वाजीकरण तन्त्र।

6.

धन्वन्तरि ने अपने शिष्यों की शिक्षा के लिए ज्ञान शल्य ज्ञान को ही मुख्य रखकर, मुश्तुतादि शिष्यों को दिया था। इनमें से निम्नलिखित

मुश्तुत इन सब शिष्यों में से अधिक बुद्धिमान था। इसने ही शल्य तन्त्र को पढ़ने की इच्छा प्रकट की थी तथा धन्वन्तरि जी से अधिकाधिक आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त करने के लिए अनेकों तरह से प्रश्न किये थे। इसीलिए धन्वन्तरि दिवोदास ने शल्य ज्ञान का उपदेश अपने सभी शिष्यों में से मुश्तुत को ही सम्बोधित करके दिया।

शल्य तन्त्र पर सब शिष्यों ने अपनी-अपनी संहितायें लिखी थीं, परन्तु इनमें से मुश्तुत संहिता ही सबसे अधिक प्रचलित हुई।

मुश्तुत निश्वासित्र के पुन कहे गये हैं (जिनका कि सम्बन्ध आयुर्वेद से है)। मुश्तुत से भिन्न एक बृद्ध मुश्तुत भी दिवोदास धन्वन्तरि के समय (1500 ई० पू०) में हुये माने जाते हैं। इन्होंने आद्य मुश्तुत संहिता लिखी। इसके पश्चात द्वितीय मुश्तुत ने इसी मुश्तुत संहिता का उपबृहण तथा प्रतिसंकार किया। इसी को नागार्जुन ने चौथी शताव्दि में पुनः प्रतिसंकारित किया तथा उत्तर तन्त्र भी साथ में जोड़ दिया, वर्योगिक आज की उपलब्ध मुश्तुत संहिता के 120 अध्यायों की संख्या (जो सब आयुर्वेद की संहिताओं में पायी जाती है) इसके उत्तर तन्त्र को छोड़कर ही होती है।

### मुश्तुत संहिता

मुश्तुत संहिता अनेक विषयों का सार (Encyclopedia) है। इसमें जिन विषयों का संकलन है वे कवल मात्र शल्य कर्म से ही सम्बन्धित नहीं हैं अर्थात् इनमें द्रव्य-गुण, काय-चिकित्सा इत्यादि विषय भी हैं। निम्नलिखित सन्दर्भों से संहिता के मुश्तुत विषयों का ज्ञान होता है।

1. शारीर :—मुश्तुत ने ही सर्वप्रथम शारीर (Anatomy) के ज्ञान के लिए

मृत शारीर (Dead body) का शब्दच्छेदन करने को कहा है।

2. उपकरण :—इस संहिता में शल्य-कर्म सम्बन्धी उपकरणों का पर्याप्त विस्तार से वर्णन मिलता है। इसमें 20 प्रकार के शस्त्र (Sharp instruments) तथा 10 प्रकार के धन्त्र (Blunt instruments) बतलाये गये हैं। इन उपकरणों से सब प्रकार के शल्य कर्म आसानी से किये जा सकते हैं।

3. उपयन्त्र :—अग्नि, शार, रत्न-विस्तावण (जलोक्ता, तुम्बा, घूंगा, पान्डना, तिरावेष) इत्यादि उपयन्त्रों का वर्णन अति मुश्तुत ढंग से किया गया है।

4. द्रव्य :—इस संहिता में अनेक तरह के वर्णों के वर्णन के साथ-साथ उनकी चिकित्सा भी विस्तृत रूप से वर्धात् साठ उपकरणों (60 Procedures of wound treatment) में विभक्त करके बतलाइ गई है।

शिष्य मुख्य है—

ओपेशनव

ओरभ

करवीर्य

मुश्तुत

5. संतानाश :—शाल्य कर्म के समय रोगी की वेदना हटने के लिये (Anaesthesia) उसे तीखा सुरा को पिलाने के लिए कहा गया है।
6. शाल्य कर्म :—अस्मी एवं आन्त्र-भेदनादि अनेक व्याधियों में शाल्य कर्म करने का निर्देश किया गया है।
7. प्रस्तुति विज्ञान :—मूँह गर्भ की चिकित्सा (Obstetrics) तथा मृत गर्भ को निकालने की विधियों का भी प्रयोग्यत्व किया गया है।
8. अस्थि भ्रणनों (Fractures) के प्रकार तथा चिकित्सा के भ्रण :—अस्थि भ्रणनों (Fractures) के प्रकार तथा चिकित्सा के भ्रण, जो इस संहिता में बताये गये हैं ते आज भी प्रामाणिक तिसद हो रहे हैं।

9. अस्थि वर्ष :—बच्चन प्रकार (Types of bandages) तथा दश प्रकार अस्थि वर्ष :—बच्चन प्रकार (Types of bandages) तथा मृत गर्भ के (Types of burn) का जितना विस्तार मुश्तूत में मिलता है, आज के ज्ञान के आधार पर उसमें और कुछ विवेच नहीं जोड़ा जा सकता।

10. मुश्तूत में केवल मात्र व्याधियों की चिकित्सा का ही वर्णन नहीं मिलता अवस्था में लाते की विधियाँ भी पर्याप्त रूप से वर्णित हैं जैसे—कूण, कर्म, इत्यादि, प्रतिरिक्त, संजीरी के रोम, सञ्जनन, इत्यादि। इसमें कर्म, सञ्जनन सिद्धान्तों का भी विवाद वर्णन मिलता है।

11. इस संहिता में शालाक्य तन्त्र (Eye and E. N. T.) का विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है। इसमें लिंगनाश (Cataract), अधिमःथ (Glaucoma) इत्यादि अनेक व्याधियों की शाल्य विधियों का वैज्ञानिक आधार पर वर्णन किया गया है।

#### मुश्तूत संहिता के अध्याय :

- (1) मृत स्थान = 46 अध्याय  
 (2) निदान स्थान = 16 अध्याय  
 (3) शारीर स्थान = 10 अध्याय  
 (4) चिकित्सा स्थान = 40 अध्याय  
 (5) कल्प स्थान = 8 अध्याय  
 (6) उत्तर तन्त्र = 66 अध्याय

#### (I) मृत तन्त्र :

- मृत स्थान में व्याधियों के हेतु, लिंग एवं अधिमःथ को सूत (वीज रूप) में कहा गया है। इस स्थान के अध्यायों में निम्न विषयों का वर्णन निलता है—

- अध्याय वर्णन  
 1. आयुर्वेद का प्राचीनतम इतिहास एवं आयुर्वेद सम्बन्धित विषयों का परिचय  
 2. आयुर्वेद के विषयों के प्रति उपदेश

3. संहिता के अध्याय एवं इनके विषयों का सम्यक् रूप से अध्ययन एवं प्रयोग  
 4. संहिता का सम्यक् अध्ययन  
 5. त्रिविषय कर्मों का सोबाहरण वर्णन  
 6. विभिन्न कृतुओं में करने योग्य कर्म (कृतुचर्या)  
 7. विभिन्न यात्रों का उदाहरण सहित परिचय  
 8. विभिन्न शास्त्रों का उदाहरण सहित परिचय  
 9. शत्य कर्मों की अभ्यास विधि (योग्या)  
 10. चिकित्सा के पूर्व ध्यान देने योग्य बातें  
 11. क्षार वर्णन एवं इसका प्रयोग  
 12. अग्नि कर्म वर्णन एवं इसका प्रयोग  
 13. जलौका वर्णन एवं मृत इसका प्रयोग  
 14. सप्त धातु परिचय एवं रक्तमोक्षण ज्ञान  
 15. दोष, धातु एवं मल से क्षय एवं दृढ़ि का ज्ञान  
 16. कणविषय का सावित्तार वर्णन, नासिका एवं ओष्ठ की संधान विधि  
 17. शोष रोग  
 18. बन्धन कर्म  
 19. ब्रणित के सेवनीय एवं वर्जनीय कर्म  
 20. हितकर एवं अहित कर द्रव्यों का ज्ञान  
 21. त्रिदोष परिचय  
 22. ब्रण एवं डुँड ब्रण के लक्षण  
 23. ब्रण की साध्यासाध्यता एवं ब्रण के लक्षण  
 24. व्याधि प्रकार  
 25. अठ विष शस्त्र कर्म एवं मर्म व सिरा विद्व के लक्षण  
 26. प्रत्यक्ष भाल्य का ज्ञान  
 27. प्रनाद शल्य की निहंण विधियों एवं जल में डूबने पर चिकित्सा  
 28. ब्रण के अरिष्ट लक्षण  
 29. दूत, शकुन एवं स्वप्न सम्बन्धी ज्ञान  
 30. रोगी के अरिष्ट लक्षण  
 31. मरणासन रोगी के लक्षण  
 32. 8 महारोग, रोगों के प्रत्यक्षारक उपद्रव  
 33. विष से राजा की रक्षा के उपाय एवं चिकित्सा के 4 पाद  
 34. सार एवं बंग प्रत्यंग से आयु परीका, अग्नि, औषध मात्रा एवं देश का ज्ञान  
 35. दृढ़ी परीका, औषधियों का प्रहण काल एवं ग्रहण स्थान

36. शोष चिकित्सा के उपकरणों में प्रयोज्य द्रव्य एवं उनकी कल्पनाएँ  
 37. द्रव्य समूह के 37 गण  
 38. संशोधन एवं संशमन चिकित्सा उपयोगी द्रव्य एवं प्रयोग चिकित्सा, 8. भग्नदर रोग चिकित्सा, 9. कुछ रोग चिकित्सा, 10. महाकुञ्ठ रोग चिकित्सा, 11. प्रमेह रोग चिकित्सा, 12. प्रमेह मिहिका चिकित्सा, 13. मधुमेह रोग चिकित्सा, 14. उदररोग चिकित्सा, 15. मूढ़-नाम चिकित्सा, 16. विद्रवि चिकित्सा, 17. विसं, नाही एवं इतन रोग की चिकित्सा, 18. प्रनिधि, अपची, अर्द्ध एवं गलगण की चिकित्सा, 19. बृद्धि, उपदंष एवं शोषिपद की चिकित्सा, 20. क्षुद्र रोग चिकित्सा, 21. शूक दोष चिकित्सा, 22. मुख रोग चिकित्सा, 23. शोफ रोग वर्णन एवं चिकित्सा, 24. स्वस्थदृत के नियम, 25. कर्ण पाली के रोग एवं पलित रोग चिकित्सा, मुख की कोमल करने का योग, 26. क्लीवता एवं वाजीकरण, 27. वय बढ़क आहार एवं औषधियाँ, 28. मेघा बढ़क योग एवं रसायन, 29. सोम प्रयोग एवं आयु बढ़न, 30. रसायन औषधियाँ, 31. स्लेहों का वर्णन एवं स्नेहन कर्म, 32. स्वेदन का वर्णन एवं स्वेदन कर्म, 33. वमन एवं विरेचन कर्म, 34. वमन एवं विरेचन के व्यापद, 35. वस्त्रिन कर्म, 36. नेत्र वस्त्रिन के व्यापद, 37. अनुवासन वस्त्र एवं उत्तर वस्त्रिन कर्म, 38. निरुह वस्त्रिन कर्म, 39. पठवकर्म उपरान्त उत्पन्न उपद्रवों से रक्षा के लिये आहार एवं आहार-विविधि, 40. युत्रपान, नस्य एवं कवल वारण।

## II निदान स्थान :—

निदान स्थान के 16 अध्यायों में व्याख्यायों के हेतु, तुवं-हृष्प, रूप, उपशय एवं सम्प्राप्ति का वर्णन किया गया है।  
 1. वात व्याधि, 2. अर्द्ध, 3. अरमरी, 4. भग्नदर, 5. कुछ, 6. प्रमेह एवं प्रमेह फिडिका, 7. उदर रोग, 8. मूढ़ गर्भ, 9. विद्रवि, 10. विसं, नाही एवं वर्ण स्तन रोग, 11. ग्रनिय, अर्द्ध, गण्डमला एवं अपची, 12. वृद्धि, उपदंष एवं स्तन रोग, 13. शूक दोष, 14. शूक दोष, 15. भग्न, सविच-मोक्ष, दंश एवं श्लीपद, 16. मुख रोग अस्थि प्रकार, 16. मुख रोग

## III शारीर स्थान :—

इस स्थान के 10 अध्यायों में पुरुष, प्रकृति, शूक, शोणित, गर्भ एवं अर्द्ध से सम्बन्धित विषयों तथा शारीर के अवयवों का वर्णन किया गया है।  
 1. पुरुष एवं प्रकृति ज्ञान, 2. शूक एवं शोणित ज्ञान, सहवास चिकित्सा गर्भाधान एवं असूखदरादि विषयों का ज्ञान, 3. अर्द्ध उत्पत्ति ज्ञान, 4. अर्द्धों की अवयवों की उत्पत्ति एवं वर्णन, निद्रा एवं देह प्रकृति ज्ञान, 5. शारीर के अवयवों की गणना, 6. मर्मज्ञान, 7. सिराओं का वर्णन, 8. सिराओं विचिकित्सा अवयवों की गणना, 9. घमनी स्वस्या ज्ञान एवं लोतों विद्व के लक्षण, 10. गर्भिणी, प्रसव तंसा, 9. घमनी स्वस्या ज्ञान एवं लोतों विद्व के लक्षण, 10. गर्भिणी, प्रसव एवं शिशु उपचार।

## IV चिकित्सा स्थान :—

चिकित्सा स्थान के 40 अध्यायों में शल्य सम्बन्धी रोगों का वर्णन किया गया है, आयुवेद कक्ष, स्वस्थदृत एवं पञ्च कर्म का वर्णन भी मिलता है।  
 1. वर्ण के 60 उपकरणों द्वारा व्रण चिकित्सा एवं व्रणित के उपचार, 2. सद्य क्षण के प्रकार, वर्णन एवं चिकित्सा, 3. भग्न एवं सन्धि-मोक्ष व्याख्यायों की

## V कल्प स्थान :—

कल्प स्थान के 8 अध्यायों में विभिन्न प्रकार के विषयों का वर्णन किया गया है। इन विषयों से उत्पन्न रोगों की चिकित्सा भी बताई गई है।

1. विषों का वर्णन एवं इनसे रक्षा के उपाय, 2. स्थावर विषों के भेद, उनसे उत्पन्न लक्षण एवं उनकी चिकित्सा, 3. जंगम विषों के भेद, उनसे उत्पन्न लक्षण एवं उनकी चिकित्सा, 4. सर्पों का वर्णन एवं उनके दंश से उत्पन्न लक्षण, 5. संय-दंश विष की चिकित्सा, कीट-विष एवं चूहे के विष की चिकित्सा, 6 विष चिकित्सा के लिये प्रयुक्त योग, 7. चूहे एवं अन्य पशुओं के विषों से उत्पन्न लक्षण एवं उनकी चिकित्सा, 8. कीट, मण्डक, बिल्कु एवं लूतादि के विषों से उत्पन्न लक्षण एवं उनकी चिकित्सा।

## VI उत्तर तन्त्र :—

संहिता के इस भाग में 66 अध्यायों का समावेश है। इन अध्यायों में उन रोगों का वर्णन एवं चिकित्सा बताई गई है जो या तो किसी छोटे अवयव से सम्बन्धित है या वे रोग सोमित लक्षणों की ही उत्पन्न करते हैं।  
 1. नेत्र की रचना एवं इसके 76 रोगों की गणना, 2. नेत्र-सन्धिगत रोगों

का वर्णन, 3. नेत्र बहुमंगत रोगों का वर्णन, 4. नेत्र शुक्रल गत रोगों का वर्णन, 5. सर्व नेत्रात रोगों का वर्णन, 6. सर्व नेत्रात रोगों का वर्णन, 7. दूषित गत रोगों का वर्णन, 8. नेत्र रोगों में चिकित्सा कर्म, 9 वाताधूषित एवं वात अधिमन्थ चिकित्सा, 10. पित्ताप्रिष्ठवद् एवं पित्ताधिमन्थ चिकित्सा, 11. कफामिभयवद् एवं कफाधिमन्थ चिकित्सा, 12. रक्तामिभ्यवद् चिकित्सा, 13. लेख्य रोग चिकित्सा, 14. भैर रोग चिकित्सा, 15. भैर रोग चिकित्सा, 16. पद्म कोप चिकित्सा, 17. दृष्टि गत रोग चिकित्सा, 18. नेत्र रोगों में किया-कल्प तर्पण, पुटपाक, आवश्योत्तन एवं अड्डबन), 19. नेत्रामिथात एवं इसकी चिकित्सा, 20. कर्णी रोग वर्णन 21. कर्णी रोग चिकित्सा, 22. नासा रोग एवं प्रतिशयाय, 23. नासा रोग चिकित्सा, 24. प्रतिशयाय चिकित्सा, 25. शिरो रोग वर्णन, 26. शिरो रोग चिकित्सा, 27. नव प्रह लक्षण, 28. स्कन्द-ग्रह चिकित्सा, 32. पूर्णता चिकित्सा, 30. शकुनि ग्रह चिकित्सा, 31. रेवती ग्रह चिकित्सा, 33. अंध पूर्तना ग्रह चिकित्सा, 34. शीत पूर्तना ग्रह चिकित्सा, 35. मुख मण्डिका ग्रह चिकित्सा, 36. नैगमेष ग्रह चिकित्सा, 37. 9 महों की उत्तराति, 38. योनि व्याध-एवं उत्तरकी चिकित्सा, 39. ऊवर रोग चिकित्सा, 40. अतिसार रोग वर्णन एवं चिकित्सा, 41. शोष (यथा) रोग वर्णन एवं चिकित्सा, 42. गुद्ध रोग वर्णन एवं चिकित्सा, 43. हृदय रोग वर्णन एवं चिकित्सा, 44. पाण्डु रोग वर्णन एवं चिकित्सा, 45. रक्तपित्त रोग वर्णन एवं चिकित्सा, 46. मुख्य रोग वर्णन एवं चिकित्सा, 47. मदात्यय रोग वर्णन एवं चिकित्सा, 48. तुष्णा रोग वर्णन एवं चिकित्सा, 49. छन्द रोग वर्णन एवं चिकित्सा, 50. हिङ्का रोग वर्णन एवं चिकित्सा, 51. चवास रोग वर्णन एवं चिकित्सा, 52. कास रोग वर्णन एवं चिकित्सा, 53. स्वर-रोग वर्णन एवं चिकित्सा, 54. कृषि रोग वर्णन एवं चिकित्सा, 55. ऊवाचरं रोग वर्णन एवं चिकित्सा, 56. विसूचिका रोग वर्णन एवं चिकित्सा, 57. बरोचक रोग वर्णन एवं चिकित्सा, 58. मुत्राधातुर रोग वर्णन एवं चिकित्सा, 59. मुन-कुच्छ रोग वर्णन एवं चिकित्सा, 60. उपसर्ग रोग वर्णन एवं चिकित्सा, 61. अपस्मार रोग वर्णन एवं चिकित्सा, 62. उत्तमाद रोग वर्णन एवं चिकित्सा, 63. दोष-प्रसार, मधुरादि रसों के भेद, 64. स्वस्थ-बृत्त सम्बन्धित अनुसार आहार व्यवस्था, 65. तत्त्व की 32 गुक्तियाँ, 66. दोषों के 62 भेदों के नाम।

**नोट:-**—सुश्रुत सहितो के किसी भी विषय के सदर्म को उत्तर दूर्घे के हेतु, इस पुस्तक के भेद में (परिशिष्ट में) वर्णनिकमात्रासार विषय सूची (Alphabetical Index) दी गई है। इस सूची से विद्यार्थियों को दिया। तत्परचात् प्रत्येक शृणि ने शत्य विषय पर अपना-अपना प्रश्न लिखा। इन सूचनाएँ “सुश्रुत सहितो” का अध्ययन करने में अच्यन्त मुक्तिया प्राप्त होगी।

## सुश्रुत का काल

सुश्रुत रिस काल में हुए, इसका अभी तक ठीक से विणेय नहीं हो पाया है। कुछ विद्वान् इनका काल दूसरी या तीसरी शताब्दि मानते हैं परन्तु अन्य हैं 500-1000 ई० प० मानते हैं। इनके काल के सम्बन्ध में निम्न युक्तियाँ मिलती हैं—

1. सुश्रुत में वर्णित सूतिकागार-ब्राह्मण के लिये इवत मिट्टी से, वैश्य के लिये पीली मिट्टी से तथा शूद्र के लिये कुण मिट्टी द्वारा बनाने के लिये कहा है। इसके अतिरिक्त सुश्रुत में ओषधि निमणि के पश्चात् पूजा करने तथा ब्रह्म मोज करने का भी उल्लेख है तथा इसमें राम और कृष्ण के सनदर्भ मिलते हैं। इन सब युक्तियों से इसका समय बाँदू धर्म के पश्चात् अर्थात् एक से औरी शताब्दि का ज्ञान पड़ता है। इसी समय में हिन्दू धर्म की दूसरी कालित हुई थी तथा बौद्ध धर्म का प्रचार समाप्त हो गया था। “महेन्द्र राम कृष्णानां गवामपि” (सुश्रुत संहिता), राम कृष्ण का नाम एवं बासुदेव धर्म, जिसका औरी शताब्दि में उत्थान हुआ, वह भी इसी काल का द्योतक है।
2. सुश्रुत में अनेक स्थानों का वर्णन आता है, जैसे—पूर्व में कर्णिंग देश, उत्तर में कुरु (यान यान), महेन्द्र पर्वत तथा देवगिरि, केसर के विषय में कश्मीर के वर्णन इवादि से भी पता चलता है कि यह समय महामारत के आम-पास का है, क्योंकि महामारत में उपर्युक्त देवगिरि इत्यादि पर्वतों का वर्णन मिलता है।
3. सुश्रुत का परिचय सारे भारत से था जैसा कि निम्न युक्ति से जान पड़ता है। सातवाहन युग में उत्तर का विकास से परिचय हुआ था। इसी समय संवद्गुप्त द्वितीय ने अपनी कृत्या प्रमाचारी का विवाह रद्दमन द्वितीय, वाराटक के शासक (जो सातवाहन युग में हुए हैं इसे वाराटक युग भी कहते हैं) से किया था। संवद्गुप्त के समय में ब्राह्मणों का आदर होता था तथा जातिवाद का अधिक प्रचार था, ऐसा सदर्म सुश्रुत में भी प्राप्त होता है (संवद्गुप्त का समय दूसरी शताब्दि का मात्रा जाता है)।
4. अशोक तथा मौर्य वंश के पश्चात् ही सुश्रुत का प्रति-संकर्ता नागार्जुन हुआ जो सातवाहन राजा का भिन्न था, जिसका कि वर्णन बाण ने अपने हृष-चरित में किया है। यह समय दूसरी शताब्दि के पास का है।

## सुश्रुत के सम्बन्धीन शाल्य विषयक प्राचीकार

सुश्रुत सहितो में प्राप्त वर्णन के अनुसार दिवोदास धन्वत्तरि ने आयुर्वेद के शाल्य तत्त्व का ज्ञान सुश्रुत को सम्बोधित करते हुए, वहाँ पर उपस्थित सब ऋषियों को दिया। तत्परचात् प्रत्येक शृणि ने शत्य विषय पर अपना-अपना प्रश्न लिखा। इन

में से आज दूर्ण रूप में सुश्रुत रचित एकमात्र प्रथम ही उपलब्ध होता है, जो कि सन्दर्भमें से प्राप्त होता है। अन्य शल्य विषयक प्रथम जो सुश्रुत समकालीन लिखे गये, उनमें से मुख्य निम्न हैं :—

- (1) औपचनव तन्त्र
- (2) औरञ्ज तन्त्र
- (3) बहूत सुश्रुत तन्त्र
- (4) सुश्रुत तन्त्र
- (5) पोषकलायत तन्त्र
- (6) करवीर्य तन्त्र
- (7) गोपुर रक्षित तन्त्र
- (8) मारुक तन्त्र
- (9) कपिलबल तन्त्र
- (10) सुश्रुत गोतम तन्त्र
- (11) वृद्धभोज तन्त्र
- (12) सोज तन्त्र
- (13) कृतवीर्य तन्त्र

**बीसवीं शताब्दि में शल्य विषय पर लिखी गई अन्य पुस्तकों की लालिका**

क्रम सं.	पुस्तकों का नाम	लेखक	सन्.
1.	शल्य तन्त्र सम्बन्धीय (दो खण्डों में)	पं० वामदेव भिर्म	1929
2.	शोश्रुति	अनन्त राम शर्मा	1963-65
3.	शल्य-शालाक्य तन्त्र (पराठी, दो खण्डों में)	रमाताप हिवेदी जोशी, आठवले तथा राजवाडे	1968
4.	शल्य तन्त्र में रोगी परीक्षा	प्र० ज० देवपाण्डे	1955
5.	सर्जिकल एथिक्स (Surgical ethics)	जी० डी० तिथल	1963

श्री जेज्जट माने जाते हैं। इनकी सुश्रुत की टीका तो प्राप्त नहीं है परन्तु डल्हण तथा मधुकोश की व्याख्याओं में इनका निर्देश मिलता है जिससे श्री जेज्जट का बोध होता है।

(2) गयदास : सुश्रुत के दूसरे टीकाकार गयदास हैं जिनका समय 7वीं या 8वीं शताब्दी माना जाता है। गयदास की टीका का नाम 'पञ्जिका' टीका है।

(3) डल्हण :—यह सुश्रुत के मुख्य टीकाकार हैं तथा इनकी 'निबन्ध' टीका का ही अधिक प्रचार है, जो कि बहुत सरल तथा एकमात्र सुश्रुत की उपलब्ध

सम्पूर्ण टीका है। डल्हण मधुरा के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम भरतपाल जैव था जो कि मधुरा के पास भद्रानक ग्राम के निवासी थे। इनका समय 10वीं शताब्दी माना जाता है।

(4) चक्रपाणि :—चक्रपाणि की टीका का नाम 'मानुपती' है। इनकी टीका को तास्यर्थिक भी कहते हैं। इनकी विशेषता यह है कि इन्हें रक्त परिश्रमण का वर्णन एवं हृदय की रचना (Anatomy) का वर्णन आज के विज्ञान के अनुसार किया है। 'चतुः प्रकोष्ठ हृदय वामद्विक्षण भागतः। तस्याद्बो दक्षिणो क्षोड्ये गृहोत्त्वाऽसुद्ध शोणितम्...'।

सुश्रुत के उपरोक्त चार ही मुख्य टीकाकार माने जाते हैं। डल्हण ने अपनों की कारों में अपने से पूर्व के टीकाकारों का मत दिया है। इससे डल्हण के पूर्व के टीकाकारों के नामों का ज्ञान होता है परन्तु इनकी सुश्रुत संहिता पर टीकायें प्राप्त नहीं हैं। ये टीकाकार निम्नलिखित हैं :—

- (i) विप्रचण्डाचार्य—जोकि चाँथी-पांचवीं शताब्दी में हुए।
- (ii) माधवकार—इन्होंने सहस्र सुश्रुत विवान सुश्रुत इलाक वार्तिक बनाया।
- (iii) कार्तिक कुण्ड बंध—यह 7वीं-8वीं शताब्दी माना जाता है।
- (iv) मुवीराचार्य—यह 10वीं शताब्दी में हुए।
- (v) भास्कर भट्ठ—आपने 'पञ्जिका' टीका लिखी तथा आपका समय 14वीं-15वीं शताब्दी माना जाता है।
- (vi) बहुदेव—इन्होंने सुश्रुत पर टिप्पणी तथा व्याख्या लिखी। इनका समय 11वीं-
- (vii) गदाधर—इन्होंने सुश्रुत की व्याख्या लिखी। इनका समय 11वीं-12वीं शताब्दी माना जाता है।

हृषीकेश संहिता के अनेक टीकाकार हुए हैं परन्तु इनकी टीकायें उपलब्ध नहीं हैं। डल्हण ने ऐसे बहुत से टीकाकारों का परिचय दिया है जिनके विषय में आज तक अधिक ज्ञान नहीं हो पाया है।

(1) श्री जेज्जट :—सुश्रुत संहिता के आदि टीकाकार, दामभट्ट के शिष्य,

मोट—डलहु के अनुसार नागार्डुन सुश्रूत संहिता का प्रतिसंस्कर्त है परन्तु टीकाकार नहीं।

### अष्टाङ्गपुरुद में शाल्य तन्त्र की प्रधानता

सुश्रूत ने शाल्य तन्त्र को अधिक मात्र (प्रवान) कहा है—

“अष्टास्वपि चापुर्वदत्तन्त्रे एवेदेवाविकम्भिमतम्”

शाल्य तन्त्र आयुर्वेद के आठों अंगों में निम्नलिखित कारणों से प्रधान माना जाता है :—

(1) आचारारो चिकित्सा—शाल्य तन्त्र में यन्त्र, शस्त्र, क्षार, अधिन, रक्त विकारण इत्यादि से सिद्ध होने वाली अनेक प्रकार की आशुकारी चिकित्साओं का वर्णन किया गया है। इसके विपरीत अन्य तन्त्रों में चिकित्सा औषधि द्वारा की जाती है जिससे लाभ होने में अधिक समय लगता है।

(2) विषय प्रकार की चिकित्साय—इस तन्त्र में लगभग प्रत्येक रोग के लिये अनेक प्रकार की चिकित्सायें बताई गयी हैं जैसे अर्द्ध की शाल्य चिकित्सा, अन्त चिकित्सा, क्षार चिकित्सा इत्यादि। इनमें से चिकित्सक रोग तथा रोगी के अनुसार किसी भी एक या अनेक चिकित्साओं का आक्षय ले सकता है।

(3) व्याघ्रियों का समूल नाश—शाल्य कर्म द्वारा नष्ट की गयी व्याघ्रियों प्रायः समूल समाप्त हो जाती है (जैसे अर्द्ध द का छेदन कर्म)। परन्तु औषध चिकित्सा के उपरान्त व्याघ्रियों का प्रायः पुनः प्रादुर्भव हो जाया करता है।

(4) गर्भीर अवस्था में प्रभावकारी—अतेक रोगों की गर्भीर अवस्था में या अनेक मृत्यु आसन्न रोगियों में शाल्य कर्म द्वारा उत्तन्त लाभ होता है, जैसे मून-जठर (Retention of Urine), छिंदोदर (Perforation of intestine) इत्यादि में।

(5) औषध-अवस्थाय रोगों की सफल चिकित्सा—औषधि से न ठीक होने वाले रोग जिनमें कि अवयवों में विकृति (Organic defects) आ जाती है वे रोग प्रायः शाल्य कर्म से ठीक हो जाते हैं, जैसे चरक ने अर्था, उदर तथा गुल्म रोगों में शल्य चिकित्सा का आश्रय लेने के लिये कहा है।

(6) शाल्य कर्म एकमात्र चिकित्सा—कुछ न्यार्थियाँ केवल मात्र शस्त्र साध्य होती हैं जैसे नासा-सन्धान, कर्ण-सन्धानादि, प्लास्टिक संजरी (Plastic surgery) तथा मूळ गर्भ की चिकित्सा (Obstetric surgery) इत्यादि।

(7) आघातज अवस्थाओं में आपात-चिकित्सा (Traumatic emergencies)—अनेक प्रकार की आघातज अवस्थाओं में जैसे छिंदोदर (Traumatic perforation of intestine), सरण मरण (Compound fractures), अन्तः रक्त-साव इत्यादि में केवल मात्र शाल्य कर्म चिकित्सा ही उपयोगी तिक्क होती है।

(8) अर्थ तथा यात्रा देने वाली चिकित्सा—इस चिकित्सा द्वारा रोगी मयानक चिकित्सक की रोगी से घन और यथा की प्राप्ति होती है।

### शाल्य तन्त्र की अवधारण के कारण

शाल्य तन्त्र सुश्रूत काल में उत्तरति की चरम सीमा पर था। इसके पश्चात् इस तन्त्र की कोई विशेष उत्तरति हुई, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता, परन्तु इस तन्त्र की अवधारण अवश्य हुई है। बीरे-बीरे इस तन्त्र का चिकित्सकों द्वारा प्रभावकारी जाते हैं।

(1) प्रभावकारी संजाहर औषधि का अभाव (Lack of effective anaesthetic agent)—सुश्रूत काल में जो शाल्य कर्म होते थे वे रोगी को तीक्ष्ण मध्य पिलाकर किये जाते थे। क्योंकि वेदना हरने के लिये अन्य कोई प्रभावकारी संजाहर औषध उपलब्ध नहीं थी, जैसा कि आज के युग में इथर इत्यादि सार्वदेहिक परन्तु इसका हास ही होता रहा।

(2) प्रभावकारी जीवाणुनाशक तथा प्रतिजीवी औषधियों (Antiseptics and antibiotics) का अभाव—आजकल की तरह तीव्र जीवाणुनाशक औषधियों उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं। इसीलिये बड़े-बड़े शल्य कर्म (Major operations) उसी अवस्था में किये जाते थे जब शाल्य कर्म न करने से रोगी की मृत्यु निश्चित समझी जाती थी, जैसे मृत्युमरी के शल्य कर्म में कहा गया है ‘अक्षियाय अ॒ बो नृ॒षुः क्ष्यायां संशयो भवेत्……अर्थात् शल्य कर्म न करने से रोगी निश्चित ही मर्यादेण तथा शाल्य कर्म करने से ही सकता है जीवित रह सके।’ इसीलिये प्रभावकारी कारण माना गया है।

(3) शवच्छेदन (Dissection) कर्म का अभाव—सुश्रूत ने शरीर की रचना का ज्ञान मृत शरीर से करने को कहा है, क्योंकि शरीर रचना के ज्ञान के बिना शाल्य कर्म नहीं हो सकते। सुश्रूत के पश्चात् काल में शवच्छेदन (Dissection on dead body) का कोई प्रमाण नहीं मिलता जोकि इस तन्त्र के हास का एक कारण जा सकता है।

(4) बाह्य आक्रमण (Foreign invasions)—सातवीं-आठवीं शताब्दी में देश पर अनेक बाह्य आक्रमण हुए इससे हमारे विज्ञान तथा संस्कृति का नाश हुआ। इन आक्रमणों का प्रभाव आयुर्वेद के शल्य तन्त्र पर भी समान रूप से पड़ा।

(5) मृत्युमरानों का अधिष्ठय—देश पर मृत्युमरानों का राज्य हो गया था जोकि बहुत ही विलासी थे। इस काल में रस तथा दाजीकरण चिकित्सा का ही

अधिक प्रयोग हुआ। इससे आयुर्वेद के अन्य अंगों के साथ-साथ शल्य तन्त्र का भी हास टुआ।

(6) अंगेजों का भारत में आगमन—अंगेजों के भारत में आने पर मुसलमानों ने अपनी चिकित्सा आयुर्विक पद्धति (Allopathy) से करवानी शुरू कर दी। इससे आयुर्वेद के अन्य अंगों के साथ-साथ आयुर्वेदीय शल्य तन्त्र में भी रुचि लेनी बाहर कर दी जिससे राजकीय शरण (Govt. recognition) मिलनी भी बहाने हो गयी।

(7) शल्य विज्ञान का अध्ययन—मुसलमानों के भारत में आयुर्वेद की अवनति होने के कारण यह व्यवसाय केवल कुछ ही लोगों के हाथ में रह गया, जिस कारण

शल्य तन्त्र का प्रायोगिक ज्ञान उत्पन्न हो गया। (8) बौद्ध धर्म—बौद्ध धर्म के अहिंसा के नारों के कारण शल्य कर्म को आसुरी कर्म समझा जाने लगा। इसी कारण चिकित्सा तक शल्य चिकित्सा का कर्मभ्यास नहीं हो गया।

(9) मुश्तृत संहिता का अभाव—बौद्ध भारत के उपरान्त शल्य तन्त्र का शोषण बहुत ज्ञान जीविकोपाजन के लिये जो वैद्यों को मिलता था वह केवल अधीनीय मापदांड में लिखी औटी पुस्तकों से प्राप्त होता था। इनके आधार पर शल्य कर्म करने में संशोधन करके छपवाया। यह संहिता इसी समय आम वैद्यों को प्राप्त हुई तथा कदापि सम्भव नहीं हो सकते थे। यादव जी विज्ञम जी ने मुश्तृत संहिता को 1836 में संशोधन करके इस क्रियान्वयन ज्ञान का चिरकाल से प्रयोग न होने के कारण प्राप्त होने समय तक इस क्रियान्वयन ज्ञान का चिरकाल से प्रयोग न होने के कारण लोप हो चुका था।

#### शल्य तन्त्र की उन्नति के उपाय

(1) व्यायाधिता (Practical training)—शल्य तन्त्र के अटविच कर्म (Eight surgical procedures) को फलों, सहजियों तथा मृत पशुओं के अतिरिक्त प्रयोग-तन्त्रक जन्मतुओं (Experimental animals, as dog, guinea pig etc.) पर भी तथा विधि से विद्यार्थियों द्वारा योग्या (practical training) करवाना चाहिये। इस विधि से करने की आज्ञा देनी चाहिये। मुश्तृत ने योग्या को एक पूर्ण अध्याय में लिखा है।

चाहिये।

(6) कृच्छ्रमाध्य या असाध्य रोगों की चिकित्सा—आयुर्विक चिकित्सा पद्धति जिन व्याधियों में पूर्णरूप से सफल नहीं हो रही है, ऐसे रोगों पर मुश्तृत द्वारा कही गई चिकित्सा का प्रयोग करके देखना चाहिये, जैसे भगवद्वर रोग में शार सूत चिकित्सा का प्रयोग आयुर्विक आपरेशन की अपेक्षा अधिक सफल तिक्का हुआ है।

(7) शल्य उपकरणों का मानकीकरण (Standardization of surgical instruments)—यन्त्र तथा शस्त्रों को मुश्तृत कथनानुसार बनाकर उनकी कार्य क्षमता का मूल्यांकन करना चाहिये तथा उनमें आवश्यक सुधार भी लाने चाहिये। भार, अन्त, जलैका, शृंग, तुङ्बी, सिरावेष इत्यादि उपयन्त्रों (Para surgical Methods) का विभिन्न रोगों पर क्या प्रभाव होता है इसकी भी जानकारी करके उनकी प्रायोगिक उपायेयता (Practical utility) को जानना चाहिये।

(8) मर्मों की पूर्ण जानकारी—मर्मों की पूर्ण जानकारी करके उनकी शल्य की दृष्टि से महत्ता तथा उन पर आधार का प्रभाव इत्यादि की क्रियान्वयन उपायेयता करनी चाहिये।

(3) प्राचीन शल्य विधियों की क्रियों को दूरा करना—प्राचीन शल्य

विधियों का प्रायोगिक जन्मतुओं पर अध्ययन करके इन विधियों की क्रियों (Draw-backs) को आयुर्विक विज्ञान के आधार पर पूरा कर लेना चाहिये।

(4) शल्य तन्त्र को पूर्ण रूप से अवाहारिक बनार्ण—मुश्तृत संहिता में जिन शल्य कर्मों का अभाव है, उन शल्य विधियों (Operative techniques) को आयुर्विक शल्य विज्ञान (Modern surgery) से लेकर आयुर्वेद के शल्य तन्त्र में समावेश करके इसे पूर्ण अवाहारिक रूप दे देना चाहिये। इसके अतिरिक्त शल्य कर्म निजेवाणुकरण विधियाँ (Sterilization techniques), संज्ञानासा (Anaesthesia) इत्यादि।

(Practical utility) को बताना चाहिये।

(9) ब्राणशोषन तथा रोपण औषधियों का अस्थयन—ब्राणशोषन तथा श्वर रोपण औषधियाँ, जिनको कि मुश्तु संहिता में महता दी गई है, उनकी शोषन तथा रोपण योग्यताओं का स्तरीकरण (Gradation of healing drugs and debriding drugs) करना चाहिये। इससे इन औषधियों की शोषन तथा रोपण क्षमता के अनुसार ठंडक प्रयोग किया जा सकता है।

(10) शाल्य तन्त्र में प्रयुक्त औषधियों का विशेषण—शाल्य तन्त्र में प्रयुक्त होने वाली औषधियों का सब दृष्टिकोण से विशेषण करना चाहिये जिससे उन औषधियों का ठीक से तथा विशेष पूर्ण उपयोग हो सके।

आधुनिक शाल्य तन्त्र का इतिहास तथा इसकी आज तक हुई उन्नति आधुनिक शाल्य तन्त्र का जो रूप हम आज देखते हैं, इसका वास्तविक इतिहास अठारहवीं शताब्दी से प्रारम्भ होता है। इस काल से इसकी शुरुआताबाद उन्नति (Continuous progress) प्रारम्भ हुई जिस कारण इसे आज की विशिष्ट विकासों (Specialities) का रूप मिला।

#### (क)

अति प्राचीन काल में शाल्य चिकित्सा का क्या स्वरूप था, इसकी जानकारी प्राप्त करना भी आवश्यक है।  
फांस, जापान, जर्मनी इत्यादि अनेक देशों में प्राचीन युग की जानकारी प्राप्त करने के लिये स्थान-स्थान पर खण्डहरों की खोदाई की गयी। इस खोदाई से सुधरे हुए अश्व काल (Polished stone age) के प्राप्त कपालों के आधार पर, आज हमें अति प्राचीन समय में प्रचलित शाल्य कर्मों का ज्ञान होता है। इन कपालों (skulls) के एक पार्श्व में अस्थि-रिक्तता देखने से उस समय में मर्तिष्क सख्ती रोगों के लिये गये ट्रेफाईनिंग (Trephyning) शाल्य कर्म (इसमें कपाल अस्थि का एक छोटा-सा टुकड़ा निकाल लिया जाता है) का बोध होता है। यह शाल्य कर्म सम्बन्धतः भ्रातादि (Evil spirits), जोकि उस समय रोग के कारण माने जाते थे, उनसे बचने के लिये किया जाता था। परन्तु यह समय इसा से कितने बर्ष पूर्व का है, इसकी जानकारी नहीं हो पाई है।

#### 1. बोविलोनिया में शास्त्रकार्म (Babylonian surgery)

ईसा से लगभग 1,000 वर्ष पूर्व ब्रौज के चाकू (Bronze operation knife) से कोड़े (Abscess) पर धाव किया जाता था, अस्त्र पर और टूटी हुई अस्थियों पर भी कुछ शाल्यकर्म किये जाते थे तथा इन सब शाल्यकर्मों की शुल्क (Fees) निर्धारित होती थी।

#### 2. मिथ्र में शाल्यकर्म (Egyptian surgery)

ईसा से लगभग 3,000 वर्ष से शाल्य के आधार (Head injuries) तथा ब्रह्मण के विकारों (Sprains of vertebral column) की शाल्य कर्म द्वारा चिकित्सा की जाती थी।

3. चीन में शाल्यकर्म (Chinese-surgery)

चीन में 3,000 वर्ष ईसा पूर्व, केवल मात्र एक्यूपन्क्चर (Accupuncture) और मोक्षिक्षेत्र (Moxiebustion) अर्थात् रोग प्रस्त अञ्ज पर Moxae (मोक्ष के आकार का रास्त्र) के द्वारा लेखन कर्म करना ही प्रचलित था। 1,000 वर्ष ईसा पूर्व ब्राणश्वरकर्म (Castration) के लिये प्रयुक्त शाल्यकर्म ही एक वास्तविक शाल्यकर्म होता था।

#### 4. जापान में शाल्यकर्म (Japanese surgery)

1,500 वर्ष ईसा पूर्व जापान में सिरवेष द्वारा रक्त-विकारण (Blood letting) किया जाता था तथा देव, भूतादि (Good and evil spirits) विकित्सा के लिये होते थे।

#### 5. ग्रीस में शाल्यकर्म (Greek surgery)

ग्रीस में 1,000 वर्ष ईसा पूर्व केवल मात्र ब्राणशोषन (wound cleaning) के लिये ही शाल्य का आश्रय लिया जाता था।

#### 6. भारत में शाल्यकर्म (Hindu surgery)

वैदिक काल में दिव्य शाल्य चिकित्सक (Supernatural surgeons) अधिकारी कुमारों ने अनेक बृहत् शाल्यकर्म किये, जैसे—सिर काटकर जोड़ देना, अन्त्यत्व की चिकित्सा, कृत्रिम टांग लगाना इत्यादि। इसके पश्चात् सुशृद्ध काल में (500-1000 वर्ष ईसा पूर्व) अश्वमरी की शाल्य चिकित्सा, सूढ़ गर्म की शाल्य चिकित्सा (Obstetric surgery), कर्णवन्ध (Earplasty), इत्यादि अनेक प्रकार के शाल्यकर्म होते थे। इहां प्राचीन काल के कर्ण देशों के शाल्य कर्मों की अपेक्षा अति उत्तम शाल्यकर्म (Advanced surgery) माना जाता है।

#### 7. हिप्पोक्रेट्स (Hippocrates)

260 से 360 वर्ष ईसा पूर्व हिप्पोक्रेट्स के समय में चिकित्सा कर्म में प्रसन्नतया उन्नति हुई। इस काल में अस्त्र भग्न (Fractures), सूढ़ गर्म (Obstetrics), भग्नद्वार (Fistula), अर्च (piles) इत्यादि की चिकित्सा शाल्य कर्म द्वारा की जाती थी। इसके अतिरिक्त वृक्ष तथा यष्टुत की विद्यादि का ऐनन तथा विकारण (Incision and drainage) और पेट तथा वक्ष से पानी (Ascites and hydrothorax) निकालना (Paracentesis) इत्यादि शाल्य कर्म भी किए जाते थे।

### 8. अलेक्जेन्ड्रियन शल्य कर्म (Alexandrian surgery)

यह समय ईसा से 300 वर्ष पूर्व का है। इस काल में हेरोफिलस (Herophilus), शारीर विज्ञान के जाता (Anatomist) अति प्रसिद्ध हुए थे। इन्होंने प्रीस्टेट (Prostate) की जानकारी दी थी। ड्युडेनम् (Duodenum) एवं प्रीस्टेट (Prostate) की जानकारी विज्ञान के जाता (Erasistratus) एक प्रमुख शारीर क्रिया विज्ञान के जाता (Fourth फ्राइसिसटस् (Physiologist) हुए हैं। इन्होंने मस्तिष्कावरण, चौपा वैनिट्रक्ट (Fourth ventricle), मस्तिष्क का कोरायड प्लेक्सस (Choroid plexus of brain) और संबद्धनावाही तथा बैठावाही तनिंत्रकाओं का परिचय दिया। इस काल में मूत्रावर्तमरी, आउटवृद्धि (Hernia) तथा मोतिया बिंदु (cataract) के शल्य कर्म किये जाते थे।

### 9. रोमानिया में शल्य कर्म (Romanian surgery)

यह समय ईसा से 100 वर्ष पूर्व का माना जाता है। पहले यहाँ पर यह समय ईसा से 100 वर्ष पूर्व का माना जाता है। शीक चिकित्सा के परम्परागत चिकित्सा (Folk medicine) चलती थी, परन्तु शीक चिकित्सा (Tracheostomy) आने से लेरिज्नोटोमी (Laryngotomy) तथा ट्रेक्मोस्टोमी (Tracheostomy) शल्य कर्म भी किये जाते जाने।

### 10. सेलसस (Celsus)

सेलसस ने चिकित्सा विज्ञान पर एक सार संग्रह (Encyclopedia) लिखा, जो कि प्रथम प्रकाशित गुप्तकाल मानी जाती है। इसमें शल्य कर्म पर दो अध्याय दस दंग से लिखे हुए जैसे लेखक ने अपने हाथों से ही शल्य कर्म किये हों। इसमें एक ग्रंथि किया (Gargrane), रक्तरक्त चिकित्सा पर एक पुरा अध्याय लिखा हुआ है। इसमें कोष (Gar-grene), निकालने से गुंव उत्ते दर्तवेष्ट (Gums) से हीला कर लेना उत्पादि शल्य कर्मों का अङ्ग विन्क्षेप (Amputation), विछुत अतिथ का छेदन, पुरुं का का क्षेदन, दोताना अङ्ग-विन्क्षेप (Amputatio) तथा स्तन पर डालने के लिये निषेष किया है।

### 15. जोहन हन्टर (John Hunter)

इसने 1579 में ब्रण चिकित्सा पर विशेष कार्य किया। ब्रण को बिल्लूत करके उसमें से विजातीय पदार्थों को निकालकर तारपीन का तेल लगाने तथा ऐसे ब्रानों में सीवन करने के लिये कहा। उबलते तेल से निर्जीवाणकरण करने तथा इसे अङ्ग-विन्क्षेप किये हुए स्थान पर डालने के लिये निषेष किया है।

1728 ई. में इसने शल्य विकृति-विज्ञान (Surgical Pathology) की नीच रखी तथा हन्टरकीनाल में फिमोरल आरट्री को बांधकर (Ligated the femoral artery in hunter Canal) समाझरी रक्त परिऋरण (Collateral circulation) की जानकारी दी।

सेलसस (Celsus) से जोहन हन्टर (Johan Hunter) तक सब अपने-अपने समय के महान चिकित्सक माने जाते हैं।

(ब)

आधुनिक युग को हम विषय शल्य चिकित्साओं का युग (Age of specialised surgery) मानते हैं। इस युग की कमबद्ध उन्नति का इतिहास अठारहवीं शताब्दी से प्रारम्भ होता है, जैसा कि निम्नलिखित से विदित है।

(1) 1741 में निकोलस एंड्री (Nicholas Andry) ने "एल-ओरोथो-ऑर्थोडिक" (L-Orthopaedic) नाम से अतिथ सम्बन्धित शल्य कर्मों पर एक प्रमुख लिखी थी। यह अपने समय की एक प्रसिद्ध गुप्तकाल है। इसके अन्तर्गत उस समय में प्रचलित सब तरह के अतिथ-सम्बन्धी शल्य कर्मों का समावेश है।

(2) नाइट्रस ऑक्साइड (Nitrous Oxide) का बहुसंभाल, संशाहदण (Anaesthesia) की प्रगति में प्रथम चरण माना जाता है। इसे केन्टर के नेडिकल आपरेशन (Radical Operation of

cancer) की भी जानकारी थी। इसके अतिरिक्त कुप्रकृत-शोषण, कुप्रकृत-शोषण-बोध, बात-रक्त (Gout) इत्यादि व्याधियों की भी चिकित्सा की जाती थी।

### 12. एंड्रेस (Andreas)

इसे प्रथम इंग्लिश (English) शल्य चिकित्सक माना जाता है। इसका समय प्रथम शताब्दी माना गया है। इसने ब्रानोदण चिकित्सा को फिर से जीवित (revive) किया।

### 13. एंड्रेज वैज्जिस (Andreas Vesalius)

इसका काल 1514-1564 ई. तक है। इसने रक्त परिऋरण की जानकारी दी तथा तिरा में गन्दा रक्त होता है यह मी बताया। इसने एन्तुरीजम (Aneurysm) तथा स्तन के केन्सर की ओर ओमटल हनिया (Omental hernia) के बारे में जानकारी दी।

### 14. एम्ब्रोइज पारे (Ambroise pare)

इसने 1579 में ब्रण चिकित्सा पर विशेष कार्य किया। ब्रण को बिल्लूत करके उसमें से विजातीय पदार्थों को निकालकर तारपीन का तेल लगाने तथा ऐसे ब्रानों में सीवन करने के लिये कहा। उबलते तेल से निर्जीवाणकरण करने तथा इसे अङ्ग-विन्क्षेप किये हुए स्थान पर डालने के लिये निषेष किया है।

1772 में सर्वप्रथम संकाहर और थृथ, Nitrous Oxide का अधिकार जोसफ प्रीस्टले (Joseph Priestly) ने किया तथा हम्फरी हेवी (Humphrey Davy) ने इसे लोकप्रिय बनाया था। फिर इसके बहुत समय के पश्चात 1842 में अमरीका के काफोर्ड लोग (Crawford Long of U. S. A.) ने दूसरी संज्ञाहरण औषधि "इथर" (Ether) का अधिकार किया, जिसका कि प्रयोग मोर्टन (Mortan) ने 16 अक्टूबर 1946 में किया। इस औषधि के हारा सार्वदेशिक संकाहरण देकर, सर्वप्रथम 1810 जोहन कोलिन ने शल्य कर्म किया था।

(3) 1878 से 1883 तक उदर के तथा मस्तिष्क के मैनिंगोमा (Meningioma) के अनेक शल्य कर्म हुए।

उदर के शल्य कर्मों का प्रारम्भ तो कुछ देर पहले से ही हो चुका था, परन्तु बोन वोल्कमन (Von Volkmann) ने 1887 में मराशय के कैन्सर का सर्वप्रथम छेदन-कर्म किया। फिर मिकूलिक (Mikulicz) ने इस शल्य कर्म को दो भागों में विभक्त कर दिया। इसमें प्रथमावस्था में कोलोस्टोमि (Colostomy) करने का तथा द्वितीय अवस्था में कैन्सर का उदरोदीय-मूलाधार रास्ते (Abdomino-perineal route) से छेदन-कर्म करने का विचान बताया।

1879 में लोसन टेट (Lowson Tait) ने तर्वरप्रथम सफलतापूर्वक पित्ताशय (Gall bladder) का छेदन कर्म किया। इसी वर्ष में मस्तिष्क के पूर्व पिण्ड के रक्तांतुद (Meningioma of frontal lobe of the brain) का, विलियम मेस्केन (William MacCawen) ने क्लेदन-कर्म किया तथा मस्तिष्क के शल्यकर्म करने में प्रथम पाग रखा।

1881 के खिलोर बिलरोथ (Theodor bilroth) निसे आमाशय के शल्य-कर्मों का जन्मदाता (Father) माना जाता है, उसमें आमाशय के जठरिंगम के अनुद (Tumour of Pylonic end) का शल्यकर्म किया। इस शल्यकर्म को बिलरोथ-I (Bilroth-I) के नाम से कहते हैं। कुछ वर्षों पश्चात् उसने बिलरोथ-II (Bilroth-II) शल्यकर्म मी बताया जो कि आज भी एक महत्वपूर्ण शल्यकर्म माना जाता है।

(4) पाश्वर एवं कोरक (Pasteur and Koch) ने बताया कि जीवाणुओं की उपस्थिति सर्वस्थानात होती है और उनसे बचने के लिये भी कहा। 1882 में पाश्वर ने इस बात की जानकारी दी कि जीवाणु सब स्थानों पर उपस्थित रहते हैं। कोरक (Koch) ने अनेक प्रकार के विकार उत्पन्न करने वाले जीवाणुओं तथा शल्य के जीवाणुओं का वर्णन किया है। इसने शल्य कर्म के सब उपकरणों को कार्बोलिक अम्ल (Carbolic acid) के द्वारा निर्जीणकरण (Sterilize) करने पर बहु दिया तथा बस्ताले (Gauze) अलाइक्यादक (Mask), एवं

(Apron) इच्छादि का निर्जीणकरण करने का भी निर्देश दिया।

(5) 1883 में आमाशय के अस्थ शल्य कर्म किये गए, लुड्विग जे. कोरवाइजर (Ludwig J. Corvoisier) ने 1883 में परिचय तथा इसके कुछ वर्ण पश्चात् रिडिजियर (Rydgier) ने आमाशय कर्म किया आमाशय का छेदन कर्म (Gastric resection) किया।

(6) 1885 में निट्ज (Nitz) ने मूत्राशयदर्शी यन्त्र का अवैवेष किया। यह यन्त्र इस सोने के शल्यकर्मों की प्रगति से एक मुख्य कारण माना जाता है। इससे पूर्व केवल मूत्राशय अस्थमी तथा सूक्ष्मार्ग संकोचन (Urethral structure) का ही शल्यकर्म किया जाता था।

(7) 1895 में क्ष-किरण का अविकार मुख्य कारण है। रोन्जन (Roentgen) — इसने 1895 में क्ष-किरण (X-ray) का अविकार होने लगे। इसके कलस्क्रल अस्थियों पर होने वाले अनेक इकार के शल्यकर्म तीक्ष्ण से हुई। सर आर्बथनट लेन (Sir Arbuthnot Lane) ने अवैष मान (Closed fracture) में शल्य कर्म द्वारा पुनः स्थापन (Reduction) तथा स्थिरीकरण (Fixation) के लिये रजत की तार, पेच एवं पट्ट (Screw and plate) का प्रयोग किया।

(8) 1901 में रक्त बगीकरण (Blood grouping) की ओर एक अति आवश्यक चरण था। 1901 में कार्ल लैन्डस्टेनर (Karl Landsteiner) ने रक्त को A, B, AB तथा O, नाम से चार वर्गों में विभाजित किया, इससे रक्ताधान (Blood transfusion) करने के लिये एक रास्ता खुल गया।

(9) 1903 में आमाशय तथा बहुदात्र के महत्वपूर्ण शल्य कर्म हुए। Mikulicz) ने पृथुं दर्या शोश्य (Peritonitis) से बचने के लिये बहुदात्र के फैन्सर शल्य कर्म बताया। 1903 में फैन्सर कार्ने का उपयुक्त का 'बाहुपृथुं दर्या छेदन' (Extra peritoneal resection) करने का उपयुक्त ने आमाशय तिर्झम (Pyloric end) की अतिवृद्धि (Hypertrophy) के लिये एक अति सामाजिक शल्य कर्म बताया। इस शल्य कर्म को उसी के नाम से ही रामस्टेड का आपरेशन कहा जाने लगा।

(11) बीमां शाताव्दी के प्रारम्भ में ही मस्तिष्क के अंडूद, इम्प्रेस्ट्रिया रोपण (Kidney transplantation) तथा कृत्रिम इन्फर्न (Artificial kidney) पर विशेष लक्ष से काम हुआ ।

बीमां शाताव्दी के प्रारम्भ में ही हारवे कुशिंग (Harvey cushing) के प्रयास द्वारा मस्तिष्क के शल्य कर्मों में विशेष प्रगति हुई । इस काल में अन्तः बीमां शाताव्दी के शल्य कर्मों में विशेष प्रगति हुई । इस काल में अन्तः कृपालीय (Intra cranial) अंडूद तथा पीयूष प्रयिक्य के अंडूदों के भी गत्यकर्म होते जागे । इधर इन्फर्न प्रत्यारोपण, कृत्रिम-इम्पर्न-रक्षण (kidney preservation) की रासायनिक चिकित्सा (Chemotherapy) के आविष्कारों से एरलिंक (Erlinc) की रासायनिक चिकित्सा (Chemotherapy) की जानकारी से शल्य चिकित्सा प्रगति के एक विशाल पथ पर आ गई ।

1903 में टोरोक (Torok) ने अन्तरिक्षिका (Oesophagus) के कैंसर का छेदन कर्म प्रयोग (Resection) किया तथा टिम्प देटर्सन (Smith peterson) ने मग्न के लिये (Resection) किया तथा टिम्प देटर्सन (Smith peterson) का आविष्कार किया ।

(12) 1913 में प्रत्यारोपण शल्य कर्मों में भी पर्याप्त उन्नति हुई । सर हैरोल्ड गिल्स, लेक्सर, इस्पार्टि (Sir Harold Gills, Lexer etc.) द्वारा किये गये गर्मे प्रत्यारोपण के प्राथमिक आविष्कारों के पश्चात् ज्ञेयर, ब्राउन तथा गिल्स (Blair, Brown and Gills) ने ऊतियों को बदलने का (Tissue transfer) तथा उनका प्रत्यारोपण कर दिया ।

(13) 1920 में मस्तिष्कीय वाहिका के चिकित्सा (Cerebral angiography)

गा आविष्कार हुआ तथा कुपकुप लगड़ों का छेदन कर्म (Lobectomy) किया गया ।

1885 में भ-किरण का आविष्कार हो चुकने के पश्चात् वाल्टर डार्डी (Walter Dandy) ने 1920 में सब-अरेनाइड (Sub arachnoid space) में हृदय का सूचिवेष कर्म के पूर्व-मस्तिष्क के अंडूदों के निदान करने की विधि बताई ।

हृदय का सूचिवेष कर्म को पुतंगाल का वासी था, उसने भ-किरण 1931 में ईगास मोनिज (Egas Moniz) जो पुतंगाल का वासी था, उसने सूचिवेष कर अमारदर्शक पदार्थ (Radio-opaque material) को घमनी में सूचिवेष कर मस्तिष्क के रक्त सञ्चार संस्थान का चित्र लिया । फिर इतेक्टो माइलोप्रायोग्राफी (Electro mylography) के अविष्कार के कारण मस्तिष्क के शल्य कर्मों में उन्नति होने लगी । तथा 1929 में ब्रुनु (Bruun) ने ख्वास नलिका का चिकित्सार किया तथा कुपकुप खण्ड का छेदन किया ।

(14) 1935 से 1941 तक सल्फा औषधियाँ (Sulpha drugs) तथा पैन्टिसलीन इस्पादि (Penicillin etc.) अनेक प्रतिजीवी औषधियाँ सामने आयीं । 1935 में डोमर्क (Domark) ने स्ट्रैप्टोकोकस (Streptococcus) के प्रतिरोधी तत्व प्रोन्टोसिल (Prontosil) का आविष्कार किया । इसके पश्चात् अनेक सल्फोनामाइड (Sulphonamide) सामने आये । एलेक्ट्रोन फ्लैमिंग

(Alexander Fleming) की पैन्सिलीन की खोज के उपरान्त, एक के पश्चात् एक प्रतिजीवी औषधियाँ (Antibiotics) सामने आने लगी ।

(15) 1938 से 1947 तक हृदय के शल्यकर्म हुए तथा लावि चिकित्सक (Plasma expander) और रक्ताभान (Blood transfusion) का पूर्ण रूप से प्रयोग होने लगा ।

1938 में रोबर्ट ग्रैस (Robert gross) ने पेटेंट इन्फर्न आरटीरीओसेस (Patent ductus arteriosus) को बांधकर हृदय के शल्य कर्मों का प्रारम्भ किया । 1940 में लैन्डस्टीनर तथा बिनेर (Land Steiner and Winer) के रक्त रिस्फ घटक (Rh. factor) के विषय में बताया तथा फिर बलालीक और टासिंग (Blalock and Tausing) ने अब : अधका शिरा एवं कुपकुपसीय घमनी (Subclavian vein and pulmonary artery) का सन्मिलन (Anastomosis) किया । 1947 में बेली (Baily) तथा कई अन्य लोगों ने छिकपदों संकोणिता (Mitral stenosis) के सफल शल्य कर्म किए ।

(16) 1947 में संजाहरण पर संजाहरणीय कार्य हुआ :—

1947 में जेम्स सिम्पसन (Sir James Simpson) ने ब्रिटेन में सार्वदैहिक संजाहरण के लिये ब्लौरोफार्म (Chloroform) का प्रयोग किया, इसके पश्चात् अन्य स्थानीय संजाहरण तथा प्रादेशीय संजाहरण Regional anaesthesia) औषधियों के अनेक आविष्कार हुये ।

(17) 1952 में अस्थिमान के स्थिरीकरण के लिये अनेक तरह की कुशायों (Splints) के आविष्कार हुये ।

1952 में अस्थिमान चिकित्सा के लिये एक डच्च (Dutch) शल्य चिकित्सक 'एण्टोनस मैथिसन' (Antonius Mathisen) ने लास्टर ऑफ मेरिस (Plaster of paris) के पट्ट का घमन के लिये प्रयोग किया तथा हाइओन थोमस (Highowen Thomas) ने घमन के लिए अनेक कुशाएं (Splints) बताई ।

(18) 1953 में हृदय के अन्य शल्य कर्म हुए—

हाफनोजल (Hafnogel) ने माहाघमनी में प्लास्टिक का वाल्व (Valve) लगाया तथा बेकी (De Bakey) और उसके अन्य साथियों ने महा घमनी के विस्कार (Aortic aneurysm) का छेदन करके प्रत्यारोपण (Grafting) शल्य कर्म किया ।

(18) नए अन्वेषण—

इंगस्टेड (Dragstedt) ने आमाशय व्यण (Peptic ulcer) के लिए बोटोमी प्रतिरोधी तत्व प्रोन्टोसिल (Prontosil) का आविष्कार किया । इसके पश्चात् वागोटोमी (Vagotomy) करने के लिये कहा । आइसोटोप्स (Isotopes) का प्रयोग होने

लगा । अधिकों के रक्षण के लिये अस्थि बैंक बनने लगे । उर्वरक्ष के सिर के स्थान पर कृत्रिम सिर (Prosthetic head) लगने लगा । बरनार्ड ने अपने सहयोगियों के साथ मिलकर हृदय का प्रत्यारोपण किया । कृत्रिम हृदक रक्षण (Preservation) की होने लगा । कोलर, मेरीओट (Collier, Marriot, etc.) इरयादि ने इतेवढ़ो-लाइट्स (Electrolytes) तथा प्लाज्मा-विस्फारक (Plasma expanders) इबों की आवश्यकताओं पर प्रकाश डाला । अब तो पार्श्वीय घमनी-विस्फार (Peripheral aneurysm) के ज्ञानार्थ अल्ट्रा साउंड स्कैन (Ultra sound scan) का भी प्रयोग होने लगा है (Devis et al., Arch surg, Vol. 112, Jan 1977) । नवीन होने वाला नियन्त्रक (New infusion stabilizer) आधान इबों को नियन्त्रित करने की गति से चलाता है जिससे कि परिचारक (Nurse) को उसे नियन्त्रित करने की आवश्यकता नहीं रहती । आज भी इस तरह के नवीन शाल्य कर्मों तथा इससे सम्बन्धित विषयों पर अनेक अन्वेषण चल रहे हैं ।

#### अधिकियों में जेव का कारण :

तीनों दोषों के प्रकोपक कारणों के भेद से, दोष हृदय के स्थान भेद से, हृदय तथा शाखों में अनेक भेद होने से, मल भेद से तथा इन्हिय भेद से अनेक तरह की अधिकियों उत्पन्न होती हैं ।

#### रोग उत्पन्न में कारण :

“इचितानां हि दोषाणां शारीरे परिष्वाक्ताम् । यत्र संगः स्वर्वेग्यात् शारीरिकायते” ।

अथवा प्रकृतित दोष उन स्रोतों में जाकर रुकते हैं जहाँ पर रोग प्रतिरोध शक्ति का हास होता है । स्रोतों में दोषों के रुक जाने से धात्वविनिं विषम होकर तथा इससे शातु का क्षय या उसकी साम वृद्धि होकर रोग उत्पन्न होते हैं ।

#### वर्णकरण :

रोगों का वर्णकरण अनेक तरह से हो सकता है । जैसे—

1. प्रगाव भेद से —साध्य एवं असाध्य
2. बल भेद से —सुड एवं दारण
3. अधिष्ठान भेद से —मानसिक एवं शारीरिक
4. कारण भेद से —निज एवं आगच्छुज
5. आश्रय भेद से —आमाशय समुत्थं (साम) पञ्चाशय समुत्थं (निराम)
6. तीन प्रकार के रोग —निज, आगच्छुज, मानसिक
7. चार प्रकार के रोग —शारीरिक, मानसिक, आगच्छुज एवं श्वासाधिक
8. रोग-मार्ग भेद से —बाह्य, मध्यम तथा आम्यन्तर रोग मार्ग ।

इनमें से मुख्य वर्गीकरण निम्नलिखित हैं ।

## निज और आगन्तुज भेद से व्याधियों का वर्गीकरण

(सुश्रूत मतानुसार)

व्याधि	
निज	आगन्तुज
आध्यात्मिक	आधिदैविक
यह रोग शुक्र तथा आर्तव दोष से होते हैं, जैसे कुछ तथा अर्णा।	यह माता के आहार एवं विहार से तथा रज और तम से, दोष प्रकृष्टि होने पर होते हैं।
आदि बलप्रवृत्त	जन्म बलप्रवृत्त
यह रोग मिथ्याहार विहार से तथा रज और तम से, दोष प्रकृष्टि होने पर होते हैं।	यह शीत, उष्णादि ऋतुओं से होते अभिचार, मंत्र तथा उपसर्ग से होते हैं।
दोष बलप्रवृत्त	काल बलप्रवृत्त
यह अभिशाप, अभिचार, मंत्र तथा उपसर्ग जैसे अधिक से होते हैं।	ये स्वामाविक भूख प्यासादि से होते हैं।
देव बलप्रवृत्त	स्वभाव बलप्रवृत्त
बाधिभौतिक रोग बलवान पुरुषों से युद्ध करने से होते हैं।	संघात बलप्रवृत्त

-मातृजन्य (बीज दोष से)	रस जन्य (पोषण विकृति से)	-शारीरिक	-व्यापन्न क्रहु कृत (जनपदोद्घवंस)	-मन्त्र, उपसर्ग काल जन्य (क्षुधा)	-शस्त्रकृत
-पितृ जन्य (शुक्र दोष से)	-दोहदावस्था (इच्छा की आपूर्ति से)	मानसिक	-अव्यापन्न क्रहु कृत (क्रहुचर्या उल्लंघन है)	-पिशाच से	-अकाल जन्य (मस्मक रोग)
-मातृज	-रसज	-संतर्पण से	-व्यापन्न (द्रवित क्रहु से)	-शारीरिक (ज्वर)	-कालज
पितृज	दोहदयज	-अपतर्पण से	-असंरक्षणज (क्रहु से दोष प्रकोप)	-मानसिक	-अकालज
सहज	गर्भज	जातज	कालज	प्रभवज	स्वभावज
					पीड़ाज

व्याधियों (वार्गमट मतानुसार वर्गीकरण)

לע' יפה ליה ר' יונתן ר' ר' מילא ר' מילא

ՀԵ ԱՐԵ ԽԵԲԵ ԽԵԲԵ ԽԵԲԵ : ԽԵԲ ԽԵԲԵ |  
ՀԵ ԱՐԵ ԽԵԲԵ ԽԵԲԵ ԽԵԲԵ : ԽԵԲ ԽԵԲԵ | Ք ԱՐ ԽԵԲԵ  
ՀԵ ԱՐ ԽԵԲԵ ԽԵԲԵ — : ԽԵԲ ԽԵԲ |

### व्याधियों का रोग-मार्ग भेद से वर्गीकरण

**बाह्य रोग मार्ग (शाखानुसारी)**

उत्तान घातुओं की व्याधियां जैसे त्वचा, रस रक्त, मांस और मेद में होने वाली व्याधियां (जम्मीर घातु अस्थि, मज्जा, शुक्र को छोड़ कर) तथा बाह्य अर्श (आम्यन्तरिक अर्श कोष्ठाश्रित रोगों में आ जाने से यह बाह्य रोग मार्ग में नहीं आता)।

त्वचा गत रोग :—व्यंग, तिलकालक, नीलि-स्नायु, धूमनी, कण्डरा, नाड़ी इत्यादि का इत्यादि।

रस गत रोग :—अरुचि, अङ्गमर्द, हूल्लास पाण्डु, गौरवता, क्लेब्य, पालित्य।

रक्त गत रोग :—कुछड़, विसर्प, गुदपाक, इत्यादि। रक्तों की विद्रवि, रक्तपित्त तथा बात-

मांस गत रोग :—अविमांस, मांसार्बुद, गलझुण्डिका, अर्बुद, अलजी, गण्डभाला इत्यादि।

**मध्य रोग मार्ग (मध्यमार्गनुसारी)**

गम्भीर घातु, (जैसे अस्थि, मज्जा, शुक्र) आश्रित व्याधियां, इन्द्रिय आश्रित व्याधियां, स्नायु: आश्रित व्याधियां, मांसाश्रित व्याधियां (परन्तु कोष्ठगत तथा गुहा युक्त मर्मों को छोड़कर) तथा सन्धि आश्रित व्याधियां (सन्धि से सम्बन्धित शिरा व्याधियां भी के लेनी चाहियें)। अस्थि गत

रोग—अस्थितोद, अध्यास्थि, कुनख, अविद्वन्त, केश-नस्तादि के विकार इमश्र,

मज्जा गत रोग :—मूर्च्छा, भ्रम, पर्ववेदगा गौरवता इत्यादि।

शुक्रज :—क्लेब्य, अप्रहर्ष, शुक्रमेह, शुक्राश्मरी इत्यादि।

इन्द्रियाश्रय :—इन्द्रियों का नाश, अप्रहृति, इत्यादि।

**आम्यन्तरिक रोग मार्ग (कोष्ठानुसारी)**

कोष्ठाश्रित रोग (इसमें गुहा युक्त, अवयव आ जाते हैं जैसे महा-स्रोत में आमाशय, उण्डुक, पवाशयादि), शरीर के मध्य मर्म (मूत्राशय, हृदय, फुफ्फुस), रुचिराशय (यकृत और प्लीहा) इत्यादि अवयवों की शोषक तथा विद्रवि इत्यादि रोग।

कोष्ठ गत रोग :—गुल्म, अतिसार, कास श्वास, प्लीहा-वृद्धि इत्यादि।

भेद गत रोग :—मघुमेह, गलगण्ड, अति-स्वेद, भेदोप्रन्थि, भेदोबुद्धि इत्यादि।

विषम प्रवृत्ति तथा इनके अन्य विकार।

स्नायु व सन्धि गत रोग :—इनकी सुप्तता,

स्फुरण, खली पड़ना, सन्धि जकड़ाहट।

मर्माश्रित रोग :—गुहा युक्त मर्मों को छोड़ कर अन्य मर्मों के रोग।

### निज व्याधियों के प्रकार

#### निज व्याधियाँ

##### सामान्यज

ये व्याधियाँ एक से अधिक दोषों के मिलने से उत्पन्न होती हैं, जैसे :— ऊर, अतिसार, गुल्म, प्लीहा इत्यादि।

##### नानात्मज

ये व्याधियाँ एक ही दोष से उत्पन्न होती हैं, जैसे — बात दोष से 80 रोग पित दोष से 40 रोग कफ दोष से 20 रोग

एक समय ऐसा आ जाना चाहिए जबकि परिवर्तन के परिणाम स्वरूप केवल शुक्र धारु ही शेष रह जानी चाहिये !

इस न्याय के पक्ष में विद्वानों की युक्ति है कि अन्नरस का रसायन से पाक होने पर उससे बने सार भाग के स्थूल-सार अंश एवं सूक्ष्म-सार अंश दो भाग होते हैं। स्थूल भाग इस धारु का पोषण करता है तथा सूक्ष्म सार अंश इसकी उपधारु (आर्तव व सत्त्व) तथा रक्त का (धार्वनित से पाक होने पर) निर्माण करता है। इस प्रकार सूक्ष्म सार भाग से अन्य धारुओं का निर्माण होता रहता है और स्थूल सार भाग धारु रूप में बना रहता है ।

**उत्पत्ति—**

आहार-रूप में ग्रहण किये गये पदार्थों का पहले पाचकानित द्वारा पाक होता है, फिर उससे उपरक सार भाग से अक्षरस की तथा किट्ट भाग से मूत्र और पुरी रस है, की उपर्युक्त होती है। किट्ट भाग का शारीर से विसर्जन हो जाता है एवं अन्त रस की उत्पत्ति होती है। किट्ट भाग के लोगों में विसर्जन हो जाता है—एक धार्वनितयों को-किंचित्या के फलस्वरूप पुनः दो लोगों (कफ, वित्त, लोम, स्वेद इत्यादि) का किट्ट भाग होता है जो कि शारीर के मलों (कफ, वित्त, लोम, स्वेद इत्यादि) का पोषण करता है तथा इनसे प्रसाद भाग, इनसे धारुओं (जैसे रस, रक्त, मांस मेवादि) का पोषण करता है। अन्त में एवं उपधारुओं (जैसे आर्तव, कण्ठरा, स्तन्तु इत्यादि) का पोषण होता है। युक्त से युक्त का शुक्रानिन से पाक होने पर केवल ओज का हो निर्माण होता है। युक्त से युक्त नहीं बनता ।

**धारु निर्माण क्रम—**

यहण किये आहार के पाचन होने के उपरात उसके सार एवं किट्ट दो धारु नहीं हैं। किट्ट भाग का शारीर से विसर्जन हो जाता है तथा सार भाग का धार्वनितयों द्वारा पाचन होने पर शारीर की धारुओं का निर्माण होता है। धारुओं के निर्माण क्रम के विषय में तिन तीन न्याय प्रसिद्ध हैं, तथा अरुणदत्त अपना एक विशेष न्याय मानते हैं ।

1. क्षीर-दधि न्याय :
  2. केदारी कुल्यान्याय ।
  3. खले कपोत न्याय ।
  4. एक काल धारु-पोषण पक्ष (अरुणदत्त) ।
- इस मतानुसार, जिस प्रकार सप्त०८ दुर्घ दधि में परिवर्तित हो जाता है, इस प्रकार से अन्नरस का धार्वनित से पाक होने पर वह उत्तर रोतर धारुओं में परिवर्तित होती जाती है। इस न्याय के अनुसार जब हृदय धारु सप्त०८ दूर्घ से उत्तर धारु में परिवर्तित हो जाती है (जैसे सम्पूर्ण दुर्घ दधि में परिवर्तित हो जाता है) तो उपवास करने से उत्तर धारु होता है ।

### 2. केदारी-कुल्यान्याय—

जिस प्रकार कुल्या से प्रथम पूर्व स्थित ब्यारी (केदारी) भरती है उसी प्रकार अन्नरस से सर्व-स्थित रस धारु का पोषण तथा उसका निर्माण होता है। इसके परिचात शेष अन्नरस रक्तशय में जाकर रक्त का निर्माण करता है। इसी प्रकार से अन्नरस धारु-मध्यमी अणों से क्रम से उत्तरोत्तर धारुओं के आशयों में जाने से उत्तर-जन धारुओं का उसी क्रम से निर्माण करता है ।

पहले एक धारु का निर्माण होकर फिर उसके पश्चात् हसरी धारु का निर्माण होता है। पूर्वकी धारु के (जैसे मांस) पर्ण रूप से बनने के पश्चात् ही हसरी धारु (मेद धारु) बनती है अथवि पुरुष में किसी एक समय में मांस धारु तो अधिक हो जाकि मेद धारु का निर्माण होता जैष हो (जैसे पानी से पहली क्यारी के भरने के समय तक हमने क्यारी पूर्णतया सूखी रहती है) परन्तु ऐसा नहीं होता। इसलिए यह न्याय भी अधिक युक्त संगत नहीं है। सुकृत ने इसका समर्थन करते हुए कहा है कि अन्नरस प्रयोक धारु में 3015 कला तक रुकता है ।

### 3. खले कपोत न्याय—

जिसी खलसलों की दूरी तथा रासता मिल होने से उन्हें बहाँ तक पहुँचने में समय भी मिन्न-मिन्न लगता है। इसी प्रकार से अन्नरस अपने अधिकान से धारुओं के स्तरों द्वारा उन धारुओं में लोत की सूक्ष्मता तथा उनकी हड़ी के अनुसार शीघ्र या विलम्ब से पहुँचकर उत्तर-उत्तर धारुओं का निर्माण करता है। इस न्याय के अनुसार अन्नरस सब धारुओं के लोतों में एक साथ जाता है परन्तु उत्तरोत्तर धारु का सोते हुए सूक्ष्म होते पर उन धारुओं का निर्माण क्रम से देर में होता है। (प्रत्येक धारु का सोत अन्नरस में से अपने पोषक अणों ही प्रहण करता है) यह न्याय ही अधिक पुरुक्त संबंध प्रतीत होता है ।

### 4. एक काल धारु पोषक मत—

टीकाकार अरुणदत्त के अनुसार अन्नरस व्योन वायु द्वारा एक साथ ही सभ धारुओं का निर्माण होता है। इसमें एक साथ ही सभ धारुओं का

इस न्याय के अनुसार जब हृदय धारु में परिवर्तित हो जाता है। इसमें एक साथ ही सभ धारुओं का

जैसे सम्पूर्ण दुर्घ दधि में परिवर्तित हो जाता है।

## खल्से-कपोत न्याय के अनुसार धातुओं का निर्माण क्रम

आहार का पाक होने पर

अन्नरस

रस धातु	रक्त धातु	मांस धातु	मेद धातु	अस्थि धातु	मज्जा धातु	शुक्र धातु
कफ मल रूप में	पित्त मल रूप में	आँख, नाकादि का मल (समल)	स्वेद मल रूप में	केश, नख तथा लोम मल रूप में	त्वचा तथा आँख का स्नेह मल रूप में	बोज
आत्म व तथा कण्ठरा तथा त्वचा तथा वसा स्नायु उपधातु	स्तन्य सिरा उपधातु			उपस्थि (तश्णास्थि)	पीतमज्जा	
उपधातु	उपधातु					

है (जैसे बलिहान में से सब कबूतर एक साथ दाना उठाते हैं) ऐसे ही अन्न का सार मांग शोषित होकर प्लाइसा के रूप में सारे शोरीर में एक साथ पहुँचता है। यह न्याय भी जले कपोत न्याय का ही अप्रत्यक्ष रूप में समर्थन करता है।

### धातुओं का उत्पत्ति काल

अन्नरस से रस धातु एक दिन में बन जाती है परन्तु रस धातु से शुक्रधुड़ बनने में कितना समय लगता है, इस पर आचार्यों के मिळ-मिळ भत्ते हैं जैसे :—  
सुश्रुतमत्तुनुसार शुक्र बनने में 18090 कला (एक मास) समय लगता है, बट्टाज़ दृष्ट्य के अनुसार कुछ लोग रस से शुक्रधातु एक दिन और एक रात (24 घन्टे) में बनती है, ऐसा मानते हैं। आचार्यं चरक लिखते हैं कि कुछ लोग प्रत्येक धातु का परिवर्तन 6 अहोरात्र (6 दिन) में पूरा हो जाता है ऐसा मानते हैं। चक्रपाणि धातु परिवर्तन का समय अनिवाल पर निर्भर मानते हैं, जैसे तीव्रानि होने पर यह परिवर्तन जीव होता है तथा मन्दानि रहने पर देर में होता है। यह परिवर्तन इत्यां पर भी निर्भर करता है, जैसे वृद्ध्य द्रव्य शीघ्र बल देते हैं।

### धातुओं से रोगोंत्पत्ति—

- (i) अन्नरस का पाचन करने वाली पाचकानि के भय या डृढ़ होने से युतानियों व धात्वानियों भी भी तदानुसार उत्तरोत्तर भय या डृढ़ होती रहती है, जैसे रसानि तीव्र होने से रस का भय फिर उसमें रक्त का भय तथा उत्तरोत्तर धातुओं के कम मात्रा में बनने से उनका भी भय हो जाता है। इसके विपरीत रसानि के मन्द होने से आमरस की डृढ़ होती है जिससे उत्तरोत्तर धातुओं की भी भय बाहुबल्द होने लगती है। धात्वानि विषमता से धातुओं का भय या डृढ़ होकर अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं।
- (ii) प्रकृदित दोष ज व शारीर में परिप्रभण करते हैं तो जिस धातु के लोत में विग्रहता (आचार्य या विषों से) होती है उसी धातु के लोतों (धातु) में शोष अपना स्थान संश्य कर लेते हैं।

**'कुपिताना हि दोषाणां शरीरे परिधावताम् ।**

**यत्र संगः खबेगृष्णात् व्याधिस्त्रोपजायते ॥**

प्रकृदित कफ दोष लोतों में अवरोध उत्पन्न करके व्याधि उत्पन्न करता है।

पित्त दोष लोत की क्रिया या अनिन को तीव्र करके रोग उत्पन्न करता है। वात दोष लोतों की क्रियाओं की विषम करके अनेक द्विकार उत्पन्न करता है।

### सप्तधातु वर्णन—

रस रक्तादि सारों धातुओं का वर्णन निम्न तालिका में देखें, इस तालिका में इनकी महत्ता, इनके लाय होने के लक्षण, डृढ़ के लक्षण तथा इनकी सामान्य चिकित्सा दी गई है।



धातु	व्याख्या तथा महत्व	धातु क्षय	धातु वृद्धि	सामान्य चिकित्सा सूची
4. मेद	मांस का मांसारिन से पाक होने पर उसमें तेज, जलीय व स्तिर्घ गुण की वृद्धि होने से मेद धातु का निर्माण होता है।	मेद क्षय से प्लीहा वृद्धि, सन्धि-शून्यता, रक्षता, उदर तथा त्वचा में मेद क्षीण हो जाता है (ऐसे लक्षण जीर्ण व्याख्यायों में या Collagen रोग से पीड़ित रोगियों में मिलते हैं) इससे रोगी कृश हो जाता है।	इसमें मेद की वृद्धि, उदर एवं त्वचादि मेद युक्त स्थानों की वृद्धि तथा उनमें स्तिर्घता, स्वेद में दुग्धघता तथा श्वास कासादि लक्षण मिलते हैं। (ऐसे लक्षण मोटे पुरुषों में मिलते हैं)।	मेद वर्धक द्रव्य— धृत तथा वसादि वृहंण द्रव्य मेद हासक द्रव्य— तीक्ष्ण, रक्ष, लेखन, छेदन व बायध्य, गुण वाले द्रव्य जैसे— यवादि।
5. अस्थि	मेद का मेदारिन से पाक होकर फिर उसके साथ अरिन, पृथ्वी व वायु के मेल से वह सधात रूप होकर खर गुण वाली अस्थि को उत्पन्न करती है। इसका कार्य शरीर को धारण करना है।	अस्थि क्षय से तोदादि, वेदना व अस्थि, गोम, नखादि वेदना भग्न होता है (Cracks), जैसे Osteomalacia में केश एवं लोमों का पतन (Alopacia), सन्धियों की शिथिलता होती है तथा इमशु पतन होता है।	वृद्धि होने पर अस्थि में उभार (Osteophytes) उत्पन्न हो जाते हैं। अस्थि बढ़ने लगती है। इन रोगियों में दांतों की भी अस्वामाविक वृद्धि होती है।	अस्थि वर्धक द्रव्य— कठिन एवं स्थिर गुण वाले द्रव्य जैसे प्रवाल, मुवता, अण्डा इत्यादि। अस्थि हासक द्रव्य— खटिक तत्वों रहित आहार का सेवन।
6. मज्जा	अस्थियों के वायु द्वारा स्वीकला हो जाने पर उसमें मेद भर जाती है, इसी स्नेह को मज्जा कहते हैं। गुण—यह शरीर में बल एवं प्रीति उत्पन्न करती है तथा शुक्र का पोषण करती है।	मज्जा हास से पर्वमेद, अस्थि शून्यता, अस्थि स्थूलता एवं शुक्र की कमी हो जाती है। रक्त तथा मज्जा क्षय से मूर्च्छा ग्रम एवं तमो दर्शन होता है।	मज्जा वृद्धि से सर्वांग में गौरवता, अवयवों में स्थलता एवं कुच्छुसाध्य पीड़िकायें उत्पन्न होती हैं।	मज्जा वर्धक द्रव्य— स्तिर्घ पदार्थ, मज्जा, वसा स्नेह इत्यादि। मज्जा हासक द्रव्य— सब रक्ष द्रव्य मज्जा का हास करते हैं।
7. शुक्र	शुक्र का निर्माण मज्जा के स्नेह से होता है। गुण—शरीर में शीर्ष, शुक्र का शीघ्र क्षरण, स्त्रियों में प्रीति, स्नेह, गर्भ को उत्पन्न करने वाला तथा देह एवं बल का वर्धक होता है।	शुक्र के ह्लास से मेढ एवं वृषण में वेदना, मैथुन में अशक्ति होना, देर से शुक्र पतन होना, दोर्बल्य, शिथिलता तथा क्लैव्य उत्पन्न होता है।	शुक्र की वृद्धि से शुक्राश्मरी की उत्पत्ति तथा शुक्र का प्रादुर्भाव होता है।	शुक्रस द्रव्य— दुध, तक, शुक्र, चिड़िया का अण्डा एवं धृत शुक्र को उत्पन्न करता है। शुक्र हासक द्रव्य— कटु, अम्ल, लवण, उण, तीक्ष्ण तथा मन्द गुण वाले द्रव्यों का सेवन शुक्र का हास करता है।

अस्थि वर्धक द्रव्य

शुक्रस द्रव्य

३०

અનુભૂતિ	અનુભૂતિ	અનુભૂતિ
(1) પ્રદૂષણ વિષાણ	(1) પ્રદૂષણ વિષાણ	(1) પ્રદૂષણ વિષાણ
(2) અનુભૂતિ	(2) અનુભૂતિ	(2) અનુભૂતિ
(3) અનુભૂતિ	(3) અનુભૂતિ	(3) અનુભૂતિ
(4) અનુભૂતિ	(4) અનુભૂતિ	(4) અનુભૂતિ
(5) અનુભૂતિ	(5) અનુભૂતિ	(5) અનુભૂતિ
(6) અનુભૂતિ	(6) અનુભૂતિ	(6) અનુભૂતિ
(7) અનુભૂતિ	(7) અનુભૂતિ	(7) અનુભૂતિ

અનુભૂતિ

૪

गण	मुख्य द्रव्य	गुण तथा कर्म
III कफहर गण (1) आरवधादि	आरवध (अमलतास), मैनफल, कुटज, पाठा, पाटसा, इन्द्रधव, निम्ब, सप्तपर्ण, गिलोय, चित्रक, करंज, चिरायता, करेलादि।	यह गण कफ, विष, कुष्ठ, कण्डु, प्रमेह, वमन तथा ज्वर नाशक और व्रणशोधक होता है।
(2) ऊषकादि	उषक (क्षारमृतिका), सेन्धा, शिलाजीत, दोनों कासीष, तुथ तथा हींग।	यह गण कफ व मेद नाशक, अश्मरी, शर्करा, मूत्रकुचल्ह, शूल एवं गुल्म को नष्ट करता है।
(3) विष्पत्त्यादि	विष्पली, मिर्च और सोंठ अर्थात् त्रिकटु।	यह गण कफ, मेद, कुष्ठ, त्वचा रोग तथा प्रमेह नाशक है, अनिमान्दा, गुल्म और पीनस हर होता है।
(4) लोध्राद्विगण	लोध्र, पलाश, श्योनाक, अशोक, कटफल कदम्ब, केला, सालादि।	यह गण कफ, मेद, विष तथा योनिदोष नाशक, स्तम्भक और वर्ण के लिये हितकर होता है।
(5) सुरसादि	सुरसा (तुलसी), मरुता, द्रोणपुष्पी, कासमर्द, नक्खीकनी, वायविड्ज्ञ, कायफल, निर्गुण्डी, मकोय, कुचलादि।	यह गण कफ, कृमि, प्रतिश्याय, कास व श्वास नाशक, अरुचि हर तथा वर्ण शोधक होता है।
(6) मुष्कादि	मुष्क, पलाश, चित्रक, मैनफल, कुटज, शीशम, सेंदुण्ड तथा त्रिफला।	यह गण मेद, अर्श, प्रमेह, पाण्डु, शर्करा तथा शुक्र दोष नाशक है।
(7) सालसारादि	सालसार, सर्ज, सदिर, सुपारी, मोजपत्र, दोनों चन्दन, शीशम, शिरीष, अर्जुन, ताढ़, करञ्ज, अगुरु इत्यादि।	यह गण कफ, मेद, कुष्ठ, प्रमेह तथा पाण्डु रोग नाशक होता है।

गण	मुख्य द्रव्य	गुण तथा कर्म
(8) वस्त्रादि	वस्त्र शिशू, जयन्ती, मेदाशुक्री, पूतीक (करञ्ज), चित्रक, चित्व, कुश तथा कटेरी।	यह, गण कफ, मेद अन्तर्विद्रवि, गुल्म तथा शिरः शूल हर होता है।
(9) अर्कादि	अर्क (दोनों), दोनों करञ्ज, जमालगोटा, अपामार्ग, लांगली, रासना, ज्योतिष्मती इत्यादि।	यह गण कफ, मेद, कुष्ठ, कृमि, विषनाशक तथा व्रण शोधक होता है।
(10) मुस्तादि	मुस्तक (नागर मोथा), दोनों हरिद्रा, त्रिफला, कुटकी, अतीस, एला, मिलावा, चित्रकादि।	यह गण कफ एवं योनि-रोग नाशक, दुग्ध शोधक तथा पाचक होता है।
IV कफ पित्त हर गण (1) सारिवादि	सारिवा, मुलहठी, दोनों चन्दन, पद्मक, गम्भारीफल, महुवापुष्प तथा उशीर।	यह गण रक्त पित्त व कफ नाशक, पित्त एवं ज्वर शामक तथा दाह नाशक है।
(2) पटोलादि	पटोल (परबल), दोनों चन्दन, मूर्वा गिलोय, पाठा और कुटकी।	यह पित्त, कफ, अरुचि तथा ज्वर नाशक, विष, कण्डु एवं छद्मिहर तथा वृणों के लिये हितकर होता है।
(3) लाक्षादि	लाक्षा, कुटज, कनेर, कट्फल, दोनों हरिद्रा, निम्ब, चमेली, त्रिफलादि।	यह गण कफ, पित्त, कुष्ठ, कृमि नाशक, व्रण-शोधक एवं तिक्त, मधुर और कषाय रस युक्त होता है।
(4) त्रिफला	हरड़, बहंडा, आवला।	यह गण कफ, पित्त, प्रमेह, कुष्ठ एवं विषम ज्वर नाशक होता है तथा अग्निदीपक व नेत्रों के लिये हितकर होता है।



उपर्युक्त गणों को उनके सामान्य कमी के अनुसार निम्न विधि से विभाजित किया जा सकता है जैसे—

- (1) कुठ विसर्प तथा विषनाशक गण:—  
आरग्वादि, सालसारादि, लोध्रादि, अर्कादि, इलादि, व्यामादि, पटोलादि, त्रिफला, पिपस्यादि, ब्रज्वादि (वातुगण) एवं लाक्षादि गण।
- (2) ग्रन्थों का शोधन करने वाले गण:—  
अर्कादि, सुरसादि, पटोलादि, न्यग्रोधादि तथा लाक्षादि।
- (3) कण्ड, पिण्डिकादि नाशक :—एलादि, पटोलादि।
- (4) मूत्रहृच्छ, मूत्राधातादि नाशक गण :—वरुणादि, वृहत्यादि, उषकादि, पर्षकादि, तृणपंचमूल।
- (5) अइमरी तथा शर्कराहर गण :—दीरतर्वादि, मुळादि, ऊषकादि।
- (6) द्वारोगहर तथा वर्ष गण :—लोध्रादि, एलादि, प्रियंगवादि, अम्बडादि, न्यग्रोधादि।
- (7) संबान कर गण (टूटी हड्डी जोड़ने वाले) :—प्रियंगवादि, अम्बडादि, न्यग्रोधादि।
- (8) अन्तर्विद्रवि नाशक गण :—वरुणादि गण।

### व्याख्या :

“शोकसमुत्पादनः गच्छिविप्रविष्टवज्जीप्रभृतिमः विलक्षणः पृथग्द्वित समो विषयो चा त्वद्भासतस्यायो दोषसंघातः शरीरकवेशोत्पत्तिः शोक इत्युत्पत्ते ।”

—कु० ३० १७

(Swelling) होती है, परन्तु अन्य लक्षणों के आधार पर यह व्याचिक ग्रन्थि इत्यादि रोगों से ग्रन्थिया यिन्हीं होती है। दोष त्वचा या मास के अभित होकर, एक स्थान में इकट्ठे होने से अनेक प्रकार की अथित कमी प्राप्ति (पिण्डिकार) कमी सम तथा कमी विषम भाक्ति की ग्रणशोष को उत्पन्न करते हैं।

शोष :—उत्सेष्य युक्त रोगों के लिये शोष एक सामान्य नाम दिया गया चरक ने इन सब रोगों के लिये ‘शोष’ एक सामान्य चिह्न होने के कारण, में अमृद्र करने अर्थात् इनके अर्थ को स्पष्ट करने के लिये माघव जी ने सुश्रुत चिह्नित्सक ग्रणशोष को ग्रण-शोष (Inflammation) कहा है। परन्तु सामान्यतः ग्रण-शोष (Inflammation ही मान लेता चाहिये।

किसी भी उत्तेजक वस्तु के प्रति (In response to an irritant substance) जो शरीर की अंतियों की प्रतिक्रिया (Tissue reaction) होती है उसे शोष या ग्रण-शोष (Inflammation) कहते हैं।

हेतु :—

- (1) मिथ्याहार-विहार—मिथ्या आहार तथा मिथ्या विहार से ग्रन्थिप्रश्न दोष, संघात (इकट्ठे) रूप में त्वचा तथा मास भाँत के आघ्रित होकर अर्थात् इन ग्रन्थियों में रक्कर ग्रणशोष उत्पन्न करते हैं। मिथ्या आहार-विहार से उत्पन्न होने वाले निज ग्रन्थों में पहले शोष होता है तथा इसके पक्के के पश्चात् ग्रण बनता है (व्याय शोषः)।

## 5 ग्रण-शोष

(Inflammation)

(2) आघात (Trauma) :—शस्त्र से या जीवों के दक्षादि के आघात से कारण होता है।

(3) शीत अवृत्ति :—अति शीत वायु से शीत रख (Frost bite) होने के कारण (उत्तीर्ण नाश से) शोफ उत्पन्न हो जाती है।

(4) उत्तेजक पदार्थ :—भलतातक, शोभक रासायनिक पदार्थ, दाहक क्षार कुछ दूर (घटनों) के पश्चात आघात की प्रतिक्रिया के रूप में व्यायोथ उत्पन्न होते हैं (शोफाय इण्डग़न)।

(5) कास्टिक्स अम्ल (Caustics), कींव का स्वरस या शूक तथा मकड़ी इत्यादि कास्टिक्स, अम्ल (Acids), कींव का स्वरस के समर्क होने पर, इनकी प्रतिक्रिया (Reaction) के द्वारा बनने वाली विषों का शरीर से समर्क होने से कास्टिक्स अवृत्ति बनती है।

(6) अवृत्ति (Infection) :—ब्रण पर मरकियाँ बैठने से वहाँ पर कुमि उत्पन्न होते हैं इस ब्रण में अत्यधिक शोफ व तीव्र बेदना होती है। ब्रण को संक्रित करने वाले मुख्य जीवाणु निम्नलिखित हैं।

(क) विशेष संक्रमण (Specific infections) :—जैसे अय के दण्डाणु, Mycobacterium tuberculosis (Mycobacteriosis), किंवग के जीवाणु इत्यादि।

(ख) अविशेष संक्रमण (Non specific infection) :—इस बर्ग में चिड़ि-

जुमरादक जीवाणु आते हैं जैसे :—

(i) स्टफ्फ्लोकोइड (Staphylococci) :—इनके द्वारा त्वचा में चिड़ि-हटेकिलो कोकाइ (Carbuncle)

(ii) तथा अच्छ में रेम्हणिडिकोयिं (Corynebacterium) फादर्म (Boil)।

(iii) ल्योकोकाइ (Streptococci) :—इन जीवाणुओं से मुख्यतया विस्पर्ध (Erysipelas), रसवाहिनी शोफ (Lymphangitis) तथा तुपिङ्का शोफ (Tonsillitis) उत्पन्न होती है।

(iv) न्युमो कोकाइ (Pneumococci) :—इनसे निम्नोनिया (Pneumonia), तीव्र स्फिन्च-शोफ (Acute arthritis), मरिटाकवरण-शोफ (Meningitis), Peritonitis, तथा एरिटिस-शोफ (Enteritis) इत्यादि विकार उत्पन्न करते हैं।

(v) सालामेजेति (Salmonella) :—यह आन्त्र शोफ (Food poisoning) मिलावय शोफ (Cholecystitis) तथा आहा विषाक्तता (Food poisoning) उत्पन्न करता है।

(vi) ल्युकोमोनास पायोनिया (Pseudomonas pyocyanus) :—यह है।

बर्णनी की पृथक क्रिया करता है तथा बुले रक्षण में द्वितीय संक्रमण (secondary infection) उत्पन्न करता है।

(vii) निस्सिरिया गोनोरिया (Neisseria gonorrhoea) —इससे मूत्र प्रसेक्षण (Urethritis), नेत्रवरण-शोफ (Conjunctivitis), गुद-शोफ (Proctitis), हृदयात्मावरण-शोफ (Endocarditis) इत्यादि व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं।

सम्प्राप्ति :

विद्रविष (Deep abscess) की सम्प्राप्ति बतलाते हुए आवार्य सुश्रुत ने कहा है कि बातादि दोष प्रकृष्टि होकर त्वचा, रक्त, मसि और मेव को दृष्टित करके वे विद्रविष का रूप बारण कर लेते हैं। त्वचक्रमांसमेवाति प्रदृष्ट्याविषसमाभिता : १ दोषाः शोषं शन्तेष्वर्गं जनयन्त्युच्छित्वा भृशम् ॥ महायात्रं रजावधारं दृष्टं व्याययवा द्वयतम् । त्वचाहृष्टिविषिं षोरा, विजयः स च व्यृद्धिष्विषः । शु००१० । ये दोष त्वचा तथा मांसाभित होकर शोफ को उत्पन्न करते हैं। यह शोफ उत्तन शाहुओं (Superficial tissues) के अथवा त्वचा व मांसाभित होने से विद्रविष की उत्पन्न करते वाली (ग्रम्मीर शाहुओं के आधित) शोफ से कम मरणानक होती है तथा इसका आकार भी छोटा होता है।

चिकित्सक को शोफ की सामान्य साम्राज्यिक जानने के लिये जिओक प्रयय या द्रव रहेंगे वे सामान्य हृप से पायी जाती है तथा जिसका सुश्रुत ते शोष व्याधि के सम्बन्ध (Reference) में चर्चित किया है], दोषों की सूच्य, प्रक्रोप, प्रदाता, स्थान-संशय, व्यक्ति और भेद अवहमाणों की अशर्त शियाकाल की जानकारी प्राप्त करनी अति अवश्यक है। (संख्यिक प्रकोपचप्रसर व्यायामध्यम् । व्यक्ति में जो यो विषी दोषणां स भवेद्विषक ॥ शु००११)

प्रियाकाशः :

(1) स्त्रवय अवृत्त्या—इस अवृत्त्या में दोष, शहुओं की अवहेलता करने से अपने-अपने स्थान में (कफ आमाशय में, वायु प्रवायाश में हस्तादि) सांकेत होने लगते हैं।

(2) प्रकोपावस्थः—जब उपर्युक्त विषि से संचित हुए दोष मिथ्याहार विहार से अपने ही स्थान में रहते हुए प्रकृष्टित (Excited) होते हैं तो इसे प्रकोपावस्था कहते हैं (जैसे दून अवृत्त के समर्क से उफान के रूप में प्रकृष्टित होता है)।

(3) प्रसारावस्था—इस अवृत्त्या में प्रकृष्टित दोष अपने-अपने स्थान से निकलकर वाहिनियों द्वारा सम्पूर्ण शरीर में परिघ्रामण करने लगते हैं (जैसे कि हृष्ठि में उफान आने पर दूध बाहर गिरकर नाली में बहने लगता है)। इस अवृत्त्या के सामान्य पूर्व रूप उत्पन्न होते हैं, जैसे पितल शोफ में शोष, चोप, दाहादि लक्षण, बातज में सर्वाङ्गीय शोफ व पेट में क्षोभ तथा कफज में अंगों में स्थितिलाला।

एवं अमनादि लक्षण । इस अवस्था के लक्षण दोषों के अनुसार सब दोषों में एक जैसे पाये जाते हैं ।

(4) स्थान-संश्य—जब परिभ्रमणशील दोष विगुणता (विकृति) वाले स्थान पर संचित होते हैं (Accumulate in tissues of low vitality), तो इसे स्थान-संश्यावस्था कहते हैं । इसमें व्याप्ति के विशिष्ट पुरु-इष (जैसे ग्रन-गोय में आमावस्था के लक्षण) उत्पन्न होते हैं ।

(5) अधिक अवस्था—इस अवस्था में विगुण स्थान में संचित हुए दोषों के प्रति, शारीर की जटियों की तीव्र प्रतिक्रिया होती है । जैसे ब्रण-शोष में संचित दोषों के कारण, जटियों की प्रतिक्रिया से, इसकी पच्चासन अवस्था (Acute stage) के लक्षण उत्पन्न होते हैं ।

(6) भेदावस्था—अत्यं व्याप्तियों के समान यह अवस्था ब्रण-शोष की अन्तिम अवस्था अथर्त् पच्चासन (भेदावस्था) होती है । इसे व्याप्ति की अति उन्नतावस्था अवस्था अथर्त् पच्चासन (भेदावस्था) में अनेक प्रकार के उपद्रव उत्पन्न होते हैं । इस अवस्था का विस्तृत विवरण विवरित अध्याय में देखें ।

**विशेष कथन :**

आधार से या दोषों के प्रकोप से बायु की दृढ़ि होती है, इससे त्वचा की वैशिकायें (Cutaneous vessels) विस्फारित हो जाती हैं । इसका कारण वाहिका संकोचक धेनियों का धात (Paralysis of vaso constrictor muscles) होता है ।

इस कारण रक्त वाहिनियों में रक्त संचार मन्त्र पड़ जाता है, इसे मार्गवरोध कहते हैं । इससे रक्ताण् (W. B. C. and R. B. C.) जो सामान्यतया वाहिका के संकरते हैं । इससे रक्ताण् (W. B. C. and R. B. C.) जो सामान्यतया वाहिका के मध्य से होकर जाते हैं वे वाहिनी के परिसरीय मात्र (Periphery) में आ जाते हैं । अब यित्त दोष के कारण अथर्त् अनेक प्रकार के धेनों (Leucotoxins and nitrogenous substances) के प्रभाव से रक्त वाहिनियों का विस्फार हो जाता है तथा इनकी पारगम्यता (Permeability) बढ़ जाती है इससे रक्त के द्रव ऊंचा का लक्षण होता है, अर्थात् ऊंचों का केशिकापारण (Diapedesis and emigration of W. B. C.) होने लगता है, अर्थात् ऊंचों से बाहर आ जाने से जटियों में उत्सर्प

के बिना नहीं होती, पाक पित्त के बिना नहीं होता तथा रूप कफ के बिना नहीं बनती, यह तीनों दोष इकट्ठे होकर शोफ को पकाते हैं ।

**मेव :—**

(i) आमुखेव भातुसार त्रण-शोष छः प्रकार की होती है । जैसे—(i) वातिक, अवस्थानुसार शोफ तीन प्रकार की होती है । जैसे—(i) आमावस्था,

(ii) पञ्चमानावस्था, (iii) पक्वावस्था ।

आमुखिक मतानुसार इनके अनेक भेद होते हैं जैसे—(i) तीव्र (Acute), अतिरीक्र (Subacute), (iii) जीर्ण (Chronic) । इसके अतिरिक्त शोफ

(क) सीरमी शोफ (Serous inflammation), (ग) छेष्मसाद शोफ (Catarhal inflammation), (घ) प्रत्युर्जी जन्य शोफ (Allergic inflammation) ।

### लक्षण :—

(1) वातिक—इसमें शोफ लाल तथा काले वर्ण की, कठिन या कोमल, बिंदियां तोहर, छेदन इत्यादि वेदनाओं से युक्त होती है । इस प्रकार के लक्षण कठिन या मोटी त्वचा वाले स्थानों की शोफ में पाये जाते हैं जैसे ऐडी की शोफ में (Inflammation of heel) यह शोफ योने वर्ण की, कोमल, रक्तिमा युक्त, शीघ्र फैलने वाली तथा अोष, चोष, दाहादि वैतिक वेदनाओं से युक्त होती है । इस तरह के लक्षण कोमल स्थानों पर पाई जाने वाली तीव्र शोफ में मिलते हैं, जैसे तीव्र वस्त्र-शोफ (Acute inflammation of eye lid), तीव्र स्तन शोफ (Acute inflammation of Breast) इत्यादि । इन स्थानों में शोफ शीघ्र फैलती है तथा गोष, चोषादि वेदनाओं से युक्त होती है । संक्रमण के अति तीव्र होने पर [जैसे गोजक संक्रमण (Fulminating infection) में] पित्तज शोफ के समान लक्षण पाये जाते हैं ।

### (3) कफज—

इस शोफ में पाण्डुता, रक्तेता, कठिनता, शीतलता, स्तिनवता, गुरुता, सुन्दित इत्यादि कफज लक्षण मिलते हैं । यह शोफ घीर-धीरे फैलती है ।

इस प्रकार के लक्षण जीर्ण शोफ (Chronic inflammation) में पाये जाते हैं जैसा की शोफ का देर में बढ़ना, पाण्डुता, शीतलता, कम वेदना इत्यादि लक्षण जटियों के कारण जब तीव्रावस्था समाप्त हो जाती है तो दोषों से नष्ट हुई जीर्ण प्रतिक्रिया में मानदता होने से उत्पन्न होते हैं (जैसे शोफ की आमावस्था के लक्षण जटियों तथा मृत जीवाणुओं से पृथ (Pus) की उत्पत्ति होती है । तसम्भृत वेदना बायु के ब्रह्म-शोष के प्रारम्भ से पूर्योत्तादन काल तक तीनों दोषों का अनुबन्धन होता है । ब्रह्माद्वारे नास्ति लक्षण त्रयः ॥ तसम्भृत समस्तानः परिपाक वाले पर्वति लोकास्वयमेव दोषः ॥” त्र० च० 17 अर्थात् वेदना बायु के

## क्षात्र विज्ञान

निविच्छित य थोड़े समय के लिये होती है। इसके हेतु तीव्र उत्तेजक पदार्थ होते हैं, इस कारण शोफ में ऊतियों का नाश भी तीव्रता से होता है।

(Fulminating infection) के द्वितीय रूप से संक्रमण (Secondary infection)

दूसरे से उत्पन्न हो सकती है।

(5) रक्तज—इस शोफ का रंग अत्यधिक काला होता है, तथा वित दोष के लक्षण मिलते हैं। ऐसे ही लक्षण रक्तपुल्स में तीव्र संक्रमण होने पर मिलते हैं (As in acutely infected haematoma)।

(6) आगन्तुक—इसमें वित तथा रक्तज शोफ के भिन्नित लक्षण होते हैं।

(6) इस प्रकार के लक्षण उस अवस्था में मिलते हैं जब आघातज द्रण में तीव्र संक्रमण हो

होता है।

शोफ की अवस्थाओं के अनुसार लक्षण :

(i) आमावस्था—ब्रण शोफ की इस अवस्था में अल्प उल्लाता, अतिविचित उत्सीध (Indefinite swelling) तथा शोफ युक्त स्थान में कठिनता, विवरणता एवं अल्प लेदगा रहती है। यह ब्रण शोफ की प्रारम्भिक अवस्था है, इसमें ऊतियों की प्रतिक्रिया अल्प (Tissue reaction) रहती है।

(ii) अच्यान्तरात्मक अवस्था (Stage of acute inflammation) —इस अवस्था में वित की प्रवानता रहती है, इसके कारण दोषों का पाराचन और तीव्र प्रतिक्रिया होती है। इसमें संयोजक तन्तुओं का वेदनार्थ (Acute reaction) होती है। इस अवस्था में शोफ में अतिक्रमित ऊतियों के लक्षण के लिये उत्पन्न के समान प्रतीक्षित, मुँह और नासे, काटने तथा जलने के समान लेदगा होती है। त्वचा तनाव तथा दक्षिणामायकत रहती है, पित की ऊतमा के कारण दोनों को ऊवर, पिपासा, वैचेनी, अधानाश तथा उठने, बैठने, लेटने इत्यादि किसी नई रिक्ति में आराम नहीं मिलता।

(iii) पक्वावस्था (Stage of pus formation) —पक्वावस्था में सब दोषों का याद्दन हो जाता है, इससे वहाँ की ऊतियों की प्रतिक्रिया समाप्त हो जाती है। कान और श्वास विद्युत द्वारा पक्व वरणकोष का रूप धारण का इसमें तीव्र अवस्था शान्त होकर शोष विद्युत द्वारा पक्व वरणकोष का रूप धारण का लेती है। इस अवस्था में कण्ठ होती है, उत्सेध में कम्पी आ जाने से वहाँ की त्वचा (Mucous membrane) के शोफ की सीम्य अवस्था है। इसमें श्वेतमा का ताव पर झटिया पड़ जाती है तथा भीतर पृथ्य होने के कारण त्वचा का वर्ण श्वेत होता है एवं एक अंगुली के दबाने पर दूसरी अंगुली को पृथ्य तरंग की प्रतीक्षित होता है।

(iv) अधिनिक भलाउसार शोफ के विभिन्न भेदों के लक्षण :

(i) फ्लूट्यू व्याख्या (Acute inflammation)—इसकी सम्प्राप्ति कुछ दिन (W. B. C.) की भलाग क्रिया (Necrosis) अत्यधिक होता है। इस शोफ में रक्त के एवेताणओं (Fluctuation test becomes positive) !

(ii) तीव्र व्याख्या (Resolive) हो जाती है (शोफ की तीव्रता से बढ़ते पर संक्रमण रहते से उसका शी द्रवता से नाश हो जाता है।

फ्लूट्यू व्याख्या में पहुँचने पर से लक्षण घीर-झीरे कम होते लगते हैं और अस्त में द्रण शोध शामन (Resolive) हो जाती है (शोफ की तीव्र अवस्था पहले व्याख्या तथा किर उसका उत्तर हस शोफ का विहेष लक्षण है)। यह शो

(ii) अण्टीबैक यण-शोफ (Sub acute inflammation)—इस शोफ की सम्प्राप्ति 2 से 3 सप्ताह से भी अधिक समय तक चलती है। इस शोफ में उत्पन्न लिक्ति को केवल ऊतक विज्ञान (Histology) के द्वारा ही जाना जा सकता है। यह शोफ तीव्र शोफ के विपरीत होती है, इसमें न्युट्रोफिलज (Neutrophils) नहीं बढ़ते, परंतु इयोसिनज (Eosins) तथा लिम्फोसाइट्स (Lymphocytes) की संख्या में वर्द्ध होती है। इसमें निकाव (Exudation) कम होता है परन्तु रक्त-वाहिनियों तथा संयोजक तन्तुओं (Connective Tissues) का प्रकृतन (Proliferation) अधिक होता है, जैसे जीवाणु हृदय अतिवारण शोफ (Bacterial endocarditis) में होता है, यह छः सप्ताह तक चलने वाली एक अनुत्तीव्र शोफ है।

(iii) लंगी शोफ (Chronic inflammation)—इस शोफ की सम्प्राप्ति कुछ माह से लेकर कुछ बर्षों तक चलती है। इसके हेतु, जैसे सीम्य उत्तेजक पदार्थ (Mild irritants) या सीम्य जीवाणुओं (Mild bacterial infection) का सम्पर्क लगातार ऊतियों से बना रहता है। इस शोफ में ऊतियों की प्रतिक्रिया सीम्य (Mild reaction) होते के कारण यह दोषों का पाराचन (विषों का विनाश) करने में असमर्थ रहती है। इसमें संयोजक तन्तुओं का अधिक प्रकृतन होने के कारण व्याख्या अधिक बनता है।

(iv) सीरीनी शोफ (Serous inflammation)—इस शोफ में ताव अधिक निकलता है, जैसे आई फुफुसावरण शोफ (Wet pleurisy) होती है।

(v) तान्त्रीय शोफ (Fibrous inflammation)—इसमें फाइब्रिन (Fibrine) अधिक निकालित होती है, जैसे रोहिणी (Diphtheria) में होता है।

(vi) इलेम्बलाज शोफ (Catarhal inflammation)—यह इलेम्बलाज (Scar) अधिक बनता है।

(vii) प्रस्तुर्ज शोफ (Allergic inflammation)—यह शोफ ऊतियों के किसी विविषित पदार्थ के प्रति सुक्ष्म ग्राही (Sensitive) होने से उत्पन्न होती है। इसमें ताव तथा ऊतकनाश (Necrosis) अत्यधिक होता है। इस शोफ में रक्त के एवेताणओं (Fluctuation test becomes positive) !

(viii) व्याख्या अधिक निकलता है।

(ix) व्याख्या अधिक निकलता है।

कर दी जाये तो शोफ के शमन होते की सम्भावना बनी रहती है। अन्यथा यह पश्चाष्टस्था (Abscess) को प्राप्त हो जाती है। पश्च अवस्था में यदि इसकी पूर्ण को न निकाला जाये तो अनेक प्रकार के निम्नलिखित उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं—

(1) जब पूर्ण मास, सिरा, स्नायु इत्यादि को नष्ट कर देती है तो इससे वही पर किया हीनता (Loss of function) उत्पन्न हो जाती है, जैसे साँचियों में पूर्ण भासे से जसमें किया हीनता आ जाती है।

(2) पश्च ब्रण-शोष के पश्चात् इसकी पूर्ण से नाड़ीबांध (Sinuses) की उत्पत्ति होती है।

(3) पूर्ण के रक्त परिवर्धन में आ जाने पर पूर्यमयता (pyaemia) उत्पन्न होती है। इससे शरीर के अनेक स्थानों में विद्युचियाँ (Multiple abscesses) उत्पन्न हो जाती हैं।

इन उपद्रवों के कारण आयुर्वेदिक संहिताओं में शोफ की तीनों अवस्थाओं को अच्छी प्रकार से जानने के लिये कहा गया है। जो बैद्य इस प्रकार के मूल निष्ठानों को नहीं जानता उसे संहिताओं में चोर अर्थात् केवल मात्र जनता का धन आचूषण करने वाला कहा गया है। यदि मूल चिकित्सक ब्रणशोष का आमावस्था में ही भेदन करने वाला कहा गया है। यदि मूल चिकित्सक ब्रणशोष का आमावस्था में ही भेदन कर देता है तो सिरा स्नायु इत्यादि कट जाने से अनेक विकार [जैसे—रक्तस्राव, वेदना और शोफ] उत्पन्न हो जाते हैं। यदि पश्च ब्रण लातज बिसर्द (Cellulitis) इत्यादि उपद्रव] उत्पन्न हो उपद्रव

चोक और जब्देलना की जाये तो इससे नाड़ीबांध, पूर्यमयता इत्यादि उपर्युक्त उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं।

### चिकित्सा :—

"सच्चेतप्रदृता रोषा लभन्ते नोत्तरा गतिः।  
ते तु सरायु गतिषु भवन्ति बलवत्तरा:॥" शु० स० 21.

यदि संचयकाल में ही दोषों का अपहरण कर दिया जाये तो ये अगली गति को प्राप्त नहीं होते। दोष उत्तरोत्तर स्थिति में पहुँचकर अधिक बलवान् होते जाते हैं तथा दोषों के बलवान् होने पर उनका धनमन होता समझ नहीं होता।

ब्रण-शोष की चिकित्सा के लिये आचार्य मुश्तुत ने 60 उपक्रम (Sixty steps of treatment) बताये हैं। इनमें से 7 उपक्रमों को ही मुख्य माना जाता है जैसे—

आरो विद्वामनं कुप्यदि वितीषमवस्थेनम्।

सुतीषमुपराहु तु वसुयों पाठनक्षमाम्॥

पश्चवम शोषेनं कुप्यदि शब्दं रोपणामिक्षते।

एतेभ्या व्रश्योत्ता सम्भवं वृक्षतापहम्॥ शु० स० 17

चोक में प्रथम विन्मापन करना चाहिये, हूसरा जलीकादि से रक्त अवसेषन तीसरा उपनाह, चूर्चे पाटन-क्रिया, पश्चवम शोषेन कर्म, छठा रोपण कर्म तथा सातवां चौक्तापाहु कर्म करना चाहिये।

इन सब उपक्रमों का पूर्ण विवेचन 60 उपक्रमों की तालिका में किया गया है। सात उपक्रमों में से प्रथम तीन उपक्रम या साठ उपक्रमों में से प्रथम 11 उपक्रम वाणी-शोष की आम अवस्थाओं में किये जाते हैं। शोफ की अवस्थाओं को व्यान में रखते हुए इन उपक्रमों द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये जैसे :—

(i) व्रण-शोष में दोषों के प्रसार व स्थान संथय कियाकाल में तथा आम अवस्था में, (जब बाड़ियों में अल्प विक्षित होती है तथा दोष भी अल्प रहते हैं) दोषों का धनमन करने के लिये, तरंग, आलेप, पारिवेक, अस्प्रग्न तथा विस्तापन द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये। ये उपक्रम अल्प दोषों को धनमन करने के समर्थ होते हैं, परन्तु दोष अस्यविक रहने पर ये उपक्रम दोषों को धनमन नहीं कर सकते।

(ii) यदि दोष मध्यम रूप से प्रकृतिहृष्ट हों तो या ब्रणशोष पश्चात् अवस्था में हों तो दोषों का स्वेदन व उत्पन्नाहादि पाचक उपक्रमों से पाचन कर देना चाहिये। (iii) व्रणशोष में यदि दोष अस्यविक मात्रा में बढ़े हुए हों तथा इनका धनमन धनमन होना सम्भव न हो, तो रक्त विकारण या स्नेहन, स्वेदन करवा कर फिर धनमन विरचनादि संशोधन कर्मों द्वारा इन दोषों का निहंरण करना चाहिये।

(iv) उपर्युक्त विधि में बताये विस्तापन, अवसेचन, उत्पन्नाहादि से दोषों का धनमन हो जाता है। परन्तु यदि इनका धनमन न होकर पाचन होने तो शोफ पश्चावस्था में पहुँच जाता है। अब शोफ को धरण द्वार्घों (क्षार, दस्ती, द्रवन्ती, कलिहरी) से काढ़कर या शस्त्र कमं द्वारा पूर्ण गुहा का पाटन कर्म करके पूर्ण को बाहर निकाल देना चाहिये। तरंग पश्चावस्था में बताई हुई शोषन चिकित्साओं से व्रण को शुद्ध करें तथा व्रण के शुद्ध होने पर इनका रोपण कर्म करना चाहिये। रोपण के उपरान्त यदि कोई विकृति उत्पन्न हो जाये तो उसे वैकृतापहम् उपक्रमों से सम्भावस्था में लाना चाहिये। इन उपक्रमों का विस्तृत वर्णन उपक्रम अध्याय में देते हैं।

### आयुर्निक चिकित्सा :—

आयुर्निक चिकित्सा पद्धति में ब्रणशोष को पहले एटिफ्लोजस्टीन, बैलाडोना इत्यादि ल्यास्ट्रों को लगाकर तथा सेक देकर पकाया जाता है। इसके साथ-साथ ब्रणशोष के संक्रमण को नष्ट करने के लिये प्रतिजीवी (Antibiotic) औषधियों का भी प्रयोग किया जाता है।

(i) स्लका औषधियाँ—ये औषधियाँ जीवाणु स्तम्भक (Bacteriostatic) होती हैं शोषावस्था में ओरिस्युल (Orisyl) † धान की एक गोली दिन में दो बार या भी प्रयोग कर सकते हैं।

(ii) प्रतिजीवी औषधियाँ (Antibiotics)—आजकल इस वर्ग की अनेक औषधियाँ प्रयोग में लाई जाती हैं, जैसे—बैनियल मेनिसिलीन ५ लाल त्रिनिट्रिस का

मासगत सूचीबद्ध प्रत्येक 6-6 घण्टे बाद 4 से 7 दिन तक करें। विस्तृत स्पैक्ट्रम की औषधियाँ जैसे—टेरामाइसीन (Terramycin, Tetracycline) इथादि को 250 मि०ग्राम की मात्रा में मुख से 6-6 घण्टे बाद देते रहें या 100 मि०ग्राम औषधि को पेशी में सूची बेघ के द्वारा 8-8 घण्टे बाद देते रहें। यदि इन औषधियों से 2-3 दिन में विशेष लाभ न हो तो एम्पिसिलीन (Ampicillin), एरिथ्रोमाइसीन (Erythromycin) इथादि उथ तथा विस्तृत स्पैक्ट्रम औषधियों का प्रयोग करना चाहिये।

(ii) शोथ के पक्कावस्था (Abscess) में पहुँच जाने पर उसका भेदन तथा विकावन (Incision and drainage) कर देना चाहिये। भेदन कर्म से उत्पन्न व्रण में जीवाणु नाशक द्रव, जैसे 'एक्रिफ्लेविन (Acriflavin) तथा निलसरीन' के पिण्ड को दिन तक न्तुण गुहा में 'मने'। विद्रवि की गुहा (Cavity) के शोधन होने पर उसमें जीवाणु नाशक मरहमों से लिप्त विकेसिका (Gauze) रखकर थाव मरने तक बन्धन बांधें। इसके लिये टेरामाइसीन, सोफ्रामाइसीनादि किसी भी जीवाणु नाशक मरहन का प्रयोग कर सकते हैं। बाग के जीवाणुओं की सूक्ष्म ग्राहिता (Sensitivity) देखकर उसके अनुसार टेट्रासाइक्लीन (Tetracycline) या सोफ्रामाइसीन (Soframycin) इथादि जीवाणु नाशक मरहमों का प्रयोग करना चाहिये।

**सूखना :**—  
प्रतिजीवी औषधियों का प्रयोग उनकी रोगियों पर सूक्ष्मशाहिता (Sensitivity) देखकर ही करना चाहिये, क्योंकि इनसे अन्यूर्जी प्रतिक्रिया (Allergic reaction) या तीव्रग्राही स्तब्धता (Anaphylactic shock) होने का मरहा है, इस प्रतिक्रिया के कारण तुरन्त मृत्यु भी हो सकती है।

## (ABSCCESS)

व्याख्या :—

अत्यधिक प्रकृतिपूर्ण गम्भीर धातुओं के आश्वित होकर जिस गम्भीर, दीर्घ एवं भयानक शोफ को उत्पन्न करते हैं उसे विद्रवि कहते हैं।

व्याख्या :—  
व्याख्या :—  
व्याख्या :—

तमस्युविद्युतिधीर। विज्ञेयः स च व्यड्विषः ॥ शु० नि० ९

इसमें दोष प्रकोप अधिक रहता है, इसे ओषधि चिकित्सा से शमन (Resolve) करना सम्भव नहीं होता। यह योग्य प्राप्य, पक्व अवस्था में परिवर्तित हो जाया करती है, इसीलिये गम्भीर शोफ को उसके पक्वावस्था में पहुँचने से पूर्व ही इसे विद्रवि का नाम दे दिया गया है।

इसमें दुष्ट रक्त धातु शीघ्र ही विद्रवि (Pus discharge) हो जाती है इसलिये भी चाहिये। इसके मध्य भाग में पूय गुहा (Pus Cavity) रहती है तथा पौराश्वं में पूय जननकक्षा (Pyogenic membrane) होती है। यह कला पूय को स्थानीय विद्रवि को लकड़ रक्त धातु शीघ्र ही विद्रवि (Pus discharge) हो जाती है इसलिये भी चाहिये।

जननकक्षा (Pyogenic membrane) होती है तथा पौराश्वं में पूय (Localised) बनाये रखती है।

पूय उत्पादक अन्य अवस्थाएः :—

निम्न अवस्थाओं में भी पूय का निष्पाण होता है, परन्तु इन अवस्थाओं में थोड़ी विकावता होने के कारण इहें विद्रवि से छिप रोग मान लिया गया है।

(i) **पिझिका (Boll)**—यह केशकूप (Hair follicles) तथा स्नेह ग्रन्थियों (Sebaceous glands) के स्टीफिलोकाक्स द्वारा संक्रमित होने पर उत्पन्न होती है। इसमें पूय उत्तान (Superficial) रहती है जोकि द्रव रूप में न होकर स्थल शक्ति (Solid Cone) के रूप में रहती है। यह पिझिका अन्तरकोशिका तात्त्वीय निर्माण (Inter cellular fibrin formation) के कारण दूलता लिये (Indurated) रहती है, यह विद्रवि के उमान शुद्ध नहीं होती।

(ii) **प्रेसेंस फिडिका** (Carbuncle)—इसमें सक्रमण अपरस्त्रवा (Sub-cutaneous) में होने से यह फिडिका अनिच्छित उत्सेष युक्त या विसरित (Diffused) रूप में रहती है। इसमें से जीवाणुओं के बिंदों के साथ-साथ पूय द्रव भी लिंगिका वाहिनियों द्वारा शोषित होता रहता है, इसमें पूय सान्दर्द (Inspissated) हो जाती है। यहाँ के मृत कोष स्नेह मलों (fatty debris) में परिणत हो जाते हैं तथा इनके कैलिसिफिएट (Calcified) होने से यह कठोर बन जाती है। इसके विपरीत पूय युक्त कैलिसिफिएट (Calculated) होने से यह कठोर बन जाती है। विद्रविष मुड़ होती है।

(iii) **संयोजक उत्तिशोफ** (Cellulitis)—इसमें पूय उत्तान रूप में रहती है (Superficially it spreads through tissues)। इसमें विद्रविष सदृश स्थानीय तृपता (Localised suppuration) नहीं होती।

**हैतुः**—  
(i) आहार सम्बन्धी—पूय विषत (बासी), विरुद्ध तथा अस्तम्य भोजन से, अति उत्थन, रक्त, शुष्क व विद्रविष आहार द्रव्यों के अधिक सेवन से (रक्त द्रव्यित होने के कारणों से रोगसमता शक्ति (Immunity) कम हो जाती है। इसमें दोष (संक्रमणादि) शीघ्र बढ़कर विद्रविष उत्पन्न कर देते हैं।

(ii) विहार सम्बन्धी—कुटिल चेटा से, अति मौथन से, बेग विधारण से, टूटी रखा (Uncomfortable bed) पर लेने से [शायाज वण (Bed sore) बनकर] या अन्य किसी विकृत चेटा (Unnatural action) से आचारादि होकर या घातुओं में विगुणता होने पर संक्रमण होकर विद्रविष बन जाती है।

करके एवं विगुण घातुओं (Low vitality tissues) में स्थानसंश्य करके विद्रविष करते हैं।

**सम्प्राप्ति**—

अत्यधिक मात्रा में प्रकृष्टित हुए दोष त्वचा, रक्त, मास, मेंद, इत्यादि घातुओं को डुल्ट करके तथा अस्थि के आस्रित होकर अर्थात् गम्भीर घातुओं को प्रभावित करके (Involve the deeper tissues) धीरे-बीरे बढ़ते हुए (Less visualised swelling), गम्भीर मूलवाले (Deep seated), पीड़ियुक्त, गोल या दीर्घ अर्थात् मांसंकर शोफ को उत्पन्न करते हैं।

**सम्प्राप्ति**—  
त्वचाप्रक्रमांसमेवांति प्रदूषणात्मित्य समाप्तिः।

वोषा: शोफ शतं धारं जनयन्तु भृत्या भृतम् ॥

महामूल रुतावत्त वृत्त धार्यदात्यतम् ।

तमात्मुत्प्रविषं घोरा, विजेयः स च वृद्धिष्ठः ॥ हु० निं०

इस घोर शोफ में डुल्ट रक्त की अविक मात्रा होने से इसका शोघ ही विद्रविष हो जाता है, इसीलिये इसे विद्रविष कहते हैं।

शोफ के हैतुः (संक्रमण या अत्य उत्तेजक पदार्थ), शोफ स्थान के मध्य मांग के कोषों को नष्ट कर देते हैं। फिर शारीर के प्रोटीटोलाइटिक एन्जाइम्ज (Proteolytic enzymes) इन मृत कोषों को द्रव्यमृत करके शोफ के मध्य भाग में पूय गुहा (Pus-cavity) को उत्पन्न करते हैं। पूय गुहा के चारों ओर के अतिप्रस्त जीवित कोषों (Damaged living cells) से पूय जनन कला (Pyogenic membrane) का निर्माण होता है। यह कला पूय के प्रसार को रोकती है। इस कला के द्वारा रक्त के रवेतानु दोषों को नष्ट करने के लिये (To engulf the foreign material) पूय गुहा में पहुँचते हैं तथा मृत होकर पूय में ही प्रविष्ट हो जाते हैं।

**मेचः**—

दोष भेद से विद्रविष छः प्रकार की होती है, जैसे—(i) वातिक, (ii) पौतिक, (iii) श्लैमिक, (iv) सान्तपातिक, (v) रक्तज्ञ, (vi) आगतुञ्ज ।

**आप्यन्तर विद्रविष** (मन्द में या भीतरी अवयवों में होने वाली विद्रविष)—यह स्थान भेद से अनेक प्रकार की होती है—(i) गुदा, (ii) यस्ति, (iii) नामि, (iv) कुप्ति, (v) वंक्षण, (vi) दृष्टक, (vii) यकृत, (viii) न्यीहा, (ix) क्लोम, (x) हृदय ।

**अन्य विद्रविषोः—** रक्तज, स्तन तथा अस्थि में होने वाली विद्रविष ।

**लक्षण**—  
दोषज विद्रवियों के लक्षण वृण-शोष के लक्षणों के समान होते हैं जैसे—

(i) वातज विद्रविष—यह कूठण या अहण वर्ण की, कठोर, अत्यन्त बैदना गुल, देर से उत्पन्न होने वाली तथा देर से ही पक्के वाली होती है। इसमें भी कठोर स्थानों पर होने वाली गम्भीर विद्रविष के समान लक्षण रहते हैं जैसे एड़ी की गम्भीर विद्रविष जोकि देर में पक्की है एवं कठोर तथा अत्यन्त बैदना-रुक्त होती है।

(ii) दंतिक विद्रविष—यह विद्रविष पके गुलर, फल के समान लाल या काली, शीघ्र पक्के वाली, वीताल वाली तथा पिपासा, दाह, ज्वरादि सावंदेहिक पितज लक्षणों से उक्त होती है। इस प्रकार के लक्षण कोमल स्थानों (स्तन, मुखादि) की गम्भीर (Deeply seated) घातुओं में तीख या रुक्जोंके संक्रमण (Acute fulminating infection) होने पर पाये जाते हैं।

(iii) संस्तिक विद्रविष—यह विद्रविष शराब (सिकोरे) के समान बड़ी चक्के-दार, पाण्डुवाण की, शीतल, स्तन, शोड़ी वेदना तथा काढ़गुक्त, देर में उत्पन्न होने वाली तथा देर में ही पक्के वाली होती है। पक्के पर इसमें रवेत लाल निकलता है। इस प्रकार के लक्षण आम वृण-शोष तथा जींजे वृण-शोष में मिलते हैं जैसे कठिनता, बीतलता, देर में बड़ना, पाण्डुता इत्यादि ।

बागमटु ने इस प्रकार के उपर्युक्त लक्षणों कानी विद्यमि को रक्तपाद कहा है। इसमें रक्त का गहराई तक पाक होता है, इसलिये इस शोक में पाक के लक्षण स्पष्ट नहीं होता, त्वचा के समान रंग, कठोरता तथा अत्यं वेदना इत्यादि लक्षण होते हैं। इस तरह के लक्षण अद्वज विद्यमियों (Tubercular abscesses) में मिलते हैं, जैसे अस्थि की अयज विद्यमि, लमिका ग्रन्थियों की अयज विद्यमि इत्यादि, इनमें रक्त पाक के उपरोक्त लक्षण पाये जाते हैं।

(iv) चिदोष विद्यमि—इनमें तीनों दोषों के लक्षण जैसे वर्ण, साव तथा पिण्डित संयुक्त रूप में बाये जाते हैं। यह निद्रिय अधिक फैली हुई, विषमाकार विद्यमि प्रदेश में बाये जाते हैं। इस प्रकार के (Irregular) तथा अधिक उत्सेच वाली (Much raised) होती है। इस प्रकार के लक्षण जीर्ण वर्ण-शोथ में पूर्योत्पादक जीवाणुओं द्वारा द्वितीय संक्रमण (Secondary infection) होने पर होते हैं।

(v) आगन्तुक विद्यमि—इनमें पित्तज विद्यमि के लक्षणों के समान ऊवर, दाढ़, तुवा इत्यादि लक्षण मिलते हैं। इस प्रकार की अवस्था आघात स्थान पर तीव्र संक्रमण होने से उत्पन्न होती है।

(vi) रक्त जन्म विद्यमि—यह काली पिण्डिकाओं से छिरी हुई, काले रंग की, हीवरदाह, औष, चोष, ऊरादि पित्तज लक्षणों से युक्त होती है। इस प्रकार के लक्षण आघात से उत्पन्न रक्त गुलम (Haematomata) में तीव्र संक्रमण (Acute infection) होने से होते हैं।

#### आम्यन्तर विद्यमि :—

शरीर के नीतरी अवयवों में गुलम के समान कठोर तथा बलमीक के समान ऊर को उठी हुई (Prominent) विद्यमि ही आम्यन्तर विद्यमि कहलाती है। इन विद्यमियों के पक्कर फूटने पर, नाभि से ऊपरी माग वाली विद्यमियों का साव ऊर्च नार्थ (Mucr) से तथा नाभि के नीचे स्थित आम्यन्तर विद्यमियों का साव गुद या योनि मार्ग से निकलता है। इनके सामान्य लक्षण उपरोक्त विद्यमियों के इत्यादि अधः मार्ग से निकलता है। इनके सामान्य लक्षण उपरोक्त विद्यमियों में कुछ अन्य समान दोषों के अनुसार होते हैं, परन्तु स्थान भेद से इन विद्यमियों में कुछ अन्य विद्यमित लक्षण भी मिलते हैं, जैसे—

- (i) गुदा—गुदा में होने वाली आम्यन्तर विद्यमि अपान वायु (Flatus) का अवरोध कर देती है, जैसे तीव्र भ्रगन्दर पिण्डिका (Acute ischiorectal abscess) में वेदना के कारण मल तथा वायु का अस्थाई रूप से अवरोध हो जाता है। इसके गुदा के फूटने पर अधः मार्ग से पीत वर्ण का गूँथ साव निकलता है।
- (ii) बास्त्व—बास्त्व प्रदेश में विद्यमि होने पर मूत्र कठिनता से तथा थोड़ा धोड़ा आता है। इस प्रकार के लक्षण विद्यमि के मूत्राशय की भिन्नि (Bladder wall) में, या रिटज की गुहा (Cave of ritz) में रहने पर उत्पन्न होते हैं।

(iii) लाभि—लाभि प्रदेश में अन्तर्विद्यमि होने पर हिचकी तथा आडमान विद्यमित लक्षण उत्पन्न होते हैं। ऐसी स्थिति उस समय उत्पन्न होती है जब स्थानीय पूर्ण दयशिक (Local peritonitis) से मध्यचक्र प्राचीर (Diaphragm) ऐसी भी प्रभावित हो जाती है। इसमें अस्थाई आन्तराचात (Temporary paralytic ilius) से आडमान तथा मध्यचक्र प्राचीर देखी की फैक्टिक तिथिका (Phrenic nerve) के उत्तेजित होने से हिचकी उत्पन्न होती है।

(iv) कुक्कि—कुक्कि प्रदेश में विद्यमि होने पर वायु का प्रकोप होता है। अच स्थानीय पूर्ण दयशिक (Iliopsoas muscle) की अपेक्षा पार्श्व में होती है तो आडमान, वेदनादि वायु प्रकोप के लक्षण अधिक मिलते हैं। इसमें मध्यचक्र प्राचीर देखी के प्रभावित न होने के कारण हिचकी नहीं आती।

(v) बंदखण—बंदखण में विद्यमि होने पर कटि और पूँछ में तीव्र ग्रह (Jerkvalइट) इसका एक विशिष्ट लक्षण होता है। बंदखण प्रदेश में इस प्रकार की जड़हट इतियो-सास विद्यमि (Iliopsoas abscess) के होने पर होती है। आन्व पूर्ण प्रदाह (Appendicitis) से लक्षण होने पर जड़हट या ऐंडन (spasm) आ सकती है।

(vi) शुष्क—शुष्क प्रदेश में विद्यमि होने पर पर्चु का मैं संकोच या मात्रापैन (Dullness) प्रतीत होता है। परिहृष्कीय विद्यमि (Perinephric abscess) में स्थानीय पूर्य के कारण वहाँ पर संकोच के समान प्रतीत होती है।

(vii) and (viii) ल्लीहा एवं अफूत—ल्लीहा या यकूत में विद्यमि होने पर इवासाव रोध या इवासकूल्हा एक विशिष्ट लक्षण होता है। मध्यचक्र वाचीर वेशीय अधः विद्यमि (Sub-diaphragmatic abscess) या यकूत विद्यमि (Liver abscess) में भी मध्यचक्र प्राचीर के ऊपर की ओर उठ जाने से उसके कूबड़ होने पर इवास कूल्हा तथा हिचकादि लक्षण उत्पन्न होते हैं।

(ix) हृदय विद्यमि—इस प्रदेश में विद्यमि होने पर सर्वाङ्ग ग्रह अकाउट तथा तीव्र पीड़ा के लक्षण होते हैं। हृदयादरण गोक (Pericarditis) में भी इसी प्रकार के लक्षण मिलते हैं।

(x) क्लोम—क्लोम में विद्यमि होने पर अत्यधिक घ्यास (туषा) लगती है। क्लोम एक संदिग्ध समूह है। अत्यधिक तुषा विद्यमि में भी हो सकती है, जैसे बग्गासाव शोफ, गल-विद्यमि (Retropharangeal abscess), परिटूणिका शोफ (Peritonsillar abscess) इत्यादि।

**अन्य विद्यमियाँ :**

रस्तज विद्यमियाँ (स्ट्रियों में)—विद्यमि में प्रसव या गर्भस्थाव के प्रकार्

62

मिथ्या आहार-विहार सेवन करने से (जैसा कि विद्रवि के हेतुओं में बताया गया है) रक्त कम्फन करने से युक्त रक्तज विद्रवि को उत्पन्न करता है। इसका 7 ज्वर, दाहादि पित्तज लक्षणों से यह असाध्य हो जाती है। रक्तज विद्रवि में दिन के पश्चात् आमतर पाक होने से यह असाध्य हो जाती है। यदि संक्रमण गर्भाशय से डिग्नोमिथियों द्वारा पृथक् जाये तो 6-7 दिन में ही पृथक् शोष (Endometritis) के समान होते तथा लक्षण मिलते हैं। यदि अन्यथा आहार-विहार से यह असाध्य हो जाती है।

**स्तन विद्रवि—** यह विद्रवि प्रसूता या गर्भाणी में होती है (कन्याओं में डुग्घ होकर वह विस्तृत सिराओं में (दुग्घ वाहिनियों में) पहुँचकर प्रत्येक दोष के अनुसार विद्रवियों को उत्पन्न करते हैं।

आधुनिक मतानुसार स्तन विद्रवि में संक्रमण प्रायः स्तन विद्रवि से डुग्घ वाहिनी में पहुँचता है और वहाँ के डुग्घ को जमा देता है (Staphylococci coagulates the milk)। यहीं संक्रमण की वृद्धि होकर उत्सेष, लालिमा, वेदना, उल्टा लालिमी से अवरोध होने के कारण वह फूल जाती है। संक्रमण के शोषित हो जाने से तीख (Extravasated milk) से पायरोजनज (Pyrogens) के लक्षण उत्पन्न होते हैं। (इसका विस्तृत वर्णन पुस्तक के छपर, तुष्टि, दाहादि पैतिक लक्षण उत्पन्न होते हैं। इसका विस्तृत वर्णन पुस्तक के छपर, तुष्टि, दाहादि 14 में हेद्दे)

अस्थिगत विद्रवि—अस्थि में विगुणता होने से (आधार से या पोषणामाव से) प्रकृति हुए दोषों का वहाँ पार स्थानसंभव्य हो जाता है। इन दोषों से अस्थि मज्जों का परिपाक होने लगता है। इस परिपाक से उत्पन्न पृथक् को कठिन अस्थि तथा मांस द्वारा आचूत (ठकी) रहने के कारण आहर निकलते का मार्ग नहीं मिलता, इससे पृथक् अन्दर ही अन्दर मज्जादि धातुओं का पाक करती है (It keep on destroying the bone tissue) रोगी इस विस्तृत तथा विषम विद्रवि से देर तक तीव्र पीड़ा एवं जलनादि वेदनाओं की मोगता रहता है। यह लक्षण तब तक बने रहते हैं जब तक कि शल्यकमंदारा अस्थि का ऐदन करके पृथक् को बाहर नहीं निकाल दिया जाता।

यह पृथक् गुरु, रेवेत, शीत तथा मेद के समान चिकनी होती है। आधुनिक मतानुसार अस्थिकांड कोटि (Metaphysis) में रक्त द्वारा आये संक्रमण (Blood born infection) से तीव्र पोक उत्पन्न होता है तथा शीघ्र ही वहाँ पृथक् गुरु (Pus cavity) का निर्माण हो जाता है। (स्मोकिं कठोर कठित्यों में

विद्रवि	गुल्म
1. विद्रवि का मूल अर्थात् दृश्य त्वचा, रक्त, मौसादि धातुयं होती है।	गुल्म का मूल अर्थात् मविष्ठान त्वचादि धातुयं नहीं होती।
2. विद्रवि में दोष अपने दृश्यों को दृष्ट करते हैं तथा उन दृश्यों में गुल्माकार (Lump) उत्सेष (Swelling) उत्पन्न करते हैं।	गुल्म में दोष स्वयं ही किसी विवर युक्त अरा (कोळ) में इकट्ठे होकर गुल्माकार (Lump) उत्सेष (Swelling) उत्पन्न करते हैं।
3. विद्रवि में त्वचादि दृश्यों का पाक होने से पृथक् उत्पन्न होती है।	गुल्म में दृश्यों का आमाव रहता है इसीलिये पाक नहीं होता (दोष स्वयं कमी नहीं पकते, दृश्य ही पका करते हैं)।

#### उत्प्रवृत्त तथा साध्य असाध्यता :-

(1) परिगलन—विद्रवि में उत्प्रवृत्त, पृथक् को यदि ऐदन करके न निकाला जाए तो यह पास में स्थित रिया, लालु, भासादि को भी गता जैती है। (It suppures the surrounding structures)

(iii) आठमान—आध्यन्तर विद्युति के रोगी में आठमान का होना शामि, चास्ति की विद्युति बाहर को फूटने पर भी असाध्य रहती है, क्योंकि इनसे हृदयवरण का नालवण (Pericardial fistula), सूत्राशय का नालवण (Cystic-fistula) तथा आन्तरगत नालवण (Faecal fistula) बन सकते हैं। ये अवस्थाएँ होता है।

(iv) हिचकी—यह उपद्रव पूय के मध्यच्छुद्र प्राचीर पेशी के सम्पर्क में आने से होता है। पूय से इस पेशी का परिगलत होकर पूय कुमफुमों में पहुँच सकती है।

(v) घ्यास—यह उपद्रव शरीर में निर्जलीकरण (Dehydration) का सूचक होता है। घ्यास, तीव्र उदर या अन्य कारण से शारीर के जलीय अंश का हास होने से भी उत्पन्न होती है।

(vi) इवासकट—तमकदाम हृदय की विद्युति के कारण उत्पन्न होता है तथा इवासकट, मध्यच्छुद्र प्राचीर पेशी के अथः घ्यास में पूय एकमित होने से होता है।

(vii) पूय इस पेशी को विद्युतिं करके अंश में भी पहुँच सकती है।

(viii) घृणावरोध—सूत्रावरोध होने से दृढ़क नाट हो सकते हैं तथा मूत्रमयता (Uraemia) उत्पन्न होकर गुरुत्व हो जाती है। यह उपद्रव चास्ति प्रदेश में विद्युति होने पर उत्पन्न होता है।

(ix) गलग्रह—बलोम में विद्युति होने पर उसका स्वरायन्त्र पर दाढ़ पड़ने से गलग्रह होता है। यह चुदास अवरोध उत्तरक करके गुरुत्व भी कर सकता है। इसलिये रोगी की जान बचाने हेतु तुरन्त इवास-प्राणली-निकिहिकरण (Tracheostomy) करना पड़ता है।

(x) अधमान लादनियन्त्रक अर्द्धिकाटुडनियन्त्रक—  
रुजाराजसस्ताकिर्ति अर्द्धिनियन्त्रकरण ॥ ३० ३० ३० ३३  
आधमानयन्त्रत, मल, मूत्र व पूय का अवरोध होने पर, वसन, हिचकी घ्यास व इवास रोग से परिड्वित व्यक्ति की विद्युति रोगी को नाट कर देती है अर्थात् ये असाध्य विद्युति के लक्षण हैं।

**साध्यस्थियता :**—  
(i) उपरोक्त उपद्रवों के उत्पन्न होने पर आध्यन्तर विद्युति रोगी को नष्ट कर देती है।

(ii) यदि विद्युति फूटकर उट्टवे भारी (युख) से निकलती है तो वह असाध्य है और यदि अथः घार्म (गुदा) से निकलती है तो नाट होती है।

(iii) तानि के ऊपर (मुक्ति: घीहादि) की विद्युति अथः मार्ग से निकलते पर भी असाध्य होती है (विनिरीत दशा होने के कारण)।

(iv) सदाप्राणहर यमं (हृदय, नाभि तथा कफिल) की विद्युतियों को छोड़कर अपोग्य हों उनमें विद्युति को दारण नह्यों (जो कल्प एवं तीर्थ होने से त्वचा को बदि अन्य लिंगियां यात्रु को कटती हैं (त्वचा पर) तो वह साध्य है, परन्तु हृदय, विदीर्ण करके पूय के निकालना चाहिए। सुश्रूत ने

(iii) आठमान—आध्यन्तर विद्युति के रोगी में आठमान का होना जैसे नामि तथा कुप्ति की विद्युति में होता है), आङ्ग के बात या अवरोध का सूचक होता है।

(iv) हिचकी—यह उपद्रव पूय के मध्यच्छुद्र प्राचीर पेशी के सम्पर्क में आने से होता है। पूय से इस पेशी का परिगलत होकर पूय कुमफुमों में पहुँच सकती है।

(v) सत्त्विपातिक विद्युति विदोषज होने से असाध्य होती है।  
**अनुबन्धः**—

विद्युति में वात, पित्त, कफ तथा रक्त का अनुबन्ध रहता है।  
**हृदयः**—

विद्युति में त्वचा, रक्त, मांस, मेद, अस्थि तथा मुखा हृदय रूप में रहती है।  
**विकिताः**—

(i) पूय बनने के पूर्व :—विद्युति में दोषात्मार चिकित्सा करनी चाहिए।  
(ii) पूय बनने से विद्युति में एरण तथा भद्रदाव्यादिगण जैसी बातनाशक औषधियों से चिकित्सा करनी चाहिए।  
(iii) मित्तज विद्युति में लाजा, मुलेली, काकोली, सारिचादि पिततनाशक औषधियों से चिकित्सा करें।  
(iv) रक्त विलाचण द्वारा दोषों को निकालना चाहिए।  
(v) रक्तज विद्युति में आरवधादि गण तथा कफ नाशक औषधियों के हारा चिकित्सा करें।

इन औषधियों से लेप, उपनाह, स्वेदन इत्यादि विरेचन तक के शोफ चिकित्सा में कहे गए उपकरणों से (अनेक कल्पनाओं द्वारा) चिकित्सा करें।  
(i) रक्त विलाचण द्वारा दोषों को निकालना चाहिए।  
(ii) रक्तज विद्युति में सहृदय लक्षण उत्पन्न होने के सहृदय लक्षण चिकित्सा करनी चाहिए।  
(iii) विद्युति के प्रथम लक्षण तथा रक्तज विद्युति के समल्पन्न चिकित्सा

(iv) पूय बनने के प्रथम लक्षण तथा रक्तज विद्युति से तुरन्त पूय निकालनी चाहिए वे भी नष्ट हो जाती है। यह ध्यान रखें कि अपव्यव विद्युति के भेदन कर देने से रक्तस्वाव, वेदना, क्षत जन्य विसर्प (Erysipelas) तथा त्वचा, मांसादि में अन्तराल (gap) पर या उनके विदीर्ण होने के सहृदय लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।  
**पूय निकालने की विधियाः**—

(i) दारणः—सुकुमार, स्त्री, भीरु, वृद्ध तथा जो रोगी शस्त्र कर्म के अपोग्य हों उनमें विद्युति को दारण नह्यों (जो कल्प एवं तीर्थ होने से त्वचा को बदि अन्य लिंगियां यात्रु को कटती हैं) द्वारा विदीर्ण करके पूय के निकालना चाहिए। सुश्रूत ने

**चिरबिल्ब, अग्निक (लांगली), दस्ती, चित्रकादि तीखण इव्यों को दारण कर्म में प्रयुक्त करने को चाहिए है।**

**भेदन तथा चिकित्सणः**—रोगी को अल्प आहार देकर, प्रकाश में बैठाए अब स्तन का अनुलोम प्रयोग करते हुए मर्म, सिरा, स्नानु, अस्त्रिय एवं सिन्धि को बचा कर एवं तीखता से ग्रस्त चलाकर एक अंगुल लम्बा तथा पूय गुहा तक गहरा भेदन कर देना चाहिए। इस कर्म के लिए बृद्धि पन (Scalpel), नाखूशन (Nail cutter), मुद्रिक ग्रस्त (Finger knife), उत्सरपन (Lancet), अधंधारादि ग्रस्तों को प्रयोग में लाएं।

भेदन करने के पश्चात् उसमें से पूय निकालें तथा छण शोधन इव्यों (इव्य संघट अध्याय में वर्णित) द्वारा बनाए रखें। घृत, चूपण, वर्ति, रसाक्षिया, मधुसर्पी इत्यादि को पूयगुहा में डालकर उसका शोधन करना चाहिए। छण के गुद्ध होने पर रोपण इव्यों द्वारा उपरोक्त कल्पनाएँ बना कर उसमें छण का रोपण कर्म करना चाहिए। शोधन रोपणादि उपकरणों का वर्णन उपकरण अध्याय में देखें।

### आधुनिक चिकित्सा:—

पश्च विद्रधि की भेदन, तथा विकाशण (Incision and drainage) ही एक सफल चिकित्सा मानी गई है, इसके लिए निम्न विधियाँ प्रचलित हैं:—

(i) अनुकूल भेदन (Free drainage):—इसमें विद्रधि के सर्वाधिक उत्सेध बाले स्थान पर पर्याप्त लम्बा तथा पूय गुहा तक गहरा भेदन करना चाहिए।

(ii) हिल्टन की विधि (Hilton's method):—इस विधि में पहले तेज प्रारं बाले स्थान (Knife) से गम्भीर प्रावरणी (Deep fascia) तक भेदन करें फिर साईनस फारसेप्स (Sinus forceps) को बोलकर इसे बाहर निकालें। गुहा तक पहुंचा दें। अब इस Forceps के मुख को खोलकर इसे बाहर निकालें। फिर इसमें अड्डगुली डालकर सब कोठकों (Loculi) को तोड़ कर एक गुहा बना दें। यदि भेदना उत्सेध के ऊपरी स्तर में किया गया हो तो गुहा में सबसे निम्न भाग में एक प्रतिभेदन (Counter incision) कर दें तथा 24 से 48 घण्टे तक के लिए उसमें वलितमय निकास नाड़ी (Corrugated drainage tube) लगा देना चाहिए। तत् पश्चात् इसमें पूय विरोधी मरहमों (Antiseptic ointment) को लगाते रहें। या इसका भेदन करने के पश्चात् शोधन करके सीधन कर दें। 5-7 दिन तक प्रतिजीवी औषधियाँ (Antibiotics) दें रहता चाहिए।

(iii) बेधन तथा आचूषणः—रक्त पाक (Cold abscess) होने पर जब ध्याधि प्रकाशस्था में पहुंच जाए तो उत्सेध के उद्देश भाग में बेधन (Puncture) करके पूय का आचूषण कर लें (Aspirate by syringe)। इस गुहा में स्टॉटों

माईसीन (Streptomycin) का घोल भर दें तथा यह कर्म कई बार करने से विद्रधि का रोपण हो जाता है।

(iv) छेदन कर्म (Excision of the cavity)—रोगी में प्रादेशिक संशाहरण (Regional anaesthesia) देकर पूय-कोटर को पूर्णतया निकाल देना चाहिए (Excise the whole cavity)। फिर इसका प्राथमिक सीधन कर्म द्वारा सन्धान तो उसका लेडन कर्म (Scraping) करके सीधन कर्म कर देना चाहिए। यदि गुहा का पूर्ण ल्लप से छेदन न हो पाए तो विद्रधि होने पर रोगी को क्षय विरोधी चिकित्सा (Anti tubercular therapy) भी साथ में देनी चाहिए। इसके लिए (i) स्ट्रोमाइसिन एक प्राप्त का मासमेशी में प्रतिदिन सूचीबेश करें (Inj. streptomycin 1 gm. daily I. M.), (ii) माईसीनेक्स 300 mg. ग्रा० दिन में तीन बार (Isonex 300 mg. T. D. S. daily) दें। इस पुरुतक के द्वितीय भाग, अस्थि राग अध्याय में क्षेत्रकारित्य क्षय में देखें।

### स्तन विद्रधि :—

इस रोग में पूय के छड़ने के पूर्व ही इसकी चिकित्सा करनी चाहिए। यदि विद्रधि पञ्चमान अवस्था में आ जाए तो इस पर उत्तर उपनाह तथा तीक्ष्ण लेप नहीं लगाने चाहिए (क्योंकि त्वचा को मल होती है)। रोगी को तेज तीक्ष्ण भोजन देकर विद्रधि को पकाना चाहिए। इसके पकने पर चूचुक के क्षण भाग को तथा दुख में से बार-2 दुख निकलवाना चाहिए (इस दुख को डबालकर बच्चे को भी पिला सकते हैं)।

आधुनिक स्तनउत्सार :—स्तन विद्रधि में प्रारम्भ से ही प्रतिजीवी औषधियों (Antibiotics) का प्रयोग शुरू कर देना चाहिए। यदि विद्रधि पक जाए तो स्तन पर रेडियल दिशा (Radial direction) में कूपण भाग को बचाते हुए भेदन कर्म करना चाहिए। यदि पूय गुहा स्तन के नीचे के भाग में स्थित हो तो पूय गुहा के सब से नीचे के भाग (most dependent portion) पर प्रतिभेदन (Counter incision) कर देना चाहिए। भेदन कर्म के पश्चात् 2-3 दिन के लिए उसमें निकास नाड़ी (Drainage tube) रख दें। रक्तस्राव बन्द होने पर (2-3 दिन बाद) इस निकास नाड़ी को निकाल दें तथा रोपण चिकित्सा प्रारंभ कर देनी चाहिए।

अस्थि मज्जा विद्रधि:—  
इस विद्रधि को असाध्य घोषित करके ही चिकित्सा प्रारम्भ करनी चाहिए। विद्रधि के पकने से पूर्व स्नेहन, स्वेदन, रक्तमोक्षणादि (विनेचन तक के) उपचारों चिकित्सा करनी चाहिए। इसके पक जाने पर अस्थि को काटकर (By drill hole

or incision, in subperiosteum) पूर्य विकारण कराएँ तथा पूर्व बर्णित शोधन दब्बों से इसका शोधन कर्म करें। शोधन होते पर तिक्षण दब्बों के बवाय से इसे धोकर रोपण कर्म करें।

**आपृतिक पड़ति:**—इसके अनुसार अस्थि विद्युधि में सर्वप्रथम प्रतिजीवी औषधियों (Antibiotics) का प्रयोग शुरू किया जाता है। इस चिकित्सा को 4 सप्ताह तक चलाते हैं तथा हण्ड अड्ड को पूर्ण विश्वास दिया जाता है। जब इसमें पूर्य पड़ जाता है तो उसका बेघन (Drill hole) करें या अस्थि आवरण अथः विद्युधि निकली पूर्य में उपस्थित जीवाणुओं की सूक्ष्म शाहिता (Sensitivity) देखकर तदनुसार प्रतिजीवी (Antibiotics) औषधियों द्वारा चिकित्सा करनी चाहिए।

## 60 उपक्रम

- (1) अपतर्पण (2) आलेप.
- (5) स्वेद (6) विस्तापन (7) उपनाह (8) पाचन
- (9) विलावण (10) स्नेहन (11) बमन (12) विरेचन
- (13) छेदन (14) भेदन (15) दारण (16) लेखन
- (17) वेधन (18) एषण (19) आहरण (20) विलावण
- (21) सीवान (22) संधान (23) पोड़न (24) शोणिता-
- स्थापन (25) तिवरिपण (26) उत्कारिका (27) कथाय
- (28) वर्ति (29) कल्क (30) सपि (61) तैलं
- (32) रसचिया (33) अवचूर्ण (34) व्रणघृपन (35) उत्सादन
- (36) अवसादन (37) पृष्ठकर्म (38) दारण कर्म (39) क्षारकर्म
- (40) अग्निकर्म (41) कृष्णकर्म (42) पाण्डुकर्म (43) प्रतिसारण
- (44) रोमसञ्जनन् (45) रोमअवहरण (46) वस्त्रिकर्म (47) उत्तरवस्त्रिति
- (48) बन्धन (49) पत्रदान (50) कृमिचन (51) संतप्तण
- (52) विषनाशन (63) शिरोविरेचन (54) तस्य (55) कवल धारण
- (56) धूम्पान (57) मधु+धूत (58) यन्त्र (59) आहार-
- (60) रक्षाविधान

उपरोक्त अपतर्पण से विरेचन तक के 12 उपक्रम, दोषों के संचय, प्रकोप,

प्रसार तथा स्थानसंभय अवस्था तक एवं शोफ की आमावस्था के लिये प्रयुक्ति किये जाते हैं। इन उपकरणों से या तो ब्रणशोथ का प्रारम्भिक अवस्था में ही शमन हो जाता है (उत्पन्न ही नहीं हो पाते) या फिर उत्पन्न होने के पश्चात् उसका वितरण होता है जाता है (उत्पन्न ही नहीं हो पाते) या फिर उत्पन्न होने के बैद्यत लक्षण भी जात हो जाते हैं। पर्दि दोष अधिक भाना में शोफ के बैद्यत लक्षण भी जात होता है। यदि दोष अधिक भाना में प्रजुटित हों तथा उनका वितरण होता है तो पाचनादि उपकरणों का प्रयोग करें। पाचनादि उपकरणों से ब्रणशोथ शीघ्र ही पक्वावस्था में परिवर्तित हो जाता है तथा व्याधिकाल भी कम हो जाता है (It minimises the duration of disease)।

"संबच्यज्ञहता दोषा लक्ष्णे नोत्तरा गतिः ।

ते त्रृत्तरात्यु गतिषु भवन्ति बलवत्तराः ॥ सु० द३० २१

संबच्य काल में ही दोषों का अपहरण कर देने से वे अगली गति को प्राप्त नहीं होते। दोष उत्तरोत्तर गति में पहुँचकर अधिक बलवान् हो जाते हैं, इसलिये अल्प दोषों में संशमन किया करें, मध्य दोषों में लचन व पाचन किया तथा दोषों के अधिक रहने पर अथर्व बलवान् होने पर दोषों की शोधन किया करनी चाहिये।

छेदन से सीवन तक के अष्टर्विधि कर्म तथा दारण कर्म पक्वशोथ में से पूर्य का निहंरण करने के लिये प्रयुक्त होते हैं। अष्टर्विधि शर्तन कर्मों से होने वाले उपद्रव जैसे अतिरिक्त छेदन, हीन-छेदन, तिर्यक् तथा चिकित्सक के अपने ही अंग का छेदन (हीनातिरिक्तिर्यक् च गाम्भ्रज्ञेद्वनात्मनः) इत्यादि उपद्रव दारण उपकरणों में नहीं होते। इसलिये मध्यस्थान के पक्व ब्रणशोथ की चिकित्सा (अथर्व बहां से पूर्य का निहंरण) दारण उपकरण द्वारा करनी चाहिए।

संधान से अनिवार्य तक के 19 उपकरण शोफ के ब्रण में परिवर्तित हो जाने पर एवं दुष्ट ब्रणों में शोधन (दोषाहरण) तथा रोपण कर्म करने के लिये प्रयोग में लाये जाते हैं।

कृष्णकर्म से रक्षाविधान तक 20 उपकरण हैं। ब्रण के ठीक से न रोपण होने से उत्पन्न विकृतियों (Deformities in scar tissue) को सामान्य अवस्था में लाने के लिए या ऊर्ध्वज़ुरुगत ब्रणों में विशेष उपकरणों के रूप में, और शारीर गत दोषों तथा लिखों का निहंरण करने के लिए इन 20 उपकरणों का प्रयोग किया जाता है।

उपकरण	विषय	द्रव्य	प्रयोग	विशेष कथन
1. अपतर्पण (To bring the effect of fasting)	सब प्रकार की शोफ, आम जो शरीर में लघुता उत्पन्न अल्प दोषों में लंघन; मध्यम अपतर्पण के अयोग्य वात विध्या तथा कफजन्य इसके लिये लघु उष्ण एवं अधिक दोषों में दोषाक्षीण, भीरु, गर्भवती तथा व्याधियों में अपतर्पण करे।	द्रव्य	दोषों में लंघन एवं पाचन, रोगी, भूख तथा प्यास से तीक्ष्ण, विशद, रुक्ष, सूक्ष्म वसेचन करायें। इन कर्मों वालक, इनमें अपतर्पण से तथा खरगुण वाले द्रव्यों से आम तथा कफ दोष का धातुक्षय होता है।	
2. अलेप (Application of	शोफजन्य दाह तथा वेदना, ब्रण के शोवन, रोपण, उत्सादन तथा अवसादनार्थ।	बातवोष में—विजौरा, अलेपों से त्वचा, मांस एवं अलेप-इसकी मोटाई अंगुली अरणी, देवदार, सोंठ, रासना रक्त प्रसादित होते हैं तथा का $\frac{1}{2}$ भाग या भैंस के गीले तथा स्तिर्य, अम्ल, लवण मर्म और गुण भागों का घमड़े के भराबर होती है।		

medicinal pastes) માટેથી ગૂણી બનું પણ અનુભૂતિ હોય નાં। આખરાની રીતે ।

પણ ગૂણી બનું પણ અનુભૂતિ હોય નાં।

નિષાન કરતા આપણે આપણા એવી જીવની વૈજ્ઞાનિક રીતેની અનુભૂતિ હોય નાં।

આ વિધાન એવી બની રહેણી ચાહેરી હોય નાં।

જીવનાની એવી વિધાનની એવી બની રહેણી ચાહેરી હોય નાં।

આ વિધાન એવી બની રહેણી ચાહેરી હોય નાં।

એવી વિધાનની એવી બની રહેણી ચાહેરી હોય નાં।

જીવની એવી વિધાનની એવી બની રહેણી ચાહેરી હોય નાં।

જીવની એવી વિધાનની એવી બની રહેણી ચાહેરી હોય નાં।

જીવની એવી વિધાનની એવી બની રહેણી ચાહેરી હોય નાં।

જીવની એવી વિધાનની એવી બની રહેણી ચાહેરી હોય નાં।

જીવની એવી વિધાનની એવી બની રહેણી ચાહેરી હોય નાં।

જીવની એવી વિધાનની એવી બની રહેણી ચાહેરી હોય નાં।

જીવની એવી વિધાનની એવી બની રહેણી ચાહેરી હોય નાં।

જીવની એવી વિધાનની એવી બની રહેણી ચાહેરી હોય નાં।

જીવની એવી વિધાનની એવી બની રહેણી ચાહેરી હોય નાં।

જીવની એવી વિધાનની એવી બની રહેણી ચાહેરી હોય નાં।

જીવની એવી વિધાનની એવી બની રહેણી ચાહેરી હોય નાં।

જીવની એવી વિધાનની એવી બની રહેણી ચાહેરી હોય નાં।

જીવની એવી વિધાનની એવી બની રહેણી ચાહેરી હોય નાં।

જીવની એવી વિધાનની એવી બની રહેણી ચાહેરી હોય નાં।

3. ભર્ગાને કેદ આપીયાને અનુભૂતિ હોય નાં।

(Formen- રૂપની એવી એવી એવી એવી એવી એવી એવી એવી)

4. ભર્ગાને કેદ આપીયાને અનુભૂતિ હોય નાં।

(Irrigation) રૂપની એવી એવી એવી એવી એવી એવી એવી

5. ભર્ગાને કેદ આપીયાને અનુભૂતિ હોય નાં।

(Form) રૂપની એવી એવી એવી એવી એવી એવી એવી

6. ભર્ગાને કેદ આપીયાને અનુભૂતિ હોય નાં।

(Inflammation) રૂપની એવી એવી એવી એવી એવી એવી એવી

7. ભર્ગાને કેદ આપીયાને અનુભૂતિ હોય નાં।

8. ભર્ગાને કેદ આપીયાને અનુભૂતિ હોય નાં।

9. ભર્ગાને કેદ આપીયાને અનુભૂતિ હોય નાં।

10. ભર્ગાને કેદ આપીયાને અનુભૂતિ હોય નાં।

(Massage ઘર્ગાને, મારી એવી ઘર્ગાને ઘર્ગાને | એવી એવી એવી એવી |

By lube- લ્યબ, ઘર્ગાને એવી એવી એવી | —એવી |

cant medl- કાન્ટ મેડલ, ઘર્ગાને એવી એવી એવી | એવી |

—એવી | —એવી |

4. એવી એવી એવી એવી એવી | એવી એવી એવી |

1. એવી એવી એવી |

2. એવી એવી એવી |

3. એવી એવી એવી |

4. એવી એવી એવી |

5. એવી એવી એવી |

6. એવી એવી એવી |

7. એવી એવી એવી |

8. એવી એવી એવી |

9. એવી એવી એવી |

10. એવી એવી એવી |

उपक्रम	विषय	द्रव्य	प्रयोग	विशेष कथन
5. स्वेदन (Fomenta- tion)	शोथ वातनाशक कर्मों (1) के पूर्व, शल्य कर्म तथा वस्तुओं को गर्म करके उन प्रपत्र के पश्चात्, भग्नादर, द्वारा दिया जाता है जैसे:- अर्थ तथा अश्मरी रोगों के हाथ, कपड़ा, रुई, इंट, रेत, शल्य कर्मों के पहले तथा धातु इत्यादि। (2) ऊष्म स्वेद—द्रव्यों के पश्चात् स्वेदन करना चाहिए।	ताप स्वेद—यह शुष्क कक्ज शोथ में:—ताप स्वेद एवं उष्मस्वेद दें। वातज शोथ में—उपनाह वात पित तथा कफ पित में:—अयोग्य-पाण्डु, प्रमेह, रक्त-वाय के वाष्पों को या वायु कफ, वायुसेव तथा रोग, विष, वमत, तृष्णा, नाड़ी (pipe) द्वारा (नाड़ी उहस्तम्भ में—स्निग्ध या सगर्भा, मद्यपी तथा अतिसार स्वेद) या गर्म इंट पर पानी अग्नि स्वेद दें। छिड़ककर या उस पर स्लेहन के पश्चात् स्वेदन करें गीला कपड़ा डालने से ताकि पहले दोष क्लिन हो उत्पन्न वाष्पों में स्वेदन करें जायें। औख पर मृदु स्वेद भेद:—संकर, प्रस्तर, नाड़ी, दें। स्वेद देते समय हृदय परिषेक, जेन्टाक, अश्मधन, की शीतल द्रव्यों से ढक दें। कुम्भी, कूप, कुटी, भू, स्वेदन से रक्त परिघ्रंण होलाक आरक्षू (गर्त) बढ़ता है तथा विषों का (3) निरचन स्वेद—जैसे विलयन होता है। इससे व्यायाम, ऊष्मगृह, भारी अग्नि दोष, त्वचा कोमल, ओढ़न, वस्त्र, भूख, मद्यादि स्रोत निमल, सन्धियाँ क्रियातीक्ष्ण द्रव्य, भय, क्रोध, शील तथा शरीर में लघुता	कक्ज शोथ में:—ताप स्वेद एवं उष्मस्वेद दें। वातज शोथ में—उपनाह है, तथा छाले (विस्फोट) उत्पन्न होते हैं। वात पित तथा कफ पित में:—अयोग्य-पाण्डु, प्रमेह, रक्त-पित, क्षय, अजीर्ण, उदर-वाय के वाष्पों को या वायु कफ, वायुसेव तथा रोग, विष, वमत, तृष्णा, नाड़ी उहस्तम्भ में—स्निग्ध या सगर्भा, मद्यपी तथा अतिसार स्वेद) या गर्म इंट पर पानी अग्नि स्वेद के अयोग्य होते हैं। रोगी स्वेद के अयोग्य होते हैं।	

उपक्रम	विषय	द्रव्य	प्रयोग	विशेष कथन
6. विम्लापन (To rub)	स्थिर शोथ कक्षाधिक्य के कारण) तथा शोफ की आमावस्था में एवं वेदना होने पर विम्लापन करें।	युद्ध, आतप तथा उपनाह की वातनाशक द्रव्यों को होती है एवं तन्द्रा नष्ट कांजी में पीसकर नमक से सेक करें।	इसे बाँस की लकड़ी, अंगुली, इनसे धीमे-धीमे मर्दन करना अंगूठा एवं हाथ की हथेंजी चाहिए।	इस कर्म को अभ्यंग तथा स्वेदन के पश्चात् करना चाहिये। इससे दोषों का विलयन (Mobilization) होता है।
7. उपनाह (Poultice— A variety of fomentation)	आमशोथ एवं विदग्ध सोंठ, रासना, देवदारु वातनाशक द्रव्यों को कांजी वैलाडोना प्लास्टर तथा शोथ (पच्चमान शोथ की प्रारम्भिक अवस्था) में नमक तथा तेल द्वारा मिलाकर फिर आग पर रख-कर पुलिट्स बनायें और इसे गर्म-गर्म (सहता हुआ) बाँधें। इससे आमावस्था का शोथ दब जाता है तथा विदग्ध वस्था के शोथ का जलदी पका देती है i. e., It has Poultice like action.	इसे वातनाशक द्रव्य, में पीसकर, नमक और तेल द्वारा करें। उपनाह करें।	वातनाशक द्रव्यों को कांजी में पीसकर, नमक और तेल द्वारा मिलाकर फिर आग पर रख-कर पुलिट्स बनायें और इसे गर्म-गर्म (सहता हुआ) बाँधें। इससे आम शोथ को दबा देती है तथा विदग्ध शोथ को दब जाता है तथा विदग्ध वस्था के शोथ का जलदी पाक हो जाता है।	एण्टिफ्लोजस्टीन (Belladonna plaster and antiflogestine) भी



उपक्रम	विषय	द्रव्य	प्रयोग	विशेष कथन
11. वमन मांस की उभार युक्त शोफ। (Therapeutic vomiting) होने पर, अर्बुद, विसर्प, वोमिंग) विद्रधि, कण्ठपाक, ओष्ठ-पाक, मुखपाक, कर्णस्राव, अधिजिह्विका, उपजिह्विका, गलगुण्डिका तथा कफ से उत्पन्न अनेक औषधसाध्य रोग, जैसे—अजीर्ण, आमातिसार इत्यादि में वमन करायें।	लेने से ! (iv) जौ, बेर, कुलत्थ तथा पिप्पली को दूध, दही, मुरा घृत से लें। इससे तुरन्त स्नेहन होता है।	सौम्य वमन-मुलैठी क्वाथ से। कफ को काटने तथा पतला करने के लिए—मधु, मुलैठी, सेन्धानमक, रावयुक्त मदन-फल का क्षाय।	स्नेहन व स्वेदन के पश्चात् कफवर्धक आहार से कफ सेन्धानमक, रावयुक्त मदन-फल का क्षाय।	वमनोपरांत हाथ, पैर तथा मुख धूलाकर विश्राम दें तथा धूम्रपान करायें। दूसरे दिन शाली चावल दें तथा 7 दिन बाद उठते ही औषध पिलाकर सामान्य आहार दें।
12. विरेचन वायु से दूषित तथा जीर्ण (Purgation) व्रण, अंश' आर्बुद, ग्रन्थि, विद्रधि, भग्नदर, विसर्प, शोफ, शस्त्र जन्य क्षत, क्षार कम्पित्क, एवं अग्निदग्ध, दुष्टव्रण, अक्षिपाक, मुखपाक, गुद-पाक, मेढ़पाक, कर्णपाक, कांच, तिमिर, नासारोग इत्यादि में विरेचन दें।	त्रिवृत्, श्यामा, दन्ती, द्रवन्ती, सेहुण्ड, कालमेघ, भेहाशूरी, इंद्रायण, स्वर्णक्षीरीमूल, मालकांगनी, चिरबिल्व, आरग्नध, एरण्ड, सप्तपर्ण, ज्योतिधमति का तैल इत्यादि द्रव्यों को प्रयोग में लाएं।	त्रिवृत्, श्यामा, दन्ती, द्रवन्ती, सेहुण्ड, कालमेघ, भेहाशूरी, इंद्रायण, स्वर्णक्षीरीमूल, मालकांगनी, चिरबिल्व, आरग्नध, एरण्ड, सप्तपर्ण, ज्योतिधमति का तैल इत्यादि द्रव्यों को प्रयोग में लाएं।	पश्चात् करें तथा धूम्रपान को छोड़कर शेष कर्म वमन सूक्ष्म करें। अतितीव्र विवेचन से दोष नहीं निकलते। मूत्र, मल, पित्त, औषध और कफ क्रम से निकलते हैं। वायु में 10 वेग, पित्त में 20 तथा कफ अयोग्य होते हुए भी यदि में 30 वेग दें। पित्त निकलने पित्त अत्यधिक बढ़ा हुआ पर मन में प्रसन्नता, नाभि हो तो विरेचन दे देना में हल्कापन तथा वायु का चाहिए। अनुलोम होना सम्भक्त विवेचन का लक्षण है।	वमनोपरांत हाथ, पैर तथा मुख धूलाकर विश्राम दें तथा धूम्रपान करायें। दूसरे दिन शाली चावल दें तथा 7 दिन बाद उठते ही औषध पिलाकर सामान्य आहार दें। अयोग्य—तिमिर, ऊर्ध्ववात्, गुल्म, उदर, प्लीहा, कृमि, रुग्मि, उदर, प्लीहा, कृमि, गुल्म, उदर, प्लीहा, कृमि, असगन्ध, वेतस तथा वचादि। पैरों के बल बैठाकर व मुख में अंगुलि डालकर वमन करायें। वायु में 2 वेग, पित्त में 4 वेग तथा कफ में 6-8 वेग होने दें। वमन में रोग होने पर अयोग्य होते हुए भी वमन दें। अयोग्य—मन्दाद्विन, अतिस्नेही, बालक, वृद्ध, क्षीण, डरा हुआ तथा थका हुआ, प्यास, अजीर्ण, सगर्भा, अधोगत रक्तपित्त, नूतन प्रतिश्याय, नवज्वर, मदात्य, अत्यधिक अजीर्ण तथा कफ

उपक्रम	विषय	द्रव्य	प्रयोग	विशेष कथन
12. विरेचन वायु से दूषित तथा जीर्ण (Purgation) व्रण, अंश' आर्बुद, ग्रन्थि, विद्रधि, भग्नदर, विसर्प, शोफ, शस्त्र जन्य क्षत, क्षार कम्पित्क, एवं अग्निदग्ध, दुष्टव्रण, अक्षिपाक, मुखपाक, गुद-पाक, मेढ़पाक, कर्णपाक, कांच, तिमिर, नासारोग इत्यादि में विरेचन दें।	त्रिवृत्, श्यामा, दन्ती, द्रवन्ती, सेहुण्ड, कालमेघ, भेहाशूरी, इंद्रायण, स्वर्णक्षीरीमूल, मालकांगनी, चिरबिल्व, आरग्नध, एरण्ड, सप्तपर्ण, ज्योतिधमति का तैल इत्यादि द्रव्यों को प्रयोग में लाएं।	त्रिवृत्, श्यामा, दन्ती, द्रवन्ती, सेहुण्ड, कालमेघ, भेहाशूरी, इंद्रायण, स्वर्णक्षीरीमूल, मालकांगनी, चिरबिल्व, आरग्नध, एरण्ड, सप्तपर्ण, ज्योतिधमति का तैल इत्यादि द्रव्यों को प्रयोग में लाएं।	पश्चात् करें तथा धूम्रपान को छोड़कर शेष कर्म वमन सूक्ष्म करें। अतितीव्र विवेचन से दोष नहीं निकलते। मूत्र, मल, पित्त, औषध और कफ क्रम से निकलते हैं। वायु में 10 वेग, पित्त में 20 तथा कफ अयोग्य होते हुए भी यदि में 30 वेग दें। पित्त निकलने पित्त अत्यधिक बढ़ा हुआ पर मन में प्रसन्नता, नाभि हो तो विरेचन दे देना में हल्कापन तथा वायु का चाहिए। अनुलोम होना सम्भक्त विवेचन का लक्षण है।	वमनोपरांत हाथ, पैर तथा मुख धूलाकर विश्राम दें तथा धूम्रपान करायें। दूसरे दिन शाली चावल दें तथा 7 दिन बाद उठते ही औषध पिलाकर सामान्य आहार दें। अयोग्य—मन्दाद्विन, अतिस्नेही, बालक, वृद्ध, क्षीण, डरा हुआ तथा थका हुआ, प्यास, अजीर्ण, सगर्भा, अधोगत रक्तपित्त, नूतन प्रतिश्याय, नवज्वर, मदात्य, अत्यधिक अजीर्ण तथा कफ
13. छेदन कफज तथा भेदज ग्रन्थि, अर्बुद तथा कठिन और स्थिर रोगों में जिनमें कि	मण्डलाग्र, करपत्र, वृद्धिपत्र तथा नख शस्त्र। इन के अतिरिक्त, छेदन कर्म के लिए	मण्डलाग्र, करपत्र, वृद्धिपत्र तथा नख शस्त्र। इन के अतिरिक्त, छेदन कर्म में या तो ऊपर अर्बुद जैसी धातुओं की को काट कर निकाले अत्यधिक वृद्धि में या गलित (उत्कर्तन), या नीचे की धातुओं में छेदन कर्म करना	छेदनकर्म में या तो ऊपर अर्बुद जैसी धातुओं की को काट कर निकाले अत्यधिक वृद्धि में या गलित (उत्कर्तन), या नीचे की धातुओं में छेदन कर्म करना	79

14. अन्त **suture** अन्त के बीच से जो दो भागों को जोड़ने का एक लंबा और घुमावदार तंत्र है। इसका उपयोग अन्त को बंद करने के लिए किया जाता है।
15. अंडाकाश **hollow space** अंडाकाश में अंडा बनाया जाता है। इसका उपयोग अंडाकाश को बंद करने के लिए किया जाता है।
16. अंडाकाश के बीच से जो दो भागों को जोड़ने का लंबा और घुमावदार तंत्र है। इसका उपयोग अंडाकाश को बंद करने के लिए किया जाता है।
17. **para-aeratus** अंडाकाश के बीच से जो दो भागों को जोड़ने का लंबा और घुमावदार तंत्र है। इसका उपयोग अंडाकाश को बंद करने के लिए किया जाता है।

18. **Scraping** अंडाकाश के बीच से जो दो भागों को जोड़ने का लंबा और घुमावदार तंत्र है। इसका उपयोग अंडाकाश को बंद करने के लिए किया जाता है।
19. **Rough cloth** अंडाकाश के बीच से जो दो भागों को जोड़ने का लंबा और घुमावदार तंत्र है। इसका उपयोग अंडाकाश को बंद करने के लिए किया जाता है।
20. **Gauze** अंडाकाश के बीच से जो दो भागों को जोड़ने का लंबा और घुमावदार तंत्र है। इसका उपयोग अंडाकाश को बंद करने के लिए किया जाता है।
21. **Empy** अंडाकाश के बीच से जो दो भागों को जोड़ने का लंबा और घुमावदार तंत्र है। इसका उपयोग अंडाकाश को बंद करने के लिए किया जाता है।
22. **centesis** अंडाकाश के बीच से जो दो भागों को जोड़ने का लंबा और घुमावदार तंत्र है। इसका उपयोग अंडाकाश को बंद करने के लिए किया जाता है।

	विशेष कथन
उपक्रम १८. एषण (Probing)	<p><b>विषय</b> नाडीवरण, शत्यपुक्त वरण, करीर, पोइशाक, बाल एवं कर्म से नाड़ी वरणों की आजकल एषण निदेशक तथा एड्सी (शाक के कोमल दिशा, उनकी गहराई और (Probe director) का उन्मार्गी भगन्दर, नेत्र- नाल को नेत्र तथा गुदा पर गुहा के आकार (Size) का प्रयोग नाड़ी वरणों के अद्वान करना चाहिए। वर्त्म, गुदा के पास छोटी छोटी नाड़ियां, रक्त- बुक्त वरण तथा भगन्दर को प्रयोग करें क्योंकि यह एषण ज्ञान करना चाहिए। मुक्त वरण कर्म आधार नहीं होने का टाने के पूर्व एषण कर्म देता।</p> <p><b>प्रयोग</b> द्रव्य</p>
१९. आहरण (Extraction)	<p>शत्यपुक्त वरण तीन बड़ियां एवं दन्तशंकु, इनके यदि दान्त या अन्य शत्य तीनों शर्कराओं में मूत्रश- शर्करायें, दांत का मैल, अतिरिक्त रज्जु (Cord) फंसा हुआ हो तो पहले उससे करा, पादशर्करा तथा दन्त अश्मरी, गुदा का संचित वृक्ष की शाखा इत्यादि मांसाद धातुओं को अलग शर्करा आती है। मल तथा मूढ़गर्भ में उपयंत्र, स्वस्तिक यंत्र एवं कर देना चाहिए तत्पश्चात् यह कर्म करें। संदेशयंत्र से भी शत्य को आहरण कर्म करें।</p> <p><b>निकाला जा सकता है।</b></p>
२०. विस्तावण (Drainage)	<p><b>अध्यविधि</b> शस्त्रकर्म एकत्रित हुए मूत्र एवं जलो- अध्याय में मुश्तुत ने विस्ता- दर को वेधन कर्म द्वारा एवं वरण से रक्त विस्तावण को पूर्य को शस्त्र द्वारा निकालने ही लिया है। (महत्स्वपि च पाकेषु द्वयंगुलान्तरे त्र्यंगु-</p> <p><b>प्रयोग</b></p>
२१. सीवन (Suturing)	<p>लान्तरे वा शस्त्र निपातनम), बेल्लितक, गोफणिका, तुन- अयोग्य—क्षार, अग्नि, डल्हण। सेवनी, त्रहुग्रन्थि सीवन विषज, मारुतवाही तथा अणमन्तक की वल्कल, व. विधि से वरणों का सीवन शत्यपुक्त वरण। सन, रेशम, स्नायु, बाल, मूर्वा कर्म करें। तथा सूची (तिसा, वृत्ता तथा धनुर्वक्का)।</p> <p><b>सीवन करें।</b></p> <p><b>सूचना</b> :—इसका विस्तृत वर्णन इस अध्याय के अन्त में देखें।</p>
२२. सन्धान (Wound- approxi- mation)	<p>इसका वर्णन इस अध्याय के अन्त में देखें।</p>
२३. पीड़न (To squeeze	<p>जिन वरणों के मुख अति सूक्ष्म होने से दोष (पूर्य) बाहर न निकल सके तथा एवं सेंबल वट व उदुम्ब- मर्म स्थानों के दुष्ट वरणों में रादि। जौ, गेहूं, उड़द की दाल तथा अन्य लिच्छिन द्रव्य एवं सेंबल वट व उदुम्ब- मर्म स्थानों के दुष्ट वरणों में रादि। पीड़न द्रव्यों का प्रदेह (मोटा लेप) लगाकर इसे आग के लगायें क्योंकि वहाँ से दोष बाहर आते हैं।</p> <p><b>प्रयोग</b></p>

<p><b>25.</b> <i>فَرْطَان</i> <b>فرطان</b></p>	<p>فَرْطَان <i>فرطان</i> يَعْرِفُ فِي <i>فرطان</i> — لَمْ يَنْظُرْ فِي فَرْطَانٍ <i>فرطان</i> <i>فرطان</i> <i>فرطان</i> — أَنْ يَمْكُرْ فِي فَرْطَانٍ <i>فرطان</i> : يَلْتَمِسُ فِي فَرْطَانٍ <i>فرطان</i> : يَلْتَمِسُ فِي فَرْطَانٍ <i>فرطان</i> : يَلْتَمِسُ فِي فَرْطَانٍ <i>فرطان</i> : <b>(Cold)</b> <i>فرطان</i> <i>فرطان</i> <i>فرطان</i> <i>فرطان</i> : <b>فَرطان</b> <i>فرطان</i> : — فَرطان <i>فرطان</i> <i>فرطان</i> <i>فرطان</i> <i>فرطان</i> — فَرطان <i>فرطان</i> <i>فرطان</i> <i>فرطان</i> <i>فرطان</i> : فَرطان <i>فرطان</i> <i>فرطان</i> <i>فرطان</i> <i>فرطان</i> : <b>Cold</b> <i>فرطان</i></p>
<p><b>26.</b> <i>فَرْطَان</i> <b>فرطان</b></p>	<p>فَرْطَان <i>فرطان</i> <i>فرطان</i> <i>فرطان</i> <i>فرطان</i> : فَرطان <i>فرطان</i> <i>فرطان</i> <i>فرطان</i> <i>فرطان</i> : <i>فَرطان</i> <i>فرطان</i> <i>فرطان</i> <i>فرطان</i> : <b>Cold</b> <i>فرطان</i></p>
<p><b>27.</b> <i>فَرْطَان</i> <b>فرطان</b></p>	<p>فَرْطَان <i>فرطان</i> <i>فرطان</i> <i>فرطان</i> <i>فرطان</i> : فَرطان <i>فرطان</i> <i>فرطان</i> <i>فرطان</i> <i>فرطان</i> : <i>فَرطان</i> <i>فرطان</i> <i>فرطان</i> <i>فرطان</i> : <b>Cold</b> <i>فرطان</i></p>

उपक्रम	विषय	द्रव्य	प्रयोग	विशेष कथन
28. वर्ति	नाड़ीव्रण, शल्ययुक्तव्रण, शोधन वर्ति :—अजगन्धा, सूक्ष्म मुख वाले व्रण, मांस स्थित गम्भीर व्रण, पूतिर्मास दन्ती, लांगली, सेन्धानमक, तथा बहुल दोषज व्रण में शोधन दृति दें तथा वेदना इत्यादि द्रव्य। रहित शुद्ध गम्भीर व्रणों में रोपण वर्ति का प्रयोग करें।	व्रण शोधन के लिये व्रण में पहले पतली वर्ति डालें तथा जैसे ही उसका मुख विस्तृत होता जाये तो क्रमशः मोटी वर्ति डालते जायें। शोधन होने पर रोपण वर्ति डालें तथा इसे पहले मोटी तथा फिर क्रमशः पतली वर्ति डालते जायें, जब तक कि व्रण भर न जाए।	गम्भीर व्रण, कोटर मुक्त व्रण तथा नाड़ी व्रणों में वर्ति का प्रयोग किया जाता है।	
29. कल्क	पूति मांस से ढके व्रण, यदि सड़ा मांस निकालने के पश्चात् भी व्रण भर न रहा हो और दोषों की अधिकता से जब व्रण भर न रहा हो तो कल्क का प्रयोग करना चाहिए।	शोधन कल्क :—उपरोक्त वर्ति वाले द्रव्य तथा कासीस, जौं का कल्क मिला जाती हरड़, हरिद्रा तथा तिल कल्क या यव कल्क रोपण कल्क :—समंगा, सोम- लता, साल या तिल और को लगायें।	घृत, नीम तथा मधु में यदि यह अग्नि दग्ध व्रण को दबा देता है, विदग्ध व्रण को पचाता है, पके व्रण को फाड़ता है तथा दुष्ट	कल्क वर्ति की अपेक्षा दोषों को हरने में अधिक प्रभावशाली होता है।

उपक्रम	विषय	द्रव्य	प्रयोग	विशेष कथन
30. सर्पि (घृत)	पितज (दाह, लालिमा तथा पाक युक्त) गम्भीर व्रणों में, रक्तज तथा आगन्तुक व्रणों में एवं अन्य गम्भीर व्रणों में सर्पि का प्रयोग करें।	मधु का कल्क। घृत, नीम तथा मधु का कल्क। धाय, मधु, मञ्जिला, सरल, चन्दन, काकोली इत्यादि रोपण द्रव्यों का कल्क प्रयोग करें।	व्रण को शुद्ध करता है।	पुराना घृत शोधन तथा रोपण कर्म करता है। घृत होने पर रोपण घृत का बनते समय घृत को द्रव्यों से 4 गुणा लें तथा पानी 8 गुणा मिला कर पाक करें।
31. तंल	उठे मांस वाले, स्नेह रहित तथा अम्ल स्रावी, व्रण, कफ तथा वात दुष्ट व्रणों में।	शोधन घृत :—कासीस, अजगन्धा व कर्पसिफल से सिद्ध घृत तथा आक, त्रिफला, स्त्रीहाक्षीर, हल्दी, कासीस एवं कटुरोहिणी से सिद्ध घृत बनाएं। रोपण घृत :—पृष्ठपर्ण इत्यादि, (कौच, हरिद्रा, मालती, श्वेत द्रवी) या रोपण द्रव्यों से सिद्ध घृत। अपामार्ग तथा वर्तिवाले द्रव्यों का क्वाथ, कासीस, कुटकी, जाती की जड़ तथा हरिद्रादि के कल्क	व्रण में दोष रहने पर पहले शोधन घृत लगाएं तथा शुद्ध रोपण कर्म करता है। घृत होने पर रोपण घृत का बनते समय घृत को द्रव्यों से 4 गुणा लें तथा पानी 8 गुणा मिला कर पाक करें। यह तंल वात तथा कफ नाशक होने से वात कफज व्रणों के लिये श्रेष्ठ है।	



उपक्रम

विषय

में धूपन कर्म करें।

द्रव्य

गण, निम्ब, बच गन्धक, वसा  
तथा मज्जा,  
ब्रण की कोमल करने के लिए  
सालसारादि गण के द्रव्य एवं  
गन्धक। ब्रण को कठोर करने  
के लिए घृत, वसा तथा मज्जा  
का प्रयोग करें।

प्रयोग

गर्म करें तथा ऊपर के  
सकोरे में नाड़ी लगाकर  
धूपन कर्म कर।

विशेष कथन

करने को कहा है, तथा  
डल्हन ने रोगी की शय्या  
का भी धूपन करने को कहा  
है।

35. उत्सादन कर्म

सूखे, अत्य मांस वाले ब्रण, सूसली, तालीस पत्र, सुवर्चला,  
रोगी में वायु से दूषित ब्रण काकोल्यादि गण, अपामार्ग,  
तथा गम्भीर ब्रण जिनमें अश्वगन्धा के द्वारा बनाया  
शीघ्र रोपण नहीं होता उन गया घृत लगायें तथा मांस है।

खिलायें।

36. अवसादन कर्म

अधिक कोमल मांस युवत ब्रण(Hyper granulation tissue) में अवसादन कर्म  
करें।

(i) मधु और कासीस चूर्ण।  
(ii) सैन्धव, मैनशिल एवं  
किण्व।  
(iii) कुकुटांडत्वक् भस्म,  
शिरीषफल, गुम्गलु एवं  
अग्निक।  
(iv) धातु चूर्ण।

ब्रण पर इन द्रव्यों से सिद्ध  
घृत का आलेप करने पर  
ब्रण शीघ्र रोपित होता

है।

इन द्रव्यों का ब्रण पर प्रलेप  
करने से बढ़ा हुआ कोमल  
मांस नष्ट हो जाता है।

आजकल भी शल्य कर्म के  
पश्चात् ब्रण रोपण के लिए  
Proteins या मांस खाने  
को देते हैं। वामभट्ट ने भी  
मांस को ब्रणहर कहा है।

शुद्ध ब्रण पर अवसादन  
द्रव्यों का प्रयोग करने से  
उनमें रोपण देर से होता है,  
क्योंकि यह द्रव्य धातुओं को  
नष्ट करते हैं।

खंडन

वृत्तिविधि

उपक्रम

विषय

द्रव्य

प्रयोग

विशेष कथन

37. मृदु कर्म कठिन, थोड़े मांस वाले मधुर, स्तिंघ, कोण एवं रक्त या फित्त का अनुबन्ध ब्राह्म तथा आध्यन्तरिक तथा वायु से दूषित ब्रणों लवणादि गुणों वाले द्रव्य होने पर रक्त मोक्षण कराएं कोमल उपचार करें।  
में मृदु कर्म करें :

कोमल उपचार तथा गाढ़ गन्ध तथा कफ में भ्रदार्यादि  
(बन्दन से Scab नहीं बनती) घृत से सेक करें।  
का प्रयोग करें।

38.

दारूण कर्म

यह कर्म कोमल मांस वाले धन प्रियंगु, अशोक, रोहिणी, इन द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण ब्रण यह द्रव्य कथाय गुण वाले ब्रण को कठिन करने के लिए त्रिफला, धायपुष्प, लोधी तथा पर छिड़कना (Sprinkle होने से कोमल धातु को किया जाता है। राल। करना) चाहिए। संकुचित करके कठोर बना देते हैं।

39. क्षार कर्म

उभरा हुआ मांस, कठिन क्षार, कुटज, ढाक, अमल- पित्त दोष में—घर्षण करें, पानीय क्षार पित्त प्रकृति, तथा कण्ठ युक्त देर से तास, सुही, अपामार्ग, चित्रक, वात में—लेपन तथा कफ मद, मूच्छा तथा बालक को चल रहे ब्रण, कठिनाई से कलनेर, अरणी इत्यादि की में—पाठ्छे लगाकर घर्षण न दें। क्षार, मांस का क्षण शुद्ध होने वाले ब्रण, क्लेद करता है। इस तरह करें। भस्म से बनता है। इस तरह करें। के मृदु क्षार में शंख, शुक्ति प्रतिसारणीय क्षार लगाने के ब्रणों को शुद्ध करके उनका तथा रक्त साव युक्त तथा खड़ियादि मिलाने से लिए दें। पानीय क्षार को शीघ्र रोपण करता है। रक्त, मध्य क्षार बनता है तथा इस गुलम व उदर रोगों में रोहिणी तथा उपजिह्व- में तीक्ष्ण द्रव्यों(दन्ती, द्रवन्ती, खाने के लिए दें। कादि। नोट—इसका विस्तृत लांगली इत्यादि) का प्रक्षेप



उपक्रम	विषय	द्रव्य	प्रयोग	विशेष कथन
45. लोमा-पहरण (Epilation)	हथेली या स्त्रियों के मुख तथा ब्रण स्थानों की ब्रण वस्तु में यदि बाल उत्पन्न हो जायें तो लोमा-पहरण कर्म करें।	ले (ii) पशुओं के खुर की भस्म के तैल से लेप करें।	(i) कर्तरी, संदंश, क्षुर (उस्तरा इत्यादि से बाल निकाल दें। (ii) शंख दो भाग हरिताल एक भाग को सिरके से पीसें। (iii) भल्लातक तैल और सुही धीर का लेप करें। (iv) छिपकली की पूँछ, केला, हरिताल और हिङ्गोठ के बीजों को जलाकर, तैल और जल मिलाकर सूर्य धूप में पकाकर रखलें, फिर इसे लगायें।	आजकल बाल उतारने के लिए Depel, Barium Sulphide का प्रयोग करते हैं। Deep X-ray से भी बाल गिर जाते हैं। Thalium acetate के खाने से शरीर के सब बाल गिर जाते हैं तथा इसके अनेक विषाक्त प्रभाव भी होते हैं।
46. वस्तिकर्म	वायु से दूषित व रुक्ष-ब्रण,	निश्च :-मैनफल, कुशा, कूठ, गुदा में स्तिर्ण नेत्र प्रवेश मात्रा :-24 पल = $24 \times 4$		

उपक्रम	विषय	द्रव्य	प्रयोग	विशेष कथन
	नाभि के नीचे के ब्रण, बन्दाज, मधुयष्ठि, बच, दारुण वात रोगी, गुत्स, दशमूल, देवदारु, सौंफ, आनाह, अश्मरी, रुक्ष मनु, जौं इत्यादि। मृतभेड तथा शुष्क रोगी में वस्ति की वस्ति के अभाव में चमगादड़ का चमड़ा, हरड़ या मोटा कपड़ा लेकर उससे वस्ति बनावें।	करके वस्ति द्वारा औषधद्रव व भीतर डालकर रोगी के पैर थोड़ा ऊपर को तथा सिर नीचे को करके लेटा दें। वस्ति के 15 दिन पश्चात् फिर निरुह वस्ति देनी चाहिये। अनुवासन वस्ति तीसरे व पाँचवें दिन देनी चाहिए।	कर्ष अयोग्यः-अतिस्निर्घ, अतिकृश, गुदापाक, छिद्रोदर, दकोदर, बद्धोदर, श्वास, कास तथा गर्भवती में (7 मास के पहले अनुवासन वस्ति देने तथा पश्चात्) न दें।	

47. उत्तर वस्ति	इसे मूत्राधात, मूत्र-दोष, शुक्रदोष, अश्मरी जन्य तथा अपत्यपथ के रोगों में निवारणार्थ देते हैं।	इसमें भी उपरोक्त वस्ति-कर्म में वताएं द्रव्यों का प्रयोग करें। वस्ति नेत्र :- इसे पुरुषों में 12 अंगुल लम्बा, एवं छिद्र सरसों समान रखें तथा वस्तिपुट कोमल और छोटा बनाएं। स्त्रियों में :-इसकी लम्बाई 10 अंगुल रखें।	पुरुषों में रोगी को बैठाकर उत्तर वस्ति यदि वापस न लौटे तो रोगी के मूत्र द्वारा पर मुशक काफूर (कपूर) का चूर्ण रखें। इससे वस्ति या चार वस्ति दें। स्त्रियों में क्रतुकाल में उत्तर वस्ति 1 पल की मात्रा में तीन-तीन दिन के अन्दर पर तीन बार देनी चाहिये।
-----------------	---	---	--



## संपर्कम्

53. शिरो-विरेचन यह कण्डु तथा शोष युक्त व्रण, गर्ले के ऊपर के व्रण, गलग्रह, पूति-घ्राण, गल-शुण्डिका, उपजिह्विका एवं नाक, कान आंखादि के विकारों में देते हैं।

54. नस्य वाताधिक्य होने पर, पीड़ा तथा रुक्षता युक्त व्रणों में, शिरोवेदना तथा अर्दितादि ऊर्ध्वजत्रुगत रोगों में नस्य देते हैं।

निर्भली, शिरीष, निगुण्डी-पत्र, लसूडादि।

पिप्पली, बायविडङ्ग, अपामार्ग, शिशु, सरसों के बीज, कनेर की जड़, मरिच, बच्च, आक, लसुन की कन्द, गोमूत्र, हरिताल, मैनशिल, कज्जनी, हरिताल, मैनशिल, अगर एवं तेजपत्र के ध्रुव द्वारा शिरो विरेचन करें।

अंगुतेल तथा उपरोक्त शिरोविरेचन द्रव्य, घृत, तैल तथा जाँगिल भासा रस से नस्य दें।

रोगी को चित्त लेटाकर, एक नासा को बन्द करके, कोण्ठ द्रव को दूंद-दूंद कर दोनों नासा में बदल बदल कर ढालें, फिर हाथ एवं पाँव को हिलावें, स्कन्ध तथा श्रीवा का मर्दन करें एवं धीमे-२ श्वास लेने को कहें। कफ के मुख में आने पर थूकने को कहें।

विरेचन नस्य—शिरः शूल, पीनस, गल रोग एवं ग्रन्थि, शोष में दें।

बूहण नस्य—वातज शूल, स्वरक्षय, नासा शोष तथा सूर्योवर्त में दें।

शमन नस्य—अधि रोग, व्यंग एवं नीलिका में दें।

पहले विरेचन नस्य दें। फिर स्नेहन नस्य के पश्चात् रोगी कुछ देर लेटाकर रखें, इसके पश्चात् धूम्रपान तथा कवल धारण कर मुख शुद्ध करें। नस्य 70 से 80 वर्ष के बीच की आयु वालों को दें।

प्रधमन नस्य—इसमें चूर्णों को नाड़ी द्वारा नासा रंध्रों में फूंकते हैं। अयोग्य—मध्यपी, गरविष, सूतिका में, कास, श्वास, भोजनोत्तर तथा वेग विद्यारण करने वाला रोगी नस्य के अयोग्य होता है।

## उपचारम्

## विषय

## द्रव्य

## प्रयोग

## विशेष कथन

55. कवल-धारण

जिह्वा, दांत तथा मुख के मल और वेदना तथा दाह होने पर, मुख के व्रणों के शोधन तथा रोपण कर्म के लिए कवल धारण करें।

जयफत्र, लवंग, कस्तूरी, पान पत्र, एलाचूर्ण, कपूर, तैल, गण्डूष, स्नेह, दूध, मधु, मांस-रस, धान्य, मूत्र तथा काञ्जी। आगन्तुज

व्रणों में घृत या दूध से दाह, व्यास तथा व्रण रोपण के लिए मधु का और दुर्गन्ध के लिये काञ्जी का प्रयोग करें।

अवधीड़न नस्य—इन ओषधियों के पत्र के स्वरस से दें।

प्रतिमर्ष नस्य—इसे सब काल में तथा सब अवस्था में दे सकते हैं।

वायु में—मधुर, अम्ल रस एवं नमक से सिद्ध स्नेह।

पित्त में—तिक्त, कषाय तथा मधुर रस युक्त शमन द्रव्यों का कवल दें।

कफ में—कटु, तिक्त, अम्ल, उष्ण तथा नमकादि शोधन द्रव्य (जैसे—मधु) का कवल दें।

इन द्रव्यों को दो शरावों (सकोरों) में समृट करें।

फिर उसमें नाड़ी लगाकर शोक तथा संताप युक्त,

अग्नि पर रखकर धूम्रपान,

गर्भवती, श्रम, मद, मूळ्डा,

56. धूम्रपान

कफ-वात जन्य शोथ, साव एवं पीड़ा युक्त व्रण तथा व्रण, अगुह, गुग्गुल, मुस्ता, जटामांसी तथा खस। पान करना चाहिये।

स्निग्ध धूम्रपान—घृत, मोम, इन द्रव्यों को दो शरावों

(सकोरों) में समृट करें।

के पश्चात् रक्तपित्त, विक

अग्नि पर रखकर धूम्रपान,

रोगी को धूप रहित तथा वात रहित स्थान में बैठायें।

कन्धे तथा श्रीवा का मर्दन करके तथा स्वेदन देकर एवं मुख में कवल भरकर रखने

को कहें, जब तक कि मुख कफ से न भर जाए तथा नाक व आंख से पानी न आने लगे।

अयोग्य—विरेचन तथा वस्ति,

जटामांसी तथा खस।

गर्भवती, श्रम, मद, मूळ्डा,



طلیفہ ۱  
 طلیفہ ۲  
 طلیفہ ۳  
 طلیفہ ۴  
 طلیفہ ۵  
 طلیفہ ۶  
 طلیفہ ۷  
 طلیفہ ۸  
 طلیفہ ۹  
 طلیفہ ۱۰  
 طلیفہ ۱۱  
 طلیفہ ۱۲  
 طلیفہ ۱۳  
 طلیفہ ۱۴  
 طلیفہ ۱۵  
 طلیفہ ۱۶  
 طلیفہ ۱۷  
 طلیفہ ۱۸  
 طلیفہ ۱۹  
 طلیفہ ۲۰  
 طلیفہ ۲۱  
 طلیفہ ۲۲  
 طلیفہ ۲۳  
 طلیفہ ۲۴  
 طلیفہ ۲۵  
 طلیفہ ۲۶  
 طلیفہ ۲۷  
 طلیفہ ۲۸  
 طلیفہ ۲۹  
 طلیفہ ۳۰  
 طلیفہ ۳۱  
 طلیفہ ۳۲  
 طلیفہ ۳۳  
 طلیفہ ۳۴  
 طلیفہ ۳۵  
 طلیفہ ۳۶  
 طلیفہ ۳۷  
 طلیفہ ۳۸  
 طلیفہ ۳۹  
 طلیفہ ۴۰  
 طلیفہ ۴۱  
 طلیفہ ۴۲  
 طلیفہ ۴۳  
 طلیفہ ۴۴  
 طلیفہ ۴۵  
 طلیفہ ۴۶  
 طلیفہ ۴۷  
 طلیفہ ۴۸  
 طلیفہ ۴۹  
 طلیفہ ۵۰  
 طلیفہ ۵۱  
 طلیفہ ۵۲  
 طلیفہ ۵۳  
 طلیفہ ۵۴  
 طلیفہ ۵۵  
 طلیفہ ۵۶  
 طلیفہ ۵۷  
 طلیفہ ۵۸  
 طلیفہ ۵۹  
 طلیفہ ۶۰  
 طلیفہ ۶۱  
 طلیفہ ۶۲  
 طلیفہ ۶۳  
 طلیفہ ۶۴  
 طلیفہ ۶۵  
 طلیفہ ۶۶  
 طلیفہ ۶۷  
 طلیفہ ۶۸  
 طلیفہ ۶۹  
 طلیفہ ۷۰  
 طلیفہ ۷۱  
 طلیفہ ۷۲  
 طلیفہ ۷۳  
 طلیفہ ۷۴  
 طلیفہ ۷۵  
 طلیفہ ۷۶  
 طلیفہ ۷۷  
 طلیفہ ۷۸  
 طلیفہ ۷۹  
 طلیفہ ۸۰  
 طلیفہ ۸۱  
 طلیفہ ۸۲  
 طلیفہ ۸۳  
 طلیفہ ۸۴  
 طلیفہ ۸۵  
 طلیفہ ۸۶  
 طلیفہ ۸۷  
 طلیفہ ۸۸  
 طلیفہ ۸۹  
 طلیفہ ۹۰  
 طلیفہ ۹۱  
 طلیفہ ۹۲  
 طلیفہ ۹۳  
 طلیفہ ۹۴  
 طلیفہ ۹۵  
 طلیفہ ۹۶  
 طلیفہ ۹۷  
 طلیفہ ۹۸  
 طلیفہ ۹۹  
 طلیفہ ۱۰۰

### सीवन चर्म (Suturing)

#### सीबन विषय—

(i) मेद या मांस के फटने पर (ii) लेखन कर्म के पश्चात् (iii) चल सीचन आंशिक सद्वरणों में (iv) अपाकी ग्राह्य में (v) ब्रह्म के मांस, कुम्भ, उदरादि गम्भीर धारुओं में स्थित होने पर (vi) मांस छेदन के पश्चात् (vii) एवं विस्तृत धणों में सीबन कर्म करना चाहिए।

#### सीबन इच्छा—

बारीक धारा, अश्यन्तक की बल्कल, सन, रेशम, स्नायु, बाल, मुवादि तथा

#### सूची ।

**सूची लेख :**—सूची तीन प्रकार की होती है।

#### (i) दो अङ्गुल लम्बी दृत (बूता-अङ्गुलदध्यम्) (Round body needle)—

इसका जग भाग कपड़ा सिलाई करने वाली मुई के समान गोल होता है, इस कारण यह कठियों में अति अल्प आधात उत्सन्न करती है। इसका प्रयोग अल्प मांसल स्थानों में (मर्म, सिरादि) तथा सानियों एवं मृदु धारुओं (Soft structures) में करना चाहिए।

#### (ii) तीन अङ्गुल लम्बी त्रियत्रा (त्रिअङ्गुला त्रियत्रा) (Triangular needle)—

इसका अप्रभाविकोगाकार अर्थात् तीन धाराओं से युक्त होता है। इस कारण यह कठियों को भी असानी से बेघ कर देती है। धारुओं में अधिक आघात उत्सन्न करने के कारण इसका प्रयोग मर्म तथा कोमल धारुओं (Soft tissue) में नहीं करना चाहिए। इसका प्रयोग केवल मांसल भाग, कण्डरा तथा त्वचादि कठिय स्थानों पर ही करना चाहिए।

#### (iii) बक अर्थात् धनुर्वक (Curved needle, half curved or full curved)—यह बक सूची त्रियत्रा भी हो सकती है तथा दृता भी (Round body curved and Triangular curved needle)। इसका प्रयोग मर्म, कलकोष एवं उदरादि में होता है। गम्भीर तथा गोल स्थानों में धारुओं की कोमलता तथा कठिनता के अनुसार दृत-बक सूची या त्रियत्रा-बक सूची का प्रयोग करना चाहिए।

**अत्याधाती सूची (Atraumatic needle):**—आजकल इस सूची का प्रयोग रक्त बाहिनियों के सीबन कर्म के लिये किया जाता है। यह दृता की तरह गोल अप्रभाव वाली तथा नेत्र रहित सूची होती है। धारों को इसके पीछे के भाग में इसके निर्माण के समय ही लगा दिया जाता है। यह निर्जीवाण कुत नलिकाओं (Sterilized tube) में बन्द रखी जाती है।

#### सूची प्रयोग—

सूची कर्म करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि सीबन अति शर्दूर नहीं

प्रयोग करिए। इससे ब्रण में शोथ रुका होती है (As it does not approach the edges properly)। सीबन अति समीप (पास-पास) भी नहीं करना चाहिए इससे ध्यान के किनारे फट जाते हैं (It cuts through the wound edges)।

नातिद्वारा निष्ठले वा सूची कर्माण पातवेत। इराद रखने वाली व्यापद्वय सन्निहित्वेभ्यु ज्वन्तम् ॥ त्र० स० 25, इसीलए हाराण बन्द जी ने सीबन कर्म में तीन शालाकाओं को प्रयोग में लाने के लिए कहा है।

पहले ध्यान में से धूली, नाड़, बाल, टूटी हुई अस्थि इत्यादि ध्यान दोषकर गुद किए ध्यान को ऊंचा उठाकर ध्यास्थान में स्थिर करने (Approximation) के पश्चात् सूची द्वारा उपयुक्त सूत्र से सीबन कर्म करें।

#### त्रृतीय सीबन कर्म :—

**सूची ध्यान गोफणिका साइपि सीब्बेदा तुन्सेवनीम् ।**

सीबन कर्म 4 प्रकार का होता है यथा—बैल्लत, गोफणिका, तुभ्सेवनी एवं

#### (क) बैल्लतक (Continuous) सीबन :—इसमें लाता की तरह लगातार

करना हो तब हस सीबन विधि का प्रयोग किया जाता है। परन्तु इस सीबन प्रकार में एक स्थान से ध्यान दृट जाने पर पूरा ध्यान खुल जाता है।

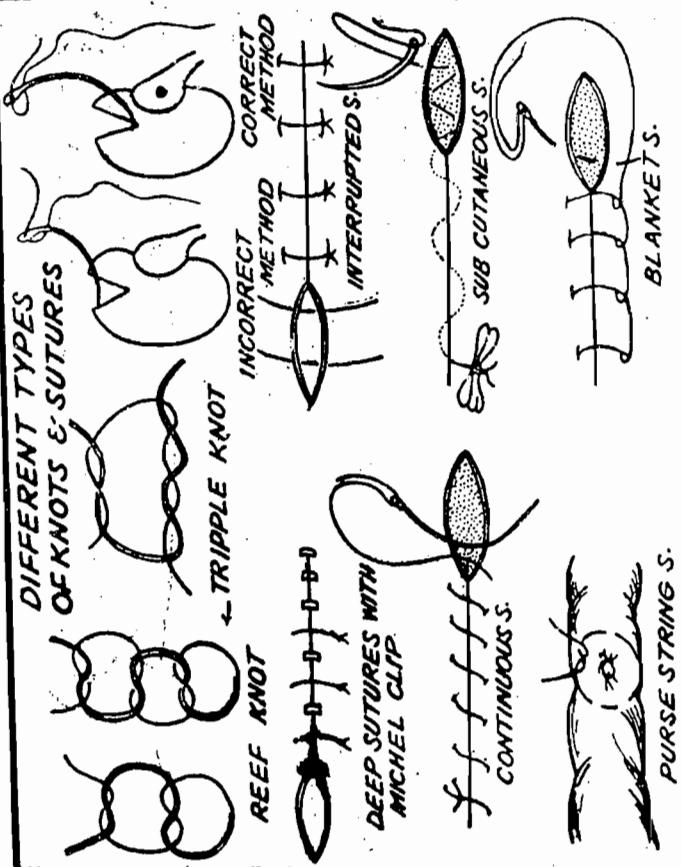
**(ख) गोफणिका सीबन (Blanket suture)—**इसमें बैल्लतक की तरह लगातार सीबन किया जाता है परन्तु हर बार सूची कों पहले वाले ध्यान के Loop के नीचे से निकालकर फिर आगे के स्थान की सिलाई की जाती है। इसमें यदि

ध्यान दृट भी जाए तो पूरा ध्यान नहीं खुल सकता।

**(ग) त्रुक्सेबनी सीबन (Mattress or Lambert sutures)—**इस सीबन कर्म में ध्यान की इस दंग से सिलाई की जाती है जिससे कि एक ओर की ध्यान की अच्छी तरह से मिले रहें। इसमें पहले ध्यान के गम्भीर ध्यान की सिलाई करके जैसे जौड़ा जाता है, फिर उसी ध्यान से उत्तीर्ण ध्यान के किनारे को जौड़कर गांठ लगा दी जाती है। मैट्रेस सीबन में दो बार सीबन कर्म करने के पश्चात् गांठ बांधी जाती है। सीबन सूत्र का बाह्य ध्यान वर्तमान के साथ समानान्तर (Parallel) चलता है ध्यान ध्यान के किनारे के ऊपर से Cross नहीं करता, परन्तु सीबन सूत्र का भी तरी ध्यान ध्यान के एक ओर से दूसरी ओर Cross कर जाता है। इस सीबन कर्म से ध्यान ध्यान के पर दोबार नहीं पढ़ सकता तथा इनके फटने (Cut through) का भी ध्यान

नहीं रहता। इस विधि से पुर्द्धार्कला (Peritonium) का या ढाली त्वचा के ध्यान का सीबन किया जाता है।

### DIFFERENT TYPES OF KNOTS & SUTURES



### सून का चयन—

(ब) शुज्जपनिय सीवन (Interrupted suture)—इसमें प्रत्येक सीवन कर्म के पश्चात् गाठ बांध दी जाती है। इससे ब्रणोल अच्छी प्रकार से भिल जाते हैं, परन्तु इस सीवन कर्म में दैर अधिक लगती है।

ब्रण चिन्ह अल्प मात्रा में बने इसके लिए (To obtain a fine scar) स्टेरि स्ट्रिप (Steri strip), मिक्स-विलप्स (Michel clips) या अब: त्वचा गत सीवन (Sub-cuticular stiches) कर्म का प्रयोग करना चाहिए।

त्वचा की भीतर की धातुओं (Internal structures) में जहाँ सून (Stitches) पर अधिक बल न पड़ता हो उस स्थान का तथा पृथक सून सीवन करने के लिये Cat gut अथवा शोषित होने वाले सून का प्रयोग करना चाहिए। कोशिआ (Fascia) या कागर दैनंदन का भी प्रयोग किया जा सकता है। सिरालों के लिए काले रेशम (Black silk) का प्रयोग किया जाता है। गोल तथा छोटे बाणों में जहाँ से लाव को बन्द करना हो वहाँ पर्स-स्ट्रिप (Purse string suture) का प्रयोग करना चाहिए। औस्त के लिये, या दहन सीवन कर्म के लिये/लोहे के तार (Stain less steel wire) का प्रयोग करना चाहिए।

**NOTE**—Catgut plain absorbs in 3 to 5 days. Cat gut chromic absorbs in 10 to 40 days. Kangroo tendon absorbs in one month. Fascia or aponeurosis absorbs only on being infected, otherwise it is nourished by the lymph and remains there as such. The size of cat gut start from 6/0 (thinnest) up to the size 4 (thickest). Cotton thread starts from size 8G i. e., thinnest to size one (1) i. e., thickest.

Nylon is a slippery chemical product, silk worm gut becomes hard on repeated boiling, cotton and silk thread harbours infection. Reef knot and surgeon's knot do not get loose. While stitching the skin the deep tissues should also be taken in to the needle bite in order to avoid deep pockets.

दिशेष—

वारभट्ट ने वक्षण, कक्षा तथा निःखारणित (Blood less) ब्रणों के बोल्डो तो लेखन कर्म करने तथा रधिर आने पर ही उनमें सीवन कर्म करने के कहा है, क्योंकि

मिलोहित (without bleeding) तथा अति लोहित (excessive bleeding) शब्द का उचित रूप से रोपण नहीं होता ।

(A wound without bleeding or with excessive bleeding does not unite even after stitching.)

### संधान कर्म

संधान कर्म का अर्थ होता है जोड़ना या उत्पथ विकृति को सामान्यावस्था में लाना (अपाराहनपूर्ती या च मात्रस्था विवृतिरूप यथोक्त सीधन तेषु कार्य सन्धानकर्म एवं (कुश्त चिं 1)

मुश्तुत ने रक्तसाक बन्द करने की चार विधियाँ (संधान, स्कार्चन, पाचन, दहन) बताते हुये कहा है कि कषाय रस से संधान होता है । कषाय रस सकोबक (Astringent) होने से कटी हुई रक्त चाहिनियों को संकुचित कर उसके आवातज जण को जोड़ने में या सुख बनाने में सहायक होता है ।

कटे हुए शोषण, कण तथा नासिका के विरोहण (Repair) को एवं त्वचा-प्रत्यारोपण द्वारा विरोहण (Repair by transplantation) को भी संधान कर्म कहा गया है ।

जण रोपण करने वाले अन्य द्रव्यों को भी मुश्तुत ने संधानीय चर्णों में रखा है ।

जैसे मुतीठी, पाठा, लोधी, प्रियंगु इत्यादि ।

उपरोक्त वर्णन से पता चलता है कि संधान का अर्थ ज्ञानादि की विकृतियों को ठीक करना है अथात् जण को विरोहण (Repair) करना है (संधान वर्णोऽधादि संयोजनम्, डलहन) चाहे यह कर्म सीधन से हो या प्रत्यारोपण से हो । संधान कर्म का वर्णन पुस्तक में विषयानुसार विभिन्न स्थानों पर किया गया है ।

सीधन कर्म करने के पश्चात् प्रियंगु, रसाज्जन, मुलौठी इत्यादि का जण के उपर चूर्ण लगाकर जैसे भोम या वस्त्र पट्टादि से (Bandage) बांध दे । आजकल निर्जीवाण करण विधि (Aseptic technique) से सीधन कर्म करने के पश्चात् निर्जीवाणकृत (Sterilised gauze piece) तथा कवलिका (Cotton pad) से जण को ढक्कर पट्टी बांध देते हैं, या चिपकने वाली पट्टी (Adhesive plaster) से तूरे स्थान को ढक करते हैं । 5 से 9 दिन पश्चात् इणांस्ट मिल जाने पर (after healing) सीधन सूच को (सूच के टुकड़ों को) काटकर निकाल देना चाहिये । Cat gut 5-9 दिन में ज्ञातयों के अन्दर शोषित हो जाता है ।

### (ख)

क्षार, अन्न या चिषों से दृष्टित जण और मारुत वाही तथा शल्युक्त स्थानों में सीधन कर्म नहीं करना चाहिए ।

न क्षारान्तिविवर्जन्ता न च मारुतवाहिनः ।  
सात्त्वान्तिहस्तस्थापनं तेषु सम्यविशोधनम् ॥ सु० स० 25 -

## (WOUNDS AND ULCERS)

## निरूपिक :

ब्रण शब्द “ब्रण या बृ—बृष्णोति, बृणते” धातु से बनता है। इसका अर्थ होता है भ्रमण करना (To Consume), फैलना तथा चयन करना (To choose), और “बृत, बारयत—बृद्धावयत्, अच्छावयत्” का अर्थ होता है ढक लेना (To conceal), इससे भी ब्रण का ही अर्थ निकलता है।

## व्याख्या :

सुश्रृत ने ब्रण को “ब्रण-ग्रास विचूर्णनि” कहा है। इसका अर्थ होता है, भारीर का विचूर्णित होना अर्थात् ऊतिनाश (Tissue destruction) होना।

डलहण ने ब्रण को धातु नाश तथा विवर्णता (Discolouration) करने वाला और धातुओं को आच्छादित करने वाला कहा है।

“ब्रणपर्ति, ग्रास विवर्णद्यति, आच्छादिति इति द्वयः ।”

सुश्रृत ने ब्रण को एक ऐसी किया माना है जो कि भारीर की धातुओं का अड्डण करती है, तथा इसके रोपण होने के पश्चात् ब्रणवस्तु (Scar) नामक विन्हेश रह जाता है जो कि आजीवन भर शैसा ही निशान बना रहता है।

“बृष्णोति घस्त्वाद् देहेऽपि ब्रणवस्तु तु न नश्यति ।

आवेद्यहरणात्समाद् ऋण इत्युच्यते ब्रह्मः ॥” (सु० स० 21)

आधुनिक मतानुसार ब्रण को शारीर या क्रिया-शारीर (Anatomy or Physiology) की दृष्टि से ऊर्तीय क्रम का विच्छेद (Tissue discontinuity) कह सकते हैं।

## ब्रण का सारांश :

“बृष्णूलोऽवृष्णारप्याहं पञ्च लक्षण लक्षितः ॥” (सु० चि० 1)

षष्ठ्या विद्यानेन्द्रियं इवतुमिः साधयते द्वयः ॥” (सु० चि० 1)

ब्रण के 6 मूल (वात, पित्त, कफ, रक्त, सञ्चिपात, आगन्तुज) होते हैं, आठ परिग्रह अर्थात् आधिकान (त्वचा, मांस, सिरा, स्नायु, सीन्धि, अस्थि, कोण्ठ, मर्म) होते हैं, इसे 5 लक्षणों से जाना जाता है (वात, पित्त, कफ, सञ्चिपात, आगन्तुज)

प्र०

यह 60 उपकरणों द्वारा तथा 4 पाद (बैंध, परिचारक, रेगी, औषध) द्वारा

मीट्रिकिया जाता है।

### ब्रण परीक्षा

ब्रण की परीक्षा (examination) करने की तीन विधियाँ हैं।

(1) दर्शन । (2) स्पर्शन । (3) प्रश्न ।

(1)

(2)

(3)

**(1) दर्शन :**  
ब्रण दर्शन (Eyes) द्वारा परीक्षा की जाती है, इसे दर्शन परीक्षा ब्रण की प्रतिक्रिया (व्यायाम) तथा इन्ड्रियों की परीक्षा की जाती है, इसे दर्शन परीक्षा कहते हैं। इसके अतिरिक्त आधुनिक मतानुसार इसमें अनेक अन्य परीक्षाओं का भी समावेश होता है। जैसे—

(i) संख्या—सामान्य ब्रण एक ही होता है।

(ii) आकृति (Shape)—विस्तार (Size) एवं आकार (Shape), जैसाकि ब्रण ब्रण अण्डाकार होते हैं, रोडेन्ट ब्रण (Rodent ulcer) उन दुएँ होते हैं, केसर ब्रण ब्रण अण्डाकार होते हैं, रोडेन्ट ब्रण की अकृतियाँ होती हैं।

(iii) धरतल (Floor)—जैसे रोहण युक्त (Granular) या सूख युक्त (Sloughed) ब्रण इत्यादि

(iv) ब्रण ब्रण ब्रण में गोभी के फूल के समान ब्रण (Punched out) फिरांग ब्रण में गोभी के ब्रण की परीक्षा करने हुए ब्रण में ब्रण को देखकर भी ब्रण की परीक्षा (Cauliflower like) की जाने के बाग में इत्यादि को देखकर करें।

(v) स्थिति (Position)—डुष्ट ब्रण, सिरा विस्फारण ब्रण (Varicose ulcer) प्रायः टांगों पर बाहर या सामने की ओर स्थित होते हैं। रोडेन्ट ब्रण युक्त के अन्तरी भाग में पाया जाता है। क्षयजन्य ब्रण अधिकतर ग्रीवा में होते हैं इत्यादि ब्रणों की अनेक स्थितियाँ होती हैं।

(vi) ब्रण का पृष्ठ—ब्रण ना सारा पृष्ठ स्वस्थ रोहणाकुरो (Granulation tissue) से ढका है या वह पृतिवस्तु (Slough) से ढका है। प्रथम अवस्था में नारा पूछ गत्ता होता है। इससे अवस्था में कुछ भाग स्वच्छ तथा रोहणाकुरु युक्त हो जायेगा। कहीं-कहीं प्रतिवस्तु भी रहेगी। तीसरी अवस्था में सारा पृष्ठ रोहणाकुरों से ढक जाता है।

(2) स्पर्शन परीक्षा—  
ब्रण के विषय में कुछ जानकारियाँ स्पर्श जान से भी की जाती हैं। जैसे—

ब्रण की मुटुता, कठोरता, शीतलता, उल्लंघन, स्पर्शसिद्धिता (Tenderness), ब्रण बत्तमें की कठिनता या मृदुता इत्यादि।

(3) प्रश्न परीक्षा—

ब्रण सम्बन्धी अनेक विषयों का ज्ञात प्रश्नों द्वारा किया जाता है।

जैसे—ब्रण के हेतु, लक्षणों से दोषों के अनुवन्ध का ज्ञान, बेदनाये, सात्य (अनुकूल अहार विहार), अनिन (मन्त्र व तीर्थणादि अनिन से पूढ़ या कूर कोष्ठ का ज्ञान), रोगी का बल (इस पर औषध की मात्रा निर्भर करती है) इत्यादि की प्रश्न द्वारा परीक्षा करें।

**प्रारम्भ (Onset)—**जैसा कि नीचे ब्रण शीघ्र उत्पन्न होता है तथा जीर्ण ब्रण देर से होते हैं इत्यादि की जानकारी प्रश्न परीक्षा द्वारा होती है।

**अवधि (Duration)—**ब्रण उत्पन्न होने की अवधि का ज्ञान भी प्रश्न द्वारा प्राप्त करते हैं, जैसे उल्लंघनात्मक ब्रण 1-3 दिन में तथा फिरांग ब्रण 3-4 सप्ताह में बनते हैं।

**इतिवृत्त (History)—**ब्रण आधात से हुआ है या पहले उत्सेध हुआ फिर ब्रण बना है (क्षयज ब्रणों में) इत्यादि ब्रण का वृत्त पृष्ठकर (प्रश्न द्वारा) ही पत् तलगाना जाहिये।

उपरोक्त तीनों परीक्षाओं में ब्रण के सम्बन्ध में पर्याप्त ज्ञान होने ने रोगी के लिए औषधियों की मात्रा तथा रोग की साध्य-असाध्यता का ज्ञान होने के लिये 5 परीक्षाओं पर अधिक बल दिया गया है। इन परीक्षाओं से ब्रण में दोष निर्णय में तथा इसकी चिकित्सा करने में आसानी हो जाती है। ब्रण की परीक्षा निम्न विधि से करनी चाहिए।

(1) आकृति, (2) गन्ध, (3) लाल, (4) ब्रण (5) वेदना।

(1) आकृति :

(क) साध्य ब्रण की आकृतियाँ :—आयत (वीर्घ), चतुर्भुज (चौकोर), बूँद (गोल) एवं चिप्पट (विकोनाकार)।

(ख) कुच्छु, साध्य ब्रण की आकृतियाँ :—उपरोक्त आकृतियों से भिन्न जैसे—

बैन, अर्धचन्द्राकार, स्वस्तिकाकार, माला के समान, भाले के समान, छ्वज, घोड़ा, आधुनिक मतानुसार :—कुच्छु साध्य ब्रणों की आकृतियाँ निम्न हैं।

(i) मन्दरोही (Rodent ulcer) ब्रण उत्सेधयुक्त (Raised) होता है।

(ii) क्षयज ब्रण (Tubercular ulcer) अण्डाकार (oval) होता है।

(iii) अप्रसीत ब्रण (Vericose ulcer) उच्च दिशा में अण्डाकार (Vertical) होता है।

(iv) उष्ण कटिबन्धी रुग्न (Tropical ulcer) वंच के समाने कटा रहता है।

(Punched out)<sup>4</sup>

(v) कोक्सर (Cancer) का रुग्न विषम (Irregular) होता है।

**(2) गन्ध—**

(क) चरक ने दोषजवणों की निम्न 8 प्रकार की गन्ध बताई है।

सर्पिंत्संतवशासूयरकायावामत् प्रतिक्रिकः ।

वणानां वणान्यस्ते रेहदो वान्याः प्रकोपिताः ॥ च० श्ल० 25

कटुस्तीष्टिणवं विवश गन्धवस्तु पद्धनादिष्मः ।

लोहग्निधृत् रक्ते न व्यापमिष्यः तान्तिष्प्राप्तिकः ॥

स्थानात्तस्तोत्तस्तस्मा: किञ्चिद्विश्वाक्ष गन्धतः ।

(1) घृत समान (2) तेल समान (3) वसा समान (4) पूय समान (5) श्वाव

गन्ध (धूम गन्ध) (6) अमल गन्ध (7) सधिर समान (8) पूति गन्ध ।

(ख) दोषों के अनुसार गन्ध—(1) वायु में कटु (2) पित्त में तीक्ष्ण (3) कफ में विश्व (4) साक्षिपात में कटु, तीक्ष्ण, विश्व एवं रुधिर की मिश्रित गन्ध (5) वात में घोड़ी विश्व (आम) गन्ध (6) वात कफ में अत्यसी तैल समान गन्ध (7) एवं पित्त कफ में घोड़ी विश्व होती है।

(ग) व्यारिड् शूचक गन्ध—वृक्ष की प्राकृतिक (दोषज) गन्ध के अतिरिक्त अन्य अरिड् शूचक होती है, जैसे—मद्या, अगुरू, घृत, जाती, कमल, चटन चन्द्रा तथा दिव्य गन्ध (जैसे Acetone) से कलों के समान गन्ध होती है। इस्यादि। इनके अतिरिक्त कुत्ता, कीवा, चूहा, बोडा, सड़ा मांस, बटमल तथा कीचड़ के समान गन्ध भी अरिष्ट शूचक होती है।

(3) लाव—  
(क) चरक ने निम्न 14 प्रकार के लाव लाव बताए हैं।

(1) लसिका लाव (2) जल लाव (3) पूय लाव (4) रक्त लाव (5) हरिरा-

सदृश लाव (6) अलग वर्ण का लाव (7) पिगल वर्ण का लाव (8) कधाय (रेखा)

लाव (8) तीला लाव (10) हरा लाव (11) स्त्रिघ लाव (12) लक्ष लाव

(13) प्रवेत लाव (14) असित (कृष्ण) लाव।

(ग) दोषानुसार लाव—इसमें व्रण लाव काला, ओस, दधि मस्तु, क्षारोदक, मांस भोवत या पुलकोदक के समान होता है।

(ii) पित्तज लाव—इसमें व्रण लाव गोमेद, गोमुक, शंख भ्रस्म, क्षारोदक या महुए के तैल के समान होता है।

(iii) कफज लाव—इसमें व्रण लाव मधुर, मज्जा, तिल पिष्ट, कासीस, नालि यत्त या सूमर की वसा के समान होता है।

(iv) एक्टिनो मार्टिकोसिस (Actino mycosis) में पीत (Yellow) वर्ण

लाव जल की होता है।

(v) गतित लाव (Sloughed ulcer) का गुर्ति समान (Pus like) वर्ण होता है।

(iv) स्थिरात्मक लाव—इन वर्णों में बणालाव नारियल जल के लाव होता है।

कफजी रस के समान, कांजी के स्वच्छ जल के समान, आटकूष फल के समान, प्रियंगु फल के समान, घृत के समान या मूँग के यथ के समान होता है।

(ग) अधातज वर्णों के लाव (स्थानानुसार)—

(i) लवचा में :—पतला, पीला, आमगन्ध युक्त लाव।

(ii) शांस में :—घृत के समान, सान्द, श्वेत तथा पिच्छल लाव।

(iii) सिरा में :—रक्त लाव, (पतला, पिच्छल तथा थोड़े काले वर्ण का)।

(iv) स्नायु में :—स्त्रिघ लाव, घन, नासिका फल समान तथा रक्त मिश्रित लाव।

(v) अस्थि में—मज्जा मिश्रित तथा लिंगध लाव।

(vi) सन्धि में :—पिच्छल, अवरुद्धि, शायदार रक्त मिश्रित एवं मर्यादितपूर्य

समान लाव।

(vii) कोठ में—स्थानानुसार रक्त, मूत्र, मल, दूष या जल के समान तथा कोदयुक्त लाव होता है।

(4) वर्ण (क) दोषों के अनुसार—

(i) वातज :—यह व्रण भ्रस्म के समान, कबूतर की अस्थि के समान, कठोर,

घृतज एवं रक्तज—यह व्रण नीला, पीला, हरा, काला, श्वाव,

(ii) + (iii) पित्तज एवं रक्तज—कफज लाव (ध्रस्तर) वर्ण का होता है।

(iv) कफज :—कफज लाव, श्वेत, लिंगध तथा पाण्डु वर्ण का होता है।

(v) सक्षिपातज—इसमें सब दोषों के मिश्रित रंग होते हैं।

(ख) वर्णों के अनुसार वर्ण

अध्युक्तिक मतानुसार—

(i) जीर्ण वर्ण में फीका पीला वर्ण (pale) रहता है।

(ii) रोहित वर्ण (Healing ulcer) रक्त तथा निलाभ (Red and bluish)

वर्ण का होता है।

(iii) तीव्र वर्ण :—(Acute ulcer) इस वर्ण का वर्ण रक्त वर्ण (Red

colour) का होता है।

(iv) एक्टिनो मार्टिकोसिस (Actino mycosis) में पीत (Yellow) वर्ण

वर्ण होता है।

(5) बेदना—दोषों के अनुसार बेदनाएँ :—

(i) वातिक वरण में :—तोद (सूई चुभने समान), खेदनवर्त, ताड़नवर्त, आयमन (खिचावट), मन्थन, फैकने समान (विक्षेपण), चुम्चुमायन, निवैपिन, अवभञ्जन (टूटने के समान), स्फोटन (फूटने के समान), विदारण, कम्पन, निविध बेदनाएँ, विश्लेषनवर्त, पुणे, स्तम्भन, स्प्रेन (मुट्ठि), आकुञ्जन इत्यादि अनेक प्रकार की बेदनाएँ होती हैं।

(ii) पंचिक वरण में :—ओष, चोष, दाह, धूमायन, जलन, उष्णता तथा क्षार लगने के समान प्रतीति होती है।

(iii) कष्टज्ञ वरण में :—कण्ड, भा रीपन, मुर्तता, शोड़ी बेदना, जड़ता स्त्रम्भादि बेदनाएँ होती हैं।

(v) सर्विमात्र वरण में :—सब प्रकार की बेदनाएँ मिथित रूप से रहती हैं।

### वरण अधिष्ठान

वरण के 8 अधिष्ठान (Seats) होते हैं (वरण 8 स्थानों पर ही उत्सव होते हैं)

जैसे—(i) त्वचा (ii) मांस (iii) तिरा (iv) स्नायु (v) अस्थि (vi) सर्विमात्र वरण की व्याख्या में बताए “... चुणोति यस्माद् डेंपि वरण चरतु न तर्यात् (vii) कोइल (viii) मर्मे। चरक ने भी वरण के 8 अधिष्ठान माने हैं परन्तु उसे

आधिकारणा तथा वरण की व्याख्या में बताए “... चुणोति यस्माद् डेंपि वरण चरतु न तर्यात् साधित को अधिष्ठान न मानकर भैरव की अधिष्ठान रूप से उत्सव की व्याख्या द्वारा या लेपों द्वारा की जाती है। आगन्तुज वरणों में 7 दिन बाद दोषों का अनुबर्त हो जाता है, जिससे वह वरण दोपहर भ्रम बन जाते हैं। इसी कारण 7 दिन पश्चात् इनकी चिकित्सा निज वरणों की भाँति करनी चाहिये (डन्हान)।

निज और आगन्तुज वरणों के अतिरिक्त पोषणावस्था के अनुसार वरण तीन प्रकार के होते हैं।

(1) शुद्ध वरण—  
(i) शुद्ध वरण (ii) रुद्धमान वरण (iii) सम्प्रदृश्य लुढ़ वरण।

“जित्वित्तत्त्वामो मृदुः त्तिन्यः रुद्धमान वरण इति ॥” सु० चि० 1  
जो वरण जित्ता के तल के समान (रोहणाङ्कर युक्त) कोमल, स्निग्ध, चिकना, बेदना रहित, स्थिर तथा विना साक के होता है, उसे शुद्ध वरण कहते हैं। इसके अतिरिक्त जो वरण बेदना तथा साक रहित, रोहणाङ्कर युक्त तथा चयाओष्ठाला वरण होता है, वह शुद्ध वरण कहलाता है (अर्थात् जो दोषों से रहित हो)।

प्रियंभर्त्तो निराकाशो वरणः शुद्ध इहोऽयते ॥ सु० चि० 23  
अबेदनो निराकाशो वरणः शुद्ध इहोऽयते ॥ सु० चि० 25  
नातिरक्तो न चोत्सानो शुद्धो रोपः पर वरणः ॥ च० चि० 25

वरण दो प्रकार के होते हैं।

- (1) निज वरण (Ulcer) अर्थात् दोषज वरण।
- (2) आगन्तुज वरण (Traumatic wound) अर्थात् सद्वरण।

(1) निज वरण:—

“निजः शरीर दोषोत्त्वः”

अर्थात् निज वरण शरीर में दोषों से उत्सव होते हैं। इसीलिए इन्हें दोषज वरण या टूट-वरण भी कहते हैं।

दोषों से उत्प होने के कारण इसे टूट-वरण कहते हैं। यह ‘टूटः निघातु’ से बनता है।

“उत्प्रति + टूष + कर्तंरिक” यहां टूट का अभिमाय डुब्ल या वरण (Unhealthy or degraded) माना गया है। आघुनिक मतानुसार वरण (ulcer) को कृतियों का क्रम विच्छेद (Discontinuity of tissues) कहते हैं। इसमें वरण शोथ (Inflammation) भी साथ में रहता है।

(2) आगन्तुज वरण—

“आगन्तुजवर्त्तिहेतुजः” अर्थात् आगन्तुज वरण जिसी वास्तु कारण से उत्पत्त होते हैं, जैसे शस्त्रवात, हितक पशुओं के काटने इत्यादि से। इसकी चिकित्सा मन्त्रे द्वारा या लेपों द्वारा की जाती है। आगन्तुज वरणों में 7 दिन बाद दोषों का अनुबर्त हो जाता है, जिससे वह वरण दोपहर भ्रम बन जाते हैं। इसी कारण 7 दिन पश्चात् इनकी चिकित्सा निज वरणों की भाँति करनी चाहिये (डन्हान)।

“कपोतवर्गं प्रतिक्रियावल्लो रोहतीत तमादिशेत् ॥ सु० चि० 23  
स्थिरप्रसादीप्रतिक्रियावल्लो रोहतीत तमादिशेत् ॥ सु० चि० 23  
अर्थात् कवृतर के समान वरण (धूसर वरण वाला), कलेदरहित, स्थिर तथा

पिङ्कायुक्त (रोहणांकुर युक्त) ब्रण को ठीक हो रहा ब्रण समझें।

(iii) सम्प्यक रुट ब्रणः—

“रुटवर्त्मनस्यप्रथमस्यत्मलजं क्षम् ।  
त्वच्चवर्णं समतरं सम्यग्दं विनिर्दिशोत् ॥” शु० स० 23  
जिस ब्रण के किनारे भर जाएं, किसी भी प्रकार की प्रस्त्रिय, शोथ तथा वेदना इत्यादि न हो, ब्रण स्थान त्वचा के समान वर्ण का तथा समतल हो जाए, उस ब्रण को सम्प्यक् प्रकार से रोपित हुआ ब्रण मानता चाहिए।

**निज ब्रण (दोषज ब्रण)**

जिन ब्रणों में पहले से ही वातादि दोषों का अनुबन्ध रहता है उन्हें निज ब्रण कहते हैं।

**हेतुः** (1) दोषज व्याधियाँ—मिथ्या आहार विहार से प्रकृष्टित दोषों से तथा संकामक व्याधियों से अनेक प्रकार के निज ब्रण उत्पन्न होते हैं, जैसे—क्षय रोग में शयज ब्रण (Tubercular ulcer), फिरंग रोग में किरंगज ब्रण (Syphilitic ulcer or hard chancre), उष्णतात में उष्णवातज ब्रण (Gonorrhoeal ulcer or soft chancre), कुट्ट में कुट्टज ब्रण (Leprotic ulcer) तथा ऐसे ही धातक ब्रण (Malignant ulcer) एवं अपस्फीत ब्रण (Varicose ulcer) इत्यादि हैं।

(1) आगांतुज दुष्ट ब्रण—आगांतुज या सद्यः ब्रण जो प्रायः शुद्ध होते हैं।

निम्न कारणों से दोषज ब्रणों में परिवर्तित हो जाते हैं।

(i) शत्र्य (Foreign bodies)

(ii) अनुपयुक्त (Improper) चिकित्सा ।

(iii) मिथ्याहार विहार ।

(i) शत्र्य—सद्यः ब्रण में नख, वात, तिनके, टूटी हड्डी के टुकड़े, विष,

कूर्मि तथा संक्रमणादि से शुद्ध सद्यः ब्रण भी दृष्टि हो जाता है।

यदि आञ्चात के कारण शरीर की धातुओं का अधिक नाश हो जाए, जैसे सिरा स्नायुक्तेव से, शयार्ज ब्रण (Bed sores) इत्यादि रो, इनमें अत्यधिक ब्रह्मता वर्ण स्नायुक्त ब्रण हो जाते से सद्यः ब्रण देष्ट अर्थात् दुष्ट ब्रण बन जाते हैं।

(ii) अनुपयुक्त चिकित्सा—यदि मुढ़ चिकित्सक सद्यः ब्रणों में उपयुक्त चिकित्सा नहीं करता तो उसकी अनुपयुक्त चिकित्सा से सद्यः ब्रण दुष्ट ब्रण में बदल जाते हैं, जैसे अत्यधिक गाढ़ बन्ध वांधने से या गाढ़ के स्थान पर अत्यधिक व्याख्यात वांधने से तथा अत्यधिक तीक्ष्ण औषध या अधिक संभौं के प्रयोग इत्यादि से।

(iii) मिथ्याहार विहार—अजीर्ण, अत्यधिक भोजन, विरुद्ध आहार-असार्थ भोजन, शोफ, कोष, व्यायाम करने से, दिन में सोने इत्यादि कर्मों से आगांतुज ब्रण (सद्यः ब्रण) दोषज (दुष्ट) ब्रणों में बदल जाते हैं।

भेदः

(क) वातादि तीनों दोषों तथा रक्त से अकेले और इनके आपस में मिलने से 14 प्रकार के दोषज ब्रण उत्पन्न होते हैं।

(ख) चारक ते भिन्न-भिन्न अवस्था के अनुसार (नानात्मज भेद से) दोषज ब्रणों को 20 प्रकार का माना है जैसे—

i कृत्य (अठिविध कर्म योग्य ब्रण) ii अकृत्य (रोपण योग्य) iii दुष्ट iv अदुष्ट v संवृत (बन्द युख) vi विवृत vii दारण viii मृद्दि ix लाक्षि x निकाव xi सविष xi निवाष xiii समस्थित xiv विफमस्थित xv उत्संग xi vi अनुसंग xvii उत्सन्न xviii अनुसन्ध xix मम स्थ xx अमरमस्थ ।

(ग) आईनिक भातानुसार दोषज ब्रण अनेक प्रकार के होते हैं। जैसे—नाईनु ब्रण (इसका अलग अलग अवस्था में वर्णन किया गया है), क्षयज ब्रण (Tubercular ulcer), उष्ण वातज ब्रण (Soft chancre), सिराज ब्रण अर्थात् अपस्फीत ब्रण (Varicose ulcer), दोषिकल ब्रण अर्थात् उष्ण कटि ब्रणश्च ब्रण (Post thrombotic ulcer), घानाखता के पश्चात् उत्पन्न ब्रण या घानाख ब्रण (Post thrombotic ulcer) इत्यादि ।

उपरागः

मुश्रूत तथा चरक के अनुसार दुष्ट ब्रणों के लक्षणों की तालिका

मुश्रूत

चरक

अति संकुचित, अति विस्तृत, अति कठिन या अति सूक्तेण, उत्तन-मास—या हीन मास वाला ब्रण, अति श्वस, अवसन्न बर्त्म, अति पिक्कर, अति पिङ्किका युक्त तथा अति पूर्ण युक्त ।

अति दोषों के अनुसार ।  
कुम्भिमुख (घोड़े के समान मुख छोटा एवं पूर्ण युक्त बड़ी हो), अति वैवाना—दोषानुसार काला, पीला, वर्ण, नील, श्याव या रक्त वर्ण ।  
कुम्भ, तीव्र पीड़ा, सङ्की पूर्ण, गलित मास सिरा व स्नायु युक्त, भैरव आङ्गति तथा उमराई ।

दोषज दणों के लक्षणों को तालिका

118

दण	आकार तथा वर्ण	स्राव तथा गन्ध	वेदना	अन्य गुण
(1) वातज	अरुण ।	पतला, व शीतल पिच्छिल स्राव । उष्ण स्राव ।	तोद, भेद । दाह, पाक ।	मांस रहित, चट-चट शब्द करता है । शीघ्र बनता है ।
(2) पित्तज	पिडिकायुक्त, मुखं, पीली झाँई वाला ।	शीतल, सान्द्र व पिच्छिल स्राव ।	कण्डू, मन्द वेदना ।	मोटे एवं कठिन किनारे, सिरा एवं साथ जाल युक्त ।
(3) कफज	बड़ा आकार, इवेत, पाण्डु ।	रक्त स्राव, तीक्ष्ण गन्ध युक्त ।	वेदना युक्त ।	धूमोद्गार युक्त ।
(4) रक्तज	काले घाले, पिडिका जाल से भरा, मूँगे के समान वर्ण का ।	शीतल, पिच्छिल, पतला, उष्ण ।	तोद, दाह ।	धूमोद्गार ।
(5) वात पित्तज	पीला, लाल झाँई वाला ।	शीतल, पिच्छिल, घोड़ा स्राव ।	कण्डू, सूई चुभने के समान वेदना । दाह ।	कठोर, रक्त । गुरु ।
(6) वात कफज	भारी	उष्ण, पीत व पाण्डु स्राव ।		
(7) कफ पित्तज	मृदु ।			

वेदना

गुण

दण	आकार तथा वर्ण	स्राव तथा गन्ध	वेदना	अन्य गुण
(8) वात रक्तज	लाल एवं अरुण झाँई वाला ।	पतला, शीतल एवं पिच्छिल स्राव ।	तोद ।	पतला, रक्त एवं सुप्ति युक्त ।
(9) पित्त रक्तज	फैलने वाला, मण्ड या धूत समान कान्ति वाला ।	उष्ण, काला स्राव, मछली समान गन्ध वाला ।		कोमल एवं फैला हुआ ।
(10) कफ रक्तज	लाल ।	रक्त एवं पाण्डु स्राव ।	तोद ।	स्थिर, गुरु, स्तिर्ग एवं पिच्छिल ।
(11) वात पित्त रक्तज		पीला एवं पतला स्राव ।	तोद, दाह, स्फुरण ।	धूमोद्गार ।
(12) वात कफ रक्तज		पाण्डु, धन तथा रक्त स्राव ।	कण्डू, स्फुरण, चुम्चु मायन ।	
(13) रक्त पित्त कफज	सुखंवर्ण का ।	पाण्डु, धन एवं रक्त स्राव ।	दाह, कण्डू, पाक ।	
(14) त्रिदोषज	नाना प्रकार के वर्ण युक्त ।	मिश्रित स्राव ।	सब दोषों की वेदनाओं से युक्त ।	सुप्रता लिये ।

वेदना

इस तालिका में बणित ब्रण के लक्षणों को देखकर ब्रण के प्रकोपक दोषों का ज्ञान करें और फिर दोषों के अनुसार ही चिकित्सा करनी चाहिए। बात, पित्त, कफ, रक्तादि दोषों से अलग-अलग तथा इनके मिलने से 4 प्रकार के शीर्षकों के अन्तर्गत आने वाले लक्षणों के कानेक्षम होने से 14 प्रकार के ज्ञान आसानी से हो सकता है। विभिन्न प्रकार के ब्रणों के निदान को आसान बनाने के लिए उनका आकार, स्राव, गर्ध्य, बेदना तथा अन्य गुणों को धीमे दी गई तालिका में दिया गया है—

### आधानिक भवानुसार ब्रण के भेद—

- (1) प्रसारित ब्रण (Spreading ulcer)
- (2) कठोर कणज ब्रण (Callous ulcer)
- (3) विशिष्ट ब्रण (Specific ulcer)
- (1) प्रसारित ब्रण (Spreading ulcer)—प्रसारित ब्रण से अत्यधिक गूच्छ आता है, वर्त्म (Edges) शोफ युक्त (Inflamed) तथा तल भार मतोतक (Slough) से भरा रहता है अथवा उसके तल भार में केवल मृत ऊतियाँ ही होती हैं। ये लक्षण आयुर्वेद में वर्णित दुष्ट ब्रण के लक्षणों से मिलते हैं, जैसा कि चित्र (2) कठोर कणज ब्रण (Callous ulcer)—इसमें रोहणांकुर रक्त बर्ण के तल होकर इतके श्वेत बर्ण के होते हैं (Pale granulation), इसके तल भार में फिर कठिनता (Induration) रहती है और वर्त्म भी कठोर होते हैं। बातज ब्रण में भी ऐसे ही लक्षण मिलते हैं।

### (3) विशिष्ट ब्रण (Specific ulcers)—यह ब्रण अनेक प्रकार के होते हैं—

- (i) क्षयज ब्रण (Tubercular ulcer)
- (ii) उष्णवात्तज ब्रण (Soft chancre)
- (iii) फिरगज ब्रण (Hard chancre)
- (iv) अपरस्फीतक ब्रण (Varicose ulcer)
- (v) पोषणज ब्रण (Trophic ulcer)
- (vi) उष्ण कटिबद्ध-ब्रण (Tropical ulcer)
- (i) क्षयज ब्रण (Tubercular ulcer)—यह क्षय रोग से पीड़ित धूम्रपाली की किसी क्षय रोग से ग्रस्त मरुचना (Structure) के फटने से उत्पन्न होते हैं। इनके बत्तमें तथा ब्रण कुमिंभमुख अथवा मुख छोटान-तथा भीतर की गुहा बड़ी होती है। इनके बत्तमें नीलाभ (Bluish) वर्ण के होते हैं। क्षय के सुन्त बन्नेरिद (Lupus vulgaris) ब्रण में तल

भाग पीत तथा कठोर पिड़िकाओं से युक्त रहता है (Pale indurated granulation, it is called Callous ulcer)। यह ब्रण मध्य से रोपित होता है तथा किनारों से फैलता है।

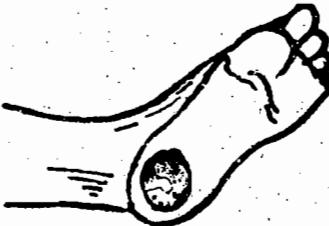
(ii) उष्णवात्तज ब्रण (Soft Chancre)—यह गुह्य अंगों में संक्रमण होने के तीन दिन पश्चात् उत्पन्न होता है। इसके लक्षण तीक्ष्ण ब्रण (Acute ulcer) के लक्षणों के सदृश होते हैं। इसके मौटे वर्त्म श्वयथुक्त (Oedematous) एवं आकार में कठोर हुए होते हैं। इनके तल में मृतोतक (slough) रहते हैं, ये पीताभ ब्रण के सान्द्र पृथक्युक्त (Copious purulent secretion) एवं स्राव बाले होते हैं।

(iii) फिरगज ब्रण (Hard chancre)—यह ब्रण गुह्याङ्कों के संक्रमित होने से, 3 सप्ताह पश्चात् उत्पन्न होता है। इसका तल बदन के समान कठिन (Indurated) होता है तथा ब्रण पीड़ा रहता है। इसकी समीप की लासिका ग्रनिथां आकार में बड़ी, अलग-अलग (discrete), कठोर (firm) परन्तु बेदन रहित होती है।

(iv) अपरस्फीतक ब्रण (Varicose ulcer)—यह ब्रण बेदना रहित एवं कठोर (Callous) होता है। यह ब्रण टांग के अधी: भाग में अन्तः तल (Medial surface) की ओर उत्तान (superficially) रहता है। इसके चारों ओर कृष्ण बर्ण की विचिक्का (Eczema) इसे घेरे रहती है। इन ब्रणों से पीड़ित रोगियों की सिरएं विस्फारित (Apssiphia) रहती हैं। इन ब्रणों की आवृत्ति सिरा के समान एवं टांग की सिरा पर स्थित ब्रण अपस्फीत सिरा की दिशा में अथवां लम्ब व अण्डाकार (Vertically oval) आकृति होती है।

(v) पोषणज ब्रण (Trophic ulcer)—इसको तान्त्रिका जन्य ब्रण (Neurogenic ulcer) भी कहते हैं। इनके बर्तमें कठोर हुए एवं तल भार मृतोतकों (slough) से युक्त (जैसे कि श्वयाच्च ब्रण में) होता है। ये ब्रण धातुओं का बेध (perforation) करते हैं। इनके कठोर भाग (Callus) के मध्य की ऊतियाँ मृतोतक (slough) के रूप में तल भाग (surface) पर आजाती हैं तथा वहाँ से स्राव निकलने लगता है। इसकी नाड़ी में या इसके सुख पर तक्ता की परत (Skin lining) लगी रहने से ये ब्रण रोपित नहीं हो पाता। ये ब्रण प्रायः अस्थि की गहराई तक पहुँचते हैं।

एड़ी पर स्थित पोषणज (vi) उष्ण कटिबद्ध-ब्रण (Tropical ulcer)—यह ब्रण ब्रण (रेखा चित्र नं० 1)



(रेखा चित्र नं० 1)

कठोर बत्तमें गुर्क (Indurated edges), बन लाव गुर्क (with copious discharge) तथा कई तर्थ तक रोपित नहीं होता। इसके रोपित होने पर ब्रण स्थान पर रक्तिभृत ब्रण-चिह्न (Pigmented scar) बनता है।

### उपद्रव (Complications)

निज ब्रणों में दो प्रकार के उपद्रव होते हैं—

- ब्रणित के उपद्रव (Generalised complications of wounded person)।
- ब्रण के उपद्रव (Local complications of wound)।

(i) ब्रणित के उपद्रव—ब्रण में खित रुप, भूतोतक, (slough), खित [कोयं से उत्पन्न तथा जीवाणुओं के विष] इत्यादि पदार्थ ब्रण तल से शोषित होने पर वे शरीर में सावंदेहिक लक्षण उत्पन्न करते हैं, जैसे ज्वर (संक्रमण से), अतिसार, मूँख्य, हिक्का, वमन, अरोचक, घ्रास, कास, अधिपाक तथा तूषादि।

ज्वरातिसारी मूँख्य च हिक्का-ज्वरोचक तथा खितरस्य तु ॥ शु० चि० १

विसंपशाधात्म सिरत्तम्भापतानका ।

मोहोन्मावधारण्यो ज्वरत्तल्लाहतुप्तः ॥

कासमध्यदितीसारी हिक्कापशात्म वैप्यः । च० चि० 25

ब्रणकमतानुसार ब्रण के उपद्रव—विसंप (erysipelas), पशाधात, शिरः स्तम्भ, मोह, उम्माद, लेप्तु एव इत्यग्रह (Tetanus)।

(ii) ब्रण के उपद्रव—ब्रण उत्पन्न होने के पश्चात् दोषों के और अधिक प्रकृत्यांपत होने पर या ब्रण में जिजातीय पदार्थों (Foreign bodies) अर्थात् शत्य के रहने पर, जैसे संक्रमण, नख, लिप, बूति, रासायनिक पदार्थ इत्यादि या अनुपश्यम अर्थात् औषधि की प्रत्युजर्ज प्रतिक्रिया (Allergic reaction) इत्यादि से जो ब्रण में स्थानीय विकार उत्पन्न होते हैं उन्हें ब्रण के उपद्रव कहते हैं, जैसे ब्रण में अत्यधिक बेदना, दोषों के अनुसार अनेक प्रकार के दृष्टित साव, गंध व वर्ण (ब्रण की परीक्षा में घटाए गये) इत्यादि का उत्पन्न होना।

ब्रण के दोष—जो हेतु ब्रण में अतिरिक्त विकार उत्पन्न करते हैं उन्हें ब्रण के दोषों में उपरोक्त विणित उपद्रवों को उत्पन्न करते हैं। ब्रण के दोष अनेक प्रकार के हो सकते हैं, जैसे—

मत्त्य, तुण, नख, अनुपश्यत चिकित्सा, अति गाढ़ बन्ध तथा मिथ्याहार विहार इत्यादि, इनका विस्तृत वर्णन निज ब्रणों के हेतुओं में देखें।

### माल्यासाध्यता

ब्रण तथा ब्रणित के विविध उपद्रवों तथा अरिष्ट लक्षणों से उनकी माल्यासाध्यता

एवं असाध्यता का ज्ञान करने के उपरान्त ही चिकित्सा प्रारम्भ करनी चाहिये।

1. रोगी के बल से
2. ब्रण के आकार से
3. ब्रण के स्थान से
4. ब्रण के उपद्रवों से

(1) रोगी के बल से—यदि ब्रणित अविक्त वयस्क (Young), दृढ़ (Healthy) और प्राणवान् (Active) हो तो ज्वरका ब्रण साध्य होता है। परन्तु यदि रोगी शोषी (Emaciated), ऊबेल, वृद्ध, भीड़ तथा अल्प प्राणवान् हो तो उसमें ब्रण कूच्छुसाध्य होता है।

(2) ब्रण के आकार से—आयत, चुरुरस्त, इत्त एव चिपुट आकृतियों वाले ब्रण साध्य होते हैं। उपरोक्त आकृतियों से भिन्न अर्थात् बक्क, अष्ट्रेचन्द्राकार, रथ के सामान, घोड़ा इत्यादि के समान विषम आकृति वाले ब्रण कूच्छु साध्य होते हैं।

### (3) ब्रण के स्थान से—

साध्य	कूच्छु साध्य	याध्य	असाध्य
नितम्ब, गुदा, प्रजनन, लताट, गण्ड, ओष्ठ, गौठ, कान, अपडकोष, तथा ज्वर, मूँख, तथा ज्वर, स्थान) के स्थान।	आँख, नाक, कान, धूम, दन्तमूल, सोत, नार्मि, नितम्ब, कुक्षि, वक्ष, कक्षा, स्तन तथा संधियों (कोमल स्थान) के स्थान।	अचपातिका, निरुद्ध प्रकाश, गंधि, मनिरुद्ध विकिता के बन्द करने पर पुनः उत्पन्न हो जाते हैं।	मम्ब स्थानों के ब्रण।

(4) उपद्रवों से—उपद्रव राहत ब्रण मुख साध्य होता है। ब्रण में या ब्रणि त

में उपरोक्त उपदब्दों के उल्पन्न हो जाने से ब्रण कुच्छुसाध्य या असाध्य अवस्था में चला जाता है। अनेक रोगों में ब्रण कुच्छुसाध्य होते हैं, जैसे कुछ, विषाक्त, शोषी, एवं मधुमेही रोगियों के ब्रण तथा जो ब्रण स्वयं विदीर्ण नहीं होते के भी कुच्छुसाध्य होते हैं।

**कुपिठनां विषज्जुटानां शोषिणां मधुमेहिनाम् ।**  
**ब्रणः कुच्छुण सिध्यन्ति तेषां चापिवर्णं ब्रणः ॥ सू० सू० 23**  
**शोषः स्वयम्विदीर्णमाणा तुरुपच्चराः ॥ सू० सू० 22**

### असाध्य ब्रण के लक्षण

असाध्य ब्रणों में निम्न लक्षण होते हैं—

(i) **कृष्ण**—पक्वताशय गत ब्रण में पुलाकोदक के समान लाव !

रक्ताशय गत ब्रण में क्षारोदक के समान लाव !

**आमाशय एवं चिक्क गत ब्रणों में मटर के पानी के समान लाव ।**

तथा दोबज ब्रणों में वसा, मेद, मउजा तथा मस्तुकुङ्ग के समान साव । ब्रण में ये लाव रहते पर ब्रण असाध्य होते हैं ।

(ii) **गन्ध**—असामान्य गन्ध, जैसे सुरा समान, मुग्निधृत पुष्पों के समान, या कुते, चूहे, कौप तथा सड़े मांस के समान गन्ध रहने पर ब्रण असाध्य होते हैं ।

(iii) **ग्रन्द**—जिन ब्रणों से बुद्धुवृद्ध की आवाज आती है : जैसे, कोथ (gas gangrene by B. welchii, B. vibrio) के जीवाणुओं द्वारा सक्रमण होने से ब्रण के समीप की ऊतियों में हवा भर जाती है, फन ब्रणों को असाध्य कहते हैं ।

(iv) **आकृति**—जिनकी आकृति टेही-मेही, झाँडा, रख या धोड़े सदृश विकृत हो, जो ब्रण धोड़ी की भग के समान उठे हुए तथा बीच से दबे हुए हों, ये सब असाध्य होते हैं ।

(v) **स्थान**—सिरा, स्मारु, अस्थि एवं सत्त्विके ब्रण अथवा त्वचा, मांसादि धातुओं के ब्रण यदि चिकित्सा करने पर भी फैलते जायें, जैसे घातक ब्रण (Malignant ulcer), तो हृद्दे असाध्य जानना चाहिये ।

(vi) **बेदना**—जो ब्रण मर्द स्थानों पर न होते हुए भी लीच बेदनावान् हो वे असाध्य होते हैं ।

(vii) **स्पर्श**—अन्दर से शीत तथा बाहर से उष्ण या इसके विपरीत अन्दर से उष्ण तथा बाहर से शीत होने पर ब्रण असाध्य होते हैं ।

(viii) **दोष**—दोषों के विपरीत लक्षण वाले ब्रणों में, जैसे कफज ब्रण में तीव्र बेदना, वातज ब्रण में बेदना की अनुपस्थिति होने पर या फिर जब ब्रण के अधिकान अत्यधिक नष्ट या दूषित हो जायें तो ब्रण असाध्य होता है ।

### ब्रण ग्रन्थि

सद्यः लूङ् (ताजारोपित हुआ) ब्रण या हृतमान (रोपित हो रहा) ब्रण वाला रोगी (व्रणित) यदि अपथ्य सेवन करे (सब रसों का सेवन करे) या उसके बन्धन रहित ब्रण पर आघात लग जाए तो इससे बायु प्रकृष्टित हो जाती है । किर प्रकृष्टित हुई बायु लधिर को ब्रण के अन्दर सुखाकर, कण्डू तथा दाह युक्त उत्सर्व (Inflammation) को उत्पन्न कर देती है, इसे ब्रण ग्रथि कहते हैं । यह भी ब्रण का एक उपद्रव है जो कि कुच्छु साध्य होता है ब्रण ग्रन्थि छेदन करने पर पुनः उत्पन्न हो जाती है ।

कोलायड (Keloid) संयोजक तन्तुओं (Connective tissue) के अत्यधिक बढ़ने (Hypertrophy) से उत्तन होता है । इसके लक्षण ब्रण ग्रन्थि के समान रहते हैं । यह त्वचा से ऊपर को ऊपरी हुई एक अनियमित एवं कठोर गांठ होती है, जब इसके किनारों पर बेदना (Pain), स्पर्शसंहस्ता (Tenderness) तथा रक्तिमा (Redness) हो जाती है तो कीलायड को बुद्धि होने लगती है ।

### चिकित्सा

दोषजवरणों की चिकित्सा को 2 भागों में विभक्त किया जा सकता है ।

#### 1. औषध चिकित्सा

#### 2. शस्त्र चिकित्सा

1. **औषध चिकित्सा**—मुश्तुत ने ब्रण शोधन के लिए निम्नलिखित अनेक द्रव्यों को प्रयोग करते के लिये कहा है ।  
(i) बढ़थें द्वारा चिकित्सा—आरवधादि गण, सुरसादिगण, लाक्षादिगण इत्यादि गणों की ओर विद्यों को कथाय, वर्ति, कल्क, घृत, तैल, रसायक्या, चूर्ण इत्यादि इत्यादि गणों की ओर विद्यों को कथाय, वर्ति, कल्क, घृत, तैल, रसायक्या, चूर्ण शोधत करने के लिए प्रयोग करते के अद्याय में बताया गया है ।

(ii) क्षार द्वारा चिकित्सा—झूँठ ब्रणों में जहाँ पर मुतोतक (Slough) अधिक हो वहाँ पर क्षार (प्रतिसारणीय क्षार) द्वारा उसका शोधन करना चाहिये । क्षार द्वारा छेदन, ऐदन तथा लेखन तीनों कर्म होने से यह अत्यधिक दोष युक्त ब्रणों में शोधन के लिये सफलता पूर्वक तथा मालकन्दी युक्त (Over granulating) ब्रणों में शोधन करना चाहिये, क्योंकि प्रयोग किया जा सकता है । झूँठ ब्रणों में क्षार का प्रयोग नहीं करना चाहिये, क्योंकि प्रयोग करना चाहिये ।

(iii) धूपत चिकित्सा—गुण्गुलु, राल, अगरू इत्यादि धूपत द्रव्यों के धूम द्वारा ब्रणों की संक्षण से रक्षा करती चाहिये । धूपत कर्म से ब्रणों में बेदना शास्त्र होती है तथा पूति गन्ध नष्ट होती है । वामभट्ट ने पट्ट, कवलिका, विकेषिका (Dressing material) इत्यादि को धूपत द्वारा शुद्ध करके ब्रणों पर प्रयोग करते को कहा है ।

## 2-शस्त्र चिकित्सा

जपक्रम अध्याय में वर्णित अष्टविध शस्त्र कमों में से (वण की डृष्टि के अनुसार) एक या अनेक कमों द्वारा, उष्ट ब्रणों में से भीलत मास सिरा स्थाय इत्यादि को निकालकर ब्रणों को शुद्ध करना चाहिये, जैसे—

(क) कुम्भ मुख ब्रणों तथा नाड़ी ब्रणों में खेदन करके इनकी पूय निकालें।

(ब) स्नायु, सिरा इत्यादि की कोष को तथा मृत झटियों को खेदन कर्म द्वारा निकालें।

(ग) बढ़े हुए मास धारु को लेखन कर्म से निकालें।

(घ) हृत तक पूय होने पर पूय कोटरों का वेधन करके पूय को निकालें।

इन ब्रणों से पूय निहंसण के लिये सिम्बल, वट, उद्मुक्तरादि पीड़न द्रव्यों के लेप लगाएं।

आधुनिक मतानुसार वण उत्पन्न करने वाली व्याधि की चिकित्सा के साथ अति तुष्ट वण की चिकित्सा भी की जाती है, जैसे अयज वण होने पर क्षय रोग की सामान्य चिकित्सा तथा फिरांज वण होने पर फिरां रोग को सामान्य चिकित्सा भी साथ में जीता जाता है। पूय युक्त ब्रणों को विस्तृत करके उनसे पूय विस्तावण किया जाता है, की जाती है। पूय युक्त ब्रणों को लेखन करके उनसे से मृत झटियों (Slough) को निकाला जाता है।

या उनका लेखन करके उनसे से मृत झटियों (Trophic ulcer), या धातुकांड द्वारा वण अति तुष्ट वण, जैसे पोषणज वण (Malignant ulcer) इत्यादि में पहले छेदन कर्म (Excision) किया जाता है फिर द्रव्यों द्वारा चिकित्सा वण होने पर इसकी पूय विरोधी (Antiseptics) द्रव्यों द्वारा चिकित्सा वण के युक्त होने तक की जाती है वण के रोपण होने के पश्चात् वण स्थान पर उत्पन्न रोपण होने तक की जाती है व्यक्तियों की चिकित्सा आवश्यकतानुसार उपक्रमों द्वारा करनी चाहिये, जैसे—

(i) अत्यधिक मात्र वृद्धि होने पर अवसादन करें।

(ii) वण चिन्ह में मास क्षीण होने पर उत्सादन करें।

(iii) वण चिन्ह कठोर होने पर मृद्ग करें।

(iv) ब्रणों के अत्यधिक मृद्ग होने पर दाढ़ण करें।

(v) इन कमों को आवश्यकता अनुसार प्रयोग करना चाहिये। इन उपक्रमों का विस्तृत वर्णन उपक्रम अध्याय में देखें।

## नाड़ी वण

नाड़ी वण, उष्ट वण का ही एक भेद है। नाड़ी वण में पूय की गति रहने

के कारण तथा चिकित्सा की दृष्टि से इसका विशेष महत्व होने के कारण इसका अलग से वर्णन किया गया है।

**व्यास्त्वा:**—  
पूय उत्पादक झटियों से जिस लम्बे तथा वक्र मार्ग द्वारा पूय बाहर निकलती है उसे नाड़ी वण (Sinus) कहते हैं। इस मार्ग में पूय का गमन (flow) होने से इसे गति भी कहते हैं।

नाल वण (Fistula) में पूय निकलने के लिये नाड़ी वण सदूष मार्ग (tract cavity) होता है। नाल वण का मार्ग एक ओर किसी जारीरक गुहा (Body cavity) या अवकाशिकायुक्त रचना (Structure with a lumen), जैसे धमनी, महाल्ली, मूत्राशय इत्यादि में खुलता है और दूसरी ओर बाहर त्वचा पर या किसी जुहा युक्त अंग में खुलता है, जैसे गुदा-मूत्राशय नालवण (Recto vesical fistula)। नालवण दोनों ओर से कोटर युक्त अंगों में खुलता है।

नाड़ी वण को लोक भाषा में नासूर भी कहते हैं क्योंकि यह वण उत्तान अयच्छा वाला वण की चिकित्सा (Superficial or external treatment) से ठीक नहीं होता है। इसका उपचार वर्ति द्वारा (अर्थात् वर्ति को नाड़ी के अन्दर प्रवेश करके किया जाता है।

## हेतु

शोफ न पश्चात्प्रिति पश्चात्प्रियुक्ते यो, यो वा वणं प्रचुरपूयमसाध्यवृत्तः ।

आस्तन्तरं प्रविशति प्रविशायं तत्य, स्यानानि पूर्वविहितानि ततः स पूयः ॥

तत्यातिमात्रागमनाद् गतिरित्यतरत्वं, नाड़ीव यद्विति तेन भवता तु नाड़ी ॥

मु० नि० १०

पश्च शोफ को अपश्च जानकर या अतिपूययुक्त वण की अपेक्षा करने से, पूय त्वचादि वण-वस्तुओं को विदीर्ण करके अन्दर प्रविष्ट हो जाती है। इस पूय के अतिपूययुक्त वण की ओर चले जाने से 'गति' (नाड़ी) उत्पन्न होती है। इसमें पूय का वहन होता है इसीलिये इसे गति कहते हैं।

नाड़ी वण की उत्पन्नति में निम्न हेतु सहायक होते हैं—

(1) शल्य—शरीर में नष्ट हुआ शल्य (Retained foreign body) वेदन तथा सांख युक्त नाड़ी को उत्पन्न करता है। यह केवल जैविक पदार्थ (Organic material) जैसे तण, संक्रमण या दोष युक्त धातुओं से उत्पन्न होता है। धातु गत गुद शल्य कई वर्षों तक यारीर में बिना नाड़ी वण उत्पन्न किये निषिक्षय रूप में पहुँच सकते हैं।

(2) अपच्य संवन्धन—यदि ब्रणित पुरुष अपच्य आहार का सेवन करता है तो उसका साधारण ब्रण या शुद्ध ब्रण भी नाड़ी ब्रण में परिवर्तित हो जाता है, जैसे पृथग्लादक (अम्ल, लवण) आहार के सेवन से अधिक पूय बनकर, वह ब्रण की धारुओं को भीतर ही भीतर नष्ट करके नाड़ी ब्रण को उत्पन्न करती है।

(3) अपच्य शोफ का भेदन करने से—ब्रण शोफ के या विद्धि के आभासवस्था में या पञ्चमानावस्था में भेदन कर देने से ब्रण चीड़ा हो जाता है, धारुओं का अधिक नाश होता है, आशातज विसर्प उत्पन्न होता है तथा ब्रण में बेदना होती है। संक्षण अर्थात् दोष विद्धि हुई धारुओं में प्रविष्ट होकर हूर तक जाकर नाड़ी ब्रण का रूप गहण कर लेते हैं।

(4) पक्षव ब्रण शोथ या विद्धि की उपेक्षा करने से—विद्धि या शोफ में पूय पड़ जाने से यदि पूय को उचित समय में न निकाला जाये तो पूय अन्य धारुओं का भक्षण करके (संक्षण या प्रोटियोलाइटिक इन्जार्मज के कारण) नाड़ी ब्रण उत्पन्न कर देती है, जैसे भग्नदरज पिंडिका का ठीक समय पर भेदन त करने पर वह नाड़ी ब्रण का या नाल ब्रण का रूप धारण कर लेती है।

(5) अनुचित विस्तारण विधि—पूय युक्त शोफ या विद्धि में यदि भेदन ब्रण अतिं सूक्ष्म बनाया जाये या उसका भेदन करके कोटर से पूय का आच्छण न किया जाये तो ब्रण का मुख खोटा होने से अन्दर रुकी हुई पूय धारुओं का भक्षण करके, नाड़ी ब्रण उत्पन्न कर देती है।

(6) लौहण लाव—ब्रणों से तीक्ष्ण लाव (मूत्र, मल, पित्त) निकलने पर ये ब्रण कुछ समय पश्चात् नाड़ी ब्रण में परिवर्तित हो जाते हैं, जैसे मूत्र स्वावी नाल ब्रण (Urinary fistula), मलज नाल ब्रण, पित्त स्वावी नाल ब्रण इत्यादि।

(7) आचात—गुदा मार्ग के पास आचात होने से, ब्रण का बार-बार मल से समर्पक बने रहने से तथा सान्धि के ब्रणों में अधिक हिलने के कारण ये दोनों प्रकार के ब्रण शीघ्र रोपित नहीं हो पाते तथा कुछ समय पश्चात् ये नाड़ी ब्रण में परिवर्तित हो जाते हैं।

(8) संक्षण—कुछ विशेष संक्षण जो कि ब्रण में देर तक पड़े रहते हैं, जैसे क्षय का संक्षण (Tubercular infection), एक्टिनोमाइकोसिस (Actinomycosis) इत्यादि, कुछ देर पश्चात् ब्रण को नाड़ी ब्रण में परिवर्तित कर देते हैं।

मेद :

(i) वात ज., (ii) पित्तज., (iii) कफज., (iv) विदोषज., (v) शाल्यज।

(i) वातज नाड़ी ब्रण—यह कठोर बेदना युक्त तथा द्रूक्ष सुख वाला होता है। इसमें से रात्रि को फेन युक्त स्वाव अधिक निकलता है तथा पूय के साथ बाटु का श्वास मार्ग से हम्बान्ध होने से, वायु ऊर्तियों में प्रविष्ट हो जाती है।

(ii) पित्तज नाड़ी ब्रण—पित्तज नाड़ी ब्रण तीव्र शोफ युक्त होता है। इसमें भी निकलती है, जैसे गैस गैन-रीन के जीवाणु (B. welchii) के संक्षण से या ब्रण का श्वास मार्ग से हम्बान्ध होने से, वायु ऊर्तियों में प्रविष्ट हो जाती है।

(iii) कफज नाड़ी ब्रण—इस नाड़ी ब्रण से लाव अत्यधिक सान्ध (thick), गिरना तथा राति में दिन की अपेक्षा अधिक औता है। नाड़ी ब्रण के कपर कण्डप मन्द बेदना, कठोरता, इत्यादि लक्षण मिलते हैं। क्षयज प्रच्छ के फटने से भी नाड़ी ब्रण इसी प्रकार के लक्षणों से युक्त होता है। यह नाड़ी ब्रण मन्द बेदना वाला, अति शोफ युक्त तथा शीतल होता है, जैसे—क्षांकियल, पिलोनाइडल तथा वेराओर्कुलर नाल ब्रण (Bronchial, pilonidal and periauricular fistula), इनमें कफज शाश्वी ब्रण सदृश लक्षण मिलते हैं।

(iv) लक्ष्मिपत्रज नाड़ी ब्रण—इसमें ज्वर, दाह, मूक्ष्य, श्वासादि रोग एवं तीनों दोषों की बेदनाएँ रहती हैं। जब किसी बड़े नाड़ी ब्रण में अनेक प्रकार के जीर्ण तथा तीव्र संक्षण एक साथ हो जाते हैं, तो उपरोक्त संस्पितज अवस्था मुख में युक्तता रहती है। इसमें से तीनों दोषों से भिन्ना हुआ लाव आता है तथा तीनों दोषों की बेदनाएँ रहती हैं।

(v) शल्यज नाड़ी ब्रण—जब कोई शाल्य शरीर में निष्ठ (retain) हो जाए तो उससे उत्पन्न नाड़ी ब्रण से शागदार, मर्थित, निर्मल, रक्त शिथित तथा उच्छ लाव निकलता है।

#### ताथ्यासाधारणता :

सामान्यतः नाड़ी ब्रण कुच्छु साध्य होता है परन्तु त्रिदोषज नाड़ी ब्रण सर्वदा असाध्य होता है।

#### चिकित्सा :

(1) वात्त चिकित्सा—जो नाड़ीय बहुत बड़ी न हों उनकी चिकित्सा वर्तियों द्वारा करती चाहिए इन वर्तियाँ उच्छ, तीक्ष्ण तथा लेखन युग वाली औषधियों से बनाई जाती हैं जैसे—

(क) गोमूत्र और मधु से बनी वस्ति।

१३०

(ब) बेर की छाल एवं फल, पाँचों नमक, मुपरी-तथा लाक्षा को घूहर और श्वास के दृष्टि में प्रेसकर बत्ति बनाये। इन बर्तियों की मोटाई नाड़ी ब्रण के मुख के भाग के दृष्टि में प्रेसकर बत्ति बनाये। इन बर्तियों की मोटाई नाड़ी ब्रण के अन्दर तक पहुँच सके। बर्ति द्वारा नाड़ी का भासान होनी चाहिए, जिससे वे ब्रण के अन्दर तक पहुँच सके। बर्ति द्वारा नाड़ी के भासान होनी चाहिए, जिससे वे ब्रण के अन्दर तक पहुँच सके। बर्ति द्वारा नाड़ी के भासान होनी चाहिए।

(II) भार सूत्र चिकित्सा—कृष्ण, उबल या भील पुरुषों में तथा नाड़ी के मरमियत होने पर उसकी शार सूत्र द्वारा चिकित्सा करनी चाहिए।

कृश्मुखेन्द्रियहणं नाड़ी समाधिता च या।

कारत्प्रयोग तो चिन्धान तु शस्त्रेण बृद्धिमान् ॥

—३०.३०.१७

विधि—पहले गण्डपद मुखी एषणी को [जिसमें कि धाया डालने के लिए छिद्र (cleft) बना हो] नाड़ी मुख में डालकर उसे अन्दर तक तो जाना चाहिए। फिर उसके अग्र भाग को त्वचा की ओर (ऊपर की) उठाकर उस पर स्थित धारुओं का बंधन करते हुए एषणी मुख जो अनुलोम गति से बाहर निकाल लें। उसका मुख बाहर निकल आने पर एषणी के छिद्र में भार सूत्र डल तथा फिर एषणी को प्रति-लोम गति से बाहर ढीच लें। इस प्रकार एषणी ढीचसे से शार सूत्र का नाड़ी में प्रवेश हो जाता है। फिर सूत्र के दोनों किनारों को हल्के से (Snugly) बांध देना चाहिए। फिर प्रारंभ करना ध्यान होने पर (५-७ दिन में) इसे निकालकर नाड़ी में दूसरा मुख डालकर बांध देना चाहिए जब तक कि नाड़ी ब्रण दूप दूप से न कट जाए। नाड़ी के कटने पर उससे उत्पन्न हुए द्रव्य का रोपण कर्म करना चाहिए।

शार सूत्र निर्माण की विधि इस पुस्तक के द्वितीय भाग में भागन्दर रोपण अध्याय में देखें।

(III) शस्त्र चिकित्सा—इस ब्रण की शस्त्र चिकित्सा करने के लिए निम्न

विधि का अनुसरण करना चाहिए—  
(क) उच्चाह—सर्वप्रथम नाड़ी ब्रण पर दोषानुसार (वातज में वातजन इव्योमेः; पित्तज में उक्कारिका, दूध एवं धूत से तथा कफज में कुलथी, सरसों, सूत्र तथा किण्व से) उपनाह करना चाहिए इससे धातुये मट्ठ हो जाती हैं तथा दोषों का ब्रित्यन हो जाता है।

(ख) भेदन—नाड़ीतों गतिमत्तोदय शस्त्रेणोत्पादय कर्मवित्।

सर्वं ब्रणकम्मं कुर्याद्योधनारोपणादिकम् ॥—यो०.२० भा० २

नाड़ी ब्रण में एषणी डालकर उसकी गति, अड्या, दिशा इत्यादि की जानकारी प्राप्त करें; फिर बृद्धि पत्र से उसका भेदन कर देना चाहिए। एषण कर्म के लिए

निदेशक-एषणी (Probe-director) का प्रयोग करना चाहिए तथा इसकी लाई (Groove) में शस्त्र को डालकर इसका भेदन कर देना चाहिए, तत्प्रथात् शोधन एवं रोपण कर्म करें। इन मुत्र-स्रावी ब्रणों में भेदन के पश्चात् ब्रण जो अग्नि से देख करना चाहिए।

(ग) लेखन—भेदन के पश्चात् बृद्धि पत्र से नाड़ी ब्रण का लेखन कर्म फोरके उसमें से सब मूत्रोत्तरों (Stomach) तथा संयोजक तन्तुओं की कला (Fibrous layer) की निकाल देना चाहिए।

(घ) शोधन कर्म—नाड़ी ब्रण का शोधन दोषों के अनुसार करना चाहिए जैसे—

ब्रातज में—तिल, अपामांग चीज तथा सेन्धा नमक को बांधें और इसे बृहत पंचमूल के व्याय से धोएं।  
पित्तज में—तिल, दून्तो, मुलहठी के कास्क को भर दे तथा इसे नीम और झूंटी के व्याय से धोएं।  
कफज में—तिल, दून्तो, निम्ब पत्र, फिटकरी तथा सेन्धा नमक से ब्रण भर दे और करञ्जन, नीम, चमेली, बहेड़ा इत्यादि के व्याय से द्रव्य को धोएं।  
शल्यज में—शल्य को निकाल कर फिर तिल, मट्ठ तथा धूत को ब्रण पर लगा दे।  
(ङ.) रोपण कर्म—नाड़ी ब्रण के शुद्ध हो जाने पर दोषानुसार रोपण कर्म करना चाहिए। दोषों के अनुसार रोपण औषधियों को धूत, तैल बत्ति इत्यादि के स्वप्नों करना चाहिए।

(च) छेदन कर्म—उपरोक्त विधि से शस्त्र कर्म करने पर (भेदन से) ब्रण भरने में बहुत समय लग जाता है, इसलिए आजकल बड़े-बड़े नाड़ी ब्रणों का छेदन कर्म (Excision) करके उसका प्राथमिक सीधन (Primary suturing) कर देते हैं। छेदन से पूर्व नाड़ी ब्रण में रङ्गजक द्रव्य (Dye, जैसे मिथिलीन लून) डाल देना चाहिए, इससे छेदन कर्म करते समय नाड़ी की दिशा का पता चलता रहता है। रङ्गजक द्रव्य के अभाव में एषणी को डलते हो, छेदन कर्म करते समय एषणी से नाड़ी की गति की दिशा का पता चलता रहता है। छेदन के पश्चात् रत्नलोचन की ब्रन्च करके ब्रण का सीवन कर्म कर देना चाहिए।

### आगान्तुज ब्रण

(Traumatic wounds)

जो ज्ञान बाह्य कारणों से उत्पन्न होते हैं उन्हें सद्य-ब्रण (आगान्तुज ब्रण) कहते हैं। वैष द्वारा ब्रण बनाए गये ब्रण इनसे भिन्न अर्थात् आयत (बाल) और शुष्कभल

(Wounds with well separated-edges) होते हैं। पुनः निज व्रण भी आगन्तुक व्रणों से मिल होते हैं जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट है—

### निज और आगन्तुक व्रणों में भेद की तालिका

#### निज व्रण

- (1) इनका कारण बातादि दोष होते हैं। इनका कारण आधातादि वायु हेतु होते हैं।
- (2) इनमें बातादि दोष व्रण उत्पन्न होने वालादि दोषों का इन व्रणों में सात दिन पश्चात् अनुबन्ध होता है।
- (3) ये व्रण प्रलेपादि चिकित्साओं से साथ होते हैं।

इतः

- (1) तीक्ष्ण मुख वाले शर्तों के आधात से या डण्डे सदृश कुण्ठित वस्तु के प्रहार (by trauma) से आगन्तुक व्रण उत्पन्न होते हैं।
- (2) हिलक पशु-पश्यों के काटने (bites) से भी आगन्तुक व्रण उत्पन्न होते हैं।

- (3) अर्द्ध, क्षार, विष या तीक्ष्ण पदार्थ (by heat, chemicals, caustics, acids, poisons etc.) के सम्पर्क से व्रण उत्पन्न होते हैं।

ज्ञान—

आगन्तुक व्रण क्ष: प्रकार के होते हैं—

- (1) छिप्प (Excised),
- (2) भिप्प (Incised visceral wound)
- (3) विद्ध (Punctured)
- (4) मिहित (Compressed)
- (5) क्षत (partially excised and partially incised wound)
- (6) शृण्ट (Lacerated)

छिप्पने मिलने तथा खिद्ध क्षति पिहित में एवं घृष्णम् ॥ शृण्ट विद्ध ॥

लक्षणः

- (1) छिप्पन व्रण—आधातादि व्रण में शरीर से धातुओं के अलग हो जाने को ज्ञान कहते हैं। ये व्रण सीधा, तिरक्षा या आधातादि होते हैं। छिप्प व्रण श्वास आधात व्रण—अड्ड-विच्छिन्न (Traumatic amputation) भी हो सकता है।

(2) छिप्पन व्रण—किसी तीक्ष्ण धार शर्त से या नीकीते पदार्थों (सीधा, माला इत्यादि) से किसी आशय (आमाशय, पकवाशय, रुधिराशय, मूत्राशयादि) पर आधात होने से जो व्रण बनता है उसे छिप्प व्रण कहते हैं (It is a visceral wound i. e. a deep wound)। आशय के भिन्न होने पर वह रक्त से भरा जाता है तथा इससे अनेक तरह के लक्षण उत्पन्न होते हैं, जैसे ज्वर, दाह, मूर्छा, श्वास, प्यास, आधातन, स्वेद, हृदय या पाशब्द में शूल, गुदा या मूत्र मार्ग से रक्तचाप, नेत्रों में रक्तिमा, शुख तथा शरीर से रक्त की गत्य का आना इत्यादि।

आशयाद्वासार—(i) महाखोत के भेदन होने से मलमूत्र एवं वायु का अवरोध (जैसे Paralytic ilius में,) हो जाता है। यदि महाखोत के आशयों के भिन्न होने पर भी मूत्र एवं वायु अपने मार्गों से आंतर हटे तो रोगी बच जाता है।

(ii) आशय के विद्ध होने पर रक्त वमन, आधमान तथा तीव्र शूल होता है।

(iii) पकवाशय के विद्ध होने पर उदर में पीड़ा तथा भारीपन, तापि के नीचे के प्रदेश में शीतलता, मूत्रमार्ग एवं गुदा से रक्त आने लगता है [मूत्रवह लोत में आधात होने पर या रक्ताधिक्य (Congestion) होने से मूत्र का साथ रक्त आता है]।

आशय के अधिक विद्ध [आन्त में अधिक रक्तता (Congestion)] होने के अन्तर में भर जाती है। कोष्ठ के रक्त से भर जाने पर रोगी को स्वेद आता है, उसके हाथ पैर ठंडे हो जाते हैं, वर्षा पीत हो जाता है, आधमान तथा उच्छवात (Gaspings) इत्यादि लक्षण उत्पन्न होने पर रोगी शीघ्र मर जाता है।

(3) विद्ध व्रण—तीक्ष्ण मुख वाले शर्त से आशय के अतिरिक्त शरीर के किसी अन्य भाग में आधात होने पर जो त्रण बनता है उसे विद्ध व्रण (Punctured wound) कहते हैं। शाय रहित व्रण को निर्गत व्रण कहते हैं। अलाज़. संप्रहकार ने विद्ध व्रण के 8 शेद बताए हैं—

- (i) अनुविद्ध (ii) अतुपिड्ट (iii) अतिविद्ध (iv) निर्विद्ध (v) अनुभिद्ध
- (vi) भिन्न-तृप्तिपिड्ट (vii) अतिभिन्न (viii) भिन्निन्।
- (4) चिप्पिचत व्रण—कुण्ठित वस्तु के प्रहार से तथा अंग के दब जाने से इस अस्थि महित लड़का हो जाता है तथा इसमें मज्जा एवं रक्त भर जाता है, इसे पिहित व्रण कहते हैं। यह दो प्रकार का होता है जैसे सर्वण तथा अन्न पिहित व्रण।

(1) छिप्पन व्रण—इसमें श्वास-पिहित हो जाता है तथा साथ में लक्षण।

पर भी ब्रण बन जाता है जिस कारण घटना के समान इसमें दाह एवं धाक होता है।

(ii) अम्बण पिङ्क्विन्स—इसमें अङ्गुलि पिङ्क्विन्स होता है किन्तु त्वचा बण रहत होती है।

(5) अत ब्रण—जो ब्रण अधिक भिन्न न हुआ हो अर्थात् आशय के भिन्न भ्रण की तरह उसकी भित्ति पूर्ण रूप से न करती हो जैसे अत ब्रण कहते हैं। यह योड़ भिन्न तथा थोड़ा छिन्न होते पर विषम ब्रण बन जाता है (डल्हन ने इसे उन्नत ग्रन्ति विषम ब्रण कहा है (ब्रणस्य वेष्टम्यं निम्नोन्नतत्वम्))।

(6) घृष्ट ब्रण—साइड लगने से या अन्य किसी कारण से जब आधात केवल मात्र त्वचा पर होता है (उप त्वचा उत्तर जाती है) तो उसे घृष्ट ब्रण कहते हैं। इसमें सीरमी लाव (Serrum discharge) निकलता है तथा दाह एवं पाक होता है।

### आव्यासाव्यता (prognosis) :

**स्वामान्प्रतिपत्तिस्तु यस्य विष्टुप्रमाणकर्ता:**

**अधिकारी: संशिल्पीप्रक्रिया कोल्डे जीवन्ति यानवः॥**

मु० च० २

**त्वचाव्यता—**कोष्ठ के विदीर्घ होने पर यदि रोगी के मल, मूत्र एवं वायु का अवरोध न हुआ हो तथा रोगी स्त्रव्यवत्ता के लक्षणों से रहत हो तो रोगी जीवित रहता है अर्थात् रोग साध्य होता है। ऐसा उस अवस्था में होता है जब आन्तरिक के बिदीर्घ होने पर वाया (Omentum) आपनुज वर्ण को तुरात बद्ध (seal) कर देती है। इससे आन्तरिक (Paralytic fistus) नहो होता तथा पर्युद्यमी शारीर (Peritonitis) जैसे उप उपद्रवों से भी रोगी बच जाता है तथा रोगी के मल, मूत्र एवं वायु अपने मार्ग से ठीक से आते रहते हैं।

**असाध्यता—**विद्यु ब्रण के कारण यदि अभाय रक्त में भर जाए, रोगी को अधिक स्वेद आए, हाथ पाँव ठंडे हो जाएं, गरीर पीला पड़ जाए, आधमान होने लगे, मलमूत्र का अवरोध होने लगे तथा मूँछखड़ी, उच्छ्वास जैसे उपद्रव उत्पन्न हो जाएं (अर्थात् आन्तरिक तथा स्त्रव्यवत्ता हो जाए) तो उस ब्रण को असाध्य जानता चाहिये।

कोष्ठविन्ने रक्तमें ज्वरो बाहर चल जायते।

स्वामान्प्रतिपत्तिस्तु रक्त त्वचा गव्यवत्ति।

सूख्यविवासतू डाइमानमध्यक्ष्यवत्त्वं एव च।

विष्टुप्रवातसङ्कर्त्वं रक्त स्वेगतावोष्टभरत्वा॥

इसके अतिरिक्त, पकवास्य से पुलाकोदक के समान लाव असाध्य

रक्ताशय से शारोदक के समान लाव असाध्य है, आमाशय और चिक्के से मटर के पानी के समान लाव असाध्य होता है।

**चिकित्सा—**बेदना के लिए—द्वितीय-भिन्न, विद्यु तथा धातु धात, इन चारों प्रकार के ग्राणों में रक्ताशय अधिक होने से वायु प्रकुपित होती है, जिस कारण बेदना अधिक होती है। बेदना शांति के लिए रोगी को स्नेह पान करायें, कोष्ठ धूत या तेल (बत्ता तेल) से परिषेक करें, स्निग्ध आलेप से कोष्ठ को सेक दें तथा एरण्डादि वातानाशक औषधियों से सिद्ध स्नेहों की वस्ति दें।

पिङ्क्विन्स तथा घृष्ट ब्रणों में रक्त अधिक नहीं निकलता इस कारण उनमें दाह तथा पाक दियोग होता है, अतः उन पर शीतल आलेप या परिषेक करना दाह तथा पाक दियोग होता है, अतः उन पर शीतल आलेप या परिषेक करना उचित है।

**नोट—साधा:** ब्रण पर मध्य तथा धूत लगाना चाहिए। यदि 7 दिन तक ब्रण में घृष्ट ब्रण के लक्षण उत्पन्न न हों तो उसकी चिकित्सा इन्स्ट्रुमेंट ब्रण के समान करनी चाहिए।

(1) छिन्न ब्रणों की चिकित्सा—(i) अधिक चौड़े मुख वाले ब्रणों को घुट करने के प्रस्ताव उनका सीवन कर्म एवं त्वचा चाहिये। सीवन कर्म (Primary closure) आचात लगने के 6 घण्टे (hours) के अन्दर नार देना चाहिए, अन्यथा इस अवधि के प्रस्ताव संक्रमण का वृद्धि न (growth) होकर शोफ प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है।

(ii) कटे हुए कान को अपने स्थान पर बैठा (Approximate) करके सीवन कर्म करें तथा रोगी के कान में तेल भर दें, (इससे ब्रण पर तेल की परत आ जाने से संक्रमण का भय नहीं रहता)।

(iii) ग्रीवा के पीछे तक कट जाने से जब वायु बाहर की निकलने लगे अर्थात् इवास नालिका कट जाए) तो ग्रीवा को अच्छी तरह बैठाकर सीवन करें। फिर अंग धूत से परिषेक करें। इस कर्म से सीवन स्थान धूत से अलिप्त हो जाता है जिससे संक्रमण नहीं होता तथा ब्रण में कोमलता बनी रहती है। रोगी की चिकित्सा लेताकर तथा उसे इसी स्थिति में अच्छ बिलायें (वैठने न दें) तथा रात्रि को भी ध्यान रखें कि ग्रीवा हिलने न पायें।

(iv) हाथ पाँव कट जाने पर सब संरचनाओं को अपने स्थान पर बैठाकर सीवन कर्म कर दें तथा फिर उसे तेल से सिंचित करके बैलितक बैंध बांध देना चाहिए।

(v) वक्ष में ब्रण होने पर रोगी को उत्तर लेटायें तथा पीठ में ब्रण होने पर सीधा लेटाएं। ऐसा करने से ब्रण से लाव एवं रक्त बाहर आ जाता है तथा ब्रण

से रक्त का गुल्म (Hematoma) नहीं बनता। संधान, स्कंदन, दहन तथा पाचन कर्म द्वारा रक्ताक्षाक अन्दर करके सीबन करते हैं। फिर कोमल स्थान पर 5 दिन पश्चात् तथा अन्त लग्नानों पर 7-9 दिन पश्चात् टांके काटकर झूँचों को निकाल दें।

(vi) शाखा के पूर्ण रूप से अलग हो जाने पर ब्रण (अतिपातित ब्रण) को उच्च तैल से दबाय करके वहाँ कोश बनवाय दें। इससे रक्त साथ बन्द हो जाता है तथा ब्रण स्थान में निर्जीवाणकरण (Sterilization) भी हो जाता है।

(vii) जिन ब्रणों में सीबन कर्म न किया गया हो उनमें चन्दन, हरिद्रा, नियड़-गु पर्वं लोधाहि रोपण द्रव्यों से सिद्ध घृत या सिद्ध तैल द्वारा रोपण कर्म करना चाहिए।

(2) निकल ब्रणों की चिकित्सा—(i) सर्वप्रथम भिन्न ब्रणों से निकल रहे रक्तस्राव की बन्द करें, फिर आमाय में साड़िचत रक्त को निकालें। रक्तताल्पता होने पर रक्त की पूर्ति के लिये रक्ताधान (Blood transfusion) करें और ब्रणों का सीबन कर्म द्वारा संधान करें।

(ii) यदि नेत्र गोलक भिन्न होकर बाहर को निकल आए तो उसकी सिराओं को बिना हानि पहुँचाए अपने स्थान पर बैठायें और कमल पत्र से हल्का सा दबाकर मधु तथा घृत से तप्पण करें और घृत की नस्य दें।

(iii) उदर के बिन्द होने पर जब मेद बर्ति (Omentum) बाहर आ जाये तो उल पर कषाय बृक्षों की भूमि (Styptic) लगाकर एवं उसे बाँधकर अग्नितप्त शस्त्र से काट दें, इससे रक्तस्राव बन्द हो जाता है तथा संकमण भी नहीं होता। फिर घृत लगाकर पट्टी बाँध दें, इससे वपा अपने से अन्दर छली जाती है।

(iv) आमाय में रक्त भरने पर बमन करायें तथा पक्कनाशय में रक्त भरते पर विरेचन कराएं और गोमूत्र की बस्ति दें। रक्तताल्पता होने पर रोगी को रक्त का पान करायें [आजकल रक्ताधान (Blood transfusion) करते हैं]। रोगी को स्नेह रहित यवाग् एवं मांस रस (proteins) खाने को दें।

(v) यदि आम विदीण हो जाए और बाहर निकल आए तो उसमें ब्रण वर्तमान (wound edges) को मोटी-मोटी चीटियों (Ants) द्वारा बटवाये तथा ब्रण के मिल जाने पर चीटियों को गर्दन से काट देना चाहिए। चीटियों का मुख ब्रण वर्तमान को जोड़ने (Approximate) में किलप्स (Clips) का काम करता है। आजकल नी शोक्युलत अन्त के धाव का सीबन धारे से नहीं करते, ऐसा करने से ब्रण का अवलभीत और उदर में डान दें निर्जीवाणकरण (Sterilization) पर पूर्ण ध्यान देना चाहिए।

(vi) यदि आम विद न हुई हो तो उसे धोकर तथा घृत से लिप्त करें, फिर ब्रण में रोपण औरधियों का चूर्ण भर दें [अतिवित्तृत घृत ब्रणों में सीरम-

चाहिए एवं अंगुलियों के नख काटकर ही यह कर्म करना चाहिए। यदि अन्त उदर में न जा रही हो तो रोगी को गुदगुदी करें या शीतल जल से कम्पकम्पी उठायें या उसके दोनों हाथ एवं पांव पकड़कर दो आदमी उसे झूले की गति समान अच्छी प्रकार अन्त उदर में हिलायें (इन कर्मों से उदर की भेड़ियों की एंठन में शिथिलता आ जाती है जिससे औरधियाँ (Muscle relaxants) देते हैं। शाल्य कर्म के समय अन्त को शुरू कर होने दें, उसे गीते कपड़े से ढक कर रखें। यदि इन विधियों से आन्त उदर में न जाये तो ब्रण को अधिक चौड़ा कर लेना चाहिए। अन्त के उलझ जाने (Volvulus) से मृत्यु हो जाती है, अतः इसे सावधानी से अन्दर प्रविलट करना चाहिए। फिर ब्रण का सन्धान (Approximate) करके पट्टी बाँध दें तथा ब्रण पर रोपण तैल लगाते रहें।

(vii) यदि आघात से अण बाहर आ जाये तो उन्हें अणडकोष में डाल दें तथा तुर्खसेवनी सीबन कर्म द्वारा ब्रण का संधान कर्म करके अणडकोष के ऊपर गोफणा बन्ध बाँध दें तत्पश्चात् उसका ब्रण वर्त उपचार करें।

(viii) सिर में छिद्र हो जाने पर यदि मस्तुलुङ्ग (C.S.F.) बहने लगे तो उसमें बालों की बर्ति डाल दें तथा फिर जैसे-जैसे ब्रण का रोपण होता जाये एक-एक शाल निकालते जायें। बालों की बर्ति न देने से रोगी मर जाता है (Due to the loss of C.S.F.).

(3) बिदू ब्रण की चिकित्सा—बिदू ब्रण में से शाल्य को निकालकर अक्रियावकाश (Dead space) में तेल से भिगोई बर्ति डाल दें (इससे बहाँ पर लाल तो का संचय नहीं होता) जब रक्त लाल हो जाये तो इसका स्थान ब्रणी सदृश रोपण कर्म करें।। गम्भीर तथा सूक्ष्म ब्रणों में जहाँ बर्ति न आ सके उन्हें रक्त रहित बनाए कर फिर उनमें पतली सी नाड़ी डालकर उसके द्वारा अणुतल से सिचन करें, तत्पश्चात् उसमें रोपण तैलों की डालना चाहिए।

(4) पिच्छित ब्रण की चिकित्सा—पिच्छित ब्रण में भग्न के समान चिकित्सा करें अणर्त ब्रण का शोधन या रोपण घूँतों या तेलों द्वारा चिकित्सा करें। अस्थि की चिकित्सा में पहले शीतल उपचार द्वारा वेदना शान्त करें फिर अस्थि को स्वस्थान पर लाकर कुछाओं से स्थिर कर दें।

(5) अल ब्रण की चिकित्सा—इसमें श्वास विधि से चिकित्सा करें अथवा मड़ को घृत या तैल में मिशकर इससे ब्रण का असेचन करें तथा फिर रोपण कर्म करें।

(6) अल ब्रण की चिकित्सा—इसमें शीतल उपचार से वेदना को शांत करें, फिर ब्रण में रोपण औरधियों का चूर्ण भर दें [अतिवित्तृत घृत ब्रणों में सीरम-

(Serum) निकलने से उसकी कमी हो जाने पर रोगी को सिरा ढारा सीरम या मोटीन (Inj. Hermin) दें। आयुर्वेद मतानुसार जैसे तेल की छोणी में लिटाएं और उसे मासरस (Flesh proteins) खाने को दें।

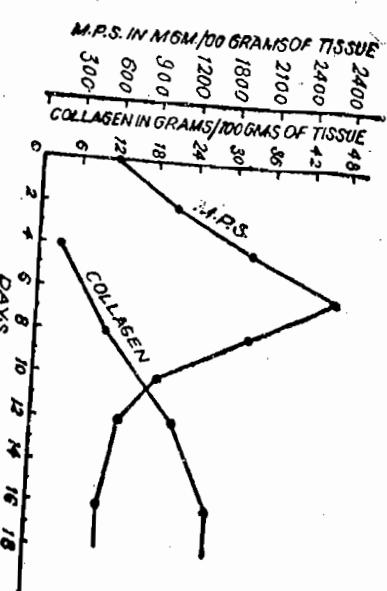
(7) सच्च: ब्रण एवं कुहड़न ब्रणों की विकित्सा :— यह शीघ्रता से (अधिक 7 दिन के अन्दर) रोपित नहीं होते, अतः इन ब्रणों में दोषज ब्रणों के समान विकित्सा कहरे। “सद्योवणानां सप्तहं पश्चात् पूर्वोत्तमाचरेत् ॥” इनमें पहले रक्तमोहण तथा विरेचन द्वारा दोषों को निकाले, किर ब्रण का आरब्धादि तथा मुरसादि गण के काशाणों से प्रसालन करें तथा इन्हीं से सिद्ध तैल से या क्षार द्रव्यों के तैल से शोधन एवं रोपण करें, जैसे—

ब्रातज ब्रण में सेंधा, एरण्ड, निशोष का कल्क, पितज ब्रण में निशोष, हल्दी, मुर्जी एवं तिल का कल्क और कफज ब्रण में तिल, तेजबल, दत्ती, सज्जीभार एवं चिनक कल्क का प्रयोग करना चाहिये।

### आधुनिक मतानुसार ब्रण रोपण काल में होने वाले परिवर्तन

ब्रण रोपण काल में हो रहे चर्यापचय (Metabolic) तथा जीव रासायनिक (Biocchemical) परिवर्तनों का ज्ञान ब्रण के रासायनिक (Chemical) तथा ऊर्जिय रासायनिक (Histo chemical) परिवर्तनों से होता है।

जोक आघात के 12 घण्टे के पश्चात् उत्पन्न होती है। 24-72 घण्टे तक रक्त के श्वेतात् ब्रण में स्थित जीवाणुओं को तथा अन्य मृतोत्तकों (Slough) को तेजी से भक्षण करके ब्रण को शुद्ध कर देते हैं। 3-5 दिन में तनु प्रस्तु (Fibroblasts) अत्यधिक भाजा में निर्मित होते हैं तथा इसी काल में म्यूकोपोलिसेक्वराइड का भी निर्माण होता है। यह अपरिपक्व रोहणाड़-कुर (Immature granulation) बढ़े-2 (छिप्र) ब्रणों में तीसरे दिन उत्पन्न होते हैं। इससे रक्त वाहिकाओं का निर्माण होता है। यिन्हें ब्रणों में इनकी लगभग अनुपरिशित होने से रक्त वाहिकाओं का भी न के बराबर ही निर्माण होता है। फिर 5-25 दिन तक ब्रण में कोलेजन (Collagen) का निर्माण प्रातिदिन बढ़ता जाता है, इससे ब्रण का तनाव बल (Tensile strength) अधिक होला जाता है, और एक विशेष स्तर पर आकर इसका निर्माण होता है। म्यूकोपोलिसेक्वराइडज (Mucopolysaccharides) तथा कोलेजन का अधिक होला जाता है, अतः जब कोलेजन की अधिक उत्पत्ति होती है तो म्यूकोपोलिसेक्वराइडज का ब्रण में हास होना शुल्क हो जाता है तथा ब्रण म्यूकोपोलिसेक्वराइडज का निर्माण हो सहा होता है जस समय कोलेजन की उत्पत्ति अभी नहीं हुई होती।



ब्रण रोपण काल में जीव रासायनिक परिवर्तन  
रेखाचित्र न० ४

सद्य: ब्रण (Traumatic wound) में विशेष प्रकार के संक्रमण होने पर अनेक

- (1) कोथ (Gangrene)
- (2) क्लोइय फोफ (Cellulitis)
- (3) निराप (Erysipelas)
- (4) धुत्स्तम्भ (Tetanus)
- (5) जालक ब्रण (Actinomycosis)

### (1) कोथ

बृहत्यांक प्रतीभवन (Macroscopic putrefaction) के कारण नष्ट होता है।

ग्रन्ज्रेन (Gangrene) को कोथ कोथ (Gangrene) कहते हैं।

निम्न हेतु कोथ उत्पन्न करने में सहायक होते हैं।  
(i) आघात—अत्यधिक आघात (Severe injuries), शायाज ब्रण (Bed sores), अवगाड़ कुरा रोगियों के आघातज ब्रण इत्यादि अवस्थाओं में अतियों में विषयन (Devitalization) अधिक कोथ उत्पन्न होती है।

(ii) रक्तवाहिनियों की ड्याइग्राफी—रक्तवाहिनियों में अनेक रोग हो सकते हैं जैसे बरजर का रोग, रेनाड का रोग एवं सिराओं की विकृतियाँ इत्यादि।

(क) बरजर का रोग (Burguer's disease)—यह व्याख्या अधिकतर पुरुषों में पाई जाती है। धूम्रपान से, दृढ़ावस्था में धमनियों में कैलिंगम (Calcium) के जमा होने से तथा हृदयात्मावरण शोफ (Endocarditis) से उत्पन्न धमनी अन्तःशल्यता इत्यादि कारणों से धमनियों में शोफ तथा एंठन (Spasm) उत्पन्न हो जाती है। इससे धमनियों का संकोच होकर धमनियों का विवर (lumen) कम हो जाता है। इस रोग से प्रभावित श्यान पर रक्त की न्यूनता होकर कोथ उत्पन्न होती है।

(ख) रेनाड का रोग (Raynaud's disease)—यह व्याधि प्रायः स्त्रियों में होती है। शाखाओं की धमनियों शीत के प्रति सूक्ष्म ग्राही (Sensitive) होने पर धमनियों में ऐंठन तथा संकोच उत्पन्न हो जाता है, इससे उत्से रक्त पड़ जाता है तथा रक्तवाहिना के अन्तिम पृति प्रास्त में रक्त न्यूनता होकर कोथ उत्पन्न हो जाती है।

(iii) सिराओं की विकृति—ग्राम-धीर शिराओं में घनाकृता उत्पन्न होने से जैसे अपस्थिति सिरा (Varicose vein) में तथा सिरा में सूचीबेध से सिराशेष उत्पन्न होने से (सिराओं में रक्त परिव्रमण के अवरुद्ध या अति न्यून हो जाने पर) उत्पन्न होने में कोथ उत्पन्न हो जाती है।

(iv) अन्य रोग—मधुमेह के रोगियों में परिसरीयतन्त्रिका शोफ (Peripherial neuritis) तथा ऊर्तियों में ग्लूकोस (Glucose) के अधिक मात्रा में आ जाने से, एवं धमनियों में कैलिंगम (Calcium) के जमने से धातुओं में रक्त न्यूनता आ जाती है, इनसे संकरण ऊर्तियों में शीघ्रता से फैलकर कोथ उत्पन्न करता है।

(v) संकमण—कोथ के जीवाणु (Cl. welchii, the gram positive Anaerobic bacteria and Cl. sporogens) प्रोटीन का विचरण (Portoanalysis) करते हैं तथा अमोनिया और सल्फोरेटिड हाइड्रोजन (Ammonia and sulphated hydrogen) उत्पन्न करते हैं। इनका व्रण पर संकमण होने से उत्से उत्पन्न हुई रेशेषियों में भर जाती है। गैस-का रक्त वाहिनियों पर दाढ़ पड़ने से उनमें रक्ताल्पता उत्पन्न होकर कोथ उत्पन्न हो जाती है। कोथ के जीवाणु पुरुष के मल (Faeces) एवं गन्दे कपड़ों में रहते हैं, इसीलिये मुक्त ते व्रण को शुद्ध रखने को कोथ ब्रणिन को परिच वस्त्रादि पहनाकर रखने के लिये कहा है।

### शल्य

कोथ में दो प्रकार के लक्षण पाए जाते हैं।

**केदः**

कोथ आई तथा शुक्क क्षेत्र से दो प्रकार की होती है। निम्न तालिका में इन दोनों में भेद दिखाया गया है।

### I सार्व दृष्टिक लक्षण

#### II स्थानीय लक्षण

I सार्व दृष्टिक लक्षण—(i) कोथ से प्रभावित अंग के कियाशील होने पर (जैसे चलने इत्यादि से) ऊर्तियों में ऑक्सीजन की न्यूनता हो जाती है (रक्त प्रवाह के मन्द होने से), इससे ऊर्तियों में एंठन (Spasm) आती है तथा तीव्र नेदना होने लगती है।

(ii) रक्त सञ्चार में मन्दता आ जाने से प्रभावित अंग में विश्राम काल में भी बेदना रहते लगती है।

(iii) संकमण जन्य कोथ में विशाक्तता (Toxaemia) होने से ज्वर, बमन तथा रक्त भार में हास इत्यादि सार्व दृष्टिक लक्षण उत्पन्न होने लगते हैं।

II स्थानीय लक्षण—(i) प्रभावित अंग में हिमोग्लोबिन (Haemoglobin) के विचरण (Disintegration) होने से विवरणता (Discolouration) उत्पन्न हो जाती है।

(ii) धमनियों में स्थान लम्बाप्त हो जाता है तथा केशिकाओं में रक्त की अद्विस्थिति हो जाने से त्वचा को दबाने पर त्वचा के दंग में कोई परिवर्तन नहीं जाता।

(iii) प्रभावित स्थान पर कठमा का अभाव (Loss of heat) रहता है।

(iv) संवेदना समाप्त (Loss of sensation) हो जाती है।

(v) प्रभावित अंग में किया का अभाव (Loss of function) हो जाता है।

योंगे स्थान में कोथ होने पर घृतोत्तियों (Dead tissues) का शोषण हो जाता है। विस्तृत कोथ होने पर तथा साथ में संक्रमण रहने पर वहाँ की मृतोत्तियों का पृथ भवन होकर वह पृति के रूप में घारीर से (Slough out) बाहर निकल जाती है।

## शुष्क तथा आवृत कोथ में भेद

शुष्क कोथ	आवृत कोथ
(i) इसमें रक्त प्रवाह धीमे-धीमे होता है।	(i) सिरा धमनी इत्यादि का माने सहसा बढ़ हो जाता है।
(ii) इसमें संक्रमण का अभाव होता है।	(ii) इसमें संक्रमण उपस्थित होता है।
(iii) अग्न शुष्क या स्निग्ध शुरुआत से युक्त होता है।	(iii) इसमें काले छाले पश्च जाते हैं तथा डुगोन्या आती है।
(iv) इसमें सीमा निर्धारण रेखा (Demarcation line) नहीं होती।	(iv) इसमें सीमा निर्धारण रेखा होती है।
(v) विषाक्तता (Toxaemia) के लक्षण नहीं होते।	(v) संक्रमण के विषों के शोषण होने से विषाक्तता के लक्षण, जैसे ज्वर, वमनादि उत्पन्न होते हैं।

### चिकित्सा :

कोष की चिकित्सा इसके उत्पादक कारण तथा इसकी अवस्थाओं पर निर्भर करती है जैसे—

(i) **मधुमेह**—मधुमेह के रोगी में कोष होने पर उसे मधुमेह की चिकित्सा होनी चाहिये। प्रभावित अग्न को पूर्ण विआम दें तथा संक्रमण के अनुसार प्रति-जीवाणु औषधि (Antibiotic) का प्रयोग करें। सीमा निर्धारण रेखा के बनने पर उस रेखा से अंगविच्छेद (Amputation) कर देना चाहिये। यदि यह रेखा न बनी हो तो मृतोतकों (Slough) का स्थानीय छेदन (Excision) कर दें। ब्रण के रोपण होने तक प्रूतिरोधक द्रव्यों (Antiseptics) से उसका प्रशालण करें रहना चाहिये।

(ii) **प्रमोह पिङ्गिका** (Carbuncle) के रोगी आकार में बढ़ रही हों तो इसका क्षेत्र (Excision) कर देना चाहिये। पीड़ा शान्त करने के लिए इनफ्रारेड (Infrared) किरणों का प्रयोग करें। ब्रण पर संगतीय घटक सलफेट और नित्रियल टार्टारेट (MgSO<sub>4</sub> + Glycerine) के घोल को लगाएं और रोगी को जाने के लिये विटामिन एंब लोहुक पदार्थ देने चाहिये।

(iii) **सिरा अन्तः शल्य**—सिरा में अन्तः शल्य (Embolus) होने पर

उसका क्षेत्र कर्म (Emboleotomy) कर दें। कटी उई धमनी का सन्धान की द्वारा रखें तथा धमनियों को प्रसारित अवस्था में रखें (By Ponicol i.e. Nicotinyl alcohol tartate 2.5 to 50 mgs. orally 4 times daily)।

(iv) पदि कोथ संक्रमण युक्त हो तो ब्रण को युजोल (Eusol) तथा हाइड्रोजन पराक्साइड (Hydrogen peroxide) से प्रशालन करें। मृतोतकों (Slough) का छेत्र या अंगविच्छेद कर दें। रोगी को ५० जी० एस सीरम को सूची बेष्ट से दें तित्रिय संक्रमण (Secondary infection) होने पर प्रतिजीवीलेटन का सूचीबेष्ट जीवाणु औषधियाँ (antibiotics) देनी चाहिये।

## [2] उत्तीर्ण शोफ

(Cellulitis)

यह अधित्वचा में प्रसरित होने वाली गोपक प्राप्ति: पूर्यवन्न (Suppuration coccus)] छोट-छोट वृगों ढारा अधि: त्वचा तक प्रतुचकार फिर हीन प्रतिरोधक उत्पन्न करत है।

इसमें त्वचा पर रक्तमा, कण्ठ, तीव्र वेदना, शोफ, स्पष्ट-अस्थिता (tenderness), ज्वर तथा जीतता (rigor) इत्यादि लक्षण उत्पन्न होते हैं।

### चिकित्सा :

(i) रोगी को पीलटक आहार दें।

(ii) पीन्सिलीन (Penicillin) या अच उपयुक्त प्रतिजीवी औषधियों (Antibiotics) द्वारा चिकित्सा करें।

(iii) तुमोत्पादन होने पर भेदन कर्म हारा पूर्य का विस्तावण कर दें तथा प्रूतिरोधी (Antiseptic) मरहमों का स्थानीय प्रयोग करें।

(iv) प्रभावित स्थान पर लासिका परिष्क्रमण बढ़ाने के लिए ५ प्रतिशत उत्तण जल से अवाहार (5% Hot saline bath) करें।

(v) मधुमेह या प्रमेह जैसे (Urinary insufficiency) रोग होने पर इन रोगों की आवश्यक चिकित्सा भी साध-साथ करनी चाहिए।

### [3] विसर्प

#### (Erysipelas)

यह अधःत्वचा में प्रसरित होने वाली ब्रणशोष है; विसर्प व्याधि हीन-प्रतिरोध-शक्ति (Low resistance) वाले तथा कुश रोगियों में, स्ट्रॉटो काकस हिमोलाइटिक (Streptococcus haemolytic) के संक्षण होने से उत्पन्न होती है।

#### लक्षण :

इसमें स्थानीय शोफ, रकिमा, स्पर्श-असह्यता (Tenderness), इब्यू (Oedema) तथा त्वचा फफोलों (Blebs) से युक्त हो जाती है। रोगी में अड्डमद, (Rigor) तथा ऊवरादि लक्षण ऊनीय शोफ (Cellulitis) के समान मिलते हैं। इससे लक्षित कोष(Gangrene) भी हो सकती है। इसमें लक्षित ऊनीय शोफ के युक्त पर तन्त्रमयता (Fibrosis) होने से उनका मुख बन्द हो जाता है जिससे दोषर्च तन्त्रमयता (Persistent oedema) उत्पन्न हो जाती है।

#### चिकित्सा :

यह रोग संसर्ग (Contact) से फैलता है इसलिए विसर्प के रोगी को अलग अलग रोग रखना चाहिये। रोगी कों पैक्सिलीन (Penicillin) या अन्य उपचार (Isolate) ही रखना चाहिये। रोगी कों एंटीबायोटिक्स (Antibiotics) देनी चाहिए। मैरीनिशम सल्फेट ( $MgSO_4$ ) प्रतिजीवाण औषधियाँ (Antibiotics) देनी चाहिए। इक्थियोल मरहम(Ichthyol ointment) का स्थानीय प्रतीप कर्त तथा बेदना के लिए इक्थियोल मरहम(Opisthotonus) के लिए प्रभावित स्थान (Affected area) का स्थानीय प्रसार रोकने के लिए प्रभावित स्थान (Affected area) की अलद्वायापलट (Ultraviolet) किलाणों द्वारा चिकित्सा करें।

### [4] धनुष्टस्तम्भ

#### (Tetanus)

यह रोग धनुष्टस्तम्भ के जीवाणु (Clostridium tetani) द्वारा त्रण में संक्रम होने पर उत्पन्न होता है। यह जीवाणु खाद युक्त मिट्टी में बहुतायत में रहता है। यह बात निमेक्षी (Anaerobic) होने से मृतोंकों (slough) से अधिक चिकित्सा की अपेक्षा कठिन होती है।

मेव

यह रोग लाक्षणिक दृष्टि (Clinically) से चार प्रकार का होता है—

(i) अव्याधि हीन-प्रतिरोध-शक्ति (Low resistance) से चार प्रकार को निम्न प्रकार से भी चिकित्सा किया जाता है—

- (i) तीव्र (Acute)
- (ii) जीर्ण (Chronic)
- (iii) विलम्बित (Delayed)
- (iv) स्थानीय (Local)

इन भेदों के अतिरिक्त धनुष्टस्तम्भ को निम्न प्रकार से भी चिकित्सा किया जाता है—

(v) शिरोगत धनुष्टस्तम्भ (Head tetanus)

(vi) बलबार धनुष्टस्तम्भ (Bulbar tetanus)

(vii) नवजातगत धनुष्टस्तम्भ (Tetanus neonatorum)

#### लक्षण :

(i) **तीव्र धनुष्टस्तम्भ (Acute tetanus)**—इसका उद्भव काल (Incubation period) 1.5 दिन से भी कम होता है। इसमें सर्व प्रथम बैचंनी होती है तथा तापमान (Temperature) और नाड़ी (Pulse) की गति कुछ अधिक हो जाती है। 24 घण्टे के पश्चात् मांसपेशियों में ऐठन अनी सुल हो जाती है, जो पहले पीठ पर फिर गद्दन व हृत की पेशियों पर और अंतर इसके पश्चात् चेहरे की पेशियों पर आती है। इस अवस्था को राईसस सारडोनिकस (Risus Sardonicus) भी कहते हैं, क्योंकि इसमें चेहरे की आँखें एक विशेष प्रकार के बन्दर के चेहरे-सदृश बन जाती है। अत में ऐठन सम्पूर्ण शरीर गत पेशियों में फैल जाती है। इससे रोगी धनुष तन्त्रमयता (Opisthotonus) के समान शाय्या पर शिर और एड़ी के बल लेटा रहता है। ऐठन के बग इसी तीव्रता से आते हैं जिससे कि पेशियाँ भी विदीर्घ (Rupture) हो जाया करती हैं। इसमें मृत्यु का कारण हृदय की गति का अवरोध (Cardiac arrest), श्वान्ति (Exhaustion) या फिर श्वास की पेशियों में ऐठन आने से श्वासावरोध होता है।

कुचले की चिकित्सा (Strychnin poisoning) से भी पेशियों में ऐठन आती है, परन्तु यह शाखाखों से प्रारम्भ होती है तथा इसके दो आक्षेप के बेगों के बीच में पेशियाँ बिलकुल चिकित्सा के दो बेगों के बीच आती हैं, जबकि धनुष्टस्तम्भ के दो बेगों में पेशियाँ पूर्ण रूप से चिकित्सा की गति होती है।

(ii) **जीर्ण धनुष्टस्तम्भ (Chronic tetanus)**—इसकी उद्भव काल (Incubation period) 2 से 6 सप्ताह तक होता है तथा इसमें लक्षण भी लीढ़-धनुष्टस्तम्भ की अपेक्षा कम तीव्र होते हैं।

(iii) **विलम्बित धनुष्टस्तम्भ (Delayed tetanus)**—इस अधिका

संक्रामक जीवाणु ब्राण रोपण होने पर भी ब्राण चिह्न के तत्त्वों में देव तक पड़ा रहता है। कई वर्ष के पश्चात् वहाँ पर पुनः आघातज ब्राण बनने से संक्रमण फिर से कियाशील हो जाता है, इससे उत्पन्न धनुष्टम्भ को लिलिक्ष धनुष्टम्भ कहते हैं।

(iv) स्थानीय धनुष्टम्भ (Local tetanus)—इसमें धनुष्टम्भ के रोगी का सर्व शारीरगत विष तो ऐटिटेन-नस-सीरम (Anti tetanus serum i.e.A.T.S.) के सूचीबेद से समाप्त हो जाता है परन्तु ब्राण में पड़े संक्रमण से उत्पन्न हो उह विष के सूचीबेद से समाप्त हो जाता है परन्तु ब्राण में पड़े संक्रमण से उत्पन्न हो उह विष आस-पास की भेषियों की तानिकाओं (Nerves) पर प्रभाव करता रहता है। इससे केवल स्थानीय भेषियों में ऐठन होती है।

(v) छिरोगत धनुष्टम्भ (Head tetanus)—जब चेहरे के आघात इन जीवाणुओं द्वारा संक्रमित होते हैं तो इनसे उत्पन्न विष चेहरे की तानिकाओं (Nerves) से होते हुए भृत्याकृति में जाते हैं। विषों के प्रभाव से इन तानिकाओं (Nerves) में घोफ (Inflammation) उत्पन्न हो जाती है। इससे उन तानिकाओं द्वारा संचालित भेषियों में हल्का सा घात (Paralysis) उत्पन्न हो जाता है।

(vi) बल्लबार धनुष्टम्भ (Bulbar tetanus)—यह संक्रामक जीवाणु के मुख द्वारा नियंत्रित जाने पर उत्पन्न होता है, इसमें ऐठन के बोगों का प्रारम्भ आशयों से होता है। इसमें ऐठन सर्वप्रथम खास की भेषियों से प्रारम्भ होती है, इससे रोगी की खासावरोध होकर तुरन्त मृत्यु हो जाती है।

(vii) नवजातगत धनुष्टम्भ (Tetanus neonatorum)—जियुग की नाभि नाल (Umbilical cord) के ब्राण द्वारा संक्रमण होने से उत्पन्न धनुष्टम्भ की नवजातगत धनुष्टम्भ कहते हैं।

### चिकित्सा :

(i) रोगविरोधी चिकित्सा (Prophylactic treatment)—इस रोग की नियंत्रक चिकित्सा के लिए टेनस टाक्साईड (Tetanus toxoid) की सूची जैविक नियंत्रकमित होने पर होता है। इसका ब्राण गन्धक के काग (Sulpher granules) से भरा हुआ प्रतीत होता है। इन कणों को सूक्ष्य दर्शायनक (Microscope) पश्चात् 9 मास बाद और फिर 4 वर्ष पश्चात् (Recall dose) पुनः देते हैं। रोगी पश्चात् 9 मास बाद और फिर किसी को सदा: ब्राण उत्पन्न होता है तो नियंत्रक चिकित्सा हो जाने के पश्चात् यदि किसी को सदा: ब्राण उत्पन्न होता है तो 12 वर्ष से बड़ी आयु में ४० टी० एस १,५०० युनिट्स (Inj. A. T. S. 1,500 units) मात्रा को सूची द्वारा पेशी में दें और वच्चों में इसकी ७५० युनिट्स (Secondary infection) होने पर इससे पूर्य साव निकलने लगता है।

(ii) रोगी की चिकित्सा—(क) धनुष्टम्भ के रोगी को अंधेरे कमरे में लें।

कर रखें, इससे रोगी कम से कम उत्तेजित होता है।

(ब) ब्रोमाइड या पैरलिडिहाइड (Bromides or paraldehyde) द्वारा रोगी को शान्त (Sedate) रखें।

(ग) रोगी को सिरा द्वारा पोषण पदार्थ (Glucose saline, proteins etc.) दें, या राइल की नलिका (Ryle's tube) को नासिका द्वारा आमाशय में डलकर उत्पन्न धनुष्टम्भ पदार्थ दें।

(घ) रोगी को माइनेसिन (Myanesin 0.5-1.0 grams) चार-चार घंटे पश्चात् देते रहें, इससे रोगी संज्ञानाश की स्थिति में पड़ा रहता है।

(इ.) खास प्राणाली में नासाद्वारा रखड़ की 'नासा-अन्तः-खास-नलिका' (Nasotracheal tube) डालकर रोगी के खास पर पूर्ण नियन्त्रण रखें या फिर ट्रिक्योस्टोमी (Tracheostomy) कर देनी चाहिए।

(च) ए० टी० एस की 100,000 अन्तर्राष्ट्रीय यूनिट्स मात्रा (Inj. A. T. S. 100,000 international units) को आधा भेषी गत सूचीबेद से दें तथा आधा सिरा द्वारा दें। यह मात्रा 7 दिन तक रक्त में बराबर बनी रहती है। आब्द यक्षिता होने पर 50,000 यूनिट्स और दें।

(छ) रोग का उद्भवन काल (Incubation period) जितना कम होता है रोग उतना ही अधिक भयानक होता है, इसलिए कम उद्भवन काल होने पर चिकित्सा शीघ्रता ले करनी चाहिए।

### जातक ब्राण

#### (Actinomycosis)

यह रोग ब्राण के स्ट्रोक्टोपरोक्स एस्ट्रिनोमाइसिस (Streptothrix actinomycetes) से संक्रमित होने पर होता है। इसका ब्राण गन्धक के काग (Sulphur granules) से भरा हुआ प्रतीत होता है। इन कणों को सूक्ष्य दर्शायनक (Microscope) द्वारा देखने पर ये विषम रूप से बिखरी हुई Match sticks के नामान अर्थात् एक तिताष आकृति में दिखाई देता है। यह ब्राण धीरे-धीरे पास की धारुओं में कैलने जाता, कठिन (Indurated) तथा अनिश्चित वर्त्म (Indefinite edges) वाला होता है। यह चेहरे, गीवा, वस्त्र तथा उदर पर अधिक होता है। इसमें द्वितीय संक्रमण (Secondary infection) होने पर इससे पूर्य साव निकलने लगता है।

(ग) रोगी को स्ट्रोक्टोमाइसिस एवं नितिसिस (Streptomyces and penicillin) को दीर्घकाल तक देते रहें। आयोजित युक्त युक्त (Iodised milk) दें। जन्म

का छेदन (Excision) कर दें। ब्रण के जीर्ण (Chronic) होने पर गम्भीर किरण (Deep X-ray) का प्रयोग करना चाहिये।

## दरध ब्रण

### (Burns)

तापजनन आघात (Thermogenic injuries), जोहे यह शीत से उत्पन्न है या उष्णता (उष्ण जल, भाप, वस्त्रों की आग से, पिघली हुई धातुओं से, रासायनिक पदार्थ, बिजली इत्यादि) इन दोनों से एक जैसी मूल विकृति (Basic pathology) उत्पन्न होती है। इन दोनों प्रकार के आघातों को आजकल दरध ब्रण के अवधारण्त मान लिया गया है। सुन्दर ते हजारों वर्ष पूर्व अति शीत से उत्पन्न आघात को भी धूम दरध कह कर इसे भी दरध का ही एक भेद माना है।

**मेव :** (1) रोग लक्षणिक दृष्टि के अनुसार (Clinically)—दरध ब्रण चार प्रकार होता है— (i) त्वचक दरध (ii) मास दरध (iii) सिरा स्नायु दरध (iv) अतिरिक्त अवधारण्त मान लिया गया है। हैटु अनुसार—हैटु अनुसार दरध ब्रण का होता है। (i) त्वचक दरध (ii) मास दरध (iii) सिरा स्नायु दरध (iv) अतिरिक्त अवधारण्त मान लिया गया है।

(2) दरधांश के अनुसार (Degree of burn)—दरध ब्रण चार प्रकार होता है— (i) प्लाई दरध (ii) दुर्द दरध (iii) स्थिरकृद दरध (iv) अति दरध।

(3) हैटु अनुसार—हैटु अनुसार दरध ब्रण का होता है। (i) रक्त दरध (ii) स्थिरकृद दरध (iii) शीतलवर्पातिल दरध (iv) वज्राग्नि दरध।

(4) धूम दरध (v) उष्णवात या आत्म (धूप) दरध।

(5) धूम दरध—इसमें दरध की उत्पत्ति (बालों के जलने से होती है), त्वचा तथा त्वचा का संकोच होता है। प्रथमांश दरध तथा द्वितीयांश दरध में भी लक्ष्यावधारण्त होती है (Skin is involved in 1st and 2nd degree burn)।

(6) मास दरध—इस दरध में मास कवूतर के समान वर्ण का हो जाता है। यह ब्रण थोड़ा शोक व बेदना युक्त तथा शुष्क और संकुचित हो जाता है। अवस्था तृतीयांश दरध ब्रण के अनुरूप होती है।

(7) स्त्रिया स्नायु दरध—इसमें दरध स्थान काले वर्ण का एवं ऊपर को जहां रहता है तथा ब्रण त्वचा का निरोध होता है (Complete burn of nerve vessels and tendons)। यह तृतीयांश दरध की उत्तर अवस्था है।

(8) अस्थि स्त्रिय दरध—इसमें दरध स्थान पर रुक्षता, लालिमा, कर्कना तथा कठिनता आ जाती है। यह भी तृतीयांश दरध की उत्तर अवस्था के साथ होता है।

(2) दरधांश के अनुसार (Degree of burn) दरध अंश के अनुसार दरध ब्रण चार प्रकार का होता है।

(i) प्लाई दरध—इसमें त्वचा में विवर्णता आ जाती है जैसे प्रथम अंश दरध (1st degree burn) में त्वरक्तिमा (Erythema) युक्त होती है।

(ii) दुर्द दरध—इस अवस्था में त्वचा पर छाले उठ आते हैं, दरध स्थान में लोड, पीड़ा, लालिमा तथा पाक उत्पन्न हो जाता है। [द्वितीयांश दरध ब्रण (2nd degree burn) में भी त्वरक्तिमा के साथ त्वचा पर फक्कोले (Blisters) पड़ जाते हैं]।

(iii) स्थिरकृद दरध—इस दरध में ब्रण पके हुए ताल फल के समान लाल ब्रण का, स्थिर, त्वचा रहित तथा रुक्षता इत्यादि सिरा स्नायु दरध के लक्षणों से युक्त रहता है। तृतीयांश दरध ब्रण (3rd degree burn) में त्वचा की सब परतें (layers) पूर्णतया जल जाती हैं तथा तीव्र ताप से त्वचा कृष्ण ब्रण की (Chard) होती है।

“तत्र सम्प्रदाये विकारोपशमो लाध्यवस्त्राण्याद्यरुच ।  
स्त्रिमन्तिपतिते व्याधो कृष्णता दद्यात्स्वप्नम् ॥” शु० स० ११

(iv) अति दरध—इस दरध ब्रण में गम्भीर धातुयें भी जल जाती हैं तथा शरीर की धातुओं का विघटन होता है। इसमें मास लटक जाता है तथा ल्लायु, अस्त्र संबंध इत्यादि सब रचनायें गहराई तक नष्ट हो जाती हैं। अतः दरध रोगी से ज्वर, राह, योस, मूच्छादि उपद्रव होते हैं। यह दरध अवस्था तृतीयांश दरध के समान बनति गम्भीरावस्था होती है।

(5) हैटु के अनुसार—हैटु के अनुसार दरध ब्रण (iii) शीतवर्पातिल दरध (iv) वज्राग्नि दरध (v) धूम दरध (vi) उष्णवात या आत्म दरध।

(i) रक्त दरध—रक्त दरध के अन्तर्गत आत्म दरध को रुक्ष दरध कहते हैं। (ii) स्थिरकृद दरध—उष्ण तरल या उष्ण स्थिरकृद विकृति (Chemical caustics) तथा अम्ल (Acids) स्त्रियांश पदार्थों से रक्त दरध के अन्तर्गत आत्म होते हैं। उष्ण तरल पदार्थ स्फुरण या हाहिनियों में प्रवेश करने से वे धातुओं को शीघ्रता से नष्ट कर देते हैं, इसलिए स्त्रिय दरध में बेदना अधिक होती है।

(iii) शीतवर्पातिल दरध—हैम युक्त पर्वतों से आमे वाली अतिशोत वायू शरीर की धातुओं को नष्ट करके लसिताय पोफ (Oedema) तथा विस्फोट (Blister)

उत्पात करती है। शीत दग्ध (Frost bite) -  $4^{\circ}\text{C}$  तापमान से होता है। इससे धमनियों तथा केशिकाओं में ऐंठन आ जाती है जिससे वे संकुचित हो जाती है।

वाहिनियों के संकोच जन्य अवरोध से स्थानीय अरक्तता (Ischaemia) तथा अंतिमाणि (Necrosis) हो जाता है। इससे केशिकाओं (Capillaries) की अंतः कला (Endothelium) का अंतिनाश हो जाने से फफोले (Blisters) [जो कोशिकाओं से प्लाज्मा के बाहर आने से बनते हैं] उत्पन्न हो जाते हैं।

(iv) बजारित दग्ध—बजारित (Lightning) के गिरने से दग्ध होने पर यदि रोगी बच जाए तो उसकी तुरन्त स्थान तथा शीत चिकित्सा करनी चाहिए।

(v) धूम दग्ध (Suffocation due to fumes)—घर में आग लगने से यदि कोई धूम उसके धूरे में कुछ देर तक रह जाए तो इससे उत्पन्न अवस्था को धूम दग्ध कहते हैं। इससे श्वास कड़दृता, अधिक छोड़ें, आँखें कास, आँखों में जलन, श्वास में धूम की गत्थ-गाढ़, तथा रस का जान होना नष्ट हो जाता है। तृष्णा, दाह और मृद्गी होती है। इससे विषाक्तता (Poisoning) होने पर यह गैस ( $\text{CO}_2$ ) हिमोरोबिन (Haemoglobin) से मिलकर उसकी आँखीजन ( $\text{O}_2$ ) बहने की क्षमता नष्ट कर देती है। इससे शरीर में ऑक्सीजन की कमी आ जाने से मृद्गी करना नष्ट कर देती है। इससे शरीर में धूमक्त होती है।

(vi) ऊर्जाघात या अतिप दग्ध (Heat stroke)—धूप या उष्ण वायु में अधिक तक रहने से तृष्णा, दाह, मृद्गी, ज्वरादि पित्र प्रकांप के लक्षण उत्पन्न होते हैं।

ज्वाराघात (Heat stroke) से हाइपोथलेमस (Hypothalamus) में स्थिरता ताप नियन्त्रण केन्द्र (Heat regulating centre), के क्रियाविहीन (Fail) होने से ताप नियन्त्रण केन्द्र (Heat regulating centre), ज्वर ( $104^{\circ}\text{F}$  से  $107^{\circ}$  तक), मृद्गी स्वेताभाव (Loss of sweating), ज्वर (ज्वर 104°F से  $107^{\circ}$  तक), अस्वेताभाव (Unconsciousness), शिरगूल, वमन, भ्रम (Giddiness), आँखेप (Convulsions), त्वचा रक्त बर्जी की लूप (Dry) तथा नाड़ी की गति तीव्र हो जाती है। इसमें दृष्टि का भी भ्रम हो जाता है और आँखों में अनेक प्रकार के प्रकाश के दिखाई देने लगते हैं।

ज्वला जग्न एंठन (Heat cramps)—धूप या ऊर्जाघात से, अनित के गैसों से, परिश्रम करने से एवं व्यायाम करने से अधिक स्वेत आता है। स्वेत के गैसों से लवण (Salts) भी निकल जाते हैं। शरीर में लवण की कमी से ऐनियों (Voluntary muscles) में ऐंठन (Cramps) आने लगती है। त्वचा शीतानी होती है, परन्तु शरीर का तापमान सामान्य रहता है।

अग्नि दग्ध की चिकित्सा, हेतु तथा दग्धांश के अनुसार (consider करके) करनी चाहिये।

(i) न्यूचट दग्ध—न्यूचट दग्ध में स्वेतन रक्त को पिघलाने के लिये अग्नि कम अर्थात् स्वेतन चिकित्सा करनी चाहिये तथा खाने के लिये त्रिकटु रसान्नजनादि उष्ण औषधियों देनी चाहिये।

(ii) उद्देश्य—उद्देश्य में यदि थोड़ा स्थान जला हो तो उपरोक्त उष्ण चिकित्सा करने चाहिए और यदि अधिक स्थान जला हो और दाह, तुषादि लक्षण उत्पन्न हो रहे हों तो शीतघृत का लेप, चन्दन, नागरमांथा, जीवन्ती इत्यादि शीत द्रव्यों के स्विन्न रक्त को पिघलाना चाहिये फिर शीत चिकित्सा करनी चाहिये। इस स्विन्न रक्त को पिघलाना चाहिये फिर शीत चिकित्सा करनी चाहिये।

(iii) सम्प्रक दग्ध—सम्प्रक दग्ध में निरतर दाह होती है। इसलिये व्यंजन, पिलखन, चन्दन, गेश, गिलोय इत्यादि शीत द्रव्यों का एवं धूत का लेप करें। या धूत और मधु का लेप, मुखहठी, चन्दनादि शीत द्रव्यों को लेपनार्थ तथा खाने के लिये दानों प्रगार से प्रयोग करें।

(iv) अति दग्ध—दग्धके हुए मांस को काटकर निकाल दें तथा पित्र विषर्प सदृश चिकित्सा करें। चावलों के चूर्ण को पीसकर धूत से लेप करें तथा कमल पत्र से दग्ध स्थान को ढककर रखें।

(v) रक्ष दग्ध—शीतल औषधियों से साधित धूत तथा तेल से, उपराक वर्णित विधि द्वारा स्थानीय स्थान चिकित्सा करें। खाने के लिये धूतादि स्थिरणों का प्रयोग करें।

(vi) शीतवर्षमिल दग्ध—शीत से प्रभावित अंग में व्यायाम के द्वारा उष्णता उत्पन्न करनी चाहिये। स्थानीय स्वेतन उष्णोन्नतार करना चाहिये। शीत दग्ध होने के पश्चात् दग्ध की सामान्य चिकित्सा धूत के लेपादि द्वारा करनी चाहिये।

(vii) बजारित दग्ध—बजारित दग्ध के पश्चात् यदि रोगी बच जाए तो उसकी उपरोक्त शीत द्रव्यों से निर्मित प्रदेह, प्रलेप, स्नेह, अध्यगादि द्वारा चिकित्सा करें।

(viii) धूम दग्ध—(क) सर्वप्रथम रोगी को आँखीजन देनी चाहिये या बुली हवा में लिटायें।

(ब) रोगी को वमन करवाकर कोळ्ठ की शुद्ध करें।

(ग) मधुर, अम्ल, लवण तथा कटु रस की औषधियों का कबल धारण करायें, इससे इन्द्रियां अपना कार्य करने के समर्थ हो जाती हैं।

(च) खाने के लिये लघु तथा स्निग्ध (द्रव्यादि) भोजन देना चाहिये।

### आधुनिक मतातुसार दर्श के भेद

आग, विद्युत, शार व अम्ल रासायनिक पदार्थ, बाल्प एवं उण द्रव्यों से दर्श होते हैं, उण द्रव्य से उपचत दर्श ब्रण को त्रिमय दर्श (Scald) कहते हैं।  $40^{\circ}\text{C}$  ( $104^{\circ}\text{F}$ ) तापमान तक की उणता को शरीर की धारुमें सहन कर सकती है,  $50^{\circ}\text{C}$  से ( $122^{\circ}\text{F}$ ) से  $55^{\circ}\text{C}$  के ताप में रक्त के श्वेतकण क्रियाविहीन हो जाते हैं तथा लाल कणों की आकृति में विषमता आ जाती है। इससे अधिक तापमान में होती है तथा केशिकाओं की छिक्किदता (permeability) बढ़ जाती है जिससे होती है तथा केशिकाओं की छिक्किदता (Oedema) हो जाता है। यह शोणक प्रथम 2.4 घण्टे में अत्यधिक लसिकामय शोफ (Oedema) होता है। यह शोणक प्रथम 14% burn in लिससे तीव्र स्तरवर्गीय (10% burn in children and adults) में होती है। इस अवधि के पश्चात् रक्त के लाल कण केशिकाओं की छिक्किदता में आकर रक्त जाते हैं जिससे रक्तल्पता उत्पन्न हो जाती है (Oedema fluid is high protein fluid, between lymph and plasma)।

$5^{\circ}\text{C}$  का ताप 3 सेकण्ड तक त्वचा के सम्पर्क में रहने से बेदायुक्त त्वचा रहने से तापमान होती है।  $60^{\circ}\text{C}$ - $65^{\circ}\text{C}$  का ताप 3 सेकण्ड तक त्वचा के सम्पर्क में विवरणता उत्पन्न होते हैं। (*Due to death of part of malpighian tubules से त्वचा में स्फीट उत्पन्न होते हैं।*)  $65^{\circ}\text{C}$  का ताप 3 सेकण्ड तक त्वचा के सम्पर्क में रहने से उपचत (Epidermis) पूर्ण रूप से नष्ट हो जाती है (गम्भीर स्थित स्वेद प्रभ्यांत तथा स्वेद वाहिकाओं में एवं केश कूप (Hair follicles) के नष्ट होने से बच जाने से), इसका रोपण किनारों से बनकर भीतर की जाती है जिससे ब्रण बरसतु (Scar) अधिक बनने से त्वचा की आकृति विकृत (Disfigure) हो जाती है।  $70^{\circ}\text{C}$  ताप पर रक्त वाहिकाओं में रक्त का स्फन्दन होता है। इससे अधिक ताप रहने से त्वचा पूर्णतया नष्ट हो जाती है। Full skin thickness burn को गम्भीर दर्श (Deep burn) कहते हैं। केवल उपचत त्वचा के नष्ट होने पर उत्पन्न दर्श (Superficial burn) कहते हैं। ताप के अत्यधिक होने पर पूर्ण त्वचा के साथ-साथ मुड़ धातुयांत्रिक (Soft tissues) भी नष्ट हो जाती है तथा उनका वर्ण कोयले के समान करता है। (Carbonised) हो जाता है। व्यावहारिक दृष्टि से दर्श ब्रण तीन प्रकार का होता है—

- (1) प्रथमांश दर्श (1st degree burn)
  - (2) द्वितीयांश दर्श (2nd degree burn)
  - (3) तृतीयांश दर्श (3rd degree burn)
- (1) प्रथमांश दर्श :—इस दर्श में ताप के कारण त्वचा पर केवल त्रिवट विवरणता होती है (It is due to vaso-constriction) तथा इसके पश्चात्

वाहिका का विस्फार (Vaso-dilatation) होकर लसिकामय शोफ (Oedema) एवं रक्किमा (Erythema) उत्पन्न हो जाती है, इसे प्रथमांश दर्श कहते हैं।

(2) द्वितीयांश दर्श—इस दर्श में ताप के कारण त्वचा के दोनों परत होकर त्वचा के दोनों परतों की अलग करके फकोलां अर्थात् विस्फोट (Vesicle) उत्पन्न कर देता है। फकोले के क्षमता ही अवधि में पुनः उत्पन्न हो जाती है।

(3) तृतीयांश दर्श—इस दर्श में तीव्र ताप के कारण या ताप के अधिक समय तक त्वचा के सम्पर्क में रहने के कारण, त्वचा के दोनों परत (Epidermis and dermis) प्रभावित (affected) हो जाते हैं या फिर नष्ट हो जाते हैं। दो सम्भावनाएँ पृष्ठनात् नष्ट हुई त्वचा शरीर से अलग हो जाती है तथा इससे उत्पन्न ब्रण पर रोहणांकुर ऊतक (Granulation tissue) उत्पन्न हो जाते हैं। इन रोहणांकुरों के एपिथेलियम (Epithelium) द्वारा उनके जाने (reepithited हो जाने) पर पहले ब्रण चिन्ह (Scar) बनाता है फिर इसके पश्चात् कभी-कभी यह ब्रण अति विकसित (Hyper trophied scar or keloid) हो जाता है। इस ब्रण चिन्ह के कारण संकोचक (Constrictions) उत्पन्न होकर यह उस स्थान को विकृत (Deform) कर देता है। यदि रोहणांकुरों के उत्पन्न होने पर ब्रण पर त्वचा का प्रत्यारोपण (skin grafting) कर दिया जाए तो ब्रण चिन्ह बहुत कम मात्रा में बनाता है।

### लक्षण :

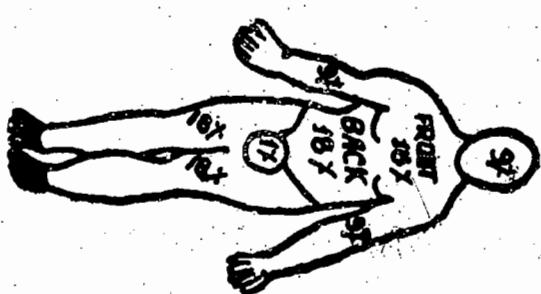
प्रथमांश तथा द्वितीयांश दर्श (1st degree and 2nd degree burn) में योग्य तथा बेदाना अधिक होती है। द्वितीयांश दर्श (3rd degree burn) में त्वचा के दोनों परत (Epidermis तथा dermis) अतः त्वचीय तकिकाओं (Subcutaneous nerves) के नष्ट हो जाने के कारण बेदाना शीघ्र ही समाप्त हो जाती है। द्वितीयांश दर्श से उत्पन्न गम्भीर ब्रण के तल से पलादी (Plasma) के अधिक मात्रा में निकालित होने के कारण निर्जलीकरण (Dehydration) की अवस्था उत्पन्न हो जाती है। [Loss of plasma from the wound surface causes high concentration of protein contents in the blood, which increases its osmotic pressure and the interstitial fluid is sucked into the blood capillaries. In case loss of fluid continues, consequently the intra-cellular fluid is also sucked out, thus causing various symptoms of dehydration.] ।

इससे रोगी को व्यास लगती है, शीत भी लग सकती है तथा स्तब्धता (Shock) के लक्षण उत्पन्न होने लगते हैं, रक्त के दाढ़ में हास, नाड़ी की गति में तीव्रता तथा नाड़ी धूमिंग होते लगती है, रक्त में जल के कम होने से हिमोत्कलीबिन की सान्दरता बढ़ जाती है (Hameo concentration is increased, thus increasing the haematoconcentration).

tocrit value of blood), परन्तु दो सम्पाद्य प्रस्ताव लसिकामय शोफ (Oedema) का द्रव रक्त में गोषित होने लगता है। इससे द्वितीय रक्ताल्पता (Secondary anaemia) उत्पन्न हो जाता है, इसलिये द्रव में रक्ताल्पता भी करना चाहिये। अतिथों के नष्ट होने से, उनसे उत्पन्न विषों के शोषण होने से या वहां पर संक्रमण होने से द्रव से दूसरे सप्ताह में अत्यधिक ज्वर, नाड़ी की गति तीव्र तथा कभी-कभी मृत्यु भी हो जाती है। ये लक्षण मृत उत्तरकों के विषों के कारण/ तथा Antigen antibody की प्रतिक्रिया से उत्पन्न होते हैं।

उत्तरान तथा गम्भीर द्रव की जानकारी—द्रव उत्तरान (superficial) है या गम्भीर (Deep) इसकी जानकारी 16-21 दिन प्रस्ताव ही हो पाती है। यदि ब्रण रोपण 16-21 दिन तक न हो तो गम्भीर द्रव अवस्था मानी जाती है। 16-21 दिन में ब्रण रोपण होने पर द्रव को उत्तरान द्रव कहा जाता है परती त्वचा में जैसे हाथ या पैर के पृष्ठ भाग में या अण्ड कोष में यदि (i) द्रव के प्रस्ताव स्वेत धातु (white coagulated surface) दिखाई दे, (ii) त्वचा को दबाने पर बहां पर त्वचा के बर्ण में अन्तर (Bleaching on pressure) न हो, (iii) तथा मुई की नोक त्वचा पर बेदना की अनुभूति न हो, तो द्रव को गम्भीर द्रव समझना चाहिये। त्वचा में इन लक्षणों से कोई निष्क्रिय नहीं निकाला जा सकता।

साध्यतासाध्यता—द्रव रोगी में साध्यता व असाध्यता (Prognosis) का निर्णय केवल मात्र द्रव ब्रण की गम्भीरता पर ही निर्भार नहीं करता, परन्तु इसके विस्तार पर भी निर्भार करता है। द्रव विस्तार की जानकारी बायल द्वारा बताए गए नूल ऑफ नाईन (Rule of nine) से होती है। द्रव विस्तार की जानकारी बायल द्वारा बताए गए नूल ऑफ नाईन (Rule of nine) से होती है।



चाप, काढ़ी, या अन्य उड़ान पदार्थ पीने को दें तथा रोगी को कम्बल से छक दें। बेदना शास्त्रिय के लिए रोगी को बेदना हर औषध (Inj Morphine sulphate & grain I. M.) दें। त्वचा पर अम्ल या क्षार (Strong acid or alkali) पड़ने पर उसे तुरन्त पानी से धो देना चाहिए। द्रव उत्पन्न होने के प्रस्ताव आठ घन्टे के अन्दर, साठ किलोग्राम बजन के व्यक्ति का दस प्रतिशत से अधिक द्रव होने पर प्राप्त: 1,500 ml. न्यूकोज, 1,000 ml. सामान्य लवण जल; तथा 1,000 ml. कोलायडल घोल दे देना चाहिए। फिर आठ घन्टे से 24 घन्टे के भीतर (16 घन्टे में) यही मात्रा पुनः देनी चाहिए तथा 24 घन्टे से 48 घन्टे के बीच में (24 घन्टे के समय में) यही पदार्थ इतनी ही मात्रा में पुनः दे [48 घन्टे तक निजेंतोकरण (Dehydration) की अवस्था तीव्र रहती है]। द्रव इतनी मात्रा में देना चाहिए जिससे मूत्र मात्रा 25 c.c. प्रति घन्टा तक रह जाती है। रोगी में स्तनध्वनि द्रव का आधान 24 घन्टे के भीतर कर देना चाहिए। यदि 24 घन्टे में द्रव लिए द्रव का आधान 24 घन्टे के भीतर कर देना चाहिए। द्रव इतनी में द्रव आधान न हो इस आधान न किया जाए तो (vasomotor control) समाप्त हो जाने से अपरिवर्तनीय स्तनध्वनि (Irreversible shock) उत्पन्न हो जाती है जो कि फिर द्रव आधान करने पर भी ठीक नहीं होती। रक्त का हिमेटोक्रिट मूल्य (Haematocrit value) 6.5% रहना चाहिए। वयस्क में द्रव की अधिक मात्रा एकदम से न दें, परन्तु थोड़ा-थोड़ा करके दें। बच्चों को द्रव की अवश्यक मात्रा जीवन्ता से न दें देनी चाहिए। गम्भीर द्रव ब्रण (Deep burn) में अस्थि-मुज्जा अवरुद्धित (Depress) हो जाती है, इससे द्वितीय रक्ताल्पता (Secondary anaemia) उत्पन्न होती है। यह स्थिति उत्पन्न न हो, इसके लिए रोगी को कुछ दिनों के अन्तर पर थोड़ी-थोड़ी मात्रा में रक्ताल्पता (Blood transfusion) करते रहना चाहिए। रोगी को आहार में प्रोटीन (Proteins) के पदार्थ अधिक मात्रा में दें। द्रव ब्रण में द्वितीय संक्रमण (Secondary infection) होने पर भी स्तनध्वनि उत्पन्न हो जाती है, इसलिए पहले से ही जीव विरोधी औषधि (Penicillin 5,00,000 unit 1 hourly I. M.) देना प्रारम्भ कर देना चाहिए। रोगी को धनुषात विरोधी सीरम (A.T.S. 15000 units) भी देना चाहिए।

स्थानीय चिकित्सा—द्रव स्थान पर गीले ल्लोत द्वारा मृतोद्धों को साफ करके फिर द्रव स्थान पर किसी पूर्य चिरोधी (Antiseptic) मरहम, जैसे सोफोरा-जैली (दंसलीन) लगाकर 3 दिन के लिए गाढ़ बन्ध लगा दें (Closed method)। बनने के लिए उन्हें छुला छोड़ दें (Exposure treatment)। ब्रण में संक्रमण होने पर पम्पड़ी की उतार कर पूर्य विरोधी मरहम लगाएं। उष्ण लवण जल से सेक करें।

### चिकित्सा :

द्रव स्थान को संक्रमण विरोधी बोल से (Antiseptic solution) या सामान्य उष्ण लवणोदक (Normal saline) से धोना चाहिये। रोगी को उर्न्त

ग्रन्योइ ब्रण के शुद्ध (Granulation) होने पर दब्बा का प्रत्यारोपण (Skin grafting) कर देता चाहिए। दध (3rd degree burn) में 10 से 15 दिन पश्चात् रोगी की अवस्था संतोषप्रद होने पर रोगी को सार्वदैहिक मस्तानुसार देकर (Under general anaesthesia) मृतोतकों (Necrosed tissues) को शायद कर्म द्वारा तिकाल देता चाहिए। फिर वहाँ पर ही रहे रक्त लाव को बन्द करके, दब्बा का प्रत्यारोपण कर देता तथा संक्रमण से बचाव के लिए 5% रजत लवण (5% AgNO<sub>3</sub>) की भरहम देता है।

**लगाएँ।** **उत्तमाधारत की चिकित्सा—उत्तम वातातप दध (Sun stroke)** होने पर शीत संज करे, हिमवस्ति (Ice cold enema) दें तथा रक्त परिप्रश्न मिथिल न हो इसके लिए दब्बा का मर्दन (Massage) करें। उत्तमता जन्म ऐंठन (Heat cramps) अन्ते पर रोगी को शीत स्थान पर ले जाएं तथा चिश्चाम है। रोगी को 15-15 मिनट पश्चात् आवेद गिलास पानी के साथ एक ग्राम नमक देते रहें जब तक कि ऐंठन समाप्त न हो जाए। अति तीव्र रोगियों में 1000 से 2000 मिलि० लवण जल को सिरा द्वारा आघात करें। (Inj intravenous saline solution) ।

- (i) इनका वर्णन शुद्ध रूप से (संक्षेप में) किया गया है, अर्थात् इनका दोष हूँप के अनुसार विस्तृत विवेचन नहीं किया गया है।
- (ii) इन रोगों के निदान, लक्षण एवं चिकित्सा का क्रमानुसार संहिताओं में विस्तृत वर्णन नहीं किया गया है, परन्तु इन्हें शुद्ध रूप में लिखा गया है।
- (iii) यह वे रोग हैं, जिनका उल्लेख किसी वर्गीकरण में नहीं हो पाया है।
- (iv) यह भी हो सकता है कि इन रोगों से पीड़ित रोगी प्राचीन काल में बहुत कम मिलते होंगे।

आचार्य चरक ने इन रोगों को न तो एक स्थान पर ही संकलित किया है तथा न ही इनको शुद्ध नाम से कहा है। अन्य आचार्यों ने इनकी संख्या अलग-अलग बताई है, जैसे—

सुश्रुत मतानुसार = 44
वारभट मतानुसार = 36
माधव मतानुसार = 43
शाहूँधर मतानुसार = 60

शुद्ध रोगों में सुश्रुत का मत ही अधिक मान्य है, क्योंकि अन्य आचार्यों की अपेक्षा सुश्रुत ने इन रोगों का वर्णन अधिक विस्तृत से किया है। **सुश्रुत मतानुसार शुद्ध रोग—**अजगलित्का, यवप्रख्या, अन्धालजी, विवृता, कच्छपिका, बल्मीक, इन्द्रवृद्धा, पनसिका, पाषाण-गद्भ, कक्षा, विर्कोटक, अग्निरोगिणी, चिप्प, कुनब, अनुशयी, विदारिका, कदर, अलस, इन्द्रलुप्त, दारूणक, अरुषिका, पलित, मस्तुका, यौवनपिडका, पर्दिमनीकण्ठक, जटुमणि, मशक, चम्कीली, तिलकालक, त्यच्छ, व्यङ्ग, परिवर्तिका, अदपाटिका, तिरुद्धप्रकाश, सत्क्रिवृद्धगुद, आहिं-पूरना, वृणा कण्ठ एवं गुदधृशंश ।

nistration of B-complex, low carbohydrate diet and good hygiene is necessary.

**ज्वृ प्र रोगों का उभयमत से विशेषज्ञता :**—यह पिङ्डिका स्त्रिय, त्वचा के वर्ण की, ग्रंथित, बेदना रहित एवं मूँग के समान होती है। इसमें कफ एवं चामु दोष की प्रधानता रहती है। यह प्रायः बालकों में होती है परन्तु बड़ों में भी हो सकती है। अपद्रव अवस्था में ही यह समान से रक्त निकाल देना चाहिए। इस पर सीध, सजे शार व यवधार का लेप करें, इसमें से रक्त निकाल देना चाहिए। अजगालित्का के या काली निशीथ, कलिहारी एवं पाठा के कल्कों का लेप लगायें। अजगालित्का के पकने पर इसकी व्याख्या विकित्सा (पहले शोधन विकित्सा) फिर रोपण विकित्सा)।

It seems to be a small mass of subcutaneous lymph glands.

(2) अन्धालजी (अन्धालजी)—इसे वास्थन ने अलजी तथा माध्यवकार एवं भोज ने अन्धालजी के नाम से कहा है। यह कफ एवं चात दोषों से उत्पन्न होती है। इसमें यह कठिन, मुखरहित, ऊँची ऊँची हुई, गोल एवं अल्प दूर्युक्त पिङ्डिका है। इसमें सर्वप्रथम स्वेदन करें तथा मैनशित, हरिताल, कूठ एवं देवदार का लेप करें। फिर अन्धालजी के पकने पर इसका बेदन कर दें एवं व्याख्या उपचार करें।

It seems to be a little swelling which is not soft. It may become inflamed and suppurate like that of a localised lymphadenitis thus terminating in to suppuration.

(3) विवृता—इसमें पित्तदोष की प्रधानता होती है। यह पके हुए मूँग कल के समान वर्ण की, अधिक जलन युक्त, गोलाकार, ज्वर उत्पन्न करने वाली एवं खुले मुख की पिङ्डिका है। इसकी चिकित्सा पित्तज विसर्द के समान करनी चाहिए। विवृता के पक जाने पर इसका काकोल्यादिगण (शल्य विज्ञान प्रथम भाग अध्याय 4 में देखें) से सिद्ध घृत से रोपण करें।

It seems to be a condition of acute inflammation which usually arises due to staphylococcus infection. Boil is a red follicular papule, which becomes increasingly tender and painful. The boil on treatment either subsides or becomes pustular, following with central necrosis with discharging of a cone. It heals with a granulation scar.

Treatment—Look the patient for diabetes or for any other systemic disorder, especially in chronic cases. Rest, sedation, admini-

(4) कच्छपिका—अण्णदत्त ने अलजी को कच्छपी का ही एक विशेषण दरताया है। कच्छपी वायु एवं कफ दोष से उत्पन्न होती है। यह कच्छपी के समान मध्य से ऊपर को उठाने हुई तथा एक ही स्थान पर 5-6 पिङ्डिकाओं से ऊक्त एवं अत्यधिक बेदनावान् व्याधि है। इसकी विकित्सा भी उपर बताई गई अन्धालजी की विकित्सा के समान करनी चाहिए।

It is a condition like that of the infected lymph glands of either groin or similar condition may also arise if 4-5 boils are collectively appearing in axilla or groin.

(5) बल्मीक—यह रोग जर्द की बामी के समान एवं तीनों दोषों से ऊक्त होता है। गर्दन, कन्ध्या, बगल, हाथ एवं पांव की सन्धि में यह रांग होता है। इसमें दाह, बुजली, सूचीवत् पीड़ा एवं क्लेव ऊक्त वर्णों वाली गांठ बनती है। विकित्सा न करने पर बल्मीक अनेक मुखों से ऊक्त एवं अधिक उच्चत हो जाती है। इसे असाध्य कहकर चिकित्सा करें। बल्मीक को गर्दन से चोर कर भार अथवा अग्नि से जलाए। पहले रोगी को वमनादि से शुद्ध करना चाहिए, फिर छोटे बल्मीक से ऊक्त भोजण करायें या अबू दोक्त चिप्पि से उसका शोधन करके रोपण विकित्सा करें। इसके ऊपर कुलतथ और जड़, निलोप, जमालगोटा मूल, निशीथ मूल एवं तिल कल में सत्तृ मिलाकर लेप करें। स्त्रिय द्वयों से उपनाह करें तथा इसके पक जाने पर नाड़ी वर्ण के समान विकित्सा करें (इसे काट कर जला दें)। दूषित मास की शोधन करके भार से राहें या अग्नि से जला दें, एवं रोपण तैल लगावें। हाथ एवं पांव पर उत्पन्न बहुत छिक्क ऊक्त बल्मीक को असाध्य जानकर छोड़ देना चाहिए।

It may be a condition of piling up of the dried secretion of sebaceous glands or the sprouting granulation of a sinus, containing foreign body in it (For its description, see 6th chapter of 2nd part of this book.)

(6) इन्ज वृद्धा—इन्ज वृद्धा कमल की कणिका के आकार की छोटी-छोटी पिङ्डिकाओं से बिरी हुई पिङ्डिका है। यह चात एवं पित्त दोष से उत्पन्न होती है। इसकी विकित्सा भी विवृता की विकित्सा सदृश करनी चाहिए।

It seems to be a collection of small Pimples, which usually appear after fever, on the angle of mouth. These are the collection of seborrhic pimples.

(7) पत्तसिका—शालूक (कमलकन्द) के आकार की तीव्र धीड़ा युक्त, वायु एवं कफ दोष से उत्पन्न होने वाली निडिका को पत्तसिका कहते हैं। यह पिडिका कान के चारों ओर या पीठ पर उत्पन्न होती है। इसकी चिकित्सा भी अन्धालजी के समान करनी चाहिए।

It looks like a boil, placed over mastoid one or on the back. On these places subcutaneous tissue is very less and bone lies just (directally) under the tense skin. There is more pain on the boils of these sites due to stretching of less mobile skin. Also see it under the heading "vivrita".

(8) पाथर गर्दन्श—यह कफ एवं वायु से उत्पन्न होने वाली अत्यधीयुक्त एवं स्थिर शोथ है। यह शोथ हनु सन्धि प्रदेश में होती है। इसकी चिकित्सा विष्वता के समान की जाती है।

It seems to be a condition of enlarged parotid gland, the enlargement may be due to obstruction of its duct by stones or by pressure of tumour from out side the duct. This tumour may be of Parotid gland. But mumps, a viral epidemic disease, can not be taken as 'parshan gardabha' because it is a sort of paitic disease having fever ( $100^{\circ}\text{F}$ ), sore throat, red and tense skin, with leucocytosis. The treatment of mumps like rest, local warmth etc. is quite different from that of the principle of treatment of "Parshan Gardabha".

(9) जात गर्दन्श—यह पित दोष से उत्पन्न होने वाली एवं विसर्प के समान कैन्टने वाली पतली एवं ताप्त वर्ण की शोथज व्याख्या है। इसमें शोथ, ज्वर, दाह तथा धोड़ा पाक होता है। भोज एवं जटुकण ने इसे विसर्प माना है। इसकी चिकित्सा विष्वता या पित्तज विसर्प के समान करनी चाहिए। इसमें लघन, रक्त मोक्षण एवं शोधन चिकित्सा विशेष रूप से करें। रोगी को अमल प्रधान रसायन का कराएं। विसर्प का विस्तृत वर्णन हितोय भाग के अध्याय 6 में देखें।

This condition is similar to cellulitis or erysipelas. It is the inflammation of subcutaneous tissues, which is due to Streptococcus haemolyticus. It specially occurs in those persons whose body resistance is low. Its symptoms are tenderness, edema,

redness with blebs, fever with rigor and persistent oedema may also occur in this condition. Treatment—Penicillin or other antibiotics should be administered. Ichthyol ointment should be applied locally for relief of pain and magnesium sulphate ointment for oedema. Its spread should be checked by exposing the affected area to ultraviolet radiations.

(10) कक्षा :—वायु युक्त पित दोष से, लाजा के समान कक्षा में जो सूक्ष्म एवं धनी पिङ्काये होती हैं उन्हें कक्षा कहते हैं। ये वेदना युक्त कृष्ण कर्ण के विस्फोट भी बन सकती हैं जो कि कक्षा के अतिरिक्त बाहु, पाश्व एवं अंस में भी पाई जाती हैं। इनकी चिकित्सा पित्तज विसर्प के समान करनी चाहिए।

It seems to be a condition of cellulitis of axilla or its near by area. For details of cellulitis, see it under the heading 'Jal Gardhabha'. (11) विस्फोटक :—पित दोष रक्त को दूषित करके एक स्थान पर या सारे शरीर में मसूरिका से भी अधिक कट्टदायक विस्फोट उत्पन्न करता है, जैसे कि अन्त रक्ष से विस्फोट उत्पन्न होते हैं। इसमें ज्वर भी रहता है। इसकी चिकित्सा विसर्प के सदृश करें।

Vesicular and bullous eruptions ('Visphot') may arise in many conditions, such as eczema, Pompholyx, prickly heat, impetigo herpeticus, variolla, varicella, dermatitis, drug eruptions (By bromides, iodides, gold salts etc.) in hot moist atmosphere and in sun light exposed areas.

Eczema is the reaction of skin due to fatigue, emotions, sweat, autosensitization etc. It causes intra cellular oedema of epidermis, resulting in to vesicles, capillary dilatation, oedema and erythema. The grouped papules become vesicular and rupture, thus causing weeping and crusting. In chronic cases it causes itching, pigmentation and thickning of skin.

(12) अग्निरोहणी :—अग्निरोहणी में पित दोष की प्रधानता रहती है। इसमें मांस को फाड़ने वाले तथा अन्त के समान जलने वाले लक्षों (कक्षा में) उत्पन्न होते हैं। रोगी को ज्वर रहता है तथा रंभी 5-7 या 15 दिन में मर जाता है। अग्निरोहणी को असाध्य कहकर इसकी पित्तज विसर्प के समान चिकित्सा करें।

This condition is often taken as plague, but in plague patients dies within 2-4 days. It may be taken as a big acute abscess of axilla which may also accompany with local blisters and fever.

(13) चिप्प (भृत, उपनख) :—पित एवं वात दोष नख के मास के आश्रित होकर दाढ़ एवं पाक उत्पन्न करते हैं, इसे चिप्प कहते हैं। इसमें उण जल से जेक करके हृषित मास को काट दें तथा रक्त मोक्षण करें। ब्रण पर कोहू का तैल लाकर वहाँ पर राल का चूर्ण डालकर उसे बोध दें। यदि इस विधि से ब्रण का रोपण न हो तो सिद्ध तैलों से ब्रण का रोपण करें।

These symptoms are similar to that of the symptoms of whitlow. In whitlow inflammation is due to infection of terminal pulp space. Its detailed description is given in 6th chapter of 2nd part of this book.

(14) कुनख (कुल्लान) —अभिभात के कारण रस, कठिन एवं काले बर्ण के अनुसार कहते हैं। इसकी चिकित्सा उपरोक्त वर्णित चिप्प की चिकित्सा के अनुसार करनी चाहिए।

This is a condition of haemorrhage under the nail. It clots and turns into black colour. For its detailed description see 6th chapter of 2nd part of Shalya Vigyan.

(15) अञ्जशयो :—इसमें कफ दोष प्रधान रूप से रहता है। यह पिंडिका गम्भीर धातुओं से बनती है इसलिये यह त्वचा के बर्ण की होती है, यह पिंडिका कफ के कारण अन्दर से फक्ती है। इसकी चिकित्सा कफज विद्युति के समान करनी चाहिए।

These symptoms look like that of the symptoms of a deep seated abscess, especially in sole or in palm, as the tissues of palm & sole are delicate internally and having hard skin tissues externally. Therefore the abscess of these places takes more time for pus formation and to rupture out side. See inflammation in chapter 5 and abscess in chapter 6 of 1st part of Shalya Vigyan.

(16) चिरारिका :—मुश्त ने चिरारिका को सचिपात जन्य कहा है परन्तु चरक ने इसे बात जन्य बताया है (हो सकता है इसमें पित अनुबन्ध रूप से रहता हो)। यह चिरारिका के समान कठिन, गोल, लाल बर्ण की एवं ज्वर से उक्त कमा पा बंधन में उत्पन्न होती है।

इसकी चिकित्सा कफज प्रथिति के समान इसके समीपवर्ती प्रदेश से रक्त का विसरण करवा कर करनी चाहिए। इसमें ढाक मूल एवं अजकरण का लेप करना चाहिये। इसमें पहले अम्यंग करे फिर स्वेदन एवं विम्नापन करे (अंगूष्ठ से भले), इसके पश्चात् पुनर्ज्वावा, बिल्व मूल व नागवृत्तिक (जिगण) का लेप या अजकरण एवं पलास जड़ का लेप करे। विदारिका में ब्रण उत्पन्न हो जाते पर पहले इसका शोधन करे फिर कषाय या काकोली इत्यादि द्रव्यों से सिद्ध तैल से रोपण करे। विदारिका के पक्षे पर इसे शास्त्र से चीर कर इस पर पटोल, नीम एवं तिल कल्क को धूत एवं मधु से लगाएँ या लेप करें तथा भीरी बृक्षों के कषाय से ब्रण का प्रभालन करे।

This condition looks like that of the infected enlarged lymph glands of axilla and groin.

(17) शक्कराबुद्द—मांस, सिरा व स्नायु के आश्रित भेद, वायु एवं कफ से मिलकर गांठ के समान शक्कराबुद्द को उत्पन्न करता है। इस गांठ के फूटने पर शहद, शूत एवं वसा के सदृश अत्यधिक साख निकलता है। इसके विदीर्घ होने के पश्चात् वायु वहाँ के मास की मुखाकर गतिश्च युक्त शक्करा को उत्पन्न करती है। इसकी निरामों से अक्षमात् अनेक रंग वाला दुर्गंधित एवं कल्पन्त युक्त अत्यधिक मात्रा में रक्त (रक्त) निकलते लगता है। इसका उपचार भेदज अब्दूद सदृश करना चाहिए। This description is similar to that of the signs of sebaceous horn (Cock's peculiar tumour). The sebum from the sebaceous cyst or from the hyperactive sebaceous gland comes out and piles up (like 'Sharkara'), forming a dried heap or a horn like structure. On getting infected, the sebaceous cyst or the sebaceous gland may give rise to foul smelling slimy secretion. (Consult sebaceous cyst in 6th chapter of 2nd part of Shalya Vigyan.)

(18) पामा—पामा में भाव निकलता है तथा इसमें छोटी-छोटी पिंडिकायें जाती हैं, जिनमें काढ़ एवं दाढ़ होती है। ये लक्षण पित की अधिकता से होते हैं।

इसकी चिकित्सा कुण्ठ रोग के अनुसार करनी चाहिए। इसमें मोम, सौंफ और सरसों का लेप उत्तम रहता है। इसके अतिरिक्त बच, दाढ़हल्दी, पीत सरसों, एरजाति तैल, या फिर शीशाम, अमृष, सरल, देवदार तथा बैल इत्यादि बृक्षों से प्रताल मृद्ग द्वारा निकाला हुआ तेल लगाना चाहिए। कुण्ठ रोग नारियल के कठोर छिलके का, या बादाम के छिलके से निकाला तेल भी लगाते हैं। ये तैल बहुत तीव्र होते हैं, तथा लगाने पर बहुत जलन करते हैं। इसके लिए गन्धक द्रव्य अधिक

उत्तम रहती है, यह प्रभावकारी औषध होते के साथ-साथ लगाने पर जलन भी नहीं उत्पन्न करती।

These signs are like that of the scabies.

**Scabies**—It is caused by *Sarcopetes* scabies. The fertilised adult *sarcopetes* female burrows  $1/4'' - 1/2''$  long under the skin and lay there eggs, common places of its infection are fingers, webs, ulnar border of the hand, anterior axillary fold, around the nipple, penis, palm, sole, thigh, buttocks and abdominal wall. It is the reaction of the skin to the exoparasite. At burrows, there forms the vesicles and papules which give intense itching.

**Treatment**—Benzyl benzoate 2.5%, *Tetmosol*, *Eurox* ointment (crotamiton ointment) or any other keratolytic ointment can be used.

(19) **विचचिका**—हस्त एवं पाद में चरम के फटने से रेखामें (राजी) उत्पन्न हो जाती है। इनमें अधिक कण्ठ, लक्षाता एवं पीड़ा रहती है। विचचिका के पैर में उत्पन्न होने पर इसे विपरिका कहते हैं। चरक ने इसे कण्ठ युक्त अत्यधिक शाव बाली एवं श्याव वर्ण की पिण्डिकाओं का मण्डल कहा है।

It is taken as eczema. It can be classified under dry and wet varieties of eczema. Dry eczema is the chronic form covered by sticky keratolytic scales, it occurs in perianal region due to the infection of thread worms. On scalp and behind the ears, it is caused from fissures.

**Wet eczema**—It is the mode of reaction of skin. Consequently it leads to vesicle formation, oedema, capillary dilatation and migration of lymphocytes and hyocytes to the epidermis. Ruptured papulo-vesicles causes weeping, crusting and bullae formation. It causes thickening of the skin, pigmentation and itching. There is no definite cause of eczema, but allergic sensitization of skin, sweat retention, emotion, fatigue, endocrine and nutritional factors are considered as the causative factors of eczema.

**Treatment**—*Vioform* or *Betnovate*-ointment for local use, and

potassium permagnate ( $KMnO_4$ ) 1/5,000 for compression dressing (in acute stage).

(20) **रक्सा (राजिका या गुम्होरो)**—यह कफ की अधिकता से होती है। ग्रीष्म ऋतु में स्वेद के कारण, शाव रहित, काढ़ युक्त, राई के समान वर्ण एवं आकार की पिण्डिकार्ये अधिक स्वेद वाले स्थान पर उत्पन्न होती है। इनकी विकितसा पितज विसर्प के समान करनी चाहिये।

Its signs and symptoms look like that of the prickly heat.

(21) **पादबारी (विपारिका)**—अधिक परिश्रमणशील या नंगे पांव चलने वाले व्यक्तियों के पांव के तलवे रक्ष होने से (वायु के कारण) वहाँ पर दरारें उत्पन्न हो जाती हैं, इसे पादबारी कहते हैं। रोगी में पहले स्नेहन एवं स्वेदन देकर अथवा करे, फिर रक्त-मोक्षण करायें; मोम, वसा, मज्जा, राल, जांबार तथा गेह को मिलाकर दरारों में भर दें।

Rhagades are the scarring of radiating cracks with ulceration. It appears at anus, angle of mouth, on hands or on feet. It occurs more in winter season when the skin is dry. Such cracks may also appear due to eczema.

**Treatment**—In eczematous cracks, *Betnovate* ointment is applied. Otherwise wax is filled in the cracks.

(22) **कदराद**—कंकड़, पत्थर से कुचले हुए या काटे इत्यादि से अत दुर्घटनामें जो बेर के समान गाँठ उत्पन्न होती है उसे कदर कहते हैं। इसमें वेदना एवं लाव होता है, यह निम्न, मध्य या उच्चत किसी भी प्रकार की हो सकती है। भोज के अनुसार यह हाथ में भी उत्पन्न होती है। भोज ने इसे बात कफज माना है तथा शर्करा एवं कटक इसके पर्याय माने हैं। मुश्त ने इस रोग में मेद एवं रक्त के अस्त्र दोषों का भी अनुबन्ध बताया है। कदर की शस्त्र से काटकर अचिन तप्त तेल से जलाना चाहिए।

It looks like callosity, which forms due to hyper keratoses due to the thickening of the stratum cornium layer of the skin. It should be peeled off by scalpel and thereafter the colloidal solution of salicylic acid and ether should be applied over it. Mild exposure of X-ray (600r) checks its growth. See it in chapter 6th, of 2nd part of this book.

(23) **अलम**—कीचड़ अथवा गदे पानी में चलने से पैरों की अंगुलियाँ के

बीच में गीलापन, बुजली, जलन और पीड़ा उत्पन्न होती है, इसे अलस कहते हैं। पर्से को कांजी में भिमोकर नीम, तिल, कासीस, हरिताल व सेवा का लेप करें या लाक्षारस (महावर) व हरिताल का लेप करें। कण्ठकारी से सिद्ध सरसों का तेल लगायें या कासीस, हल्दी एवं मैनशिल लगाएं। इसमें रक्त मोक्षण भी करना चाहिए।

It looks chilblain (erythema pernio). In chilblain there is redness, intense itching and swelling which increases on warming the affected area in front of fire. It may ulcerate form blisters erythema may swell up or it gives rise to serous exudate. It is an abnormal response of the skin to cold and damp climate. Its lesion appear on toes, heel, ear and fingers.

**Treatment**—Avoid dampness & cold, use socks & gloves. Increase the local circulation by swinging or rubbing the limb with camphorated oil. Apply boric acid ointment on the ulcers. Sometimes administration of vit-K and nicotinic acid are found beneficial. 'Alas' may be considered as Dhobi itch also.

(24) आलित्य (इन्ट्रालूट्स)—भाजक पित्त वायु से मिलकर रोमों को निपटा है। इसके पश्चात् रक्त व कफ उनसे मिलकर रोम कूदते को अवरुद्ध कर देता है, इससे नये रोम कूप उत्पन्न नहीं हो पाते। आचार्य कार्तिक ने दाढ़ी के बाल निर्त्तने की इन्द्रलूट्स, सिर के बाल निर्त्तने को आलित्य तथा सर्वे शरीर गत बाल निर्त्तने द्वारा कहा है। (These may be termed as Alopecia areata, Alopecia universalis respectively).

रोगी को पहले स्नेहन स्वेदन दें तथा फिर सिरावेद द्वारा रक्त मोक्षण करें रुधानीय प्रयोग के लिए मरिच, मैनशिल, कासीस तथा तूतोंया के कल्क या त्पार एवं देवदारु के कल्क का लेप करें। चोली, कनेर, चित्रक एवं करंज से सिद्ध तेल का अ-यग्न करें।

**Alopecia areata** (patchy hair loss)—In Alopecia areata there is one or more bold patches on the scalp (mostly on beard with pale and shining skin and a few slender broken hair). Emotional disturbances are considered as a cause of this condition. Hair-fall in ringworm infection is also like it, but here hair become bent and fragile. Saborhoea, androgenic hormonal excess and heredity are the causes for common baldness.

**Treatment**—Give tonics and B-complex to the patient.

stimulant lotions should be applied locally such as perchloride of mercury 1/2% in spirit or cantheradine oil etc. Rich Protein diet should be given to the patient.

(25) दाढ़णक—कफ एवं वायु के प्रकोप से जब बालों का स्थान कठिन, बुजली युक्त तथा रुक्त होकर द्वारा युक्त हो जाता है, तो इसे दाढ़णक कहते हैं। विदेह ने इसमें पित्त एवं रक्त का अनुबन्ध भी बताया है।

**Dandruff Pyriasis capitis**—In simple type of dandruff there is the branny scaling of the scalp which detach readily. This condition runs through out life period of an individual. In seborroid type scales become larger, greasy adherent with underlying red and moist skin, as found in seborrhoeic dermatitis. **Treatment**—Weekly shampoo washing, local application of sulphur, acid salicylic or acetone etc, are good for dandruff.

**Seborrhoeic dermatitis**—It occurs at face and scalp, there is diffused erythema, scaling and crusting. Skin becomes oedematous and the keratinization of the skin is imperfect.

**Treatment**—Give bed rest, sedation, tetracycline and other antibiotics. Locally apply calamine lotion or normal saline compressions and antiseptics with hydrocortisone ointment. In chronic cases apply sulphur & 3% salicylic acid in paraffin base.

(26) अर्क-पिका—कफ, रक्त एवं क्रमियों के कारण शिर में अनेक मुख वाले बाल युक्त एवं किलक्ष वरण को अर्क-पिका कहते हैं।

इस रोग में पहले रक्त मोक्षण कराएं फिर नीम के नवाष से परिषेक करें। तथा घोड़े की लीड के रस में सैन्धव मिलकर लेप करें (घोड़े की लीड में टेढ़नस का जीवाणु रहता है इसलिए इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए); या हरिताल, हल्दी, नीम और पटोल पत्र कल्क का मुँड़ती, नील कमल एवं और भांगरा कल्क का लेप करना चाहिए।

Such condition may appear in Scabies, pediculosis or in impetigo contagiosa.

**Impetigo Contagiosa of the head**—It is caused by staphylococcal infection and is very common in summer season. The infection is pyogenic and it remains superficial in children, but in adults it forms tense, clear or purulent blisters along with fever. When these blisters grow, they look circinate impetigo.

**Treatment**—Chlortetracycline or neomycin ointment is to be applied locally (Use of sulphur ointment and penicillin may cause allergic dermatitis);

(27) **पलित**—कोथ, थोक एवं श्रम के कारण उत्पन्न ऊप्पा पित्त से मिल कर बालों को समय से पूर्व ही पकड़ा होता है—इसे पहित रोग कहते हैं। नील पश्च, भांगरा, अजून और लाल, मैनफल (काले फूल वाला), लोह चूर्ण, बीजक, छिणी पुष्प, चिक्कला तथा भांगरा स्वरके साथ मुश्तुक विधि (मु. चि० 25) से सिद्ध तैल को लगाने से पलित रोग नष्ट हो जाता है अधिक इसकी स्थानीय क्रिया से बाल रक्खित हो जाते हैं।

**Canities (Grey hair)**—There is no specific cause known for turning of grey hair before 35-60 years. Some of the causes contribute for turning the hairs grey. These causes are trigeminal neuralgia, as an after effect of herpeszoster, ringworm spots, severe illness and prolonged emotional stress. F. Taylor has considered the obstruction in flow of pigments in the hair by air bubbles, as its cause.

(28) **मस्तिरिका**—इस रोग से सर्व धारीर गत, गते में या युबर पर पीत एवं ताम्र वर्ण के मस्तूर समान पिड़िका या स्फोट उत्पन्न होते हैं। माधव ने इसका वर्णन अधिक विस्तृत रूप से किया दाह, ऊर एवं पीड़ा होती है। माधव के अनुसार लवण्य, कट्टु एवं अन्य दुष्ट एवं विरुद्ध पदार्थ खाने से एवं घर्षों के प्रकोप से दोष प्रकृष्टित होकर हृषित रक्त से मिलकर इस रोग को उत्पन्न करते हैं। तीनों दोषों से एवं रक्त से 5 प्रकार की एवं रसादि सर्त धातुओं से 7 प्रकार की मस्तिरिका उत्पन्न होती है। (इसमें सामान्य लक्षण ठंड लगना, ऊर, शिरःशाल, पुच्छ पूल, मिचली, बम्प एवं आक्षेप सहित रक्त वर्ण की पिड़िकार्य उत्पन्न होती है) यह रोग एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में फैलता है।

त्रिपरिरोगापस्मारराजयक्षमपूरिका: ।  
दर्शनात् स्वर्णनादानात् सुड़कमन्ति नारानन्तरम् ॥ (४०)

This disease correlates to smallpox.

**Smallpox (Variola)**—It is an acute infectious disease with 2 days of incubation period. It appears on exposed parts of the body. Its on-set is very, rapid. It starts with vomiting, fever (102°—104°F) and headache. After 3 days of these symptoms, vesicles appear which becomes 1st vesicles then pustules appear (causing severe septicaemia and death), spleen gets enlarged, there is salty feeling in the mouth and lymphocytosis occur. Its virus resists drying for years together. This disease gives life long immunity. **Complications**—Laryngitis, otitismedia, inflammation of eyes, osteomyelitis, broncho pneumonia, encephalitis etc. are the major complications of small pox.

**Treatment**—Isolation of the patient and administration of analgesics for pain (aspirin), Borax for gargles and do sponging for fever. Wash the skin with 2% KMnO<sub>4</sub> solution and give antibiotic (penicillin) for prophylaxis of secondary infection.

(29) **मुख्तुषिका (यौवन पिड़िका)**—युवा पुरुषों के मुख पर सेमल के कांठों के समान वेदनाशील, घटा तथा मेद से भरी, कफ वायु एवं रक्त से उत्पन्न होने वाली पिड़िकाओं को मुख्तुषिका कहते हैं।

यौवन पिड़िकाओं की चिकित्सा में सर्वप्रथम वमन करायें, नस्य दें एवं ललाट को सिरा से रक्त मोक्षण करें। रोगी के मुख या धौवन पिड़िका से प्रभावित अन्य स्थान पर लोध, धनियाँ एवं बच; या लोध, सेन्धा, सरसों, धनियाँ एवं कुठ का लेप करना चाहिए। या नारियल की मञ्जरी का बरगद के कोमल पत्रों के साथ लेप करायें। कुछ लोग इस पर सेमल के कांठों का लेप करने को भी कहते हैं।

It seems to be acne vulgaris, Acne vulgaris—it is a disease of puberty. At this age there is androgenic stimulation of pilosebaceous follicles, causing excessive sebum. Its retention coarse thickening of the horny layer of skin. Skin becomes greasy, course, thick, prominent with follicular orifices. It may complicate to papules, indurated nodules or cysts formation. It may appear with blackened horny follicular plugs. Site: Face, back, shoulder, cheeks and back of neck. Exacerbation may be due to fatigue, emotional stress, excessive use of chocolate, lack of open air, squeezing the lesions, use of tonics, iodides bromides and corticosteroids. Treatment—Wash the affected area with warm water and apply lotion

of 6% sulphur in zinc sulphate & give 1,00,000 units of vit-A daily in two divided doses. To avoid scarring use  $\text{CO}_2$  snow. Use superficial x-ray therapy, ultraviolet light or use broad spectrum antibiotics for longterm treatment.

(30) परिमती कटक—यह व्याधि बात एवं कफ दोष से उत्पन्न होती है। इसमें गोलाकार, खेत वर्ण के या पाण्डु वर्ण के कण्टक या मण्डल उत्पन्न होते हैं जो कमत के समान होते हैं तथा समूर्ण शरीर को भर लेते हैं। रोगी को नीम का चवाय औत एवं मधु से पिलायें, नीम या नमक एवं अमलतास के पच के कल्प को लगायें। नीम का सेवन करायें; इसी के चवाय से बमत करायें एवं नीम से सिद्ध धूत लिलायें।

Some of the commentators has termed it as papilloma of the skin.

(31) जरुमणि—यह जन्म-जात (Congenital) व्याधि है जो कि कफ एवं रक्त से उत्पन्न होती है। इसमें लाल वर्ण के लक्षण, देदाना रहित एवं उठे हुए मण्डल जरुमणि होते हैं। इसे शास्त्र से काटकर फिर शार से अथवा सूखकांत मणि से या किसी विधि से जलाना चाहिए।

This condition resembles to congenital mole. It is formed from the pigments and the pigment cell. It is considered as a tumour. It may remain silent and harmless through out life time of an individual. Some times in adult life it is converted into malignancy, presenting the symptoms like itching, redness, secretions, ulceration or induration etc. A mole with these symptoms should be broadly excised along with adequate borders, in order to avoid its occurrence.

(32) मषक—यह बैद्यना रहित, स्थिर एवं उड़द की तरह काले वर्ण के तिल के समान होते हैं जो क्षयर को उठे रहते हैं। यह बात द्वारा प्रेरित कफ व में से उत्पन्न होते हैं (भोज)। इनकी चिकित्सा रुद्ध वर्णित जरुमणि की चिकित्सा के तमान करनी चाहिए।

It seems to be an elevated mole or the wart (verruca). It is formed from the viral infection of epithelial cells. It is of three types as, verruca vulgaris, verruca filiformis and verruca planteris.

For its treatment, curate and cauterise it or apply superficial X-ray. For details see it in 6th chapter in 1st part of this book.

(33) तिल कालक—वायु व पित दोष से तथा कफ के उद्देक (शुष्कता) से काले वर्ण के तथा तिल के समान आकृति वाले, बैद्यना रहित, त्वचा में रिमन अनुनात (समान) चिह्न को तिलकालक कहते हैं। इसकी चिकित्सा उपरोक्त वर्णित जरुमणि की चिकित्सा के समान करनी चाहिए।

It is a non elevated mole, formed from the pigmented material or the pigmented cells. It is called as Melanoma. It is of many types, such as junctional naevus, Intradermal naevus, compound naevus and neuro naevus. It should be removed by block dissection, as it is very much notorious for being converting into malignancy. For details see it in 6th chapter in 1st part of this book.

(34) अच्छ—परिश्रम, शोक या खोधादि से प्रकृष्टिपत वात एवं पित से शरीर के किसी भाग पर पोड़ा रहित, काला या खेत वर्ण का त्वचा के बराबर एवं मण्डलाकार उत्पन्न हुए चिह्न को ल्याङ्ग कहते हैं। इसकी चिकित्सा के लिए समीपस्थिरा का वेध करके रक्त विसराव कराना चाहिए। रोगाकान्त स्थान पर समुद्र-फेन, अजुन या धीरी वृक्षों की छाल व अंकुर को दूध में विसा कर लेप करें। दोनों प्रकार का जीरा, काले तिल व सरसों को दूध में पीसकर लगाएं या सेमल के कांटों को दूध में पीस कर लगाएं। मन्जीठ या मधु को खेत घोड़े के दुर की राख को मक्खन में मिलाकर लेप करें। मध्यजड़ादि तेल एवं कुमकुमादि तेल का प्रयोग करें। कैष एवं खिरनी का कण्टक लगाएं। बला, अतिबला, हृती एवं शुतेंदी का लेप लगाएं या बट, गेल इत्यादि का लेप लगाएं।

Chloasma-These are symmetrical patches of diffuse brown pigmentation of the mid forehead and cheeks. These patches develop in pregnancy and disappear after parturition, or may persist for years together. It also occur at menopause time or in patients with ovarian tumour.

(35) न्यूक्ल (लहुन)—शरीर के किसी भाग पर बड़ा या छोटा, काला या खेत वर्ण का, जन्म से ही उत्पन्न होने वाला चिह्न च्यूल्क कहलाता है। इसे लालचन भी कहते हैं। इसकी चिकित्सा च्यूल्क में बताई विधि से करनी चाहिए।

It is the abnormal colouration (discolouration) of some areas of the skin, in child age, since his/her birth. It remains as such through out the life time of an individual.

(36) नीलिका—व्यंग के समान लक्षणों वाले किन्तु वर्ण में काले एवं गुरु के अतिरिक्त अन्य स्थान पर उत्पन्न होने वाले मण्डल को नीलिका कहते हैं। यह गुरु से कठोर एवं स्थान वर्ण का, पित से किनारों पर ताढ़ एवं कुछ नील वर्ण लिए हुए, कफ से किनारों पर खेत वर्ण एवं काण्डु युक्त तथा रक्त से किनारे लाल, ताढ़ वर्ण के तथा यह दाह एवं चिमचिमाहट से युक्त होता है। इसकी चिकित्सा गुरु वर्णित अच्छ के समान करनी चाहिए। Such symptoms arise in many conditions. It is the discolouration of the skin, other than the face. It may be due to many causes

such as exposure to sun, Addison's disease, cachexiatric conditions typhoid or malaria fever, rheumatoid arthritis, cirrhosis of liver, diabetes, tuberculosis, capillary angioma etc., melanoderma and also by taking the preparations of arsenic.

(37) चर्मकील—प्रकुपित व्यान वायु कफ से चिकित्सा करता है। उसके बाह्य प्रदेश में स्थित होकर जिस कील के समान गांठ को उत्तरन करता है। इसमें चात दोष की अधिकता रहने से शुई चुभने की पीड़ा एवं परुषता। कफ दोष की अधिकता से श्वेता, स्नानघता तथा ग्रास्ति के समान आकार। पित्त एवं रक्त दोष की अधिकता से कर्मकील में कालापन या लालिमा रहती है। इसकी चिकित्सा इसे शस्त्र से काटकर एवं अग्नि व श्वार से जलाकर की जाती है।

This description seems to be of the corn. Corn is the horny plug of stratum corneum. It becomes very hard and causes pain when pressure is applied over the corn. Treatment—Application of colloidal solution of 20% salicylic acid for a few days or application of 1,000r of x-ray destroys the corn. Also see it in 6th chapter of part 1st of this book.

(38) परिवर्तका—हस्त मैशून से या संकुचित योनि की स्त्री से बलाकार करने से, व्यान वायु शिशन चर्म को प्रभावित कर देती है। इससे शिशन-त्वचा शिशन मणि के ऊपर चढ़कर ग्रास्ति रूप में परिवर्तित हो जाती है। कभी-कभी इसमें दाह, पीड़ा एवं पाक भी होता है। इसमें कफ का अनुबन्ध रहने से खुजली और कठिनता आ जाती है।

इसमें धूत लगाकर स्वेदन करें फिर पुलिस्ट बाटें। शिशन मुण्ड की त्वचा को मुख्ली में दबाते हुए धीरेंझीरे आगे को ले जाते हुए उसे स्व: स्थन में स्थापित करें। त्वचा के स्वस्थान में आने पर सतचनादि वात हर उपनाहों को 5-6 दिन तक दें।

This description looks like the condition of Paraphymosis. The tight preuse of penis when pulled behind the glans, it acts like a constricting band, causing oedema. For details consult 23rd chapter of 2nd part of shalya vigyan.

(39) अवपाहिका—अल्प योनि वाली बाला से देगपूर्ण सम्भोग करते पर, शिशन को जोर से हाथ से मलने से एवं उपस्थित शुभदेश को रोकने से (शिशन को हाथ से बलपूर्वक दबा देने पर) शिशन का चर्म विवरीण हो जाता है, इसे अवपाहिका कहते हैं। इसकी चिकित्सा भी उपरोक्त बाताई परिवर्तिका की विधि से करनी चाहिए।

It is the tear in the preuse of the penis. It may be a simple tear or it may associate with paraphymosis. The treatment of simple

tear is only antiseptic dressing. The treatment of paraphymosis is reduction, as described in 23rd chapter of 2nd part of shalya vigyan.

(40) निरुद्ध प्रकश—मर्दन पीड़न एवं अभिघात से व्यान वायु चर्म के साथ मिलकर मणि को पूर्ण रूप से आच्छादित कर लेती है (त्वचा मणि से चिपक जाती है)। इससे मूत्र लोत रुक जाता है। मूत्र छिद्र संकीर्ण होने से मूत्र धार मनद वेग से एवं बेदना के साथ आती है।

#### चिकित्सा—

दो मुख वाली नाड़ी को स्त्रिया करके शिशन छिद्र में प्रवेश करें एवं शुआर की बसा या मञ्जा से परिषेक करें। ऐसे ही तीन दिन के अन्तर पर कमशा: मोटी नाड़ी लगाते जायें तथा रोगी को स्त्रिया अन्त खाने को दें। या फिर सीबनी को बचाकर इसे शस्त्र से चीर कर सद्य-क्षति विधि से चिकित्सा करें।

It is a condition of phymosis In phymosis the prepubal meatus is either pinhole or it is so narrow that it can not be retracted back over the glans. The retention of smegma may cause balanitis. In this condition dilatation should be done in infants and circumcision in children. For details consult it in 23rd chapter of 2nd part of this book.

(41) सर्विरुद्ध गुद—वायु एवं मल के बेग को रोकने से प्रकुपित अपान वायु गुदा का आशय लेकर गुद द्वार के बाहर एवं अन्दर के मार्ग को संकीर्ण (छोटा) कर देती है। इससे मल कठिनाई से आता है। इसकी चिकित्सा निरुद्ध प्रकश के समान करनी चाहिए। यह व्याधि कठन साध्य होती है।

This condition is like that of an anal stricture, see its details in 17th chapter of 2nd part of shalya vigyan.

(42) अहिष्ठना—मल मूत्र (गुदा) को साफ न करने से तथा स्वेद आने पर स्तन न करने से शिशुओं में गुद स्थान पर रक्त एवं कफ जन्म काढ़ उत्पन्न होती है। इससे शीघ्र ही छाले (विस्फोट) उत्पन्न हो जाते हैं जिनसे स्वाव निकलता है। इस प्रकार के अनेक ब्रणों के मिल जाने को अहिष्ठना कहते हैं।

#### चिकित्सा :

शिशु की धानी के दुर्घट का शोधन करें। परवल पत्र एवं चिपला या रसीत, बेर एवं खेर के कषाय से ब्रणों का रोपण करें। बेर छाल एवं सेन्धा नमक को कांजी में दोस कर लेप करें या रोपण कालक में ठीकरे का चूर्ण और तुथ का चूर्ण मिलाकर लगायें।

This condition is like that of Napkin rash. Napkin Rash (Jacquet's or infantile Erythema)—Ammonia liberated from wet

napkins, spoiled with stool and urine, causes chemical irritation and erythema (Urine + Urea splitting organisms of the stool = Ammonia + CO<sub>2</sub>). The skin becomes red causing superficial blisters. Blisters on rupture may cause deep excoriation. This condition is very painful when urine or stool touches these ulcers. Treatment—Train the child to pass urine and stool in pot or change the wet napkins immediately when it gets spoiled, wash the hips with warm water, sprinkle boric acid in napkins or use petrolatum jelly, use zinc oxide or gentian violet on ulcerated areas (boric acid should not be used in ulcerated areas).

(43) बृह्ण कच्छ—स्नान न करने से, उबटन न मलने से, मल अड्डों में एकत्रित होकर एवं उसके आदि होने से बृह्ण में कण्ड होती है। इसमें शोध ही साक्षुल स्फोट उत्पन्न होते हैं। यह रोग कफ तथा रक्त के प्रकाश से उत्पन्न होता है। इस रोग में भी उपरोक्त विधियाँ, अहिस्तता के समान स्थानों पर चिकित्सा करें। It is like a wet eczema of scrotum as described under the heading "vicherchika".

(44) गुद-भंश—प्रवाहण एवं अतिसार के कारण, रक्त एवं निवेल शरीर को जलने की विधि की वज्रांची प्रवाहण से बाहर आ जाती है। इसे गुद-भंश कहते हैं। गुदा में स्वेदन देकर स्नेहन करें, किर हाथ से बलियों को भीतर प्रविष्ट करें। गुदा में गुदा प्रवाहण की पट्टी (वस्त्र) को गुदा पर लाख दें। आन्त रहित चुहिया दें तथा छिद्र युक्त चमड़ी की पट्टी (वस्त्र) को गुदा पर लाख दें। आन्त रहित चुहियों को महा पञ्चमुल के साथ दूध में पकायें, किंतु इस दूध एवं वात नाशक औषधियों को महा पञ्चमुल के साथ दूध में पकायें, किंतु इसी से अध्ययन करें।

**Syphilis**—In this condition either the anal sphincter gets loose or there is loss of fat from ischiorectal fossa as found in emaciated people. There may be complete or incomplete prolapse of rectum. The treatment of prolapse is of many fold the medicinal treatment, the injection treatment, the cauterization or the surgical treatment. For details, see 17th chapter in 2nd part of Shalya vigyan.

## स्थाल्य

रक्तवाहिनियों से बाहर निकले रक्त को रक्तसाव कहते हैं। बाह्यनियों से निकला हुआ रक्त जब बाहर अथवा त्वचा के ऊपर आकर दर्शित होता है तब इसे बाहर रक्त साव (External haemorrhage) कहते हैं। रक्त जब शरीर के अन्दर की किसी गुहा में इकट्ठा होता है तब इसे अन्तः रक्तसाव (Internal haemorrhage) कहते हैं। वाम्पटट ने अन्तः रक्तसाव की अवस्था को अतिलोहित नाम से कहा है। यह अव्यक्त रक्तसाव शरीर के भीतर अनेक स्थानों पर मिल सकता है, जैसे प्रकृत या ल्लीहा के विदीण होने पर, बड़ी अव्ययों के भान या मस्तिष्क गत रक्त साव की अवस्था में। यह अव्यक्त रक्तसाव (Concealed haemorrhage) जब अनन्वह प्रणाली में (Bleeding peptic ulcer) होता है तो रक्त वमन (Haematemesis) या रक्तमत (Malena) के रूप में घटता होता है। इसी प्रकार कुप्रकृत गत रक्तसाव कातज वमन (Haemoptysis) द्वारा तथा मूत्र वह संस्थान के अवयवों का रक्तसाव रक्त मूत्र (Haematuria) द्वारा व्यक्त होता है।

## लौ

(i) आघात (Trauma)—शस्त्रादि या हिस्क पश्चातों के काटने से (जैसे भन, छिन जण इत्यादि का रक्तसाव)।

(ii) अधिक रक्तदाता (High blood pressure)—रक्तवाहिनियों में अधिक रक्त दात हो जाने से यह विदीण हो जाती है। इसमें प्रायः अन्तः रक्तसाव होता है, परन्तु यदा कदा याहूः रक्तसाव जैसे नाभिका से रक्तसाव (Epistaxis) भी हो सकता है।

(iii) बाहिनी परिवार्तन—बाहिनियों की दीवार के परिवार्तन अथवा जलताना (Necrosis) होने से, जैसे दाव जन्य ऊतिनाश (Pressure necrosis) में रक्तसाव हुआ करता है।

(iv) संक्रमण—संक्रमण के कारण बाहिनियों की दीवार नष्ट होने पर रक्तसाव होता है।

## रक्त साव (Haemorrhage)

# 10

(v) रक्त स्राव की प्रवृत्ति (Diathesis)—रक्त में विभिन्न रक्त स्कन्दन घटकों (Factors) [एन्टोहिमोफिलिक घटक (Anti haemophlaetic factor) कैलिशम (Calcium) इत्यादि] की कमी से भी रक्तस्राव होता है।

(vi) विटामिन की कमी (Vitamin K) —विटामिन की कमी से यकृत में प्रोथ्रोम्बिन (pro-thrombin) न बनने से, रक्त का स्कंदन नहीं हो पाता, जिससे रक्त स्राव की प्रवृत्ति बढ़ जाती है, तथा विटामिन 'सी' (Vitamin C) की कमी से रक्तस्राहिनियों में स्किंड्रता (Porosity) बढ़ जाते पर फ्लेम काणों से रक्तस्राव होता है।

(vii) धातुकार्बुद (Malignancies) —आमाशय एवं वृहदाश्र के धातक अर्दुदों में या रक्त गत कैन्सर (Leukaemia) इत्यादि अवस्थाओं में भी रक्तस्राव होता है।

**प्रकार [क]** रक्त वाहिकाओं के आधार पर रक्तस्राव तीन प्रकार का होता है।

(i) धमनी गत रक्तस्राव

(ii) सिरागत रक्तस्राव

(iii) कोशिका गत रक्तस्राव

(i) धमनगत रक्तस्राव (Arterial haemorrhage) —यह रक्त स्राव तीव्र गति से होता है तथा इसका वर्ण चमकीला लाल होता है। रक्तस्राव की गति नहीं होती, शरीर इसकी अति पृष्ठि कुछ ही छण्टों में कर सकता है।

(ii) स्पन्दन (Arterial pulsation) के अनुसार तीव्र तथा मन्द होती है।

(iii) सिरागत रक्तस्राव (Venous haemorrhage) —यह रक्तस्राव मन्द गति से नियमित धारा बढ़ लगातार होता रहता है। इस रक्तस्राव का रंग लाल होता है परन्तु अधिक रक्तस्राव होने से ऑक्सीजन की कमी होने पर यह गहरे रुद्ध रंग का हो जाता है।

(iv) कोशिकागत रक्तस्राव (Capillary haemorrhage) —कोशिका गत रक्तस्राव बराबर होता रहता है तथा यह चमकीले लाल वर्ण का होता है। यदि यह रक्तस्राव अधिक समय तक चलता रहे, जैसा हिमोफोलिया में होता है, तो यह रोगी को धातक अवस्था तक पहुंचा देता है।

[ख] रक्त स्राव कालानुसार तीन प्रकार का होता है।

(i) प्राथमिक

(ii) प्रतिक्रियात्मक

(iii) द्वितीयक

(i) प्राथमिक रक्तस्राव (Primary haemorrhage) —शस्त्र कर्म के समय आघात से या अन्य आगन्तुज कारणों से रक्तस्राहिनियों के कटने से जो रक्तस्राव होता है उसे प्राथमिक रक्तस्राव कहते हैं।

(ii) प्रतिक्रियात्मक रक्तस्राव (Reactive haemorrhage) —यह रक्तस्राव प्राथमिक रक्तस्राव के बन्द होने के 24 घण्टे के अन्दर (सामान्यतः 4 से 6 घण्टे में) पुनः प्रारम्भ हो जाता है। इस रक्त स्राव का कारण प्रायः बमन, कास का बन्द या रक्त स्राव में वृद्धि (High blood pressure) होता है। इन कारणों से, बार्बी दुई रक्तस्राहिनियों की गाँठ खुल जाने से या स्क्रिन्थित रक्त के थक्के (Coagulum) के अपने स्थान से हट जाने से यह रक्त स्राव होता है।

(iii) द्वितीय रक्त स्राव (Secondary haemorrhage) —यह रक्त स्राव प्राथमिक रक्त स्राव के बन्द होने के 6-14 दिन पश्चात होता है। इस रक्त स्राव के अनेक कारण होते हैं जैसे—

(i) आन्तर्वण में, क्षयजन त्रण में एवं वाहिका सीबन स्थान इत्यादि में संक्षण होने से।

(ii) निकास नलिका के लगातार दाब से वाहिका में झटक क्षय (Necrosis of esophagus) होकर।

(iii) अस्थि धनत के नोकोंले टुकड़ों से।

(iv) धातकार्ड द से वाहिका के प्रभावित होने से।

(v) सम्प्राप्ति—सामान्यतः शरीर से 10% (500 ml.) रक्त का स्राव हो जाने कोई विशेष हाती नहीं होती, शरीर इसकी अति पृष्ठि कुछ ही छण्टों में कर सकता है।

ताड़ी स्पन्दन (Arterial pulsation) के अनुसार तीव्र तथा मन्द 35% रक्त निकलने पर स्तब्धता कुछ तीव्र (Shock is moderately severe) होती है।

50% रक्तस्राव होने से प्रायः मृत्यु हो जाती है (Fatal haemorrhage) जिससे रक्त की अति पृष्ठि तुरन्त करनी चाहिये।

अत्यधिक रक्तस्राव से सिराओं में रक्त की वापसी कम हो जाती है। इससे रक्त गति यह निकास (Cardiac out put) भी कम हो जाता है जिससे रक्त का दाब घटता है। यदि यह रक्तस्राव बराबर होता है तथा यह चमकीले लाल वर्ण का होता है, जैसा हिमोफोलिया में होता है, तो यह रोगी को धातक अवस्था तक पहुंचा देता है।

[ख] रक्त स्राव कालानुसार तीन प्रकार का होता है।

(i) प्राथमिक रक्तस्राव (Capillary haemorrhage) —कोशिका गति बहुत जाती है। यदि यह रक्तस्राव अधिक समय तक चलता रहे, जैसा हिमोफोलिया में होता है, तो यह रोगी को धातक अवस्था तक पहुंचा देता है।

(ii) प्रतिक्रियात्मक रक्तस्राव (Arterial haemorrhage) —इन्टनलिन, नारेनलीन तथा कोटिकोस्टेरायड (Adrenalin, noradrenalin and corticosteroids) द्वारा सम्पन्न होती है। रोगी में यह प्रक्रिया के कारण अनेक लक्षण होते हैं जैसे—पाङ्डुता (pallor), त्वचा की गोत एवं आर्द्ध होना (Cold and clanny skin), शिराओं का पिचका-

(Collapse) हो जाना, नाड़ी की गति में तीव्रता, बैचीनी तथा इवास की गति में भी तीव्रता आ जाती है। अत्यधिक रक्तस्राव होने की अवस्था में रक्तवाहिका की संकोचक अक्षया अपना कार्य करना बन्द कर देती है, हृदय एवं मस्तिष्क भी कार्य करने में असमर्थ हो जाते हैं, तथा रोगी धातक अवस्था में (मूल्य समीप) पहुँच जाता है।

### लक्षण

**तीव्र रक्तस्राव** (Acute blood loss)—जरीर से तीव्रता से रक्त शाव हो जाने पर, पाण्डुता, नाड़ी की गति में तीव्रता, बैचीनी, इवास कष्ट, त्वचा शीत एवं बाढ़, सिराओं में शिथिलता इत्यादि उपरोक्त सब लक्षण पाए जाते हैं। कुछ देर पश्चात् कण्नित (Tinnitus), तृष्णा, अनधृता, नाड़ी प्रसार में कमी (Low volume pulse) के लक्षण भी उत्पन्न हो जाते हैं। यदि तीव्र रक्तस्राव को रोकने का प्रबन्ध न किया जाये तो हृदय एवं मस्तिष्क में कार्य अवरोध होकर मृत्यु हो जाती है।

**जीवं रक्तस्राव** (Slow blood loss)—जीर्ण रक्त शाव अनेक कारणों से हो सकता है जैसे रक्तांश (Bleeding piles), गर्भाशय के अर्द्ध-उण्डक के धातक कुंद (Carcinoma of caecum) तथा मैटिक ब्रण (peptic ulcer) इन कारणों से रक्त (Blood volume) में कमी नहीं होती, परन्तु रक्त कणों (Blood cells) का लगातार होस होता है। इससे रोगी में पाण्डुता (Anaemia), इवास और रोगियों में रक्तस्राव (Blood transfusion) करते समय ध्यान रखना चाहिए क्योंकि इन रोगियों को सम्पूर्ण रक्त की अपेक्षा घनित रक्तकण (Pack cell volume) की आवश्यकता होती है।

आयुर्वेदाचार्यों ने अन्तः रक्त स्राव (अव्यक्त रक्तस्राव) को अन्तर्लोहित संदी है और कहा है—

तत्रात्तर्लोहितं शीत पादोन्दृवात्स करानम् ॥ अ० स० उ० 29

रक्तांशं पाण्डु बद्धमानद्वं च विवर्जयेत् ॥ अ० स० उ० 29  
अन्तर्लोहित अवस्था में यदि रोगी के हाथ, पैर, मुख शीतल हो गये तो गया हो एवं शरीर पाण्डु वर्ण का हो गया हो तो ऐसे रोगी शरास्त मन्द हो गया हो एवं शरीर पाण्डु वर्ण का हो गया हो तो ऐसे रोगी चिकित्सा नहीं करनी चाहिए (अर्थात् वह रोगी निषिद्ध ही भर जाता है)

### सामान्य लक्षण

1. किसी विशेष स्थान पर चोट लगने का इतिहास
2. मुख का रंग रक्त रहित या पीला या पड़ जाता है (Pallor face)
3. बेचैनी (Restlessness)
4. हाथ पांवों का ठण्डा हो जाना (Skin-cold)
5. व्यास अधिक लगना (Thirst and Dryness of tongue)

6. दृष्टि की शीणता
7. नाड़ी का तीव्र और ऊर्वल होना (Pulse rapid and feeble)
8. रक्त चाप का कम होते जाना (Low Blood Pressure)
9. शरीर के ताप की कमी (Body temp. (Subnormal) slowly becomes low)
10. Tenderness and swelling over the particular site.)

**मुश्तुतमतातुसार लक्षण**—आचार्य सुश्रूत ने कहा है कि अत्यधिक रक्तस्राव हो जाने से शिर-शूल, अनधृता, अधिमंथ, तिमिर, आक्षेप, दाह, पक्षायात, एकाङ्ग विकार, हिक्का, इवास, कास, पाण्डुता तथा मृत्यु भी हो सकती है। “तेवति प्रवृत्त शिरोऽभितप्यात्यमध्यमन्य तिमिरप्रातुशर्विं धातुस्यमाशेषं पक्षायातेकाङ्गविकारं तृष्णा दाहो हिक्का कास इवासं पाण्डुरोग मरणं चापात्यर्थति ।”

मु० स० 14।30

(i) मस्तिष्क—आधात के कारण या रक्तभार के बढ़ने से रक्तस्राव होने पर रुक्षर्ता, [जड़ता या सन्ध्यास (Stuper or coma)] तथा सम्बन्धित धमनियों में ऐंडर ग्रीनर्सी (Gastric varices) आमाशयकुंद (Carcinoma stomach), आधात और पक्षायात इत्यादि लक्षण उत्पन्न होते हैं। तारामण्डल (Pupil) में विस्तार हो सकता है। श्वास अत्यधिक गहरा (Gasping) एवं नाड़ी (Pulse) अत्यन्त शिथित (Amenorrhoea) हो जाती है।

(ii) महाल्खीत (G. I. T.)—आमाशय ब्रण (Peptic ulcer), आमाशय गान्धन-विचुटी शोथ (Diverticulitis), आद्रान्त्र एवं वृहदान्त्र के सोम्य एवं धातक अन्तर्लोहित अवस्था में शोथ एवं ब्रण (Ulcerative colitis) इत्यादि कारणों से महाल्खीत, वृहदान्त्र में शोथ एवं ब्रण (Ulcerative colitis) इत्यादि कारणों से महाल्खीत में रक्तस्राव होने पर दौर्बल्य, मृद्गर्भ, रक्तवमन (उच्च महाल्खीत में रक्त स्राव होने पर जैसे आमाशय में) या काला मल (रक्त युक्त मल) Malena (अथः महाल्खीत में रक्त स्राव होने पर मल गहरे लाल रंग का भी हो सकता है), इससे रोगी में पाण्डुता, नाड़ी की गति तीव्र तथा रक्तभार का होस हो जाता है।

आमाशयस्थे रुधिरे रुधिराद्यवेषेत् पुनः ।  
शीतोत्तावायामेत्वायामः ॥ सु० चि०  
(iii) न्यूनवहस्त्र (Urinary tract) इस स्रोत में आधात होने से, रक्तभार ग्रीष्मिति से, अपमरी से या देंपीलोमा (Papilloma) अर्द्ध-उत्तर से रक्तस्राव होकर, वह रक्त स्राव हो जाता है विकल्प भी ताप इवास इवा चापा (Cleft) होता है, तथा इवास होने पर यह उत्तर-पश्च लक्षणों के कारण होता है।

मुश्तुत एवं बाम्पट ने भी मूत्रमर्ग से रक्त आने का कारण चर्स्ट का विदीर्ण होना एवं अस्मरी बताया है। “अग्र जातामुः स रधिर रुक्तता ।” सु० स० १० इबं “तत्संकोषात् ऋते स लम्मायासाच्यति रुक्तवेत् ।” वाग्मद्दृ

(iv) कुप्रक्षुप (Lungs)—राजयहमा में, तीव्र कास में, या आघात के कारण (उर्द. क्षत से) रक्तवाहिनियों के कफने से रक्तवामन (Haemoptysis) होता है। यह रक्त ज्ञान युक्त तथा कास के देश के साथ वमन के रूप में कुप्रक्षुपों से आता है। इसकी प्रतिक्रिया क्षारीय होती है। रक्त के साथ कुप्रक्षुपों से श्वेषमा भी आसकता है।

कुप्रक्षुप या वम के आघात से अन्तर्पृष्ठ का धमनी (Intercostal artery) से या कुप्रक्षुप से ही रक्त निकलकर कुप्रक्षुपीय गुहा (Pleural cavity) में भर जाता है। इसे रक्तवक्ष (Haemothorax) कहते हैं। इसमें स्तनधृता (Shock) उत्पन्न होती है तथा इसके दाव (Pressure) के कारण हृदय और कुप्रक्षुपों की क्रिया दुर्बल होती है तथा इसके दाव (Pressure) के कारण हृदय और कुप्रक्षुपों की क्रिया दुर्बल होती है तथा इसके दाव (Pressure) के कारण हृदय और कुप्रक्षुपों की क्रिया दुर्बल होती है।

(v) स्त्रियों में—स्त्रियों में गर्भाशय से अश्रुतकालीन रक्तवाव के अधिक मात्रा में आने पर (Matropathia haemorrhagica) भी स्तनधृता के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

### प्रक्रियात्मकाः—

“देहस्य रधिरं मूलं रधिरेण व धार्यन्ते ।

तस्मात्तज्ज्ञेन संरक्षयं रक्तं जीव इति स्थितिः ॥” सु० स० १४  
अथवा शरीर का मूल आधार राधिर है, इससे ही शरीर धारित (जीवित) रहता है। इसलिये सब उपायों से रधिर की रक्षा करनी चाहिए।

रक्तवाव की चिकित्सा दो प्रकार से होती है।

(1) स्थानीय (Local)

(2) सार्वदैहिक (General)

(i) स्थानीय :—“चतुर्विधं यवेतादि रधिरस्य निवारणम् ।

संधानं स्फन्दनं चंद्र पाचनं दहनं तथा ।” सु० स० १४

रक्त को रोकने के 4 उपाय हैं यथा—सन्धान, स्फन्दन, पाचन एवं दहन।

(i) सन्धान—(अणं कषायः साम्बन्धे) कषाय द्रव्यों से जैवे पंचकीरी विकटकरी, रजत का लवण (Ferric Perchloride), तारपीन का तैल, श्रोम्बाण देना चाहिए।

(Tropical thrombophobe) तथा अड्रेनेलीन (Adrenalin) इत्यादि से या धमनी

गो सून से बायकर रक्त लाव बन्द करें।

(ii) स्फन्दन—(रक्तं स्फन्दते हिमम्) शीतल पदार्थ से या हिम के स्पर्श से कोशिकाये संकुचित होती है। रक्तवाव बन्द करें।

(iii) पाचन—(तथा सम्पाचयेद्भस्म) क्षार, शंख, शुक्ति रेशम इत्यादि की

भूमि लगनी चाहिए।

(iv) दहन—(दहः सङ्कोचयेत् सिरः) केशिकाओं के रक्त लाव को दहन

अस्त्रदिमस्तु चंतेषु दहः परम्हेष्यते ॥ सु० स० १४

उपरोक्तके कमों से रक्त लाव न लगने पर दहन कर्म करना चाहिए। दहन कर्म

रक्तवाव रोकने का एक अचूक उपाय है (इसे अनिकर्म अध्याय में देखें)

(v) अन्य विधिः—(क) केशिकाओं से होने वाला रक्तवाव कुछ दर (3-5

मिनट) तक दबाए (Pressure) रखने से बन्द हो जाता है।

(ख) वाहिनियों से होने वाले रक्तवाव में धमनी संदंशयन्त्र (Artery for-

ceps) से धमनियों को पिछित (Crush) करने से सामान्यतः रक्तवाव रक्त आता

। यदि ऐसा करने से रक्त लाव न रुके तो वाहिनी को धार्गे से बान्ध दें।

(ग) शाखा को सिर से ऊपर उठाकर रखने से भी शाखाओं का रक्तसाव

मो जाता है।

(घ) वडी वाहिनियों से होने वाले रक्तवाव में वाहिनी को धार्गे से बान्ध

ना ही ठीक रहता है, इसके लिये सामान्य नियम यह है—

सर्वप्रथम रक्तवाव के स्थान में विकेशिका (Gauze) को भर दें और वहाँ

रक्त लगने वाली बड़ी धमनी को दबाकर रखें, जैसे अधेशाखा से होने वाले रक्त

विकेशिका को निकालकर कटी हुई वाहिनी की आरटीफिरेस्प्रेस से पकड़कर बांधने का

प्रयत्न करना चाहिए।

(ङ.) द्वितीय रक्तवाव होने पर धाव में विकेशिका (Gauze) को दबा-दबा-

र भर दें एवं 2-3 दिन के लिए विकेशिका को ऐसी ही पड़ा रहने दें।

(ज) यदि यूत्युकारक रक्तवाव (अत्यधिक रक्तवाव) हो रहा हो और किसी

देना चाहिए अन्यथा (देरी करने से) अत्यधिक रक्तवाव से रोगी की मृत्यु होती है। रक्तवाव रक्तने पर बाँधी हुई धमनी के पास से (हरस्थं भाग से) अंगविच्छिद

प्रणाली कर देना चाहिए।

(क) द्वितीय रक्तवाव होने पर धाव में विकेशिका (Gauze) को दबा-दबा-

र भर देना चाहिए अन्यथा (देरी करने से) अत्यधिक रक्तवाव से रोगी की

मृत्यु होती है। रक्तवाव रक्तने पर बाँधी हुई धमनी के पास से (हरस्थं भाग से) अंगविच्छिद

प्रणाली कर देना चाहिए।

182

(छ) कपाल की त्वचा से रक्तस्राव को रोकने के लिए त्वचा को अस्थि की ओर दबाकर रखें या गैलिया (Galea) को धमनी संदर्भ मन्त्र से पकड़कर बाहर की ओर छोचते हैं। कपाल के आवरण (Fibrofatty layer) में पड़ी हुई रक्त बाहिर नियों को पकड़ना बहुत कठिन होता है।

(ज) मस्तिष्क से रक्तस्राव होने पर स्थानीय सज्जानाश करके शब्द प्रदेश पर क्षेत्र (Bur hole) बनाकर या अस्थि में ट्रिफाइन (Trehine) करके छिपाइन (Irrigation) करना चाहिए (Duramatter) को मुई से ऊपर उठाकर सावधानी से उसका भेदन करें। मस्तिष्क की बचाने हुए रक्तमुल्म (Haematoma) का परिषेक (Irrigation) करना चाहिए का दहन करें कर और रक्त को आवृष्ट बनाकर मिलने पर उसे ललाट भाग में ढूँढ़े तथा इसके पश्चात दें। शब्द प्रदेश में रक्तस्राव न मिले तो विपरीत और (दिशा में) क्षेत्र (Bur hole) करके रक्तस्राव को ढूँड़ना चाहिए। इससे मूत्र अधिक मस्तिष्क से लासिकामय रक्तमुल्म (Oedema) कम करने के लिये रोगी को सिरा से पार्श्व भाग (Parietal Part) में देखें और यदि यहाँ भी रक्तस्राव न मिले तो विपरीत और (दिशा में) क्षेत्र (Bur hole) करके रक्तस्राव को ढूँड़ना चाहिए। इससे मूत्र अधिक 12% नेनीटोल या मूत्रिया (Manitol or urea) देना चाहिए। इससे मूत्र अधिक रक्तस्राव आने से रक्तमुल्म कम हो जाता है। छ. मास पश्चात अस्थिक्षेत्र को स्वास्थ्य प्रत्यारोपण (Auto bone graft), टेन्टेलम (Tentalum) से या प्लास्टिक (Acrylic plastic) इत्यादि के प्रत्यारोपण द्वारा कपाल के क्षेत्र को बन्द कर देना चाहिए।

(क्ष) महाशोत (G. I. T.) :—आमाशय से रक्तस्राव होने पर प्रति अन्तीम पदार्थ (Antacids as Gelusil) दें, या हिम शोत इध को आमाशय नलिका पर द्वारा Ryle's tube द्वारा तुँड़-तुँड़ करके दें। रोगी में शोतता (Hypothermia) उत्पन्न करें, इसके लिए 50% इथनोल (Ethanol) द्वारा 5-10°C तक तापमान कम करें। रक्तस्राव बन्द हो जाने पर भी 16-48 घण्टे तक यही चिकित्सा करते रहें। रक्तस्राव संकोचक (Vassopressor) औषधियाँ कदाचित् नहीं देनी चाहिए। इसमें वाहिका संकोचक (Vital organs) की धमनियों का संकोच होने से उनमें आकी क्षयोंक इसमें मर्म (Vital organs) की धमनियों का संकोच होने से उनमें आकी जन की ओर भी अधिक कमी हो जाती है।

आमाशय से रक्तस्राव यदि गासनली वाहिकाविस्फार (Oesophage varices) के कारण हो रहा हो तो आमाशय में सांस्केन नलिका (Sungstak tube, as shown in Fig. No. 56 in Part II) डाल देनी चाहिए। इस लगे देनें युवारे कुला देने से, इनके दाव से वहाँ का रक्तस्राव बन्द हो जाता है। इस नलिका द्वारा आमाशय से रक्त को भी निकालत रहना चाहिए (अन्यथा शरीर में विषाक्तता उत्पन्न करता है) इस नलिका से रोगी को पार्श्व पदार्थ देते रहें। इसका विस्तृत वर्णन शाल्य विज्ञान द्वितीय भाग के उद्दर रोग अध्याय देते रहें।

(ii) रोगी का विषम बेटा (Rough and jerky movements) माल करने दें।

(iii) रोगी को कोण रखें (अधिक उणता से वाहिनियों का विस्फार होकर स्तनधारा बढ़ती है)।

(iv) रोगी को अवसादित (Sedation) अवस्था में रखें। इसके लिए देन्टो-बाविटल सोडियम (Pentobarbital sodium 0.1 gm, I. m.) दें में 4000 ml. तक दे दें। तथा रक्तभार को सामान्य अवस्था (Systolic B. P. 100 mm. Hg) में लायें। इसके अभाव में रक्त-चारि विस्फारक द्वारा (Plasma expanders), जैसे Dextran 6% I. V. drip से इत्यादि को दें। (vi) रक्त प्रवृत्ति होने पर आवश्यकतामुसार एं एच० जी० (A. H. G.) या 500 C. C. ताजे रक्त का आधार करें या प्लाज्मा तथा रक्त चक्रिकाएं दें। फाइब्रिनोजेन (Fibrinogen) की कमी होने पर विटामिन के' (Vit-K) को दी रूप में या मूची (Inj. Mephylton 50-100 mg. I. M.) रूप में दें।

(2) साबंदेहिक चिकित्सा—

(i) रोगी को ठसर नीचे तथा पेर ऊपर (Trendlenburg position) लेटाकर रखें।

## III स्त्रब्धता (shock)

**आरम्भ :**

रक्तब्धाहिनियों में रक्त गहण करने की क्षमता (Volume capacity) और रक्तप्रगतीशील रक्त की मात्रा (Bicod Volume) के अनुपात में असामान्य परिवर्तन होती है। इससे अवसाद (Prostration) (Disparity) की अवस्था को स्त्रब्धता कहते हैं। इससे अवसाद (Prostration) हो जाता है। स्त्रब्धता की अवस्था में सामान्यतः दो क्रियाएँ दृष्टिगोचर होती है—  
 (i) रक्त बाहिनियों में रक्त की मात्रा में घटना आ जाना।  
 (ii) रक्त बाहिनियों में रक्त की मात्रा में घटना आ जाने से हृदय निकासन।  
 (iii) रक्त बाहिनियों में कमी आ जाती है, जिस से रक्तदाव भी कम हो जाता है।  
 (iv) कार्डियाक (Cardiac out put) में कमी आ जाती है, जिसी की कमी (Hypoxia) इस कारण ऊतकों (विशेषतः हृदय एवं मस्तिष्क) में ऑक्सीजन की कमी (Hypoxia) की अवस्था उत्पन्न हो जाती है।

(ii) रक्त बाहिनियों में रक्त दाव में कमी आने से परिसरीय (Peripheral) रक्त बाहिनियों संकुचित हो जाती है जिस कारण परिसरीय प्रतिरोध (Peripherial resistance) बढ़कर रक्तभार में वृद्धि हो जाती है। इसके फलस्वरूप ऊतकों को रक्त बाहिनियों में सहायता मिलती है, अतः इसे मुरझामक प्रतिक्रिया भी कहा जाने चलता है। यदि इस अवस्था में रक्त बाहिनियों में रक्त की मात्रा बढ़ा दी जाए तो कमी ज्ञान पहुँचने से सामान्य स्वस्थ अवस्था में पहुँच जाता है। इस त्रकार की स्त्रब्धता से सामान्य स्वस्थ अवस्था में पहुँच जाता है। यदि इस त्रकार की स्त्रब्धता को ही परिवर्तित स्त्रब्धता (Reversible shock) कहते हैं, और यदि रक्तदाव चलता है तथा समय से रक्ताधान (Blood transfusion) की किया जाए तो हृदय एवं मस्तिष्क में रक्त की कमी से ऊतियों के प्रभावित होने से अपरिवर्तनीय स्त्रब्धता (Tissues of vital organs are affected) होने से अपरिवर्तनीय स्त्रब्धता (Irreversible shock) उत्पन्न हो जाती है। रोगी में रक्त बाहिनियों के सक्रिय (Voluntary muscles) में चला जाता है। इससे मस्तिष्क रक्ताल्पता अथवा अस्तिष्क रक्ताल्पता (Cerebral anaemia) उत्पन्न होकर मृक्ख (Unconsciousness) आ जाती है। इस अवस्था में रक्ताल्पत करने से भी रोगी को बचाया नहीं जा सकता।

**भेद—**

- (1) **प्राथमिक (Primary)**—इस के अन्तर्गत तनिंचकाजन्य अथवा वातान्डीजन्य (Neurogenic), मानसिक (Psychogenic) एवं वासोबेगल (Vasovagal) इत्यादि स्त्रब्धता आती है।
- (2) **द्वितीयक (Secondary)**—इस के अन्तर्गत निम्न भेद आते हैं।
  - (i) अल्परक्तित (Oligoemic) स्त्रब्धता।
  - (ii) रक्तबाहिका जनित (Vesogenic) स्त्रब्धता।
  - (iii) हृदय जनित (Cardiogenic) स्त्रब्धता।
  - (iv) तीव्र शाहिक (Anaphylactic) स्त्रब्धता।
- (1) **प्राथमिक स्त्रब्धता (Primary shock)**—इस प्रकार की स्त्रब्धता तुरन्त उत्पन्न होती है।
  - (क) कुछ लोग रक्त को देखने से (कैचिद् रक्तस्य गद्येन मूक्ष्णित्वम् वानवा:) या उसकी गन्ध से ही स्त्रब्धत हो जाते हैं, अथवा इनमें मूक्ष्ण स्त्रब्धता के प्रचार होती है।
  - (ख) डर जाने से या ढुँखद समाचार सुनने से।
  - (ग) तोब बेदना से जैसे अण्डकोश (Testes) पर आघात लगने पर।
  - (घ) रक्तबाहिका विकारक (Vasodilator) औषधि के प्रयोग से।
  - (ङ.) तथा उत्तर की स्त्रब्धताओं में अल्पमूक्ष्ण से लेकर मूल्यु तक भी हो राकती है। इन कारणों से रक्त बाहिनियाँ दिस्कारित हो जाती हैं जिससे शारीर का रक्त विषयाधिक मात्रा में आशयिक शर्करा (Splanchnic bed) तथा एक्चिक मासेपेशियों (Voluntary muscles) में चला जाता है। इससे मस्तिष्क रक्ताल्पता अथवा अस्तिष्क रक्ताल्पता (Cerebral anaemia) उत्पन्न होकर मृक्ख (Unconsciousness) आ जाती है।

त्रान्तरलीहिं पाण्डु शीतपादकराननम् ।  
रातोच्छवासं रक्तनेत्रमानद्वं विचर्जयेत् ॥ सु० चि० २

नुक्षत संहिता में भी रोगी के कोठ में रक्त भर जाने (Internal haemorrhage) पर ऐसे ही लक्षणों का वर्णन किया गया है।

स्त्रब्धत के अड्डसार—कोठ में रक्त भर जाने से रोगी घेत बर्ण का (Pale) हो जाता है; पैर, मुख एवं हाथ ठंडे हो जाते हैं, यक्षास ठंडी हो आती है, आखे लात हो जाती है तथा दोष रुक जाने से रोग असाध्य हो जाता है।

**पूर्वी रुक्ष—** इसमें रोगी में खेतता (Pallor), जीतस्वेद (Cold sweating), तुर्बलता (Weakness), भित्तिली (Nausea) तथा हल्कापन (लघुता) प्रतीत होता है।

**लक्षण—** पूर्वी रुक्ष के लक्षणों के पश्चात् तुरन्त मूँछड़ी, रक्तभार में कमी (Hypotension) तथा हृदय गति में मन्दता (Bradycardia) इत्यादि लक्षण कुछ झण्टों के लिए उत्पन्न होते हैं। इसके पश्चात् रोगी जेतनावस्था में आ जाता है। मुश्तुत में भी रक्त की गति से उत्पन्न मूँछड़ी के लक्षणों में रक्तास अस्पष्ट है। मुश्तुत में भी रक्त की गति से उत्पन्न होना बताया है। यह लक्षण तिन्हिका- (Feeble respiration) और मूँछड़ी उत्पन्न होना बताया है। यह लक्षण तिन्हिका- जन्म स्तनधृता के ही अनुलेप है।

'स्तनधृता-इन्डिस्ट्रेशन स्ट्रॉक्स ग्रूबोहॉल्डवासपच मूँछड़ीतः'

**चिकित्सा—**(क) रोगी को तृण विश्राम दें।

(ख) रोगी को सिर नीचे तथा पैर ऊपर (Trendelenburg position) करके लेटायें, ऐसा करने से ऐच्छिक नेशनों से रक्त निकल कर मस्तिष्क में पहुँचना गुण हो जाता है और कुछ ही झण्टों में रोगी ठीक हो जाता है।

(ग) स्तनधृता उच्चतर में संशोधना (High spinal anesthesia) का रक्त वर्धक औषधियाँ (Vasopressure agents, like Ephedrine hydrochloride 20-50 mg. I. M. or 10-25 mg. I. V. for 20 minutes; maphentine or methedrine 15-20 mg. I. M. or 10-20 mg. I. V. four hourly) दें।

**आयुर्वेद मतानुसार—** इस अवस्था में तीक्ष्ण धूम, तीक्ष्ण अथवा या कोंच को शारीर पर रखँड़ने से (इससे तीक्ष्ण कण्ठ होती है), या फिर गाना, बजाना इत्यादि से रोगी की मूँछड़ी तोड़ तथा करतरी भैरव रस 1/2—1 रत्ती या मत्करधवज 1 रत्ती की मात्रा में दें।

**(2) द्वितीय स्तनधृता (Secondary shock)**

यह स्तनधृता विभिन्न प्रकार के हेतुओं के कारण निम्नलिखित 4 प्रकार की हो सकती है।

**(i) अल्परक्ति स्तनधृता (Oligaemic shock)**

जारीर से रक्त या प्लाज्मा (Plasma) के निकलने से रक्त की मात्रा में न्यूनता आ जाती है, इस से जो अवस्था उत्पन्न होती है उसे अल्परक्ति स्तनधृता (Oligaemic shock) कहते हैं। इसमें यदि अपने से ही प्रत्यावर्तित-बाहिक (Reflex vaso constriction) से यह अवस्था ठीक न हो पाए

(ब) मिछित ग्रणों में या नील ग्रणों में (Crushed injuries or contused wounds) से उत्पन्न रक्तस्राव।

(ग) व्याधि जन्य अन्तः रक्त लाव जैसे—आमाशय व्रण, अन्न नलिका की सिरा अपस्ट्रेटि (Oesophageal varices) इत्यादि।

(घ) विभिन्न कारणों से उत्पन्न पुरुदर्यशोष (Peritonitis), चमन, अतिसार इत्यादि से उत्पन्न निर्जलीकरण (Dehydration) के कारण।

(ङ) भग्न से, जैसे लम्बी अस्थियों में अनेक भग्न होने से अन्तः रक्त लाव होकर स्तनधृता उत्पन्न होती है।

(च) दरध जन्य लगान में प्लाज्मा के क्षय से (Plasma loss)।

(छ) आमाशय विस्फार से आमाशय में आमाशय के ही लाव भरते जाते हैं जिससे निजंतीकरण की अवस्था उत्पन्न हो जाती है।

**लक्षण—**(क) शर्तिरक्त स्तनधृता (Compensated shock)—20% रक्त लाव होने से शारीर इसकी शर्तिरक्ति कर लेता है। इसमें रक्त भार में थोड़ी सी न्यूनता होती है, हृदय की गति तीव्र हो जाती है, अवसाद तथा अनुकम्पी तनिशक्ति-संशान (Sympathetic nervous system) की किया तीव्र हो जाती है, इसके अतिरिक्त खेतता, जीतस्वेद, तृष्णा, दीवर्ल्य, तथा स्थिति आश्रित अल्परक्त भार (Positional hypotension) इत्यादि भी उत्पन्न होते हैं।

(ख) स्थानित स्तनधृता (Established shock)—यह अवस्था शारीर में से 35% रक्त के निकल जाने पर उत्पन्न होती है। इसमें प्रकृत्यन रक्त भार (systolic blood Pressure) 100 m. m. Hg. से भी कम हो जाता है, हृदय की गति तीव्र होती है, नाड़ी बहुत उबंत (Thready pulse) हो जाती है। शारीर में शिथिलता (Prostration), रक्त में प्रगाढ़ता (Haemo concentration) आ जाती है (जबकि स्तनधृता निजंतीकरण या दरध के कारण होती है)। इस दशा में हिमोग्लोबिन

(Haemoglobin) 15.0 हो gm तक जाती है, क्योंकि इसमें केवल प्लाज्मा का ही हास होता है रक्त कण एवं हिमोग्लोबिन की हासि नहीं होती। अनुकूली किया होता है रक्त कण एवं हिमोग्लोबिन की खुली बायु की ओर भागता है तो विकास (Sympathetic over activity) में रोगी खुली बायु की ओर भागता है। अतः रोगी (Air hunger) क्योंकि उसे ऑक्सीजन की अधिक आवश्यकता रहती है। अतः रोगी वार-बार शोषता से मुख खोलकर इच्छास देता है, तथा इन्हिन्यों की शक्तिनाश वार-बार शोषता से मुख खोलकर इच्छास देता है। इन लक्षणों के उत्पन्न (Dulness of sensation) इत्यादि लक्षण नुस्खा होते हैं। इन लक्षणों के उत्पन्न अर्थात् मूत्र की मात्रा प्रति घण्टे 50-60 c. c. तक न आने लगे तो 4 घण्टे के पश्चात् मुत्र: यह मात्रा दी जा सकती है। यह शारीर में माइक्रोसर्कुलेशन (Microcirculation) को बढ़ाता है। इससे रक्त प्रवाह भी बढ़ता है। यदि यह चिकित्सा रक्त भार बढ़ाने में सफल न हो पाये तो साथ में रक्त वाहिनी भार बर्द्धक औषधियाँ, जैसे मैफटीन या एफिड्रीन (Mephentine 5 mg I. V./minute or ephedrine 20-50 mg. I. V. hydrocortisone 100 mg I. V.) इत्यादि दें, परन्तु ये औषधियाँ प्रारम्भ में ही नहीं देनी चाहिये क्योंकि शरीर में Plasma या रक्त की कमी बने रहने से तथा रक्त संकुचित रहने से बृक्क एवं यड्डत को हानि पहुँचती है।

(ग) स्थाई स्तनधृता (Resistant shock)—इस अवस्था में रोगी की चिकित्सा करने से रोगी की दिग्गजता ही अवस्था में क्षणिक लाभ होता है, परन्तु थोड़े समय पश्चात् ही रोगी पुनः स्तनधृता में बला जाता है। यह अवस्था अतिकारणों से उत्पन्न हो सकती है, जैसे बहुत देर तक रक्तस्राव होते रहने से, मस्तिष्काधात से, श्वासकिया या रक्त परिवर्षण में व्यवधान होने से जैसे फ्लैल लवक्ष (Flail chest) से या फिर संक्रमण से, ऑक्सीजन की कमी (Hypoxia) तथा इलैक्ट्रोलाइट (Electrolyte) के अस्तुलन इत्यादि से एवं अतिक प्रकार की व्याधियों के एक साथ रहने से यह स्तनधृता उत्पन्न होती है।

चिकित्सा—अतिरक्त स्तनधृता की निम्न विधि से चिकित्सा करनी चाहिये।

(क) रक्तस्राव की चिकित्सा करें।

(ख) ऑक्सीजन की नाइक्सा द्वारा से दें।

(ग) रक्त की प्रूति कर या रक्त वाहिका-सकोचक औषधियाँ (Vaso pressure agents) दें।

(घ) तीव्र वेदना होने पर वेदना हर औषधि दें।

(इ.) रोगी को विश्वामावस्था में रखना चाहिए।

(च) अन्य व्याधियों की चिकित्सा करें।

(च) अन्य व्याधियों की चिकित्सा—रक्तस्राव अद्याय में बताये गये सांधारन (क्षाय रक्त लाव की चिकित्सा—रक्तस्राव अद्याय में बताये गये सांधारन (क्षाय रक्त लाव की चिकित्सा को बांधकर), त्वचानन (शीतलता या हिम ढारा), पाचन (शारद्वयों ने या वाहिका को बांधकर), अंदर के तब तक देते रहे जब तक रोगी की स्वास किया जाए। औक्सीजन को तब तक देते रहे जब तक रोगी की स्वास किया जाए। ऑक्सीजन न्यूनता (Hypoxia) में मुद्दाएँ न हो जाए। ऑक्सीजन को तब तक देते रहे जब तक रक्त की प्रूति—रोगी में रक्ताधान शोषणा से करना चाहिए अर्थात् रक्त

की 400c. c. की मात्रा 1-2 घण्टे के अन्दर ही क्षेत्री काहिये। रक्ताधान तब तक करते रहे जब तक कि आकुलन रक्त भार (Systolic blood pressure) 100 mm. Hg. तक न पहुँच जाए। प्लाज्मा के हास होने पर प्लाज्मा या लक्तोस 5% सिरा द्वारा देना चाहिए, मूत्र के अल्प मात्रा में आने पर (Oliguria) डेक्सट्रावन (Dextravon) 1.5 gms/kg Body weight or mantiol 25-75 ml., I. V. drip से) तिरा में सूची देना होता है। अल्पसूचता में यदि सुधार न हो, अर्थात् मूत्र की मात्रा प्रति घण्टे 50-60 c. c. तक न आने लगे तो 4 घण्टे के पश्चात् मुनः यह मात्रा दी जा सकती है। यह शारीर में माइक्रोसर्कुलेशन (Microcirculation) को बढ़ाता है। इससे रक्त प्रवाह भी बढ़ता है। यदि यह चिकित्सा रक्त भार बढ़ाने में सफल न हो पाये तो साथ में रक्त वाहिनी भार बर्द्धक औषधियाँ, जैसे मैफटीन या एफिड्रीन (Mephentine 5 mg I. V./minute or ephedrine 20-50 mg. I. V. hydrocortisone 100 mg I. V.) इत्यादि दें, परन्तु ये औषधियाँ प्रारम्भ में ही नहीं देनी चाहिये क्योंकि शरीर में Plasma या रक्त की कमी बने रहने से तथा रक्त संकुचित रहने से बृक्क एवं यड्डत को हानि पहुँचती है।

वेदना को शांत करने के लिए रोगी को पैथाडीन (Pethidine 100 mg I. M.) दें क्योंकि वेदना से स्तनधृता और अधिक बढ़ती है। नोट—मस्तिष्काधात् मूर्छा या श्वास कठन होने पर मारक्षेन काव्यापि नहीं करना चाहिए। अन्य अवस्थाओं में वेदना होने पर मारफीन (Morphine hydrochloride 8-10 mg I. V.) दे सकते हैं।

रोगी को पूर्ण चिकित्सा वास्था में अथात् लेटाकर रखें एवं उसे थोड़ा गर्म रखना चाहिए, अधिक उष्णता नहीं देनी चाहिए, क्योंकि इससे रक्तवाहिनियाँ विस्फारित होने से रक्त भार और भी कम हो जाता है।

अन्य व्याधियाँ होने पर उनकी भी चिकित्सा करनी चाहिए। रोग अवस्था के मूलांकन के लिए रोगी का रक्तधार, नाड़ी की गति, द्रव के ग्रहण तथा उसके निकास की तालिका (Input and output chart) चार्ट पर एक-एक घटे पश्चात् अंकित करते रहें। जलाधिक्षय (Over hydration) को भी ध्यान में रखना चाहिए। यह अवस्था सिराओं में रक्तधार बढ़ने पर उत्पन्न होती है। इससे फुफ्फुस में लसिकामय श्ववयु (Oedema) होकर मृत्यु हो जाती है (Patient drowns in his own fluids)।

(ii) रक्त वाहिका जनित स्तनधृता (Vasogenic shock)

यह स्तनधृता तीव्र संक्षण की विषाक्तता से उत्पन्न होती है, जैसे कोली-एनप्रोडेक्टर (Coli-aerobacter) या प्रोटियस (Proteus gram positive bacilli-

iii) से आन्त्राबरोध (Intestinal obstruction). आन्त्रूदि की विधागत अवस्था (strangulation of hernia) तथा पुरुदर्या कला शोथ (Peritonitis), इत्यारि में। इनके विषों का प्रभाव सीधे हृदय पर होता है, जिस कारण हृदय कम हो जाती है। इन विषों से रक्तवाहिनीं विस्फारित हो जाती है तथा नीत्रोफिल (Neutrophils) की संख्या में अत्यधिक बढ़ दी पाई जाती है।

**चिकित्सा**—स्तनधनता उत्पादक कारणानुसार चिकित्सा करनी चाहिए, जैसे विषायित आन्त्रबृद्धि में पुरु निष्कासन (Pus drainage in strangulated hernia),

जिन्हें नीकरण (Dehydration) उत्पन्न होने पर गतुकोस मा लवण जल (Glucose or normal saline) को सिरा द्वारा सूचीबेश से बूँद-बूँद करके (By intravenous drip method से) देना चाहिए, तथा आवश्यकता होने पर इन्जेक्टोलाइटिस भी ग्राहिता (Sensitivity) परीक्षा करके तदानुसार प्रतिजीवी औषध (Antibiotics) की अवस्था करनी चाहिए। आवश्यकता होने पर रक्तवाहिनी-भार-वर्धक औषधियों

(Vasopressure agents, like Whymycin or Betnovate or Escorlin etc.) को सिरा गत सूचीबेश चिकित्सा द्वारा दें। इव के शरीर से पर्याप्त मात्रा में पहुँचने के

पश्चात् भी यदि मूत्राल्पता (Oliguria) बनी रहे तो रक्त वाहिनी-विस्फारक (Vasodilator) औषधियों को देना चाहिए जैसे-पैपोरिन Papaverine hydrochloride 30-100 mg. I. M.) या लेपसाइन 1-5 mg. प्रतिदिन दें, या manitol 10% सिरा द्वारा दें।

(iii) हृदय जन्य स्तनधनता (Cardiogenic shock)—

हृदयगत विषयों (Tempoanads) में, जैसे हृदयवरोध जन्य गलन (Myocardial infarction), रक्ताधिन्य हृदयपात (Congestive heart failure), कुम्भसीयान्तः शल्यता (Pulmonary embolism), हृदय गति की अति तीव्रता या अतिमन्दता (Tachycardia or brady cardia) इत्यादि अवस्थाओं से रक्त भार में अल्पता, नाड़ी भार में अल्पता (Low pulse pressure), अल्प फ्रेता (Oliguria) तथा अधिक स्वेद इत्यादि स्थान मिलते हैं।

**चिकित्सा**—(क) वेदनाहर औषधियाँ दें जैसे पैथोडीन मा मार्फेन

(Pethadine 100 mg. I. M. or morphine 0.4 to 0.6 grains I. M. or 8—10 mg. I. V.)।

(ब) रोगी को ऑक्सीजन देना प्रारम्भ कर दें।

- (ग) रक्त-वाहिनी भार-वर्धक I (Vasopressure) औषधियों का प्रयोग करें।
- (घ) रोगी को पुर्ण विश्राम दें।
- (ङ.) नासिका द्वार से ऑक्सीजन दें।

(iv) तीव्र ग्राहिक स्तनधनता (Anaphylactic shock)—

यह एक तीव्र मृत्यु कारक प्रतिभूति जन्य प्रतिक्रिया (Fatal allergic reaction) है जो कि किसी औषधि के प्रति तीव्र ग्राहिक (Sensitive) रोगियों में ही अग्रणी के पश्चात् उत्पन्न होती है।

**लक्षण**—इस प्रकार की स्तनधनता में रोगी में मानसिक आशंका (Apprehension), सार्वदैहिक लसिकामय शोफ (छव्याघ) (Generalised oedema), शौतपित्त (Urticaria), अवरद्धता अथवा छवात लेने में कष्ट (Chocking), wheezing), कास, श्वास (दम) के बोगा, अल्प रक्त-भार (Low blood pressure), मूँछर्छी, आझप, मूत्र असंयति (Incontinence of urine), तथा नेत्र तारा मण्डल सहारित हो जाता है और यदि समय से चिकित्सा न की जाय तो अन्त में रोगी की मृत्यु हो जाती है।

**चिकित्सा**—(क) रोगी को पुर्ण विश्राम अवस्था में लिटाकर रखें।

(ख) रोगी को बुली हवा में रखें तथा आवश्यकता होने पर ऑक्सीजन दें।

(ग) इस अवस्था में आशयिक शर्या (Splanchnic vessels) का विस्फार होने से हृदयनिष्कासन (Cardiac out put) कम हो जाता है, अतः तुरन्त, अड़ीन-लीन (Adrenalin 0.5—1 ml. of 1 : 1000 एफिनीन, (Ephedrine hydrochloride 1 : 1000 I. M. after every 10-15 minutes) को सूची बेश से दें, और साथ में एन्टी हिस्टामिन वा स्ट्रिग्यूल (Antihistamin, as Inj. Avil 10 mg., I. M.; or steroids, as Inj. Betnovate 100 mg., I. V. 5 hourly) देने चाहिए।

(ङ.) श्वास नलिकाओं का विस्फारित करने के लिए (श्वासावरोध की अवस्था में) एमाइनोफाइलीन (Inj. Aminophylline 1/4-1/2 gms. in 10-20 ml. normal saline I. V. 4 hourly) दें।

## 12 आधान

(Infusion)

व्याधियों की कुछ ऐसी अवस्थाएँ होती हैं जिनमें रोगी के शरीर में मुख द्वारा तरल पहुंचाना कठिन हो जाता है जैसे—तीक्र वमन, कण्ठ गत शोथमय व्याधियाँ, जिनमें तिगलते में कठिनाई होती है। अनेक प्रकार के शस्त्रकर्मों के उपरान्त जब रोगी को मुख से तरल देना बंजित होता है, इत्यादि अवस्थाओं में जब किसी भी तरल पदार्थ या द्रव औषध का मुख के अतिरिक्त मार्ग से शरीर में प्रवेश किया जाता है तो इसे 'आधान' या 'Infusion' कहते हैं।

मार्गों के अनुसार आधान की भी अनेक विधियाँ हैं जैसे—

- (1) अन्तः निराधान (I. V. infusion i.e., intra venous infusion.)
- (2) अधः त्वचाधान (S/c infusion i.e., sub cutaneous infusion).
- (3) अन्तः पेशी आधान (I. M. infusion i. e., intramuscular infusion).
- (4) मलाशयाधान (Rectal infusion).

(1) अन्तः सिराधान (Intra venous infusion)

किसी द्रव औषध को सिरा आधान करने या उसे सिरा द्वारा शरीर में पहुंचाने का अन्तः सिराधान (Intra venous infusion) कहते हैं।

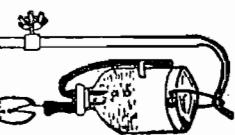
अन्तः सिराधान बाहु में प्राण्ड द्विशिरका पेशी (Biceps brachii) के पार्व में स्थित बहिर्बहु सिरा (Cephalic vein) से, अन्तः बाहु सिरा (Basilic vein) से करते हैं। अधः शाखा में अन्तः गुलक (Medial malleolus) के थोड़ा बांकण में उपरोक्त विधि से करते हैं। अन्य सिराओं के थोड़ा बांकण में उपरोक्त विधि से करते हैं। अन्य सिराओं, जैसे हाथ के पुळ भाग की सिराएँ इत्यादि में भी अन्तः सिराधान (Intra venous infusion) किया जा सकता है। आपातकाल (Emergency) में कारोणी द्वारा उसका नियमित उपयोग की जाता है। आपातकाल (Emergency) में कारोणी द्वारा उपरोक्त विधि से करता है।

**Cephalic vein or Basilic Vein**) और्बी सिरा (Femoral vein) में द्रवों का आधान करना चाहिये, परन्तु यहाँ पर आधान करने पर रोगी को कण्ठ होता है क्योंकि रोगी की बाहु या टांग को कुण्डा (Splint) लगा कर स्थिर करना होता है जिससे रोगी टांग या बाहु को संकुचित न कर सके (क्योंकि सिरा मुड़ने के कारण इसमें सूची निकलने का भय रहता है या आधान द्रव (Infusion fluid) की गति में अवरोध हो जाता है) इसलिए आपात काल के अतिरिक्त इन सिराओं में आधान नहीं करना चाहिए।

**विधि :**—सर्वप्रथम सिरा के समीपस्थ (पूर्व) भाग (Proximal part) में अरिछा (Tourniquet) को बैंधकर सिराओं को आधानित (Distend) कर लेना चाहिए। फिर सूचीवेश की सुर्दि (Injection needle) द्वारा सिरा में बेध करें। सूची में रक्त अन्ते पर उसे आधान यन्त्र (Infusion set) से जोड़ दें तथा सूची को बाहु के साथ बाँध दें ताकि बाहु हिलाने पर सुई सिरा से बाहर न निकलने पाएं। यदि रोगी स्तब्धावस्था में हो या अधिक स्थूल हो, जिससे उसकी सिरामें दिखाई न पड़ रही हों, उसे अवस्था में सिरा दर्शन करने के लिये व्यार्थ समय नहीं करता जाहिये परन्तु एक छोटा सा शरानकम् 'कट औपन' (Cut open) कर देना जाहिये। इस शरानकम् में बहिर्बहु सिरा (Cephalic vein) या अधःशाखा-दीर्घ-सिरा (Long saphenous vein) के ऊपर की त्वचा पर छोटा सा अनुप्रस्थभेदन (Transverse incision) करें। किर अकर्तक डाइसेक्शन (Blunt dissection) से सिरा को अनावृत (Expose) करके सिरा के नीचे से दो सूत डाल दें। एक सूत को सिरा के पूर्व भाग की ओर बाँध दें तथा दूसरे सूत से सिरा को ऊपर उठाकर कर्ते ही (Scissor) से सिरा पर छोटा सा 'V' के आकार का कर्तन करें। फिर उसमें सिरा के प्रमाण के अनुपार एक प्लास्टिक की प्रेशिनी (Canula) डालकर उसके ऊपर हसरे सूत द्वारा सिरा को बांध दें और प्रेशिनी को आधान यन्त्र से जोड़ दें।

यदि द्रवाधान अतिशीघ्रता से करना हो या 50% न्यूकोज (Glucose) जैसे उत्तेजक (Irritant) पदार्थ देने हों तो अत्यबहु सिरा का उपरोक्त विधि से कर्तन एक प्लास्टिक के नाड़ी यन्त्र (Plastic catheter) को ऊर्ध्व-महासिरा (Superior vena cava) तक पहुंचायें या अधःशाखा दीर्घ-सिरा (Long saphenous vein) का बंकण में उपरोक्त विधि से करते हैं। नाड़ी यन्त्र को नियमित-सिरा (Inferior vena cava) तक पहुंचायें। ऐसा करने करते हैं पर भी कभी-कभी तीक्ष्ण यदि रोगी बच्चा हो तो उसमें द्रवाधान और्बी सिरा में करना जाहिए। इस तिए बच्चों में वंकणात और्बी धमसी (Femoral artery) का स्पर्श करके उसके

अन्दर की ओर स्थित बोर्ड तिरा में सूचीबेध करके द्रवाधान करें (क्योंकि तिरा भमनी के अन्तः भाग की ओर रहती है)। इसमें लम्बी सूची का प्रयोग करना चाहिए, तथा बच्चे की टांग भोड़ने से मूर्छी निकल न जाए इसलिए उसकी कटि तथा टांग को कुशा (Splint) से सीधा बाँध देना चाहिए। 5% न्यूकोस (Glucose) का घोल या सामान्य लवण घोल (Normal saline solution) को आधान यन्त्र द्वारा सतत दूँद-बूँद (Continuous drip) के रूप से सिरा में देना चाहिए। आधान द्रव की गति रोगी की अवस्था पर निर्भर



नेक्ट नं० ६  
अन्तः सिराधान की विधि

करती है, जैसे आमाशय द्रव आचृषण (Gastric aspiration), अत्यधिक स्वेदन या

निर्जलीकरण (Dehydration) की अवस्थाओं में द्रव की गति ५० दूँद प्रति मिनट अर्थात्  $\frac{1}{4}$  पिन्ट प्रति घण्टा होनी चाहिए। परन्तु अत्यधिक निर्जलीकरण (Acute dehydration) में आधान द्रव को १०० दूँद प्रति मिनट की आमाशय लवस्थाओं में ३० दूँद प्रति मिनट देना चाहिए। डेक्स्ट्रान या डेन्ट्रोइक्स (Dextran or intradex), जैसे प्लाज्मा विस्फुरक (Expanders) रक्त में २४ घण्टे तक ०% मात्रा में रक्त रहते हैं जिससे इन द्रवों द्वारा कुछ समय तक के लिए रक्त भार बनाए रखा जा सकता है।

रोगी को आधान द्रव की मात्रा द्वारा से द्रवांग के निकास तथा आधान (Out put and input) के आधार पर देनी चाहिए। सामान्यतः एक व्यक्ति के

अयोग्य (Contra indications)—(i) हृदय दोबैंत्य तथा हृदय के ऐसे ही ज्या रोगों से पीड़ित रोगी।

(ii) कुम्फक्स में द्रवाधिक्य या घनी-भवन (Congestion or coagulation) होने पर।

(iii) अधिक रक्त भार (High blood pressure) होने पर।

(iv) वृक्क गोथादि के कारण वृक्कों में किया असमर्थता (Incompetency) होने पर।

## २) अधर्त्वगाधान (Sub cutaneous infusion)

यदि औषध द्रव किसी कारण से तिरा द्वारा न दिए जा सकें तो कम्बिला (Killa) के भाँड़ा नीचे के स्थान में, अथः उदरीय भित्ति (Lower abdominal wall) में या ऊर के नासी भाग इत्यादि की अधर्त्वगाधान में औषध द्रव का आधान देना चाहिए। आधान यन्त्र के कुँड़ (Reservoir or infusion set) को कम्बिला पर रखना चाहिए तथा आधान द्रव के साथ में हाइड्रोरोनाइज़ (Hyaluronic acid) को भी मिला देना चाहिए, इससे अधर्त्वगाधान से द्रवांश का शोषण शीघ्रता हो जाता है।

## (३) अन्तःपेशी आधान (Intra muscular infusion)

इसमें उर के बाल्स भाग (Lateral side of the thigh) में आधान यन्त्र

सूची को अस्थि तक गहरा पहुँचाकर आधान द्रव देना चाहिए।

## (४) मलाशय आधान (Rectal infusion)

मलाशय द्वारा केवल जल का या सामान्य लवण जल (Normal saline) ही आधान किया जाता है। (न्यूकोज मलाशय से बहुत कम मात्रा में शोषित होता है) अधान किया जाता है। (न्यूकोज मलाशय से बहुत कम मात्रा में शोषित होता है) इस इस मार्ग से नहीं देने)। इसमें द्रव कुण्ड (Reservoir) को रोगी से लिये इस इस मार्ग से नहीं देने)। इसमें द्रव कुण्ड (Reservoir) को रोगी से

द्रव को 60 बूँद प्रति मिनट की गति से देना चाहिये। यदि मरीशय से द्रव वासि आने लगे तो उसकी गति कम कर देनी चाहिये या द्रव कुण्ड को ऊँचा कर देना चाहिए। इस विधि से दिया गया द्रव रक्त परिश्रम में अधिक देर तक रहता है। इस मार्ग से द्रवाधान के लिए विसंक्रमन-करण पर कोई विशेष ध्यान देने की आवश्यकता नहीं होती।

### रक्ताधान (Blood transfusion)

रोगी का कोण्ड भिन्न होकर अत्यधिक रक्तस्राव होने पर रोगी को रक्त मिलाना चाहिये (रोगी में रक्त की पूर्णता करनी चाहिये)।  
अतिनिमूलतरक्तों वा भिन्नकोष्ठ: प्रिवेदसूक्त ॥ सु० द्वि० 2  
रक्ताधान दो शब्दों से मिलकर बना है, रक्त तथा आधान। रक्त का अर्थ 'रुधिर' और आधान का अर्थ है 'प्रदान' अर्थात् रक्त का प्रदान करना। इस क्रिया में एक मनुष्य रक्त देने वाला होता है, जिसे रक्तदाता (Blood donor) कहते हैं। तथा दूसरा मनुष्य रक्त लेने वाला होता है, जिसे रक्त प्राप्तक (Blood recipient) कहते हैं। "रक्त-दाता से लेकर रक्त-प्राप्तक में रक्त का पहुँचाना ही रक्ताधान (blood transfusion) कहलाता है।"

### योग्य :—

रक्ताधान करने की आवश्यकता अनेक अवस्थाओं में हो सकती है, जैसे—  
(i) अत्यधिक रक्त स्राव से जब स्थवर्थता के लक्षण प्रकट होने लगते हैं।  
(ii) रक्त स्राव जन्य स्थवर्थता—बहुत से शस्त्रकर्म में आपातकालीन स्थिति उत्पन्न होने की सम्भावनायें रहती हैं (अत्यधिक रक्त स्राव के कारण) जैसे वश एवं उदर के गम्भीर शल्य कर्मों में या वाहिनियों के शल्य कर्मों में।  
(iii) रक्ताल्पता (शस्त्रकर्म के पूर्व या पश्चात् जब रोगी का हिमोग्लोबिन (Haemoglobin) 9 ग्राम प्रति 100 सी. सी. से कम हो जाता है, उस स्थिति में रक्ताधान किया जाता है। लेकिन तीव्र पाण्डु रोग (Severe anaemia) में पूर्ण रक्त मिलान की अपेक्षा घन रक्तकण (Pack red cells) देना ही लाभदायक होता है।  
(iv) प्रोटीन न्यूनता (द्रव्य एवं नितज्जीवकरण की तीव्र अवस्थाओं में लवण्य क्षम एवं जलाजमा के साथ-साथ रक्ताधान भी लाभप्रद होता है)।

द्रव को 60 बूँद प्रति मिनट की गति से देना चाहिये। यदि मरीशय से द्रव वासि आने लगे तो उसकी गति कम कर देनी चाहिये या द्रव कुण्ड को ऊँचा कर देना चाहिए। इस विधि से दिया गया द्रव शीघ्र ही वृक्कों द्वारा उत्सज्जित हो जाता है। इस मार्ग से द्रवाधान के लिए विसंक्रमन-करण पर कोई विशेष ध्यान देने की आवश्यकता नहीं होती।

(v) कामला जन्य रक्त स्कल्प्ट की विकृतियां होने पर पूर्ण रक्त का आधान आवश्यक नहीं होता।

(vi) हिमोफिलिया जन्य रक्त स्राव की प्रवृत्ति में, अवरोधज कामला में एवं युरा इत्यादि व्याधियों में भी रक्ताधान आवश्यक है।

(vii) तीव्र संक्रमण (Acute infection) में, जैसे विषमयता (Septicemia), कोयथ (Gas gangrene), विषाशित आन्तर्वृद्धि (Strangulated enia) इत्यादि अवस्थाओं में रक्ताधान से रोगी की रोग प्रतिरोध क्षमता में घटायी होता है।

(viii) कुछ व्याधियों में अस्थाई लाभ के लिए, जैसे रक्त कैंसर (Leukae-mia) हाजरिकित का रोग (Hodgkins disease) या कैंसर चिकित्सा के लिए युक्त औषधियों के साथ-साथ रक्ताधान कारना लाभप्रद होता है।

(ix) कार्बन मोनोक्साईड (Carbon monoxide) गैस की विषाशकता की अवस्था में।

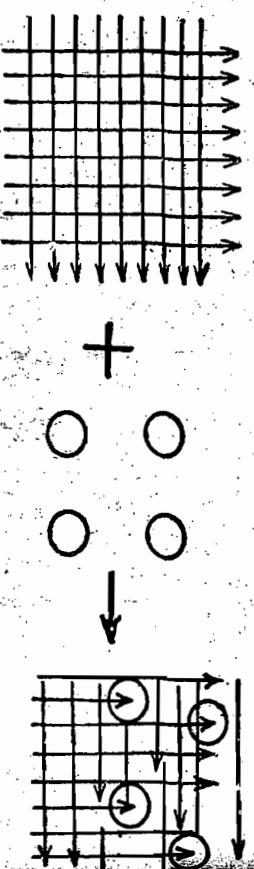
(x) गर्भस्थ शिशु रक्ताणुविनाश (Erythroblastosis foetalis due to Rh factor) की अवस्था में सद्योजात शिशु में पूर्ण रक्त का आधान किया जाता है। रक्त का आपस में (अन्योन्य) मिलान (Cross matching) करने के पूर्व रक्त प्राप्तक (Recipient) और रक्तदाता (Donor), नों के रक्त का आपस में मिलान करके देख लेना चाहिए। इस क्रिया को रक्त अन्योन्य मेलन (Cross matching) कहते हैं। मिलान किये बिना रक्ताधान ने से दोनों के रक्त में असमानता होने पर पहले रक्त संलयन (Haemolysis) जैसी डीक्रिया (agglutination) होता है फिर रक्त के रक्ताणुओं का एक प्रतिक्रियाएँ होने से रक्त प्राप्तक की मूल्य हो सकती है।

रक्ताणुओं (R. B. C) में A, B और Rh तत्व होते हैं जिन्हें सम्मुखनन रक्ताणुओं (R. B. C) में 'A' और 'B' के विरोधी agglutinogen तत्व कहते हैं। सीरस (Serum) में 'A' और 'B' के विरोधी (Anti A and Anti B) रहते हैं जिन्हें समृद्धिका (Agglutinin) कहते हैं। ग्राहक (Receiver) का सीरस अत्यधिक मात्रा में होने के कारण उदर के गम्भीर शल्य कर्मों में या वाहिनियों के शल्य कर्मों में।

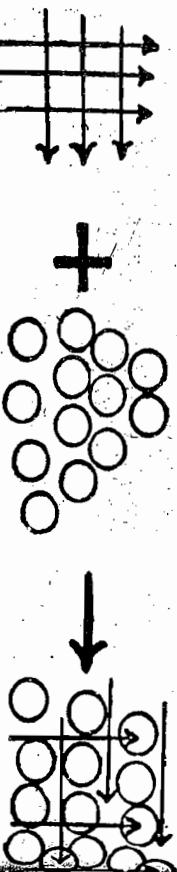
(iii) रक्ताल्पता (शस्त्रकर्म के पूर्व या पश्चात् जब रोगी का हिमोग्लोबिन (Haemoglobin) 9 ग्राम प्रति 100 सी. सी. से कम हो जाता है, उस स्थिति में रक्ताधान किया जाता है। लेकिन तीव्र पाण्डु रोग (Severe anaemia) में पूर्ण रक्त मिलान की अपेक्षा घन रक्तकण (Pack red cells) देना ही लाभदायक होता है। उनकी समृद्धिका (Agglutinin) अल्प मात्रा में होने के कारण रक्त प्राप्तक अत्यधिक रक्त कर्मों को प्रभावित करने (नष्ट करने) में असमर्थ

## रुधिर चर्गोकरण

अधिक सीरम (Agglutinogen) + अल्प रक्ताणु (Alloantigen) = या पिण्डोकरण (Haemolysis) (Agglutination)



रक्त ग्राहक (Recipient) + अत्यधिक रक्ताणु (Alloantigen) = असंलयन (No haemolysis)  
(अल्प समूहिका) + (अत्यधिक समूहिका) = असंलयन (No haemolysis)



		रुधिर चर्गोकरण			
क्रम सं०	वर्ग (Group)	समूहिका जनन (Agglutinin)		गमूहिका (Agglutinin)	
1	O	रक्ताणुओं में समूहिका जनन का अभाव रहता है।	'A' और 'B' के विरोधी समूहिका सीरम में रहते हैं।	'A' और 'B' के विरोधी समूहिका सीरम में रहते हैं।	
2	A	रक्ताणुओं में 'A' समूहिका जनन रहते हैं।	'B' के विरोधी समूहिका सीरम में रहते हैं।	'B' के विरोधी समूहिका सीरम में रहते हैं।	
3	B	रक्ताणुओं में 'B' समूहिका जनन रहते हैं।	'A' के विरोधी समूहिका सीरम में रहते हैं।	'A' के विरोधी समूहिका सीरम में रहते हैं।	
4	A + B	रक्ताणुओं में 'A' और 'B' समूहिका जनन रहते हैं।	सीरम में कोई समूहिका नहीं होता है।	सीरम में कोई समूहिका नहीं होता है।	

## रक्त वर्गों का आपस में मिलान

रक्तदाता के रक्ताणुओं का वर्ग

रक्त ग्राहक के सीरम से मिलान करने पर

रक्त दाता (Donor)	रक्त ग्राहक (Recipient)	दोनों के मिलान			
रक्त का अन्योन्य मेलन (Rhomboid test no. 7)		रक्त दाता के रक्ताणुओं का वर्ग	O	A	B
होती है। इसलिए रक्तदाता (Donor) के रक्ताणुओं को स्फतप्राहक के सीरम अन्योन्य मेलन (Cross match) करके देख लेना चाहिए, जैसा कि चित्र नं० दिखाया गया है।		O	-	-	-
		A	+	-	+
		B	+	+	-
		A + B	+	+	+

+ समूहन (मिलान नहीं होता)।—असमूहन (मिलान हो सकता है)।

उपरोक्त समूहिका (Agglutinin) तथा समूहिका जनन (Agglutination) के आधार पर रक्त को चार वर्गों में विभाजित किया गया है। इन्हें रुधिर ग्रुप्पिंग (Blood grouping) कहते हैं। इस वर्गीकरण को रुधिर वर्गीकरण (Blood grouping) कहते हैं। ये चार वर्ग निम्न तात्त्विका में दिखाए गए हैं।

(i) O सबै दाता वर्ग है (Universal donor) अर्थात् सब वर्ग के रोगियों को रक्त दे सकता है परन्तु केवल 'O' वर्ग के दाता से सकता है।

(ii) A + B सर्वशाही (Universal recipient) अथवा सब वर्ग के दाताओं से रक्त ले सकता है, परन्तु केवल A + B को ही ले सकता है।

(iii) A वर्ग का दाता A तथा A + B को रक्त ले सकता है और A तथा O से ले सकता है।

(iv) B वर्ग का दाता B तथा A + B को ले सकता है और B तथा O से ले सकता है, जैसा कि निम्न निष्कर्ष चित्र में दिखाया गया है।



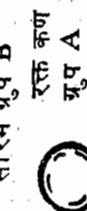
रीसस क्रहक (Rhesus factor or Rh factor) ——रक्ताणुओं में A तथा B समूह जनन (Agglutinogen) के अतिरिक्त 80 प्रतिशत व्यक्तियों में एक अन्य प्रकार का तत्व भी पाया जाता है जिसे Rh factor कहते हैं। वह घटक भी एक प्रतिजन (Antigen) होता है। जिन मनुष्यों के रक्ताणुओं में यह रीसस घटक रहता है उन्हें रीसस सप्रत्य (Rh. positive i. e. Rh + ve) कहते हैं तथा जिन रोगियों में यह घटक नहीं होता उन्हें रीसस क्रणात्मक (Rh-ve) वर्ग कहते हैं।

रीसस क्रणात्मक (Rh-ve) ग्राहक को रीसस सप्रत्य (Rh + ve) रक्त देने पर रीसस के प्रतिपिण्ड (Antibodies) बनकर रक्ताणुओं को नष्ट कर देते हैं। इसी तरह से जब रीसस क्रणात्मक (Rh-ve) माता को रीसस सप्रत्य (Rh + ve) गर्भ (Foetus) होता है तो माता के रीसस प्रतिपिण्ड (Rh antibodies) बनकर बच्चे (गर्भ) के रक्ताणुओं को नष्ट कर देते हैं जिससे बच्चे पैदा होते ही रक्तात्पता के कारण मर जाते हैं। इसलिए रीसस क्रणात्मक माता (Rh-ve Mother) को तथा रीसस क्रणात्मक पुरुषों को (प्रथम रक्ताधान के पश्चात्) केवल रीसस क्रणात्मक (Rh-ve) रक्ताधान ही करना चाहिए। क्योंकि यदि किसी कारण वश Rh-ve वर्ग के रोगियों को रक्त Rh-ve वर्ग के रोगियों को दे दिया जाए तो ग्राहक के रक्त में एक समृद्धिका (Agglutinin) जिसे anti-D कहते हैं उत्पन्न ही जाता है। फिर हमसी बार यदि इसी Rh-ve ग्राहक को रक्त की आवश्यकता पड़ती है और यदि भूल से इसे हमसी बार भी Rh-ve रक्तधान कर दिया जाए तो परिणाम बहुत घातक होते हैं।

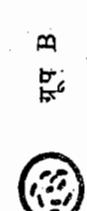
चय्दिर वर्ग जानने की विधि (Method of blood grouping) ——स्टाक सीरम (Stock serum) A तथा B में से एक एक बूद लेकर एक काँच की स्लाइड (Slide) पर रखें। फिर ग्राहक (Recipient) या दाता (Donor), जिसके रक्त के वर्ग का जान करता हो, उससे रक्त की एक बूद लेकर उसे 20 गुणा लवण जल

(Normal saline) से तरुं कारके फिर उसमें से एक-एक बूद काँच की स्लाइड पर दो स्थान में रखें, A स्टाक सीरम तथा B स्टाक सीरम को प्रत्येक बूद में डालें। फिर उसे शोड़ा हिलाकर 5 मिनट बाद सूखम दर्शक यन्त्र से देखें तथा समूहन (Agglutination) के आधार पर रक्त के वर्ग का विनियोग करें जैसा कि लघुर वर्गकरण की पद्धति (Rheochitrix नं० 8) में दिखाया गया है।

सीरम ग्रुप A

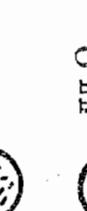


रक्त कण  
ग्रुप B

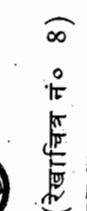


ग्रुप B

ग्रुप A + B



ग्रुप O



लघुर वर्गकरण की पद्धति (Rheochitrix नं० 8)

(i) स्टाक सीरम 'A' में समूहीकरण होने पर रक्त का वर्ग 'A' होता है।

(ii) स्टाक सीरम 'B' में समूहीकरण होने पर रक्त का वर्ग 'B' यही होता है।

(iii) स्टाक सीरम 'A' तथा 'B' दोनों में समूहन न होने पर रक्त 'A + B' यही होता है।

(iv) स्टाक सीरम 'A' तथा 'B' दोनों में समूहन न होने पर रक्त 'O' यही होता है।

रक्त ग्राहक (Recipient) तथा रक्त दाता (Donor) दोनों के रक्त 'A' वर्ग जान लेने के पश्चात् दोनों के रक्त से एक-एक बूद लेकर अच्यन्य मिलात (Cross match) करके भी देख लेना चाहिये। यदि 5 मिनट में समूहन बन जायें तो रक्त को असंयोज्य (Incompatible) जाना चाहिये अथवा ऐसे रक्त का आधारात् (Transfusion) नहीं करना चाहिये।

रक्ताधान विधि

रक्ताधान विधि में दो क्रियाओं का समावेश होता है :—

(i) दाता से रक्त की प्राप्ति है।

(ii) प्राहक को रक्ताधान।

(i) दाता से रक्त की प्राप्ति—दाता के रक्त से प्राहक के रक्त का अन्यथा मिलान करने के पदचार रक्त दाता (Doctor) को शव्या पर लेटा दे। उसके एक बांह पर रक्त भार मापक यन्त्र (Sphygmomanometer) को संग्राहक उसे 70mm Hg. पर स्थित कर दें या अरिष्टा (Tourniquet) बांध दें। इससे अग्र बांह में सिरागत रक्त परिवर्षण रक्त जाने से वहाँ की सिरामें उपर को उठ आती है। निर्जीवाण रक्त बोतल (Sterilized bottle) जिसमें 3.4% सोडियम साईट्रेट का घोल (3.4% Sodium Citrate solution 80 ml. for one pint blood or Anhydrous glucose 3 gms., Di Sodium monohydrate 2 gms. and water 120 ml.) i. e. an anti coagulant solution for 600 ml. of blood.) रखा होता है, जो में रोगी की सिरा से रक्त की एक मिन्ट मात्रा को बोतल में भार ले। रक्त निकालते विश्व बोतल को धीरे-धीरे गोल दिशा में घुमायें या उसे धीरे-धीरे छिलाते रहें। (For thorough mixing of blood and anti coagulant Solution)। फिर रक्त खुलत बोतल को अच्छी तरह से बंद कर (air tight) 2°C—6°C तापमान में रख दें। इस तरह इस 14-21 दिन तक रखा जा सकता है। इससे अधिक समय तक रखने की वजह से रक्ताणुओं का संलयन (Haemolysis) होने से उसके रजन कणों (Pigments) की एक नीत ज्वाजमा मंडल की परत (Plasma zone) उसके ऊपर चढ़ जाती है। यदि यह परत एक इंच (1") से अधिक चौड़ी हो तो उस रक्त के रक्ताणुओं के भंगुर रोगी को आधान किया जा सकता है, इसे स्वरक्ताधान (Auto transfusion) कहते हैं।

(Friable R. B. C.) होने के कारण उसे असंयोज्य रक्त (Incompatible blood) जानना चाहिये अथवा वह आधान (Transfusion) के दोष नहीं होता।

(ii) प्राहक को रक्ताधान (Blood transfusion to the recipient)—  
प्राहक रोगी को शव्या पर लेटाकर उसकी सिरा में पहले बताई गई अन्तः सिरान विधि से बोतल में लिए गये दाता (Donor) के रक्त का आधान (अन्तः स्वेषण) करें। यदि रोगी अत्यधिक स्तब्धता (Severe shock) में हो तो रक्ताधान को अति तीव्र गति से करें अथवा दो मिनट रक्त को 5 मिनट में दे देना चाहिए। रोगी का रक्तभार 100 mm. Hg. पर पहुंच जाने पर आधान की गति 30 बूर्ड्र प्रति मिनट कर देनी चाहिये।

3 से 8 वर्ष तक के बच्चों में तीव्र स्तब्धता होने पर उत्तेजित (Sternum) मा अत्यंतचास्थ (Tibia) की अस्थिमज्जा (Bone marrow) में बीहीमुख शब्द (Trocar) से बेघन करके नाई यन्त्र (canula) द्वारा रक्ताधान करना चाहिए। रक्ताधानियां—रक्ताधान करते समय निम्न वातों पर विशेष स्पष्ट से ध्यान देना चाहिये।

(1) रक्ताधान से रुद्ध रक्तदाता के बर्ग का पुनर्निरोक्तण कर लेना आवश्यक

है। यह भी जान लेना चाहिये कि रक्त का अन्योन्य मिलान (Cross matching) हुआ है या नहीं।

(2) रक्ताधान की मात्रा तथा उसकी आधान गति का आदेश रोगी के आदेश पत्रक (Doctor's form) में लिख देना चाहिए।

(3) अपात्र स्थिति के लिए दो या तीन रक्ताधान यन्त्र तेपार रखने चाहिये ताकि 2 बोतल रक्त को 15 मिनट के समय में आधान किया जा सके।

(4) रक्ताधान से पूर्व दाता के रक्त को 37°C (Room temperature) तापमान तक ले आता चाहिये अन्यथा शीत रक्त का आधान करने से गरीर का तापमान तक होकर हृदयवरोध हो सकता है।

(5) अस्थानिक सगर्भता (Ectopic pregnancy) में या उदर के विदीर्जी होने पर रोगी के ही निकले हुए रक्त को 6 पर्ट की विकेशिका (Gauze) से ढान कर उस में 3-8 सोडियम साईट्रेट (Sodium citrate) का विलयन मिलाकर रोगी को आधान किया जा सकता है, इसे स्वरक्ताधान (Auto transfusion) कहते हैं।

(6) Rh. negative नवजात शिशु में रक्त संलयन पाइड (Haemolytic anaemia) होने पर उसे Rh. negative रक्त को नाभीय सिरा ड्रारा (By plastic catheter) आधान करना चाहिये तथा शिशु के अपने रक्त को निकालते रहें। इस किया को आदान-भ्रानीय रक्ताधान (Exchange transfusion) कहते हैं।

### उपक्रम (Complications)—

रक्ताधान करते समय निम्न उपक्रम उत्पन्न हो सकते हैं।

(i) शीत कंप (Rigor)—रक्ताधान यन्त्र (Drip set) या दाता के रक्त तीव्र-ज्वर, वमन तथा शिरगूल होता है।

(ii) तीव्र-प्राहिक प्रतिक्रिया (Anaphylactic reaction)—यदि रोगी में रक्ताधान करते ही तीव्र प्राहिक प्रतिक्रिया के लक्षण शीत-पित्त (Urticaria), ज्वर तथा श्वास-कठन्डता इत्यादि होने लगें तो रक्ताधान को तुरन्त बन्द कर देना चाहिए।

और रोगी को सिरा द्वारा एविल (Avil 50 mg. I. v) या एफीड्रीन (Ephedrine जैसी औषधि दुर्लभ दे देनी चाहिए।

(iii) रक्त संतायी प्रतिक्रिया (Haemolytic reaction)—असंयोज्य (Incompatible) रक्ताधान करने पर रक्त का संलयन (Haemolysis) होकर कामला (Jaundice) एवं हीमोग्लोबिनमेह (Haemoglobinuria) उत्पन्न होते

है। इस कारण हेमेटिन-रंजन (Haematin pigments) (मूत्र की अम्ल प्रतिक्रिया होने पर) बूक में तलछट (Settle) होकर बूक्कपात (Kidney failure) तथा कटि प्रदेश में तीव्र पीड़ा उत्पन्न करता है। इसके लिए रोगी को भीठा सोडा (Soda bicarbonate) सूची द्वारा सिरा में दें, इसमें मूत्र की क्षारीय प्रतिक्रिया होकर हिमेटिन रंजन (Haematin pigments) का तलछट नहीं बनता (Haematin pigments are soluble in alkaline media)।

(iv) संक्रामक रोग—दाता (Donor) के रक्त द्वारा ग्राहक में अनेक तरह कटि प्रदेश में तीव्र पीड़ा उत्पन्न करता है। इसके लिए रोगी को भीठा सोडा (Soda bicarbonate) सूची द्वारा सिरा में दें, इसमें मूत्र की क्षारीय प्रतिक्रिया होकर हिमेटिन रंजन (Haematin pigments) का तलछट नहीं बनता (Haematin pigments are soluble in alkaline media)।

(v) अति जलीकरण (Over hydration)—रक्त ग्राहक के फुफ्फुस तथा हृदय के व्याधि ग्रस्त होने पर, अति जलीकरण (Over hydration) होने से या रक्त का शीघ्रता से आधान (Infusion) करने से फुफ्फुस में लासिकामय श्वयथु (Oedema), श्वास कुचल्हता तथा श्वावता (Cyanosis) उत्पन्न हो जाती है। रोगी की ग्रीवा की सिराये पूर्ण रूप से भरी हुई (Engorged) दिखाई देती है। ऐसा होने पर रोगी को खड़ा कर दें तथा उसकी शाखाओं पर अरिडा (Tourniquet) बांध दें (At 70 mm. Hg.), इससे कुछ देर के लिए रक्त सिराओं में रुक जाता है।

(vi) रक्त लाल की प्रवृत्ति (Haemorrhagic diathesis)—स्टाक अपार्ट एक चिकित्सित किये हुए रक्त (Stored blood) में रक्त चक्रिकार्यों (Blood platelets) की कमी आ जाने से रक्त में रक्त-स्कन्दन करने वाले घटक factor) की कमी हो जाती है, इससे रक्त ग्राहक में रक्त स्राव की प्रवृत्ति हो जाती है। इसकी चिकित्सार्थ ताजा लाज्मा, या ताजा रक्त या रक्त चंचिकाओं का निलम्बन (Suspension of blood platelets) का आधान करना चाहिए, या किर फाइब्रिनोजेन (Fibrinogen) देनी चाहिए।

(vii) अधिक रक्तधन—अधिक रक्तधन (Repeated blood transfusion) करने से रोगी के रक्त में साईट्रोट चिलियन (Anti coagulant solution mixed in donor's blood) अधिक मात्रा में पहुंच जाता है, जिससे रोगी में रक्त स्राव की प्रवृत्ति हो जाती है। अतः ऐसे रोगियों में बीच-बीच में कोलियम लैक्टेट (Calcium lactate) को सूचीबंध से देते रहना चाहिए।

## चिकित्सक में चिकित्सा कर्म

चिकित्सा कर्म तीन प्रकार का होता है।

चिकित्सा कर्म। पूर्व कर्म प्रधान कर्म पश्चात्कर्म जैति। सु० सु० ५

(I) पूर्व कर्म

(II) प्रधान कर्म

(III) पश्चात् कर्म

(IV) पूर्व कर्म

'लघनाद चिकित्सात् फूर्व कर्म लग्नस्य च':

(i) रोगी सम्बन्धित

(ii) चिकित्सा सम्बन्धित

(iii) उपकरण सम्बन्धित

(iv) शल्य कक्ष सम्बन्धित

(i) रोगी सम्बन्धित—रोगी की परीक्षा निविध या शल्यविध प्रकार से करनी चाहिए। जैसे—"दर्शन स्पर्शनं प्रसन्नं परीक्षा चिकित्सा च्छ्रुतः।" "षड्विधो हि रोगाणां विज्ञानोपायः।" तथा पञ्चविधिः शोषादिभिः प्रसन्नं जैति"

रोगी की निम्न परीक्षाओं पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

(क) भौमीतिक परीक्षा (Physical examination)

(ख) सौंतों की परीक्षा (Systemic examination)

(ग) कल परीक्षा, जैसे हीनबल, रक्तताल्पत्र (Anaemia), निंजलीकरण (Dehydration), शीणता (Cachexia), मृत्यु आसन्न रोगी (Bad risk patients) इत्यादि की परीक्षा। इन रोगियों की आवश्यक चिकित्सा करके इन्हें शल्य कर्म सहन करने योग्य बनाना चाहिए।

(घ) रोगानुसार आवश्यक विशेष परीक्षाओं (Special investigations) को भी करना चाहिए, जैसे परिणाम शूल में फलक्षणल टैस्ट मील (Functional test)।

**test meal)** परीक्षा, यकृत रोगों में यकृत किया परीक्षा (Liver function test) इत्यादि ।

फिर पूर्य विरोधी बोलों (Anti septic lotions) द्वारा शोषण करके उस स्थान पर निर्जीवाणुकृत पट्टी बांध देनी चाहिए ।

(इ.) सर्वप्रथम शल्य कर्म बाले स्थान के रोगी के बाल एक रात पूर्व कर्म, इदर के शल्य कर्म में शल्य कर्म से पूर्व आमाशय में (च) विशेष अवस्थाएँ—उदर के शल्य कर्म में शल्य कर्म से पूर्व आमाशय में रायल की नलिका (Ryle's tube) को डालें ।

(छ) संजानाश से पूर्व हिलते हुए दाँतों को निकाल देना चाहिये ।

(ज) एक रात्रि पूर्व रोगी को विरेचन (Laxative) औषध देना तथा शल्य कर्म से 3-4 घण्टे पूर्व संशोधन वर्तित (Soap water enema) देनी चाहिए ।

(ii) चिकित्सा सम्बन्धी—(क) हीन बल तथा शत्रु शीण रोगियों को शल्य कर्म के बीच बनाने के लिए आवश्यक चिकित्सा करनी चाहिए, जैसे—निर्जीवीकरण होने पर जल तथा आवश्यक लुबण पदार्थ (Fluid and electrolyte therapy) कर्म दें, शीण धातु रोगियों को पोषक आहार इ (Protein for cachexia & mal nutrition patients) तथा रक्त स्कन्दन के दोष रहने पर उनकी आवश्यक चिकित्सा करें (Treat the coagulation deficiency by vit-C, vit-K, or by whole blood etc.)

(ब) मधुमेह रोगियों की आवश्यक चिकित्सा शल्य कर्म से पूर्व ही कर लेनी चाहिए (Control the diabetes) ।

(ग) शोय नाशक उपकरणों द्वारा शोय को शांत करें (Resolve the inflammation) जैसे प्रलेप, परिषेक, अम्लण, विम्लापत, उपनाह, पाचन, रक्त विसरण इत्यादि कर्मों द्वारा या प्रतिजीवी तथा प्रतिशोकीय (Antibiotics & anti inflammatory) औषधियों देनी चाहिये ।

(iii) उपकरण सम्बन्धित (क) शल्य कर्म सम्बन्धी यन्त्र, शस्त्रादि उपकरण (Instrument), पिच (Medicated swab), ल्लोट (Wet swab), सूत (Thread), कवलिका (Gauze) इत्यादि को पूर्ण रूप से विसरोधित या निर्जीवाणुकरण (Proper sterilization) करें आचार्य बाख्यट ने भी कवलिका को धूपन द्वारा विशुद्ध करते को कहा है ।

(ब) भार, दाहक पदार्थ (Caustics), अनिं (Cautery), जाम्बवाणी (Jambuvaṇi) का यज्ञी, अलाकृ, जोक (Leech), इत्यादि आवश्यक वस्तुओं का पहले से ही प्रबल्ध कर लेना (इकट्ठा कर लेना) चाहिये ।

(ग) आवश्यकतानुसार चतुर्थ, तेल, कषाय या Antiseptics इत्यादि औषधियों तथा उच्च एवं शीतल जल इत्यादि पदार्थों का प्रबल्ध भी पहले से ही कर लेना चाहिए ।

(घ) पारिचारकों की व्यवस्था पहले से ही करनी चाहिए (To arrange the required assistants and para medical staff) ।

(iv) शान्त ऋक्ष सम्बन्धित—

(क) शल्य कर्म वाले स्थान पर पर्याप्त प्रक्रिया होना चाहिये ।

(ख) शल्य कर्म यथा (Operation table) पर्याप्त ऊंची तथा आरामदायक होनी चाहिए ।

(ग) कक्ष को धूपनादि क्रियाओं के द्वारा पूर्ण रूप से विशुद्ध (निर्जीवाणुकरण) कर लेना चाहिए तथा शल्य चिकित्सक को भी युद्ध वस्त्र पहनने चाहिये, मुख पर मुखान्धा दक (Mask) लगाना चाहिये, नख एवं बाल कटे होने चाहिये, सिर पर दोपी एवं हाथों में रबर के दस्ताने (Rubber gloves) इत्यादि को पहनना चाहिये । निष्पात तथा मुख द्वारा निर्जीवाणुओं के उपसर्ग का भय होता है इसीलिये मास्क लगाया जाता है । प्रसंग से जीवाणु उपसर्ग न हो सके इसके लिये दस्ताने (Gloves) तथा निर्जीवाणुकृत वस्त्र (Sterilized apron) पहनते हैं ।

## II प्रधान कर्म

“प्रदन रोपण यन्त्र प्रधान कर्म”

(क) देव शूद्धन—शल्य कर्म के पूर्व सफलता हेतु तथा मनोबल बढ़ाने हेतु लेताओं का पूजन करना चाहिये (Prayers for success) ।

(छ) सज्जाएरण—रोगी को शल्यकर्मिनासार सावंदेहिक सज्जाहरण (General anaesthesia) या स्थानोदय सज्जाहरण (Local anaesthesia) देना चाहिये । प्राचीन काल में सज्जाहरण के लिये मुरा गीने दालों को तीक्ष्ण मुरा पिला दी जाती थी जिससे रोगी अवसादित (sedate) हो जाता था (परन्तु अवसादावस्था में पूर्ण रूप से सज्जाहरण नहीं होता) ।

(ग) दोनों की मुद्रा (यंत्रणा)—शल्य कर्मिनासार रोगी को उन्मुख मुद्रा (Supine position) में उदरगत शल्य कर्म के लिये एवं बूँक के शल्य कर्म के लिए एक पार्श्व में (Right or left lateral position), निम्न सिर मुद्रा में (Trendelenburg position) श्रोणीगत शल्य कर्मों के लिए तथा गुदा एवं श्वादि के शल्य-भर्मों के लिये प्रदक यन्त्रणा (Lithotomy position) इत्यादि आसन देना चाहिये ।

(घ) मुख्य शल्य कर्म (Main Operation)—इसमें अनेक कर्मों का समावेश होता है, जैसे छेदन (Excision), चेतन (Incision), लेखन (Scraping), बेष्टन (Puncturing), एवण (Probing), आहरण (Extraction), विलावण (Drainage), मीचन (Suturing), इत्यादि आठ कर्म विशेष रूप से किये जाते हैं । आचार्य बाख्यट ने पांच अन्य कर्म भी माने हैं जैसे उत्पाटन (Incision), कुट्टन, मर्थन चश्चिप (Crushing), यहण (To take out), दहन (Cauterization) इत्यादि तथा

जलौंका अवचारण, भार-कर्म एवं सिरादेह। इन सबका प्रयोग मुख्य शाल्य कर्म के अन्तर्गत आ जाता है।

### III पश्चात् कर्म

“तत्पत्तम् बलवण्णनकाप्तु पश्चात् कर्म चेति ।”

(अ) चिकित्सा सम्बन्धी

(आ) आहार सम्बन्धी

(इ) विहार सम्बन्धी

(ई) उपद्रव सम्बन्धी

(अ) चिकित्सा सम्बन्धी :

(1) शाल्य कर्म के पश्चात् द्रण को क्वाश या Spirit इत्यादि जीवाणुहर्दबों से साफ करके छूत, शहद, तिलपिण्ड या Glycerine acriflavin इत्यादि को लगाकर किर मोटी कवलिका (Cotton pad) रख कर पट्टी बोलकर पूय द्रण को तीसरे दिन या फिर कहु अनुसार शीघ्र पट्टी खोलकर पूय द्रण को देखें। पूय के रहने पर क्षाय (पचक्षीरी वृक्षों) या पूय विरोधी इत्यादि दोषों को देखें। पूय के रहने से रोपित द्रण किर (Antiseptic) द्रव्यों से उपचार करें, अन्यथा भीतर पूय रहने से रोपित द्रण किर जाता है।

(iii) आधायात्मिक पद्धति (Meta physical method) —राक्षसों से ब्रण की

रक्षा के लिए धूपन एवं मन्त्रादि से चिकित्सा करें।

(2) बेदना शास्त्रक औषधियां (Analgistics) ——अहिकेनादि, तथा स्थानीय वेदना शास्त्रार्थ मुलौठी और घृत का प्रयोग करन् तथा स्वेदन दें।

(3) धूपन—वर्णित की रक्षार्थ, गुणात्, रातादि द्रव्यों द्वारा दी गई धूपन से (Fumigation for sterilization) जीवाणु नष्ट होते हैं तथा बेदना शास्त्र होती है।

(4) द्रण में संक्रमण न होने पाए इसलिए आचार्य सुश्रृत ने कहा है कि द्रण में माक्त्वयों, छनियों को उत्पन्न कर देती है, इसके लिए प्रति जीवाणु तथा पूप विरोधी (Antibiotics and antiseptics) द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिए।

(5) यदि द्रण होने के पश्चात् उत्पन्न द्रण वर्तु में कोई विकृति देख जाए तो उसे “कृतपात्र” उपक्रम के द्वारा ठीक कर लेना चाहिए।

(6) मल, मूत्र, वायु का त्याग ठीक से होना चाहिए, क्योंकि जिस प्रृथक भवानक आधारज द्रण के मल मूत्रादि अपने मार्ग से आते रहते हैं वह छिद्रोदर जैसे भवानक आधारज द्रण होते पर भी बच जाता है। यदि मल मूत्र की प्रवृत्ति की तीक से न हो तो तत् सम्बन्धित

(7) द्रण में संक्रमण न होने पाए इसलिए आचार्य सुश्रृत ने कहा है कि द्रण में धूप, धूली, धूम, और तिल विषमासन से रोगी को बचाकर रखें।

(8) व्यायाम, मैथन, हर्ष एवं कोष का रोगी में पूण बल आने तक निवेदण, क्योंकि इससे द्रण में लैलिमा, बेदना एवं शोफ होता है तथा द्रण फट जाता होने से तथा ओजक्षय से स्फुर्ति नहीं रहती तथा स्तन्धता (Shock) भी होती है।

(9) रोगी को धीरे-धीरे करवट दिलानी चाहिये (As sudden change posture precipitates shock)।

(न) रोगी को लम्बे-लम्बे धारास (Deep breathing) लेने चाहिए। चिकित्सा का पता लगाकर आवश्यक चिकित्सा तुरत करनी चाहिए, जैसे (Correction),

of dehydration, catheterization, flatus-tube introduction, injection o carbacol इत्यादि।

(आ) आहार सम्बन्धी—आहार की व्यवस्था विशिष्ट शाल्य कम्प्टिशार

ही होनी चाहिए, जैसे—छिद्रोदर के सदृश उदर के अन्य बड़े शाल्य कर्मों में कुछ दिन

तक मुख से कुछ भी नहीं देना चाहिए अथवा जब तक कि आनन्द में गति न होने लगे (इस अवस्था में Intravenous glucose तथा Vitamins देने रहना चाहिए।

(इ) सर्वदैहिक संज्ञाहरण (General anaesthesia) औषधि के प्रयोग करने से रोगी के होश में आते के बार घण्टे पश्चात् तक मुख से कुछ नहीं देना चाहिए, अन्यथा बमन होने की सम्भावना रहती है। छोटे शाल्य कर्मों में, तरल पदार्थ औड़-धोड़ा

करके रोगी के होश में आते के तुरत बाद दिया जा सकता है, परन्तु अन्य बड़े शाल्य कर्मों (Major operations) में मुख द्वारा पदार्थ 24 घन्टे के पश्चात् ही देने चाहिए,

और रोगी के सामान्य आहार पर आते के पश्चात् उसे उपवास नहीं करना चाहिए, इससे अपतर्पण (Weakness) होता है। शाल्य कर्म के पश्चात् मध्य, अम्ल, रक्त एवं

स्त्रिंग पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिए, क्योंकि इनसे कर्षण होता है। मध्य सदृश गुणात्मक से शर्करा (Glucose) का अस्थाधिक उपयोग (Utilise) होने लगता है। जिससे तापमान बढ़ जाता है तथा स्वेद आने से निर्जलीयता (Dehydration), अम्लता (Acidosis), स्तन्धता (Shock), सच्चास (Coma), अजीर्ण तथा ओजक्षय इत्यादि उपद्रव उत्पन्न हो सकते हैं।

(इ) विहार सम्बन्धी—विशिष्ट कर्म भी शाल्य कम्प्टिशार करने चाहिए।

(क) अस्थिगत शाल्य कर्म के पश्चात् (After fracture surgery) हमारा (या स्थान) को पूण विश्राम (By immobilization) देना चाहिए।

(ख) अन्य बड़े शाल्य कर्मों में रोगी को सापर्श के अनुसार जलदी बैठाना या जलदी चालाना चाहिए (Early mobilization)। ऐसा करने से धनाखता तथा

कृत्ति: शाल्यता (Thrombosis & embolism) जैसी अवस्थाओं तथा शय्याज बण

जैसे उपद्रवों से छुटकारा मिल जाता है।

(ग) धूप, धूली, धूम, और तिल विषमासन से रोगी को बचाकर रखें।

(घ) व्यायाम, मैथन, हर्ष एवं कोष का रोगी में पूण बल आने तक निवेदण

जाए, क्योंकि इससे द्रण में लैलिमा, बेदना एवं शोफ होता है तथा द्रण फट जाता होने से तथा ओजक्षय से स्फुर्ति नहीं रहती तथा स्तन्धता (Shock) भी होती है।

(ङ) रोगी को धीरे-धीरे करवट दिलानी चाहिये (As sudden change posture precipitates shock)।

(च) रोगी को लम्बे-लम्बे धारास (Deep breathing) लेने चाहिए।

(ज) रोगी को लम्बे-लम्बे स्थानांतर करनी चाहिए, जैसे भवानक आधारज द्रण

के मल मूत्रादि अपने मार्ग से आते रहते हैं वह छिद्रोदर जैसे भवानक आधारज द्रण

होते पर भी बच जाता है। यदि मल मूत्र की प्रवृत्ति की तीक से न हो तो तत् सम्बन्धित

जाए।

(क) रोगी को लम्बे-लम्बे धारास (Deep breathing) लेने चाहिए।

(ज) रोगी को लम्बे-लम्बे धारास (Deep breathing) लेने चाहिए।

(क) रोगी को लम्बे-लम्बे धारास (Deep breathing) लेने चाहिए।

(क) रोगी को लम्बे-लम्बे धारास (Deep breathing) लेने चाहिए।

(क) रोगी को लम्बे-लम्बे धारास (Deep breathing) लेने चाहिए।

(क) रोगी को लम्बे-लम्बे धारास (Deep breathing) लेने चाहिए।

(६) उपद्रव सम्बन्धी—‘उपद्रवात्मु विविधा: शल्य विभिन्नता।

उपद्रव दो प्रकार के होते हैं।

(1) चण के उपद्रव

(2) चणित के उपद्रव

(1) चण के उपद्रव—डुल्ट चण के लक्षण ही चण के उपद्रव होते हैं, जैसे तिक्कत गन्ध, सांत एवं बेदना इत्यादि। रक्त सांत में पूय का पड़ना (Stich abscess), उपयुक्त विधि से रोकना चाहिए। सीधन रासान में पूय का पड़ना (Fulminating infection), चण का फॉलिसिट (Cellulitis), स्मृजीय संक्रमण (Fulminating infection), चण का फॉलोजना (Disruption of wound) तथा अत्यधिक चण वस्तु का बनना (Keloид formation) इत्यादि उपद्रव होने पर कारणातुसार उपयुक्त चिकित्सा करनी चाहिए।

(2) चणित के उपद्रव—ज्वर (Fever), अतिसार (Diarrhoea leading to dehydration & Potassium loss), मूँहर्छ (Unconsciousness), हिप्पिय (Hiccough due to irritation of phrenic nerve), छांद (Vomiting due to intestinal obstruction or increased blood urea or colicky pain), तुष्णा (Thirst which is a sign of dehydration), अरोचक (Anorexia), श्वास एवं कास (Respiratory complications) इत्यादि उपद्रवों की उत्तरविकित्सा करनी चाहिए अन्यथा रोगी की शोषण मुश्य होने का भय रहता है।

शल्य निरेण के उपाय को यन्त्र कहते हैं।

यन्त्र निर्माण :

यन्त्रों का निर्माण करते समय उनके अग्र भाग का आकार हिस्क प्लॉ-प्लिन्टो के मुख के समान रखना चाहिए। यन्त्रों का परिमाण शास्त्रीकृत विधि से या इस विषय में प्रबीण चिकित्सकों के परामर्श से या किर यन्त्रों के कमर्जुसार रखना चाहिए। यन्त्र मजबूत लौह, (जैसे Stain less steel) या इसके अभाव में ताज्ज्वाति अन्य धातुओं से बनाने चाहिए। यन्त्र लेखने में मुद्र, कठोर (Unbreakable) एवं मुमास (With good grasp) होने चाहिए।

यन्त्र संस्था :

शल्य कर्म की विविधता के कारण यन्त्रों की संस्था निश्चित रूप से निर्धारित गहरी की जा सकती। फिर भी मुख्य कर्मों के अनुसार तथा यन्त्रों की जानकारी के लिए 10.1 यन्त्र वर्ताए गए हैं। यह यन्त्र छः प्रकार के होते हैं—

(i) स्वस्तिक यन्त्र	24
(ii) संदेश यन्त्र	2
(iii) ताल यन्त्र	2
(iv) नाड़ी यन्त्र	20
(v) शलाका यन्त्र	28
(vi) उपयन्त्र	25

### (1) स्वस्तिक यन्त्र :

यह यन्त्र स्वस्तिक चिह्न (अ) के आकार के होते हैं। इनके दोनों भाग बीच में एक कील (Rivet) द्वारा जुड़े रहते हैं (Its power and weight arm lie on either side of the fulcrum)। इस प्रकार यन्त्र का मुख तथा पकड़ने का मूल रासान कील के स्थान पर आपस में मिलता है। इसमें से नौ (Nine) यन्त्रों का

## 14 यन्त्र

(BLUNT INSTRUMENTS)

अप्रभाग हिस्पक पश्चिमों के मुख के आकार सदृश होता है। इनका उपयोग त्वचा के समीप में पड़े शल्यों को निकालने के लिए होता है, ये यन्त्र निम्न होते हैं—

- (1) सिंह मुख !
- (2) ब्याघ मुख !
- (3) वृक्ष मुख !
- (4) चास मुख !
- (5) अद्भुत मुख !
- (6) द्विपी (चीता) मुख !
- (7) माजरि मुख (विडाल मुख) !
- (8) शूगाल (भेड़िया) मुख !
- (9) मुग (एवरहिक) मुख !

15 यन्त्रों का अप्रभाग हिस्पक पश्चिमों के मुख के समान होता है। ये यन्त्र तिम्ति गहराई में स्थित शल्य के निर्वरण के लिये प्रयोग में लाए जाते हैं। ये यन्त्र तिम्ति होते हैं—

- (1) काक मुख !
- (2) कंक मुख !
- (3) कुरर (टिटीहरी) मुख !
- (4) चाष मुख !
- (5) भास मुख !
- (6) शाश्वति (बाज) मुख !
- (7) उल्लू मुख !
- (8) चिल्सी मुख !
- (9) फ्येन मुख !
- (10) गृष्म मुख !
- (11) कौच मुख !
- (12) भूक्कराज मुख !
- (13) अठ्ठलिकण्ठ मुख !
- (14) अवभजन मुख !
- (15) नन्दी मुख !

फारसेप्स, (Crocodile forceps) हल्यादि, इन यन्त्रों के मुख का आकार क्रमशः सिंह, श्वान और मगर के समान रहता है।

**कार्प**—ये यन्त्र अस्थि में लगे (अर्थात् दृढ़ रूप से फसे हुए) शल्य को निकालने के काम आते हैं। कंक मुख यन्त्र का अप्रभाग लम्बी चौंच सदृश होते हैं के कारण यह गहराई में स्थित शल्य को आसानी से निकाल सकता है; इसलिए कंक मुख को यन्त्रों में श्वेष यन्त्र माना जाता है।

### (II) संदंश यन्त्र :

यह चिमटे (Fork) सदृश एक ओर से कील से छुड़ा रहता है। [Fulcrum is on one side, weight carrying part to other side and handle (power arm) lies in between both] इसकी लम्बाई 16 अंगुल होती है।

### मेव (Types)—संदंश यन्त्र 2 प्रकार का होता है।

#### (i) सन्तिश्व (With catch)

(ii) अनिश्व (Without catch)

(i) सन्तिश्व (With catch)—सन्तिश्व संदंश यन्त्र किसी भी शल्य को (विना हाथ से दबाए) लगातार पकड़े रख सकता है। शल्य पकड़ने के पश्चात् उस पर लगे छ्यले को यन्त्र के मुख भाग की ओर ले जाते हैं, इससे यन्त्र का मुख बन्द हो जाने से वह शल्य को पकड़े रखता है।

(ii) अनिश्व (Without catch)—अनिश्व संदंश यन्त्र में छ्यला नहीं लगा होता, इसलिए शल्य को पकड़े रखते के लिए इसे हाथ से दबाए रखना पड़ता है। मुचूड़ी—मुश्रुत ने इसका प्रयोग अमर रोग में किया है, परन्तु इसका धर्णन संदंश यन्त्रों में नहीं किया। असणदत्त ने मुचूड़ी सदृश (जिनका अम भाग दन्त युक्त होता है) को सन्तिश्व मुचूड़ी संदंश कहा है।

**कार्प**—यह यन्त्र त्वक, मांस, सिरा, स्नायु इत्यादि मुहु धातुओं से शल्य निकालने के प्रयोग में लाया जाता है। बाघटु ने द्रण बंधन करते समय इसके द्वारा पिचु ज्वलादि (Dressing material) को उठाने के लिए (प्रयोग करने को) कहा है। For aseptic dressing technique)। इसका प्रयोग पल्मकोप (Trichiasis) में पल्मों को निकालने (Epilation) के लिए भी किया जाता है।

### (III) ताल यन्त्र (Scoop)

(1) यन्त्र (Forceps) बनाए जाते हैं, इनमें आजकल भी स्वर्णस्तकाकार के यन्त्र (Forceps) बनाए जाते हैं, जैसे लालू आजकल यन्त्रों के मुखों का आकार हिस्क पशु पक्षियों की भाँति होता है। इसका परिमाण कर्ण या चम्मच के आकार का (Spoons shaped) होता है। इसका परिमाण कर्ण या कारसेप्स (lion's forceps), बुलडाग फारसेप्स (Buldog forceps,) कोकोडाल

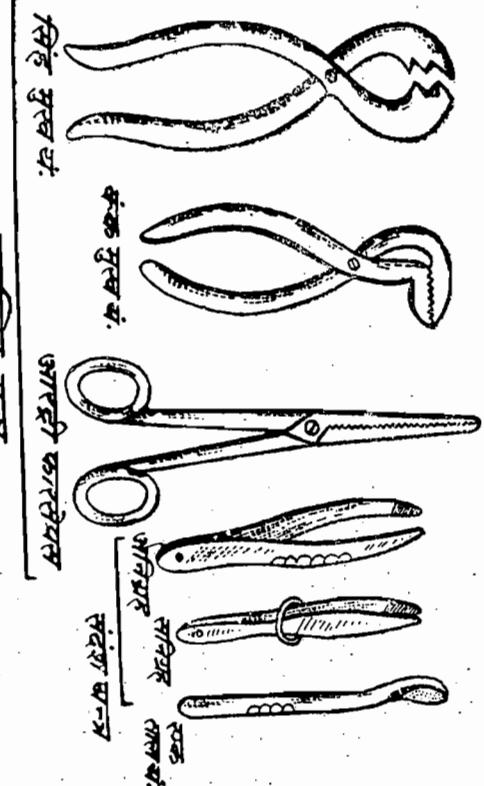
## हंत्र प्रकार

जोता छिद्र के समान होता है।

**भेद (Types)**—यह दो प्रकार का होता है—

(i) एक ताल यन्त्र (Single scoop)

(ii) द्वितील यन्त्र (Double scoop)



स्थानिक यन्त्र

**वना होता है। चक्रपाणि ने इसके ताल का परिमाण अंगुल बताया है। तथा इसे अनबद्ध (Loose) याल को निकालने के लिए प्रयोग करने को कहा है।**

**(ii) द्वितील यन्त्र (Double scoop)—**इसमें दो स्थानों पर ताल बने होते हैं। मुछ लोग इसे दोनों किनारों पर ताल के समान बना यन्त्र मानते हैं। डल्हण ने इसे मस्तुर्ण ताल के अकार का (Full scoop) बताया है तथा चक्रपाणि ने इसे अबद्ध याल (Impacted foreign body) को निकालने के लिये प्रयोग करने को कहा है। इस यन्त्र को Stone holding forceps के सम आकार में बनाया गया है। इस यन्त्र को Stone holding forceps के सम आकार में बनाया गया है।

**कार्य—**इनका उपयोग कण एवं नासादि मुषिर युक्त स्थानों में से याल कर्म (Curatization i.e. saucerization) किया जाता है।

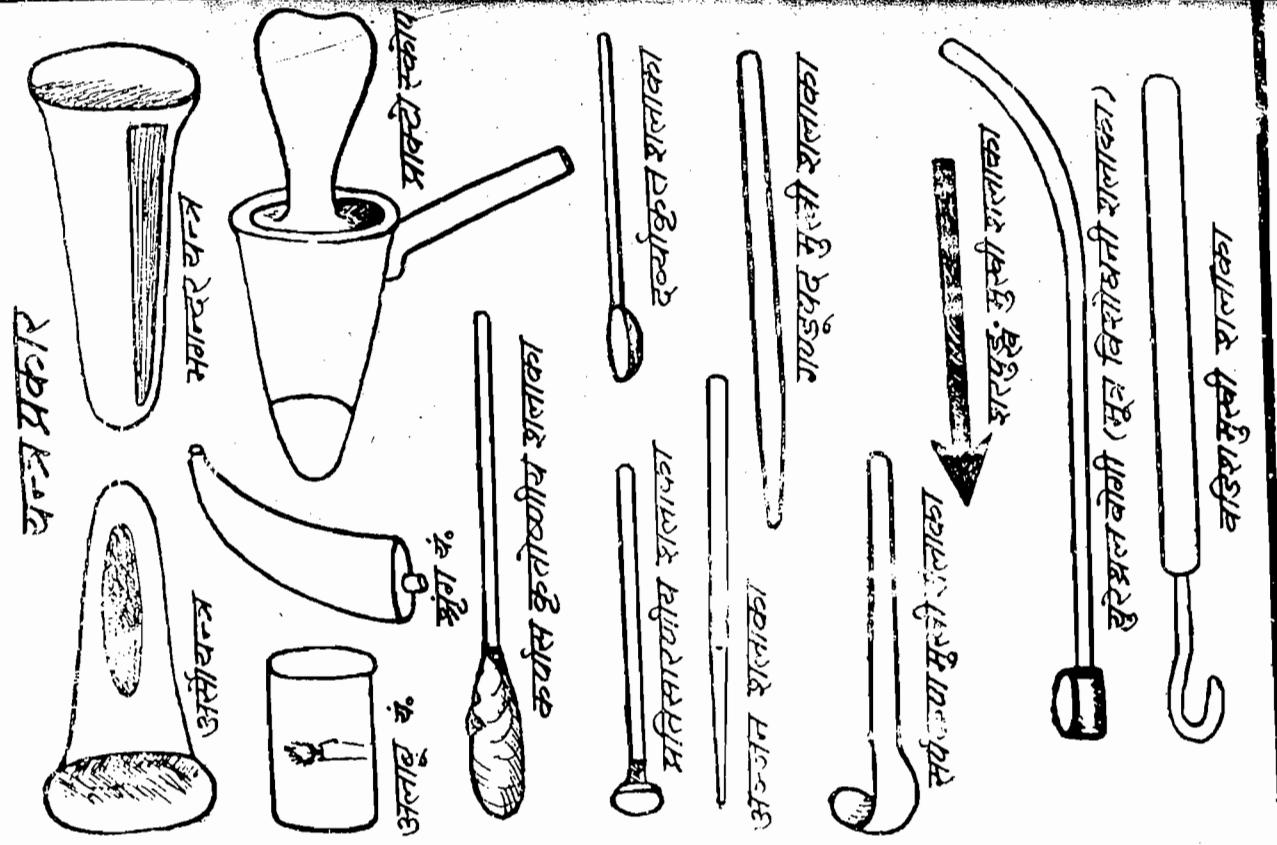
**(IV) नाड़ी यन्त्र (Tubular instruments)**

(Open) होते हैं। इनकी लम्बाई अवश्यकतानुसार तथा परिषिर परिमाण (Circumference) स्रोत द्वार के परिमाण के अनुसार होना चाहिए।

**कार्य—**नाड़ी यन्त्रों का प्रयोग लोटों से याल निकालने या उनको देखने के लिए किया जाता है। इनके द्वारा टुक्ट रधिर का आचूषण (Suction) भी किया जाता है।

**संख्या—**नाड़ी यन्त्रों की संख्या 20 होती है—

1. भग्नदर यन्त्र
2. अशोर्यन्त्र
3. बण यन्त्र
4. वस्ति यन्त्र
5. उत्तर वास्ति यन्त्र
6. मृत वृद्ध लावण यन्त्र
7. जलोदर लावण यन्त्र
8. धूम नेत्र यन्त्र
9. निरुद्ध प्रकाश यन्त्र
10. सिन्नरुद्ध गुद यन्त्र
11. अलाकु यन्त्र
12. श्रुग यन्त्र



शाखा है 6 अन्य नाड़ीयन्त्र बताएँ हैं जैसे—

- (i) कंठ शर्त्य अचलोकनी नाड़ी (Throat speculum)—इसका उपयोग कण्ठगत शर्त्य निकालने के लिये किया जाता है।
- (ii) शल्यनिधित्वी नाड़ी—यह नाड़ी 12×4 अंगुली परिमाण की एवं युक्त होती है। इस नाड़ी का सिर भाग कार्पिका युक्त होता है। कार्पिका में शर्त्य को फंसाकर फिर उसे इधर-उधर हिलाकर ढीला किया जाता है।
- (iii) अ-युक्ती नाड़ी—यह अंगुलों के रखणार्थ प्रयुक्त होता है। इसकी लम्बाई 4 अंगुल एवं यह गोस्तनाकार होती है। यह दात या काट से बनी हुई नाड़ी होती है।
- (iv) शमी यन्त्र—यह छिद्र रहित यन्त्र अर्थ को दबाने के लिये प्रयुक्त होता है।

- (v) धाणार्दु वदशी यन्त्र (Nasal speculum)—यह 2 अंगुल मोटा तथा घंटदर यन्त्र के समान होता है।
- (vi) योनि बोक्षण यन्त्र (Vaginal speculum)—यह चार अंगुल, भिसि बाला, कमल (मुकुल) के समान होता है। इसका मूल 5 शलाकाओं (Five lever rods) से युक्त होता है जो कि इस यन्त्र के अप्रभाग को विकसित करती है। इसकी लम्बाई 10 अंगुल तथा परिधि (circumference) 4 अंगुल होती है (It is like alinghan's vaginal speculum)।

- (1 + 2) अनाटोमिक यन्त्र एवं अर्थायन्त्र (Proctoscope)—यह 4 अंगुल का गोस्तनाकार, रोगी के हस्त तल के बाहर अर्थत् बच्चों तथा वयस्कों में अलग-अलग परिमाण बाला यन्त्र होता है। एक छिद्र युक्त यन्त्र अनिकर्म एवं क्षारकर्मदि के लिए तथा दो छिद्र युक्त यन्त्र रोग दर्शनार्थ प्रयुक्त होता है।
- (3) ब्रण यन्त्र—यह वस्ति के समान चर्म से निर्मित होता है इसके अंगे लगी नाड़ी के अप्रभाग में मटर के बीज के समान छिद्र होता है तथा मूलभाग अंगुष्ठ समान होता है; इसके अप्रभाग में कार्पिका लगी रहती है। यह नाड़ी यन्त्र ब्रण प्रकाशन के लिए प्रयुक्त होता है। (It seems to be a rubber ball irrigator)

- (4) ब्रास्ट्यन्त्र (Like a rubber ball enema syringe)—ब्रास्ट्यन्त्र (Bulb) बकरी, भौंस, हिरण्यादि पशुओं की बस्ति (Urinary bladder) से बने होते हैं, इन्हें हरीतकयादि कवाय द्रव्यों में प्रक्षालन करके मृदु बनाया जाता है। इसके छिद्र में लगी स्वर्ण इत्यादि धातुएँ या श्वर्ग या दन्त से निर्मित नेत्र को कार्पिका (Hooks) द्वारा बांध देते हैं। नेत्र (Nozel) की लम्बाई आयु के अनुसार 6, 8, 10 या 12 अंगुल होनी चाहिए। नेत्र की मोटाई मूल के पास से रोगी के अंगुछ के समान तथा

अग्रभाग कनिष्ठिका के समान मोटा होना चाहिए। इसका छिद्र आयु के अनुसार मुंग, मटर या बेर के प्रमाण का होता है।

इस यन्त्र का प्रयोग गुच्छतया चाउ रोगों में वस्ति (Enema) देने के लिये होता है। आजकल वास्तिकर्म (Enema) द्वारा अनेक प्रकार के द्रव्यों को बूहदान्त्र (Large intestine) में डाला जाता है (As anti-spasmodics, antiseptics, nutrients and soap irrigation enemas)।

दोष—कुल मिलाकर वस्ति के 76 दोष होते हैं। इनमें से 53 दोष वस्ति एवं उसके कार्य सम्बन्धित होते हैं तथा 23 दोष वैद्य (Physician) तथा रोगी (Patient) सम्बन्धी होते हैं।

(5) उत्तर वस्ति यन्त्र—यह वास्ति यन्त्र के समान आकार का यन्त्र होता है परन्तु इसके नेत्र की लम्बाई पुरुषों या स्त्रियों में भिन्न-भिन्न होती है। पुरुषों में नेत्र 12 अंगुल से 14 अंगुल लम्बाएँ, गोपुरव्याकार एवं सरसों के बीच के समान छिद्र युक्त तथा कणिका रहत होता है। स्त्रियों में नेत्र 10 अंगुल लम्बा तथा मुंग के दाने के समान छिद्र वाला होता है। इसका प्रयोग गर्भाशय तथा योनि रोग (जैसे योनिभूति, योनिशूलादि) में औषधि को अन्दर प्रविष्ट करने के लिये किया जाता है। पुरुषों में इसे उष्णवात, मूत्रप्रसेक तथा मूत्राशय गत व्याधियों के लिये प्रयुक्त किया जाता है (It is like Biglow's aspirator, attached with a catheter)।

(6, 7) मूत्रवृद्धि तथा जलोदर लावण यन्त्र (Trocar & canula)—पहले गोहिमुख यास्तन से मूत्र वृद्धि की भित्ति या दकोदर की भित्ति (Wall) का बेधन किया जाता है, फिर उसमें मूत्र वृद्धि लावणयन्त्र (With small canula) या दकोदर लावण यन्त्र (With bigger canula) को लगाकर उसके जल का लिखावण करा दिया जाता है।

(8) धूध नेत्रयन्त्र—इस यन्त्र में 2 शोकोरे लेकर उनकी सम्पुट में औषध द्रव्य रखकर तथा ऊपर के शाकोरे में छिद्र करके उसमें धूध नाड़ी लगा दें। इस नाड़ी का मूल भाग अंगुष्ठ के समान तथा अम्बा कनिष्ठिका के समान परिमाण का होना चाहिये। धूध नेत्र की लम्बाई, विरेचन धूध (विरेचनिक) के लिये 24 अंगुल, स्नैरिक के लिये 32 अंगुल तथा प्रायोगिक धूध रेजे के लिये 48 अंगुल होनी चाहिये। धूध का प्रयोग द्रव्य में बेदना तथा भाव की चिकित्सा के लिये होता है।

(9, 10) निश्चद्र प्रकश तथा सिस्त्रहृदय यन्त्र—यह लौह, कोष्ठ या लाक्षादि से बनी दो मुख वाली नाड़ियाँ होती हैं। प्रत्येक नाड़ी यन्त्र की लम्बाई उत्तरोत्तर बढ़ती है। इनका प्रयोग निश्चद्र-प्रकश (Phymosis), स्त्रिहृदय गुद (Structure of anus) के संकुचित गंगों को विरक्षारित करने के लिये होता है।

(11) अलाज़ यन्त्र (Cupping or glasses)—यह परिमाण में 12 अंगुल लम्बा, 18 अंगुल गोल तथा 4 अंगुल परिधि (Circumference) वाला यन्त्र होता है। एक मुख वाले यन्त्र में दीपक जलाकर हस्ते हस्त यथान पर लगा देते हैं [रुग्ण स्थान पर दीपक रखकर अलाज़ यन्त्र से ढक दें, दीपक अलाज़ के अन्दर की वायु का उपयोग करके उसमें आंशिक यून्नता (Partial vacuum) उत्पन्न कर देता है, इससे उस स्थान की त्वचा अलाज़ के अन्दर बिच आती है तथा वहाँ रक्तस्राव उत्पन्न हो जाती है]। इसका प्रयोग गुल्म रोग में तथा रक्त विकावण के लिए किया जाता है।

(12) धूंग यन्त्र (Horn)—इसकी लम्बाई 18 अंगुल तथा अम्ब भाग कुछ की आकृति का होता है एवं यह परिमाण में 3 अंगुल का होता है। इसमें सरसों के दाने के समान आकार का छिद्र होता है। धूंग को रुग्ण स्थान पर रखकर पीछे से मुख द्वारा रक्त का आचूषण (Suction) करते हैं, आचूषण बाल आचूषण क्षमता (Suction ball) द्वारा भी किया जा सकता है। इसका प्रयोग दूषित रक्त निकालने के लिये या काण गत पृथक को या शल्क को निकालने के लिये किया जाता है।

#### आजकल प्रयुक्त होने वाले मुख्य नाड़ी यन्त्र

(1) मूत्र नाड़ियाँ (Catheters)—मूत्राशय में अवरोध के कारण जब मूत्र-मांस से मूत्र बाहर नहीं आता (जैसे अस्मरी, अर्ड्डि, पोरखगतियाँ वृद्धि इत्यादि में) तब इस अवस्था में मूत्र नाड़ियों द्वारा बाहर निकाला जाता है। यह मूत्र नाड़ियाँ बनके प्रकार की होती हैं [जैसे—

(i) चाउ निर्मित मूत्र नाड़ी (Metallic catheter)—चाउ निर्मित मूत्र-नाड़ियाँ न० 4 से न० 18 तक के परिमाण की होती हैं। इनका परिमाण (Size) क्रमशः बड़ा होता जाता है। स्त्रियों में प्रयुक्त होने वाली नाड़ी (Female catheters) 5 इंच से 6 इंच लम्बी तथा अम्ब भाग से प्रयुक्त होने वाली नाड़ी (Male catheter) से कम मुझे होती है। पुरुषों में प्रयुक्त होने वाली नाड़ी (Male catheter) 10 इंच लम्बी तथा अधिक मुझे हुई (More curved) होती है। पोरखगति-मूत्र-नाड़ी-यन्त्र (Prostatic catheter) पुरुषों के मूत्र-नाड़ी-यन्त्र (Male catheter) से अधिक सम्यात्तर जैसे छिद्र युक्त रहता है (Opens antero-posteriorly)।

(ii) Gum-elastic, self-retaining catheter—फॉली के मूत्र नाड़ी यन्त्र (Foley's catheter) को वस्ति में डालकर उसके मुख के पास लगे बैलून (Balloon) को, 20-30 c. जल डालकर फुला देते हैं। इसके कोरण नाड़ी यन्त्र वस्ति से बाहर नहीं निकलता। यह मूत्री यन्त्र अपने स्थान पर तब तक रक्त रहता है जब तक इसमें (Balloon से) जल को निकाला नहीं जाता।

(iii) मेलीकोट का सूत्र नाड़ी यन्त्र (Mallicot's catheter)—यह यन्त्र अम्भाग से बल्ब (Bulbous) की तरह फूला रहता है। उदरपाटन विधि से मुत्राशय खोलने के पश्चात् (After supra public cystostomy it is directed through a wire strecher into the urinary bladder) मुत्र निकालने के लिये इसे बल्स्ट में लगा देते हैं। इसे प्रायः 15 दिन के लिये लगाया जाता है।

(iv) निलटन का सूत्र नाड़ी यन्त्र (Nilaton's catheter)—ये नाड़ी यन्त्र लाल रंग के रबर के (Flexible & red rubber) तथा ये मूत्र-नाड़ी-यन्त्र (bladder-neck catheter) मूत्र-नाड़ी-यन्त्र सदृश) अनेक परिमाणों (Size) के होते हैं। मूत्रावरोध होने पर सबसे पहले इन नाड़ी-यन्त्रों का ही प्रयोग करना चाहिये।

(2) निकास नलिका (Drainage tube)—त्र्ण या शरीर की किसी गुहा (Cavity) में से रक्त या पृथक् इत्यादि द्रव्यों को निकालने के लिये जिस नाड़ी यन्त्र (Corrugated rubber sheet) का प्रयोग किया जाता है उसे निकासनी नाड़ी यन्त्रिका (Drainage tube) कहते हैं।

(3) आमाशय आहार नाड़ी (Feeding tube)—यह राइल की नालिका (Ryle's tube) के समानाकार रबर की एक नलिका है। इसे मुख द्वारा या नासिका द्वारा अन्न प्रणाली के रास्ते से आमाशय में डाल देते हैं। रोगी को इस नलिका द्वारा आहार पदार्थ द्रव रूप में दिये जाते हैं।

(4) मिलर एबट का नाड़ी यन्त्र (Miller Abbot's tube)—यह नाड़ी यन्त्र दो नलिकाओं के मिलते से बनती है। इसमें से एक नलिका से उसके अग्र भाग में लगे गुब्बारे (Balloon) को फुलाया जाता है तथा दूसरी नलिका अनेक छिद्र युक्त (Rings) के बीच के स्थान में एक अद्वितीय ब्रान बनाया जाता है फिर इस ब्रान में से ब्रान में खुलती है, जहाँ पर कि इस प्रांत को क्ष-किरण अपारदर्शक (Radio opaque) बनाने के लिये धातु की गोलियाँ रखी रहती हैं, ताकि 'क्ष' किरण द्वारा अंत्र में इसकी स्थिति का ज्ञान हो सके। इसका प्रयोग आन्न लावों को (परीक्षणार्थ) निकालने के लिये किया जाता है। इसे नासिका द्वारा अन्न प्रणाली तथा आमाशय से होते हुए पहले आन्न में पहुंचाया जाता है।

(5) राइल का नाड़ी यन्त्र (Ryle's tube)—यह नाड़ी यन्त्र-मूत्र-नाड़ी-यन्त्र नं० 8 के परिमाण (Size) की एक लम्बी नलिका होती है। इस पर आमाशय के हृदय द्वार (Cardiac end) तक तथा जठर निर्गम द्वार (Pyloric end) की हरी तक के चिन्ह लगे रहते हैं। इसके अग्र भाग में अनेक छोटे-छोटे छिद्र होते हैं, जहाँ पर नाग धातु की ल्लोटी-छोटी गोलियाँ (Lead balls) इसे 'क्ष' किरण' अपारदर्शक बनाने के लिये रखी होती हैं। आमाशय में इसकी स्थिति का क्ष-किरण चित्रण द्वारा पता लगाया जा सकता है। इसका प्रयोग आमाशय लावों को निकालने के लिये [Functional test meal (F.T.M.)] किया जाता है। इसे नासिका द्वार से एवं अन्न

ज्ञाली से होते हुए आमाशय तक, पानी की घूट के साथ-साथ निगलकर पहुंचाया जाता है।

(6) सागस्टेक्टन बल्टक मोर नाड़ी यन्त्र (Sungstaken Blackmore tube)—यह एक लम्बी नली होती है जो कि अन्न प्रणालीगत रक्तसाव को रोकने के लिये एक लम्बी नासिका द्वारा अन्न नलिका में डालकर इसके अप्रभाग में लगे गुब्बारे (Balloon) को फुला देते हैं। गुब्बारे के दाव से वहाँ की केशिकाओं का रक्त बन्द हो जाता है (Used for control of bleeding from oesophageal varix)।

(7) अन्तर रक्तास प्रणाली नाड़ी यन्त्र (Endo tracheal tube):—यह एक मुड़ी हुई (Mild curved) रबर की मोटी नलिका है। इसे मुख द्वार से, स्वर यन्त्र से होते हुए, फ्लास प्रणाली में डालते हैं। इसके अग्र भाग में लगे गुब्बारे को फुला देने से इसके पार्स्ट (Lateral side) से वायु तहों निकल सकती (Balloon makes it air tight)। इसका अप्रभाग कलम के अप्रभाग सदृश नोकदार (Bevelled) रहता है। नासिका द्वार से डालने वाली ये नलिकाएं अधिक लम्बी होती हैं तथा इनके अग्र भाग में गुब्बारा भी नहीं लगा रहता। इनका प्रयोग सार्वदेहिक संसानाश में तथा थ्वामावरोध (Dyspnoea) की सम्भावना होने पर किया जाता है।

(8) श्वास प्रणाली बेन नाड़ी यन्त्र (Tracheostomy tube):—यह छोटे आकार की, मुड़ी हुई (Convex), बड़े छिद्र वाली एवं कणिका युक्त नाड़ी होती है। इसे गले में बांधकर स्थिर (Fix) किया जाता है। स्वर यन्त्र के पास कणिका से इसे गले में बांधकर स्थिर (Fix) किया जाता है। श्वास प्रणाली की दो तरुणास्थियाँ (Cartilages) के बल्यों अवरोध हो जाने पर, श्वास प्रणाली अनेक छिद्र युक्त (Rings) के बीच के स्थान में एक अद्वितीय ब्रान बनाया जाता है फिर इस ब्रान में से छिद्र से) इस नाड़ी यन्त्र को डाल देते हैं, इसके द्वारा रोगी को श्वास आता रहता है।

(V) नलिका यन्त्र :

ये सलाई के समान ठोस (अर्थात् छिद्र रहित) यन्त्र होते हैं। ये संख्या में 28 होते हैं।

### संख्या—

- |                               |   |                                 |   |
|-------------------------------|---|---------------------------------|---|
| (1) गण्डु पद मुखी शलाका       | 2 | (7) बल्ल मुखी शलाका             | 3 |
| (2) सर्प फण मुखी शलाका        | 2 | (8) जाम्बव फले मुखी शलाका       | 3 |
| (6) शरपुंख मुखी शलाका         | 2 | (9) अंकुश मुखी शलाका            | 3 |
| (4) बड़ि श मुखी शलाका         | 2 | (10) नासार्बुंद हरण शलाका       | 1 |
| (5) मसूर दलत मात्र मुखी शलाका | 2 | (11) अंजन शलाका                 | 1 |
| (6) कार्पसिक्लोणी मुखी शलाका  | 6 | (12) मूत्र मार्ग विशोधिनी शलाका |   |

वारमट्ट ने निम्न अन्य शलाका यन्त्रों का भी वर्णन किया है—

- (1) गर्भ शंकु ।
- (2) सर्पे कण वक्ष शलाका ।
- (3) शर्पुंख शलाका ।
- (4) अधैन्द्र मुखी शलाका ।
- (5) कर्ण शोधन शलाका ।

(1) गर्ड पर मुखी शलाका :—यह 2 शलाकाएँ होती हैं, इनके मुख का आकार कैचूए (Earth worm) के सिर के समान (Blunt probe like) होता है। इनका अप्रभाग जामुन के समान गोल तथा लम्बा होता है। इसका भग्नदर तथा नाड़ी ब्रानों में प्रयोग कर्म के लिए तथा इनके गर्भीर पृष्ठ मार्गों का पता लगाने के लिये इस यन्त्र का प्रयोग होता है। इसके द्वारा नाड़ी में स्थित आगरुन शल्य की स्थिति का भी पता लगाया जाता है।

(2) सर्फक्स मुखी शलाका (Retractor like instrument)—ये शलाकाएँ सर्पे के फण के सदृश होती हैं। इनका परिमाण 12 अंगुल तथा 16 अंगुल होता है। इनका प्रयोग व्युहण कार्य के लिए अचित् Retraction या किसी बस्तु को उठाकर निकालने के लिए होता है।

(3) शर्पुंख मुख शलाका—यह शर (Arrow) के आकार की 10 अंगुल तथा 12 अंगुल की दो शलाकाएँ होती हैं। इनके द्वारा शल्य को चलायामान किया जाता है।

(4) बडिश मुख शलाका (Blunt hooked probe)—ये शलाकाएँ संक्षण में दो होती हैं तथा मुँह गर्भ को खींचकर बाहर निकालने या अर्म को अपार्ट की ओर पकड़ने के लिए प्रयोग की जाती है (It is like a squint hook)।

(5) मसूर दल मार्ग शलाका—यह मसूर दल के समान 8 अंगुल एवं 9 अंगुल लम्बाई की दो शलाकाएँ होती हैं, ये अगे से धोड़ी छूकी हुई होती हैं। इनके द्वारा मुख, नासा, कर्ण इत्यादि इतिहायों के स्रोत गत शल्य निकाले जाते हैं।

(6) कर्पात फुतोलीय शलाका (Swab Stick)—यह गोल तथा लम्बा शलाकायें, संद्वया में 6 होती हैं। इनके अप्रभाग पर कपर्स (Cotton) लगी रहती है। यह कर्ण स्रोत तथा ब्रानों के स्रोत साफ करने के काम आती है। दो शलाकाएँ 6 दोर 7 अंगुल लम्बी नासारुद्द द में अधिक लगाने के लिए प्रयुक्त होती हैं। अन्य दो शलाकाएँ 8 व 9 अंगुल लम्बी होती हैं जो कि कर्ण ग्रुष तथा पूर्य साफ करने के लिए प्रयोग में लाई जाती हैं। ये दो शलाकाएँ 12-12 अंगुल लम्बी ब्रान साफ करने के लिए प्रयुक्त होती हैं।

‘नी मुख शलाका—यह खल्त (क्रिक्टी) के समान आकार की,

फिनिष्टा, अनामिका तथा मध्यमा अंगुली के नख के समान, तीन शलाकाएँ होती हैं। ये शलाकाएँ खार लगाने के काम आती हैं।

(8) जम्बूव फल मुखी शलाका—यह स्फूल, अण् एवं दीधं भेद से संख्या में 3 होती है। इनका अप्रभाग जामुन के समान गोल तथा लम्बा होता है। इसका प्रयोग भग्नदर में दाह कर्म करने के लिए किया जाता है।

(9) अंकुश मुख शलाका—ये संख्या में तीन तथा अंकुश (Hook) के समान आकार की होती है। इनका प्रयोग भग्नदर में दाह कर्म करने के लिए होता है।

(10) नासारुद हरण शलाका—इसका अप्रभाग मध्य से गहरा तथा किनारों से झंचा, बैर की आधी गुठली की अस्थि के समान होता है। यह नासा के अंगों तथा अंडुद के दाह कर्म करने के लिए प्रयोग में लाई जाती है।

(11) अंजन शलाका—यह 8 अंगुल की शलाका मालाती के मुक्ति के समान, अप्रभाग से मटर के बीज के समान, मध्य से पतली व मृदु होती है तथा स्वर्ण एवं रजतादि धारुओं से बनाई जाती है। प्रयोगानुसार ये लेख्न, रोपण तथा प्रसादन भेद से तीन प्रकार की शलाकाएँ होती हैं। इनमें से यव शलाका श्लैटिमक लिंग नाश के लिए प्रयोग होती है तथा अन्य तीन शलाकाएँ अंजन डालने के लिए प्रयोग की जाती हैं।

(12) मुन्त्र मार्ग विशोधिती शलाका (Urethral bougie)—दुड़बत के अनुसार उत्तर बस्ति देने के पूर्व इस शलाका के द्वारा मुन्त्र मार्ग का विशोधन कर लेना चाहिए। इसका प्रयोग मुन्त्र मार्ग का अन्वेषण करने के लिए होता है यदि Catheter मुन्त्र मार्ग में न जा रहा हो तो मुन्त्र मार्ग विशोधिती शलाका (Urethral bougie) के द्वारा पहले मार्ग को विस्फारित किया जाता है—

(Lister's bougie is olive pointed with circular handle, and it is marked with its size. Cluttons bougie's tip is cylindrical, its handle is flat and is marked with its sizes with a difference of four numbers. Bladder sound is used to detect stones in urinary bladder. It is bent almost at right angle towards its tip, and its tip is olive pointed.)

#### चारमट्ट मतानुसार अन्य शलाका यन्त्र

1. गर्भांकु—मुश्तुत ने गर्भांकु का प्रयोग मुँह गर्भ को बाहर निकालने के लिए किया है, परन्तु इसका समावेश यन्त्रों की संख्या में नहीं किया। यह यन्त्र शंकु (Cone or hook) के समान अगे से मुड़ा होता है। इसके आकार से ऐसा प्रतीत होता है जैसे मुश्तुत ने बडिश मुख शलाका को गर्भ शंकु के नाम से कहा है।
2. सर्फक्स वक्ष शलाका (Lithotomy scoop)—यह शलाका सर्फक्स के

समान चपटी तथा आगे को झुकी हुई होती है। इसका उपयोग अथमरी निकालने के लिए होता है। सुश्रृत ने अप्र वक्षयन्त्र का प्रयोग अथमरी निकालने के लिए तथा सर्पकं मुखी शलाका का प्रयोग व्यूहण कर्म (Retraction) करने के लिये कहा है।

3. शरण्हुङ् मुखी शलाका (Tooth elevator)—यह शलाका दांत निकालने से पूर्व दांतों को हिलाने (चालन) के लिए प्रयुक्त होती है, ताकि दोत को आसानी से निकाला जा सके [दृढ़ दांत (Impacted tooth) को या दन्त मूल (Root of tooth) को निकालने के लिए पहले उसे इस शलाका (Elevator) द्वारा ढीला किया जाता है]।

4. कर्णशोधन यन्त्र—इसका प्रयोग कर्ण से कीटादि आगचन्ज शल्य को एवं कर्ण गूच को निकालने के लिए किया जाता है। इसका प्रांत भाग अश्वत्थ्य पत्र के समान तथा अप्रभाग लूँवे मदश होता है।

5. अर्णवद्युखी शलाका—इसका आकार अर्धेन्द्र के समान होता है। सुश्रृत ने इसे आनन्दवृद्धि के दहन कर्म के लिए प्रयोग करने को कहा है।

#### उपयन्त्र

उपयन्त्र वास्तव में धन्त तो नहीं होते परन्तु यन्त्रों के अभाव में ये शल्य को निकालने के काम में लाए जा सकते हैं।

#### संख्या

—इनकी संख्या 2 5 होती है।

1. रज्जु—यह सर्पविष में अरिष्टा बाधने के काम आती है तथा इससे शल्य को बांधकर निकाला जाता है।

2. पट्ट (Bandage)—इससे कुशा को बांधा जाता है तथा बंधन किया जाता है।

3. चर्म—यह जलोदर में उदर पर तथा गुदा श में गुदा पर बांधने के काम आता है।

4. अन्तर्वल्कन—इसका प्रयोग बंधन कर्म या सीधन कर्म के लिए होता है।

5. बेणिका—यह तीन लड्डी बाली बेणी होती है।

6. लता—यह भग्न वाले अंग का छीचने (Traction) या उसे बांधने के काम आती है।

7. वस्त्र—इससे पट्ट, कवलिक, इत्यादि बनाए जाते हैं।

8. अच्छीलाश्म—प्रहार द्वारा अस्थि शल्य निकालने के लिए अच्छीले का उपयोग किया जाता है।

9. मुद्गर—इसका प्रयोग अठीलाश्म के समान होता है।

10. पाणिप्रबत्तल—ग्रास रूपी शल्य को मुछिल प्रहार से निकाला जाता है।

11. अंगुली—अंगुली का प्रयोग विमलापन या बमंत कराने के लिए किया जाता है।

12. जिहा—चिह्नियों की जिहा द्वारा मधुर वस्तुओं का ज्ञान किया जाता है। अपने ही दांत में अनवबद्ध शल्य (तिनकादि) भी जिहा द्वारा निकाला जाता है।

13. दांत—मृत पशु का दन्त दहन कर्म के काम आता है।

14. नख—यह सूक्ष्म शल्य के निर्वहण के काम आता है।

15. मुख—मुख का प्रयोग आचूषण (Suction) कर्म के लिए किया जाता है।

10 पाणिप्रबत्तल—ग्रास रूपी शल्य को मुछिल प्रहार से निकाला जाता है।

चुत अंश सक्षियों को पादतल द्वारा अपने स्थान पर लाया जाता है।

11. अंगुली—अंगुली का प्रयोग विमलापन या बमंत कराने के लिए किया जाता है।

12. जिहा—चिह्नियों की जिहा द्वारा मधुर वस्तुओं का ज्ञान किया जाता है। अपने ही दांत में अनवबद्ध शल्य (तिनकादि) भी जिहा द्वारा निकाला जाता है।

13. दांत—मृत पशु का दन्त दहन कर्म के काम आता है।

14. नख—यह सूक्ष्म शल्य के निर्वहण के काम आता है।

15. मुख—मुख का प्रयोग आचूषण (Suction) कर्म के लिए किया जाता है।

16. बाल—यह बमंत कराने या गले के शल्य को निकालने के काम आता है।

17. अश्वकंटक—यह अस्थि से अवबद्ध शल्य निकालने के काम आता है।

18. शाखा—इसका प्रयोग क्षटके द्वारा अवबद्ध शल्य को निकालने के लिए किया जाता है।

19. छोचन—इसके द्वारा श्लेष्मा तथा मुख गत सूक्ष्म अनवबद्ध शल्य निकाले जाते हैं।

20. प्रवाहण—इससे गर्भ तथा पुरीष को निकाला जाता है।

21. हर्ष—यह दुःख रूपी शल्य को हरता है।

22. अपस्कात—इसका प्रयोग तेत्र से सूक्ष्म लौहिकण निकालने के लिए किया जाता है।

23. क्षार—यह क्षेदन, भेदन तथा लेखन कर्म करता है। इसे पूर्ण एवं गलित गुदों को निकालने के लिए प्रयोग में लाया जाता है।

24. अग्नि—यह मृत लादी ब्रण का दहन कराने के काम आती है।

25. भेषज—इसमें तण का शोधन किया जाता है अर्थात् प्रयुक्त शल्य को निकाला जाता है।

उपरोक्त उदाहरण उपयन्त्रों के कर्म समझाने के लिए दिए गए हैं। इनके अवस्था अनुसार अन्य कोई भी काम लिया जा सकता है।

इन्हें उपयन्त्रों के अन्तराल मानना चाहिए। रोग तथा शल्य कर्मों के अनुसार रोगी को विभिन्न आसनों (Positions) में रखा जाता है जैसे—

- पूर्ण उन्मुख स्थिति (Dorsal supine position)
- पूर्ण उन्मुख स्थिति (Dorsal supine position) —रोगी को नस्य हेते

हुए, उदर के शल्य कर्म करते हुए तथा उदर परीक्षा करते समय रोगी को इस स्थिति में लेटाया जाता है।

## POSITIONS

2. अधोमुख स्थिति (Prone position)—ब्रण के सारां निकालने के लिए तथा पानी में डूबे हुए रोगी को इस स्थिति में रखा जाता है। पीठ के शल्य कर्म में भी यहीं स्थिति दी जाती है।

3. घुट उन्मुख तथा ऊँचे जानु आसन (Dorsal recumbent position or dorsal supine with hip & knees in flexion)—प्रसव, उत्तर वस्ति और योनि परीक्षण के समय यह आसन दिया जाता है।

4. लिथोटोमी आसन (Lithotomy position or lying on back with buttocks at the end of table, hip & knees fully flexed and feet strapped)—यह आसन अस्मरी के शल्यकर्म करते समय तथा गुरु अंगों की परीक्षा करते समय दिया जाता है।

5. फॉलर का आसन (Fowler's position)—इस स्थिति में Bed के सिर की ओर से 2'-2½' कुट ऊँचा ऊँचा दिया जाता है। इससे रोगी लेटने तथा बैठने के बीच की स्थिति में पड़ा रहता है। यह स्थिति उद्वार गत शल्य कर्म में वहाँ पर एकत्रित लात को निकालने के लिए यह स्थिति दी जाती है।

6. ज्ञानुवक्षस्तन (Knee chest position)—यह स्थिति अधोमुख होकर गुरु अंगों के परीक्षण के लिए यह स्थिति दी जाती है।

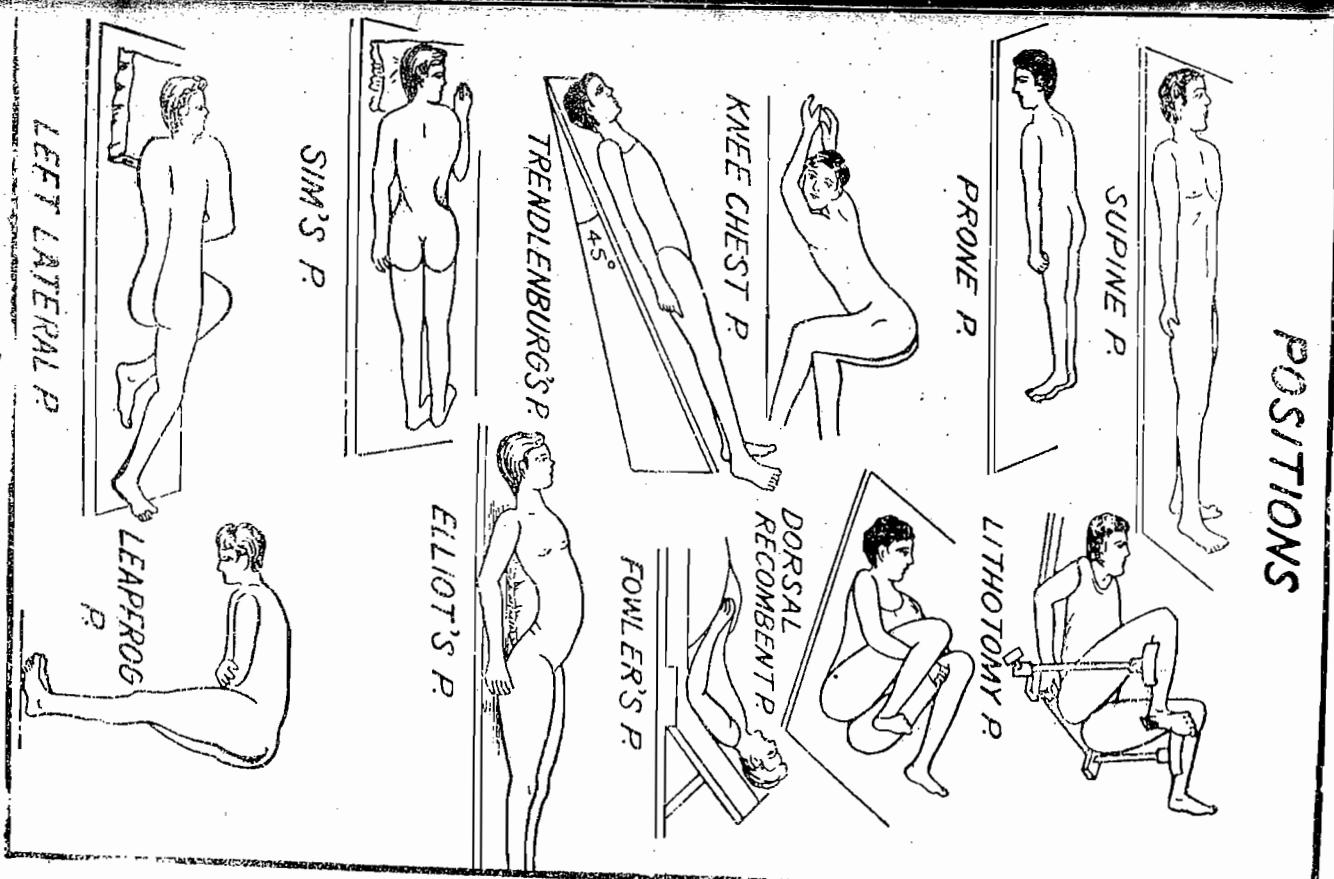
7. ट्रेंडलेन बर्ग आसन (Trendelenburg position)—यह स्थिति तुम्हारे सामने में सिर नीचे तथा पैर ऊपर ( $45^\circ$  Angle) करके लेटने से बनती है। यह स्थिति गर्भासन में रोगी के लिए तथा श्रोणी गत शल्य कर्मों के लिए रोगी को यहीं स्थिति दी जाती है।

8. सिम्स की स्थिति (Sim's position or semi prone position)—इस स्थिति में बक्ष शाया पर टिका रहता है, दक्षिण नितम्ब ऊपर की ऊना रहता है।

मुँही होती है जिससे इस टांग का जानु शाया पर टिका रहता है। यह स्थिति गर्भास्तन प्रकालन तथा योनि में पिचू रखने के लिए दी जाती है।

9. एलिओट की स्थिति (Elliott's position or Robson's position or supine position but with a pack under back, thus producing like lordosis)—इस स्थिति का प्रयोग गिरावट के शल्य कर्म के लिए किया जाता है।

10. लेफर फ्रॉग (Leap frog position)—यह स्थिति बनाने के लिए



### शल्य विज्ञान

बहुधे होकर आगे को इतना थक्के कि बख्स धरातल के समानान्तर (Parallel) आजाए। रोगी का इस स्थिति में मलाशय परीक्षण (Rectal examination) किया जाता है।

**11. बाम पार्श्व स्थिति (Left lateral)**—इसमें रोगी बाम पार्श्व में, बाम जानु को संकुचित तथा दक्षिण टांग को सीधा करके लेटता है। इस स्थिति में गुरा की परीक्षा की जाती है। इस स्थिति में यदि रोगी की कटि को सिर से केंचा उठा दिया जाए तो रोगी दृक्क के शल्य कर्म करते की स्थिति में आ जाता है।

यन्त्रों के कार्य :

यन्त्रों से चार प्रकार के कार्य लिए जा सकते हैं—

1. रोग वर्णनार्थ—जैसे अशोषन्त्र द्वारा।
2. क्रिया सोकार्प के लिए—जैसे भगान्दर में भेदन कर्म के समय एषणी का प्रयोग करते से शल्य क्रिया में सुविधा रहती है।
3. शल्य निर्दर्शनार्थ—जैसे ताल यन्त्र या संदंश यन्त्र द्वारा शल्य निकाले जाते हैं।

**4. मार्ग विशोधनार्थ**—जैसे ब्रणधावन यन्त्र द्वारा या मूत्र मार्ग विशोधनी शलाका से संकीर्ण मूत्र मार्ग को विस्फारित (विशोधन) किया जाता है। इन कार्यों के अन्तर्गत निम्न 24 कर्म आते हैं—

1. निष्ठातन (Hammering)
2. पूरण (To fill medicine)
3. बंधन (Bandaging)
4. बूझण (उठाकर निकालना)
5. बर्तन (मांसादि को यथा स्थान लाना)
6. चालन (To loose a foreign body)
7. विवर्तन (Forcible extraction)
8. विवरण (Dilatation of a passage)
9. पीड़न (Application of pressure to squeeze a cavity)
10. मार्ग विशोधन (Removal of obstruction from a Passage)
11. विनिर्दण (Forceful extraction)
12. आहरण (Extraction of impacted foreign bodies)
13. आच्छन्त (Traction)
14. उन्नयन (Elevation)
15. विनमन (Depression)
16. भंजन (Crushing)
17. उन्मन्य (Sounding of hard foreign bodies)
18. आच्छण (Suction)
19. दृष्ण (To probe a Cavity)
20. दारण (To make hard)
21. अत्युकरण (To strengthen)
22. प्रक्षालन (Washing or irrigation)
23. प्रस्फन (Insufflation)
24. प्रमार्जन (To sweep out the foreign bodies)

### यन्त्रों के दोष :

यन्त्रों में 12 दोष हो सकते हैं, इसलिए यन्त्र बनाते समय इन दोषों को ध्यान में रखना चाहिये—

1. अतिस्थूल (Unduly heavy)
2. अतिदीर्घ (Unduly long)
3. असार (Made from soft material)
4. अतिहस्त्र (Too small)
5. विषमप्राप्ती (Improper or irregular hold)
6. अग्राही (Which can not be held)
7. वक्क (Unduly bent)
8. शिथिल (Loose grip)
9. अर्ति उन्नत (Unduly expanded)
10. मुड़कीत (Loose or soft fulcrum rivet)
11. मुड़मुख (If grip can't resist the force i.e. it bends on applying force)
12. मुट्ठ पाश (If handle can not resist the force i.e., it bends on application of force.)

# 15

## शस्त्र

(Sharp Instruments)

**अधारिया :**

तीज धार के उपकरण (Instruments), जिनके धारा छेदन, भेदन, लेखनाति अस्थवृष्टि शस्त्रकर्म सम्बन्ध हो सके इन्हें शस्त्र (Sharp instruments) कहते हैं।

**शस्त्र के गुण एवं दोष :**

बेंच (उपयोगी) शस्त्रों में निम्न छः गुण होने चाहिए तथा वह आठ दोषों के रहित होने चाहिए—

1. सुगहाणि (Good hold)
2. मुलोहानि (Good material)
3. मुखाराणि (Sharp cutting points)
4. मुरणाणि (Good appearance)
5. मुमुक्षु अप्याणि (Proper shape of the cutting points)
6. अकरतात्त्वाणि (Smooth cutting edge)

**दोष :**

1. वक (Unduly bent)
2. कुप्त (Blunt)
3. खण्ड (Broken)
4. बरधार (Dentate cutting edge)
5. अतिरूपत (Too heavy)
6. अतिरूपत (Too light)
7. अति दीर्घ (Too long)

**गुण :**

- (1) सुगहाणि (Good hold)—शस्त्र का वृत्त (Handle rod) इस प्रका का होना चाहिए ताकि शस्त्रकर्म करते समय उसे अच्छी प्रकार (Balanced hand) से पकड़ा जा सके।
- (2) मुलोहाणि (Good material)—शस्त्र अच्छी कठोर धातु से बने होने चाहिए, जैसे स्टेनलेस स्टील या किसी ऐसी ही अन्य मिश्रित धातु (Alloy) से बने हों ताकि शस्त्रकर्म करते समय उनके दूटने या मुड़ने का भय न रहे।

(3) मुखाराणि (Sharp cutting edge)—शस्त्रों की धारा कर्म के अनुसार अधिक तीक्ष्ण या सामान्य तीक्ष्ण होनी चाहिए जैसे—

(i) भेदन कर्म के शस्त्रों की धारा मसूर दाल के समान या छेनी (Chisel) के समान होनी चाहिए (अर्थात् दोनों ओर से खिस कर तीक्ष्ण की जानी चाहिए)।

(ii) लेखन कर्म के शस्त्रों की धारा अधे मसूर सदृश अर्थात् एक ओर से खिस कर तीक्ष्ण करनी चाहिए, जैसे ऑस्टियोटोम (Osteotome) होता है।

(iii) लेखन कर्म के शस्त्रों (जैसे कुठारिका) की धारा बाल के समान पतली होनी चाहिए।

(iv) छेदन कर्म शस्त्रों की धारा (जैसे बृद्धि पत्र) अधे बाल के समान पतली तथा तीक्ष्ण होनी चाहिए।

(4) मुरणाणि (Good appearance)—शस्त्र देखने में मुन्द्र होना चाहिए।

(5) मुमुक्षु अप्याणि (proper shape of the cutting part)—शस्त्र के फलक (Cutting part) का आकार कमजुसार छोटा, बड़ा, मोटा या तला तथा देखने में मुन्द्र होना चाहिए।

(6) अकरतात्त्वाणि (Smooth Cutting edge)—करपत्र को छोड़कर अन्य शस्त्रों की धारा सतहना अवश्य दर्शन रहित (without dentation) होनी चाहिए।

**दोष :**

(1) वक (Unduly bent):—अनावश्यक स्थान से मुड़ा हुआ शस्त्र।

(2) कुप्त (Blunt):—कुप्तित धार वाला शस्त्र।

(3) खण्ड (Broken):—फलक या वृत्त से टूटा हुआ शस्त्र।

(4) बरधार (Dentate edge):—फलक की धार जब दांतों से मुक्त होती है (कर पत्र को छोड़कर)।

(5) अतिरूपत (Too heavy):—आवश्यकता से अधिक मोटा तथा अविक क्षारी शस्त्र जिसमें कर्म करने में असुविधा हो।

(6) अति रुच्छ (Too light):—बहुत ही हल्का (लघु) शस्त्र जैसे एल्यूमीनियम (aluminium) धातु से निर्मित शस्त्र। इनके धारा शस्त्र किया मुच्छल से नहीं हो सकती।

(7) अति दीर्घ (Too long):—ओवरएक्सेस से अधिक लम्बा शस्त्र, इससे शस्त्र करते समय इसे असानी से नियन्त्रित (Control) नहीं किया जा सकता।

(8) अति हस्त (Too small)—अनावश्यक छोटे शास्त्र, इन्हें पकड़ने में कठिनाई होती है।

#### शास्त्र धार :

शास्त्रों की धार की तीक्ष्णता के लिए तीन प्रकार के संस्कार (Procedure) किए जाते हैं।

- (1) पायना (Temper)
  - (2) निशातनी (Black stone)
  - (3) धार संस्थान (Strapping)
- (1) पायना (Temper)—शास्त्र धार को अधिक कार्य कुशल बनाने के लिए पायना संस्कार किया जाता है। इस कर्म में शास्त्र धार को अग्नि में तप्त और केंद्रके कार्य के अनुसार उन्हें निम्न विभिन्न दबावों में डुकाया जाता है—
- (1) तंत्र पायना—न अग्नि काठिन न अति मृदु धातुओं (सिरा, स्तायु इत्यादि) का छेदन करने वाले शास्त्रों की अग्नि तप्त धारा को तिल तैल में डुकाया जाता है।
- (ii) धार पायना—अग्नि विद्व करने वाले (शर इत्यादि) तथा अस्थिदेह फलने वाले (करपत्रादि) शास्त्रों की धारा काठिन बनाने के लिए उनकी अग्नि तप्त धारा को धारोदेहक में डुकाया जाता है।
- (iii) उद्वक पायना—कोमल धातु (मांसादि) का छेदन करने वाले शास्त्रों की धारा को पानी में डुकाया जाता है।

- (2) निशातनी—पायना करने के पश्चात् शास्त्रों को तीक्ष्ण बनाने के लिए उन्हें उड़द के समान काले रंग की शिला (Black stone) के ऊपर चिसाकर तीक्ष्ण किया जाता है। शास्त्रों की धार को रोम छेदन योग्य (like a shaving blade) तीक्ष्ण करना चाहिए।
- (3) धारा संस्थापन—शास्त्र के तीक्ष्ण होने के पश्चात् उसे घलण (एक बराबर) बनाने के लिए उसे शाहमती की लकड़ी पर घिसाया जाता है (चमड़े या किसी मोटे कपड़े पर चिसाकर भी शास्त्र को घलण (Smooth) बनाया जा सकता है)।

#### शास्त्रों की संख्या

सुधूत में 29 प्रकार के शास्त्रों का वर्णन किया है तथा अट्टींग संग्रहकार ने इनकी संख्या 26 बताई है, ये निम्नलिखित हैं—

1. मण्डलाय (Circular knife),
  2. बृद्धिपत्र (Scalpel),
  3. करपत्र (Saw),
  4. नखघस्त्र (Nail cutter),
  5. मुद्रिका शास्त्र (Finger knife),
  6. उत्पल पत्र (Lancet),
  7. अर्धधार (Half edged knife),
  8. सूची (Suturing needle),
  9. कुप्रत्र (Cataract knife),
  10. आटीमुख (Curved scissors),
  11. शारारीमुख (Pointed scissors),
  12. अन्तर्मुख (Bistury),
  13. विकर्चिक
  14. कुठारिका (Axe),
  15. आरा,
  16. ब्रीहिमुख (Trocar)
- (1) मण्डलाय (Circular knife)—भोज ने इस शस्त्र को असुराकार (Razor like) बताया है। इस शस्त्र का अग्र भाग मण्डलाकार (गोलाकार) अर्थात् तर्जनी अंगुली के अन्तः नब (—) के समान होता है।
- कार्य—यह शस्त्र पोथकी (Trachoma), शुणिका (Tonsils), अधिजिह्विका, बड़ा हुआ दन्त, जण एवं गांस के छेदन तथा लेखन कर्म के लिए प्रयोग में लाया जाता है। यह मृत गर्भ को गम्भिर निकालने के लिये भी प्रयोग होता है।
- (2) बृद्धिपत्र (Scalpel)—बृद्धि पत्र असुराकार होता है तथा यह दो प्रकार का होता है—
- (i) ऋजु (प्रायताग्र),
  - (ii) नताय (अड्डिताप्र),
  - (iii) नताय (अड्डिताप्र)।
- (i) नताय—इस शस्त्र का फलक सीधा होता है। यह बणशोथ में भेदन कर्म के लिए प्रयोग होता है।
- (ii) नताय—इसके फलक का अपमाण मुड़ा रहता है, इसके द्वारा गम्भीर धातुओं में स्थिर शोक का भेदन किया जाता है।

## आस्त्र प्रकार

(3) करपथ (Saw)—यह दो अंगुल चौड़ा तथा 10 अंगुल लम्बा खरधार (Dentate edge) वाला शस्त्र है। शस्त्र की अच्छी पकड़ के लिए उसके त्वर (Handle) पर अंगुलियों के लिए स्थान बनाए जाते हैं। आधुनिक चिकित्सा पद्धति में भी शल्य कर्म के लिए Butcher's saw, Adam's saw, Hey's saw, etc. अनेक प्रकार के शस्त्रों का प्रयोग किया जाता है।

कार्प—इससे अस्थि का कटान कर्म किया जाता है।  
 (4) नख शरस्त्र (Nail cutter)—इसकी लम्बाई 8 अंगुल तथा फलक 3 अंगुल का होता है।

(i) वक्षधार—वक्षधार नख शस्त्र का फलक अपवर्कण सूचय होता है।  
 (ii) अंगुलधार—इस नख शस्त्र में फलक का आकार वस्त्रदन्त के सदृश सीधा होता है। वारधटानुसार इसका फलक 2 अंगुल विस्तृत तथा 2 अंगुल लम्बा होता है।

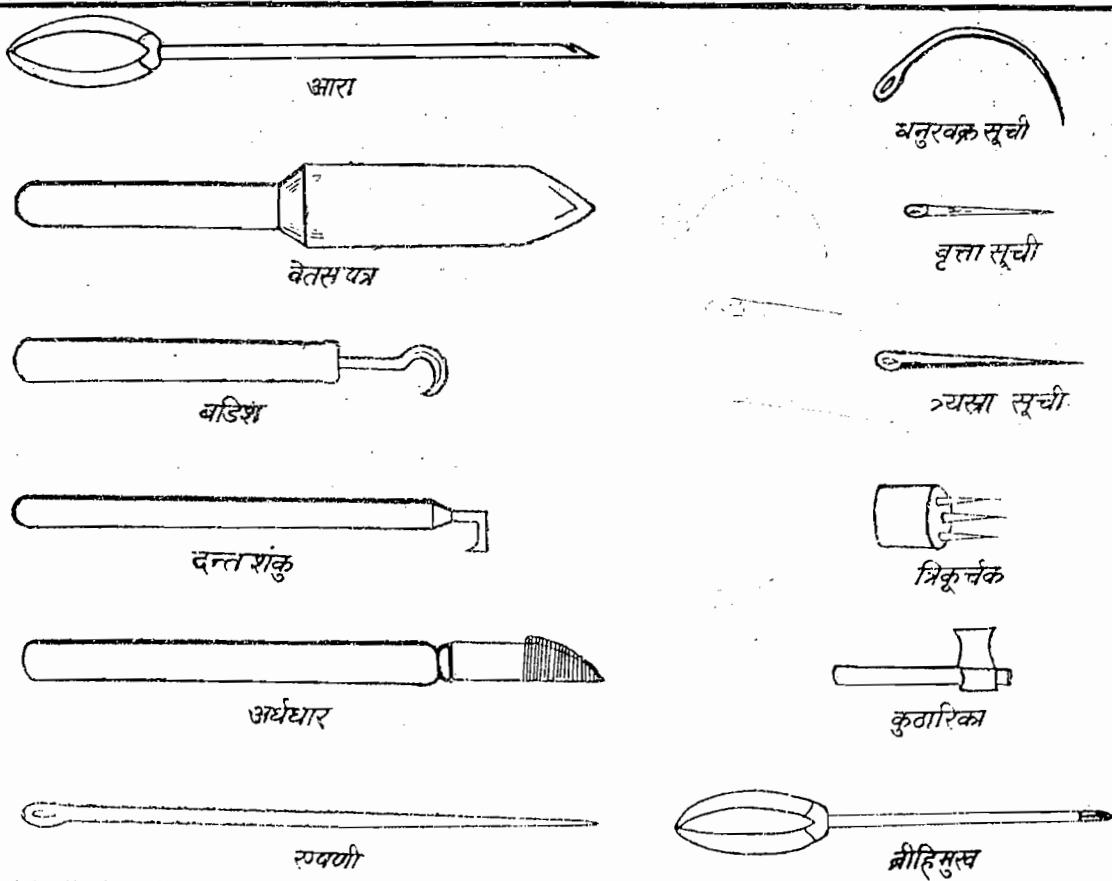
कार्प—इसका प्रयोग मुख्यतः नख काटने के लिए होता है। इसके अतिरिक्त

नख शस्त्र छेदन, भेदन, लेखन, प्रच्छाप तथा सूक्ष्म शल्य को निकालने के लिए भी प्रयोग होता है।

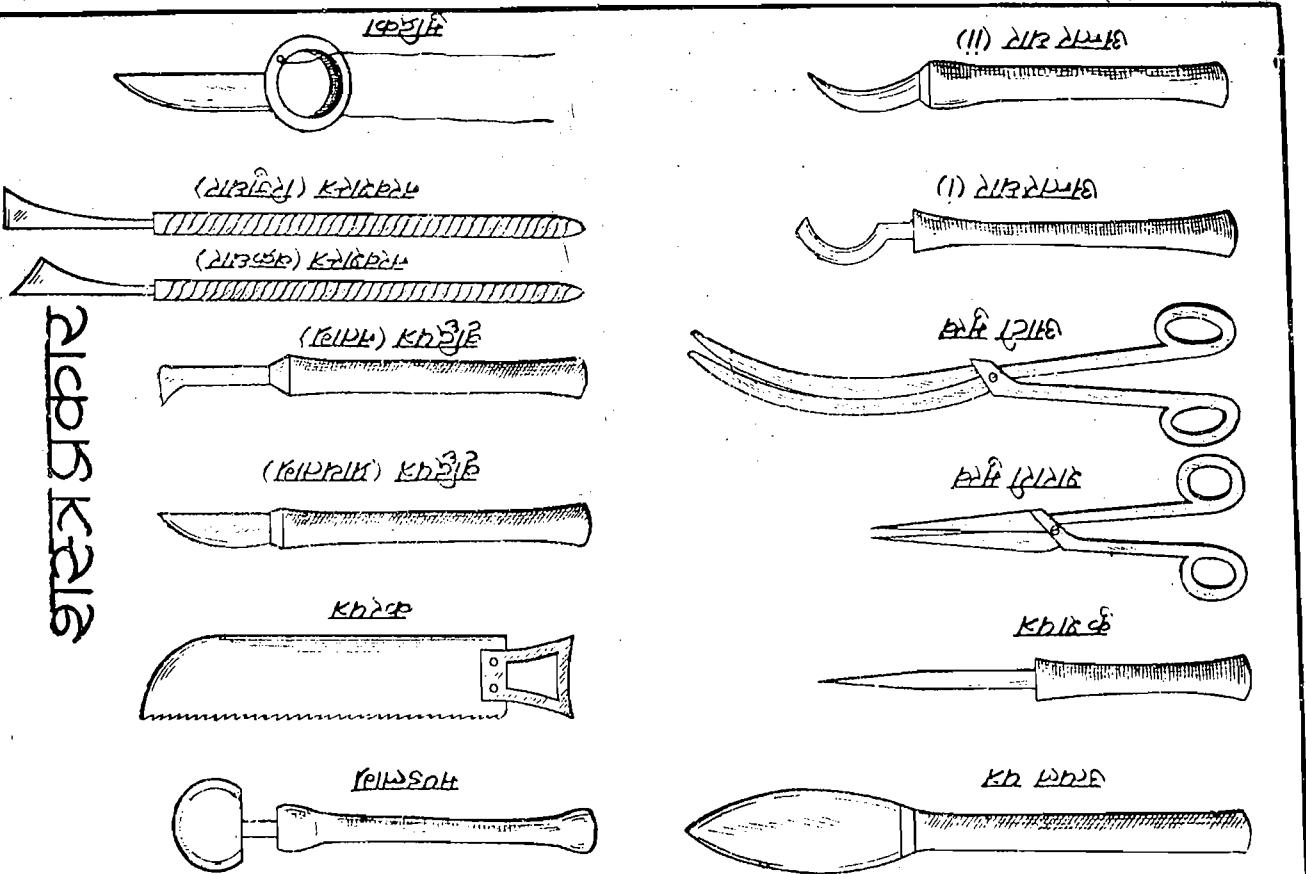
(5) झुकिका (Finger knife)—इस शस्त्र में मुकिका के सदृश एक छल्ला लगा रहता है। छल्ले पर वृद्धिपत्र या मण्डलाच के समान एक फलक (Blade) लगा होता है। मुकिका शस्त्र को तर्जनी अंगुली के अप्रबन्ध में पहनकर इसे सूच द्वारा मणिबन्ध से बांध देते हैं। इसे मणिबन्ध से बांधने के कारण, शस्त्र कर्म करते समय इस शस्त्र का अंगुली से निकलने का भय नहीं रहता।  
 कार्प—इसका प्रयोग कण्ठ गत रोगों में छेदन, भेदनादि कर्म के लिए किया जाता है।

(6) उत्पल पत्र (Lancet)—वह उत्पल पत्र के समान तीक्ष्ण धार वाला शस्त्र है। इसके फलक का परिणाम  $3 \times 1$  अंगुल होता है।  
 कार्प—यह शस्त्र छेदन तथा भेदन कर्म के लिए प्रयोग होता है।  
 (7) अधंधार (Half edged knife)—यह उत्पल पत्र के समान 8 अंगुल लम्बा तथा  $2 \times 1$  अंगुल फलक वाला शस्त्र है।  
 (8) सूची शस्त्र (Suturing needle)—इसका प्रयोग सीवन कर्म के लिए किया जाता है। सूची निम्नलिखित तीन प्रकार की होती है—

(i) बृतान्त्र लद्धयम्।



## शस्त्र प्रकार



जितने अन्तर पर) अन्दर की ओर को मुख किए हुए तीन शस्त्र लगे रहते हैं। बाखदृ ने इसे 7-8 शस्त्रों से उत्तर बताया है।

**कार्य—**—मुख्यत ने विस्तावण कर्म के लिए चिक्कूचक की प्रयोग करने को कहा है तथा बाखदृ ने इसके द्वारा कुट्टन कर्म के लिए तथा अर्थ के लिए प्रयोग करने को कहा है।

(14) **कुठारिका (Axe)**—इस शस्त्र का वृत्त 5½ अंगुल तथा फलक अंगुल होता है। इसका आकार गोदन्त के समान होता है।

**कार्य—**—कुठारिका का प्रयोग व्यधन कर्म के लिए या सिरावेध के लिए किया जाता है।

(15) **ब्रोहिसुख (Troccar)**—इसका अवधारणा जीवित्यांत सदृश होता है। भोज ने इसके दृत की लम्बाई 2 अंगुल तथा फलक की लम्बाई 4 अंगुल बताई है।

**कार्य—**—यह शस्त्र सिरावेध, जलोदर तथा मूच्छद्विदि में वेधन कर्म करने के लिए प्रयोग किया जाता है।

(16) **आरा शस्त्र (Owl)**—यह 8 अंगुल लम्बा शस्त्र है, (चर्मकार के चमड़ी की सिलाई करने वाला शस्त्र)। इस शस्त्र का दृष्टि अंगुल का अर्थ शरण गोल तथा पीछे का दृष्टि भाग गो-पुच्छ के समान (पकड़ने के लिए) चौड़ा होता है।

**कार्य—**—यह शस्त्र कणपाली के बेध के लिए प्रयोग होता है। बाखदृ इसके हारा पनवर्णोंथ का विनियोग करने को कहा है [जैसे बायोप्सी (Punch biopsy) की जाती है]।

(17) **बेलस पन्न (Narrow blade knife)**—भोजानुसार इसका अर्थ भाष्य एक अंगुल विस्तृत तथा 4 अंगुल लम्बा होता है (बाखदृ की मुद्री अनुसार यह दन्त-धार शस्त्र है)।

**कार्य—**—यह शस्त्र बेघन कर्म के लिए प्रयोग में लाया जाता है।

(18) **बाँझ शस्त्र (Sharp hook)**—इसका दृष्टि दोष्टम अंकुश के समान लम्ब होता है। इसका दृष्टि 5½ अंगुल तथा अद्यान्त 2 अंगुल वरिमाण का होता है। यह शस्त्र दो प्रकार का होता है।

(i) **स्वनत (Full curved)**—यह अधिक वक्र होता है।

(ii) **नात्यानत (Half curved)**—यह कम वक्र होता है।

**कार्य—**—इस शस्त्र का प्रयोग गुणितका तथा अवर्गित व्याप्रितियों को व्याघने के लिए होता है।

(19) **दन्त शंकु (Tooth pick or tooth scaler)**—इसके दृत की लम्बाई 6 अंगुल तथा फलक सम, तीक्ष्ण, चकोर, शंकु के समान मुड़ा हुआ एवं लम्बाई में अंगुल का होता है।

**कार्य—**—इसका प्रयोग देल बाकर हटाने के लिए होता है।

(20) **एशप्रो (Sharp probe)**—इसकी लम्बाई 8 अंगुल होती है तथा इसके पीछे सून के लिए एक पाल (Eye) बना रहता है। इसका अर्थ भाग तीक्ष्ण रहता है, परन्तु यसको में विसित एवं प्रणी का अप्रभाग कुप्रित (Non cutting) होता है।

#### बाखदृतुसार अन्य शस्त्र :

(21) **स्टंपुख—**—यह आकार में सर्पफण के समान होता है। यह तीक्ष्ण, ½ अंगुल फल वाला शस्त्र, कर्म एवं नासा के अंदर और अँड़द का छेदन करने के लिए प्रयुक्त होता है।

(22) **लिगनाश शलक्षण (तारामध्यो द्विमुखी शलाका)**—यह दो मुख वाली कुरेबक सदृश तीक्ष्ण शलाका होती है।

(23) **कूच्च—**—चिक्कूच के समान इससे 7-8 शलाकाकार शस्त्र लगे रहते हैं।

**कार्य—**—इसका उपयोग अर्थ में किया जाता है।

(24) **खज्ज—**—कण्ठकों वाला खज्ज कूच्च के समान होता है। इसका प्रयोग कूच्च शदृश किया जाता है।

(25) **कर्तंरी—**—यह यारारोन्ख के समान तीक्ष्ण अवधारण वाली तथा मध्य से उड़ी हुई होती है।

**कार्य—**—इसका प्रयोग छेदन कर्म के लिए किया जाता है।

(26) **कण्ण लघ्डल शस्त्र—**—यह तीन अंगुल लम्बी लूची, यूचिका (जार्मित) की कलि के आकार की होती है एवं मुख्य होता है।

**कार्य—**—इसका प्रयोग कण्ण छेदन के लिए होता है।

शस्त्रों को वकड़ने का उपाय :

(1) **मेहन कर्म वारते समय शस्त्रों (वृद्धिप्राप्ति)** को दृत एवं फलक संयोग स्थल से पकड़ना चाहिए।

(2) **लेवन कर्म करते समय शस्त्र (वृद्धिप्राप्ति)** को दृत एवं फलक के पकड़कर चलाएं ताकि शस्त्र संतुलन में रहे।

(3) **विस्तावण करते समय शस्त्र को अवधारण से पकड़ना चाहिए।**

(4) दृढ़िपत्र को अंगूठे तथा तर्जनी से इस ढंग से पकड़ें ताकि इसका बूँद भग्न हथेली में छिप जाए।

(5) कुठारिका—इसे बायें हाथ से पकड़ कर, दक्षिण हाथ की बीच की अंगुली तथा अंगूठे का सहारा देकर, उसके ऊपर हल्का सा आचात करता चाहिए।

(6) करपत्र, आरा और धूणी—इहें मूल से पकड़ना चाहिए।

(7) अन्य शस्त्र—उपरोक्त शस्त्रों के अतिरिक्त अन्य शस्त्रों को ऐसी विधि से पकड़ना चाहिए जिससे कि शस्त्र कर्म ठीक ढंग से हो सके।

#### शस्त्रों के कार्य :

(1) छेदन तथा भेदन कर्म के लिए—दृढ़िपत्र नखशस्त्र, मुद्रिका, उत्पलपत्र अर्धधार।

(2) छेदन तथा लेखन के लिए—मण्डलाप, करपत्र।

(3) विकावन के लिए—सूची, कुपाचन, आर्टीमूख, शरारीरमुख, त्रिकूर्चक, अन्तर्मुख।

(4) वेघन के लिए—कुठारिका, नीहिमुख, आरा, वेतसपत्र, सूची।

(5) आहरण के लिए—बड़िश, दंतशकु।

(6) एषण (अनुलोभन) के लिए—एषणी।

(7) सीवन कर्म के लिए—सूची।

#### शस्त्रों का परिमाण :

(1) 2 से 3 अंगुल—सूची शस्त्र।

(2) 8 अंगुल—एषणी शस्त्र।

(3) तर्जनी के पर्व के समान—मुद्रिका शस्त्र।

(4) 10 अंगुल—शरारीरमुख।

(5) 6 अंगुल—अन्य शस्त्र।

(6) शस्त्र फलक—यह शस्त्र की लम्बाई का  $\frac{1}{2}$  या  $\frac{1}{4}$  भाग होना चाहिए।

**अनुशास्त्र**—जो स्वयं शास्त्र न होते हुए भी शस्त्रों का कार्य करते के सामर्थ हो, उन्हें अनुशास्त्र कहते हैं। अनुशास्त्रों का प्रयोग शस्त्रों के अभाव में किया जाता है। या शस्त्र कर्म से डरने वाले (भीरु) रोगियों के लिए किया जाता है।

संख्या — अनुशास्त्र 14 प्रकार के होते हैं जैसे—

1. वांस

2. मफटिक

3. कान्च

4. कुरुविन्द

- 5. जलौका
  - 6. अग्नि
  - 7. क्षार
  - 8. नख
  - 9. गोणिह्वा
  - 10. शेफाली पत्र
  - 11. शाकपत्र
  - 12. शरीर
  - 13. बाल
  - 14. अंगुली
- वारभट्ट ने समुद्र फेन, सूखा-गोबर, सूर्यकात (Convergence lens) को भी अनुशास्त्र कहा है।

कार्य :—

- (1) छेदन तथा भेदन कर्म के लिए—त्वक्क्षार (वांस), कान्च, कुरुविन्द तथा अस्फिक्षि का।
- (2) लेखन कर्म के लिए—गोजी, शेफाली, शाकपत्र, समुद्र फेन तथा गोबर।
- (3) एषण कर्म के लिये—बाल, अंगुली तथा अंकुर।
- (4) छेदन, भेदन तथा आहरण कर्म के लिये [जैसे कांटे का]—तरब।

- 5. जलौका
  - 6. अग्नि
  - 7. क्षार
  - 8. नख
  - 9. गोणिह्वा
  - 10. शेफाली पत्र
  - 11. शाकपत्र
  - 12. शरीर
  - 13. बाल
  - 14. अंगुली
- वारभट्ट ने समुद्र फेन, सूखा-गोबर, सूर्यकात (Convergence lens) को भी अनुशास्त्र कहा है।

(1) छेदन तथा भेदन कर्म के लिए—त्वक्क्षार (वांस), कान्च, कुरुविन्द तथा अस्फिक्षि का।

(2) लेखन कर्म के लिए—गोजी, शेफाली, शाकपत्र, समुद्र फेन तथा गोबर।

(3) एषण कर्म के लिये—बाल, अंगुली तथा अंकुर।

(4) छेदन, भेदन तथा आहरण कर्म के लिये [जैसे कांटे का]—तरब।

## 16

### गोप्य (शल्य कर्माण्यास)

(OPERATIVE SURGERY)

शल्य किया में प्रयोग किए जाने वाले यन्त्र, शस्त्र तथा बन्धनादि कमों (भेदनादि अल्ट्राविद्युत कमं तथा बन्धन कर्म) के प्रयोगिक जान के लिये विभिन्न इव्वों (उन कर्मों की समानता के अनुसार बस्तुओं) में, उनका कर्माण्यास करना ही योग्य (Operative surgery) कहलाता है। जैसे रथ चलने के लिये उसके दोनों पाहियों का होना आवश्यक होता है, उसी प्रकार अच्छी तरह से शास्त्र को पढ़ लेने पर भी योग्य चिकित्सक बनने के लिए कर्माण्यास (गोप्या) अति आवश्यक होता है। कर्माण्यास की विशेषता दिव्वाते हुए आचार्य मुश्तु ने कहा है कि गुरुमुख से शास्त्र का शहण करने के उपरांत जो व्यक्ति उसका कर्माण्यास करता है वह ही वैद्य होता है तथा अन्य सब चोर (Quack) होते हैं।

शास्त्रं गुरुमुखो द्वयीं जामादायोपास्य चासक्षत् ।

यः कमं कुरुते वेदः सर्वं घोड़न्ये तु तस्कराः ॥ मु० स० ४

"यस्तु भव्यजो मातिमात् स समयोऽथ साधने ॥

आहवे कमं निर्बोद्ध द्विचकः स्पृत्वनो यथा ॥ मु० स० ३

जिस प्रकार दो पहियों वाला रथ ही कर्मं करने में (चलने में) समर्थ होता है, उसी प्रकार शास्त्र एवं कर्मं (शास्त्रकर्म) को जानने वाला अथवा प्रत्यक्ष ज्ञान वाला चिकित्सक ही आरोग्य देने में सामर्थ्य होता है। इसलिये कर्मं का ज्ञान योग्या द्वारा प्राप्त करना अति आवश्यक होता है।

(1) छेदन (Excision)—छेदन कर्म का अभ्यास ऐसे फलों या सज्जियों पर करना चाहिए जिनका मध्य भाग छोड़ना (कोटरुक्त) हो। इससे शास्त्र चलने समय हाथ को विभिन्न प्रकार के प्रतिरोध (Resistance) का अनुभव हो जाता है। इन से हाथ को सन्तुलित किया करने (Balanced hand) का भी अभ्यास हो जाता है। कुड़माहड़, अरादू (नीनी), तरवृन्, खोरा, कफड़ी इत्यादि फलों पर आपकों (ज्ञान से नीचे को काटने) तथा उत्कर्तन (नीचे से ऊपर को काटने) का अभ्यास करना चाहिए।

(2) लेखन (Incision)—चमड़े के बनाए हुए थैले, मशक तथा मृत पश्चात् जीव स्त्रियों में कीचड़ भर कर, भेदन कर्म का अभ्यास करना चाहिए। इस कर्म द्वा

होष को शास्त्र चलाने में किनने प्रतिरोध का अनुभव होता है, इसका ज्ञान ही जाता है। इससे चिकित्सक पक्ष व्याघोक में सम्यक् भेदन करने के योग्य हो जाता है। इस गोप्या के पश्चात् वह न तो शास्त्र अति दूर तक चलाता है (Counter incision of the cavity) तथा न ही शास्त्र अति उत्तरान (Superficial) चलाता है जिससे कि वह तूप नीटर तक भी न पहुँच पाए।

(3) लेखन (Scraping)—इस कर्म का अभ्यास लोम युक्त् चर्म को फैलाकर, उसके बालों का लेखन करके करना चाहिये। इससे शास्त्र फलक को एक विशेष कोण बनाकर चलाने का अनुभव हो जाता है, जैसा कि दाढ़ी-मुँछ बनाने समय भुर (Blade) को एक विशेष कोण में चलाया जाता है।

(4) बेधन (Puncturing or tapping)—इस कर्म का अभ्यास मृत पश्चात् की सिराओं में से या विवरयुक्त कमल नाल में करना चाहिये। इससे शास्त्र को किनती शक्ति से दबाना चाहिये, इसका ठीक-ठीक अनुभव हो जाता है। इस किया में अभ्यास होने पर चिकित्सक प्रमादवश शिराओं का कम, अधिक या खार-पार बेधन (Counter puncturing) नहीं करता।

(5) एषण (Probing)—इस कर्म के लिए चुण (जीमक) से खाई हुई लकड़ी (विवरयुक्त लकड़ी), जांस या शुक्र लीकी जैसी बस्तुओं पर एषण कर्म का अभ्यास करना चाहिये। इस कर्म से एपणी को कम अवरोध (Least resistance) की दिशा में ले जाने का अनुभव हो जाता है, तथा शीतर किस आकार के तथा कितनी संडगा में शल्य पड़े हुए हैं या पूँप कोटर का कितना विस्तार है इत्यादि का भी ज्ञान हो जाता है।

(6) आहरण (Extraction)—इस कर्म का अभ्यास मृत पश्चात् युक्तों के दन्त आहरण करके करना चाहिये। इस कर्म से, किस दिशा में शक्ति का प्रयोग करना है (जिससे कि अन्य स्थानीय धातुओं की कम से कम अनुभव हो), इसका ज्ञान हो जाता है। बिल्व नी मण्डा से तथा कटफल के बीजों के आहरण के अभ्यास से, शल्कण धातुओं में से अस्मारी तथा अन्य छोटी-छोटी शल्य कितनी कठिनाई से निकलते हैं (यन्त्र द्वारा निकाले जाते हैं) इसका अनुभव हो जाता है।

(7) विलावण (Blood letting)—विलावण का अभ्यास मत्तुमक्खियों के छन्ते से मधु का विलावण करके करें; तथा सिम्बल दृक् के तड्डे पर मोम लगाकर किर उत्स पर शास्त्र चलाकर, विलावण कर्म में दस्ता प्राप्त करनी चाहिये।

(8) सीवन (Suturing)—देहितत्क (Continuous), गोफणिका (Blanket suture), तुन्तसेवनी (Subcuticular) तथा अर्जुग्रन्थि (Interrupted) सीवन कर्म का अभ्यास प्रकार की सूचियों द्वारा [वृत्ता (Round body), तिक्का (Triangular) तथा धनुर्कंका (Curved)] मृत पश्चात् युक्तों की खाल की

सिलाई करके करना चाहिये। इस कर्म से न अति दूर व न अति समीप सीबन कर्म करने का तथा शीघ्रता से सीबन करने का अभ्यास हो जाता है।

(9) बन्धन (Bandaging)—बन्धन कर्म के योन्या (अस्यास) के लिये भिट्ठी की पुष्ट प्रतिमा (Dummy) बनाकर फिर उसके अंग प्रत्यंगों पर बन्धन कर्म करना चाहिये, जैसे ल्वस्टिक बन्धन को सन्धियों पर तथा अनुदेलितक बन्धन को भुजाओं इत्यादि पर बांध कर करते हैं।

(10) कर्णबन्ध (Earplasty)—कर्ण जैसे कोमल अंगों के शाल्य कर्म में दस्ता प्राप्त करने के लिये पहले मृत पशुओं की कोमल हड्डी, मांसपेशी तथा कमल-नाल में कर्णबन्ध का अस्यास करें, फिर कर्म का पूर्ण अस्यास होने पर ही रोलियों में यह कर्म करना चाहिये।

(11) पीड़न (Squeezing)—इस कर्म के लिये बर्सिन में कीचड़ भर कर उस में छिद्र कर दें, फिर उसे दबाकर उसमें से पूरे की बड़ को बाहर निकालकर पीड़न कर्म का अस्यास करना चाहिये। पूर्य को बाहर निकालने के लिये पूय कोटर का किस-किस दिशा में पीड़न करना। चाहिये, इसका जान पीड़न करने से होने जाने वाले विषयों को प्रत्यक्ष करने से जान में अधिक बृद्धि होती है।

अष्टविध शाल्य कर्म एवं अन्य शाल्य विषयों का अच्छी प्रकार से कमायियस कर लेने से ही शाल्य चिकित्सक गुणवान् बन सकता है। यह चिकित्सक शीर्घवान्, अशुक्लिकारी, तीक्ष्ण शास्त्री से युक्त होता है तथा शाल्य कर्म के समय इसे परीक्षा (स्वेदन) नहीं आता तथा न ही वह कांपता है और न संमुद्ध (विश्रमित) होता है।

शोर्दमशुक्रिया शस्त्रतंक्षयमस्वेदेष्य ।  
असंसोहश वैश्यश्य शस्त्रकर्मण शस्यते ॥ सु० स० ५

## 17 चिकित्साखानप्रबेश

### (ENTERANCE IN MEDICAL PRACTICE)

चिकित्सा कार्य शुरू करने से पहले चिकित्सक के लिये शास्त्र की जानकारी (Theoretical knowledge) प्राप्त करना तथा इसके पश्चात् उसका क्षियास्यास (Practical training) करना अति आवश्यक होता है। मृत शरीर का शोधन करके (After making it fit for dissection) शाल्य चिकित्सक को शब्द अंगों से अच्छी प्रकार से देखना (वित्तशय करना) चाहिये। शास्त्र ज्ञान ये तथा अंग-

### प्रत्ययों

तस्मात्त्वाचिक्षयं ज्ञानं हन्ता शाल्यरत्य बाढ़धृता ।

शोधयित्वा मृतं सम्प्रत्याप्त्योऽङ्गविनिषयः ॥

प्रत्यक्षतोहि यद्यद्यत्तं गारावद्यत्तं च यद्यद्यत्त ।

समासत्तदुपर्य लूयो ज्ञान विवर्धनम् ॥ सु० सा० ५

चिकित्सक को स्वच्छ एवं श्वेत वस्त्र धारण करने चाहिए तथा उसे अन्य शब्द सामग्री से युक्त (Including arms for personal safety, while on visits) देना चाहिये, इतना ही नहीं उसे अपने व्यवहार में भी कुशल (Well behaved) देना चाहिये एवं उसे अपने सहायकों (Assistants) को भास रखना चाहिये। वैचाली धर्म, अर्थ, काम, मोक्षादि (To become a good reputed medical practitioner) को प्राप्त करने के लिये निम्न नियमों का पालन करना चाहिये।

### नियमः—

(1) अधिगत तंत्र (A good study of literature)—अच्छा चिकित्सक उपदेश सुनना चाहिये। उपदेश के लिये सर्वप्रथम चिकित्सा शास्त्र को ध्यान से पढ़ना चाहिये तथा गुरुमुख से उपदेश सुनना चाहिये।

(2) उपासित तत्त्वार्थ (One should be well versed with the meaning and principles of the literature)—केवल मात्र शास्त्र का पढ़ना या सुनना ही पर्याप्त नहीं होता; उसके युक्त एवं निश्चित अर्थ तथा सिद्धान्तों को जानना भी आवश्यक होता है।

(3) दृष्ट कर्मणा कृतयोग्यता (Regarding practical training)—शास्त्र के ज्ञान के प्रस्तात् शाल्य कर्मों का कर्माभास करना विज्ञान में क्रियायमकाता लाने के लिये अति आवश्यक होता है। इसके लिए सर्वप्रथम शाल्य कर्म को अन्य निपुण शाल्य चिकित्सकों द्वारा करते हुए देखना चाहिए, फिर शाल्य कर्म में प्रयुक्त होने वाले अनेक कर्मों का अभ्यास, उन कर्मों के अनुसार कलों या मृत पुश्यों (Dummies) पर अपने से करना चाहिये। इस तरह से शाल्य कर्म में दक्षता प्राप्त कर बैठने के पश्चात् रोगी पर इन कर्मों को करना चाहिये।

(4) शास्त्र विज्ञाता (Research worker)—चिकित्सा कर्मों में निपुण होने के साथ-साथ चिकित्सा शास्त्र को आगे बढ़ाने (Research projects) में भी प्रयत्नशील होना चाहिये, क्योंकि जिस विज्ञान में प्रगति रुक जाती है वह विज्ञान अवनति के पथ पर चला जाता है।

(5) राजनुज्ञा प्राप्ति (Recognition by authority)—उपरोक्त विषेष-तार्ये होने पर चिकित्सक को राजा या अन्य वरिष्ठ अधिकारियों से मान्यता भी प्राप्त होनी चाहिये जैसे आजकल रजिस्ट्रेशन (Registration) होता है।

(6) शुचि शूक्ष्मत्वस्त्र परिहित (Perfect personal hygiene)—चिकित्सक को अपने नब कटवाकर, बालों को छोटा करवाकर, रबेत वस्त्र तथा देरों में जूते इत्यादि पहनकर रखने चाहिये तथा अन्य स्वस्थवृत्त के नियमों पर भी चिकित्सक को पूर्ण ध्यान देना चाहिये।

(7) अव्यवहृत दृष्टहस्तेन (He should be armed for his safety):—चिकित्सक को प्रायः रोगियों के पर जाना पड़ता है अतः आत्म रक्षा के लिये उसे अपने पास कोई शस्त्र या दण्डादि हमेशा रखना चाहिये और वर्षा एवं ग्रीष्म ऋतु में या मेघाच्छादित होने पर छाता भी साथ में रखना चाहिये।

(8) तुम्हा कल्पय अवहारी बथु भ्रतेन (He should be calm and gentle in his behaviour)—चिकित्सक को शांत मन बाला (Least irritation) होना चाहिये। उसका रोगियों से अच्छा अवहार होना चाहिये तथा उसे आहुर को अपने प्रियजनों या तुम के समान मानकर चिकित्सा करनी चाहिये।

(9) तुम्हारा अवहारता (A gentle assistant)—चिकित्सक को हमेशा अपने साथ अच्छे एवं कर्म में दश सहायकों को रखना चाहिये ताकि शाल्य क्रिया करते हुए उसे आवश्यक सहायता (Good assistance) मिल सके।

**दोषः—**

चिकित्सक के उपरोक्त विधि से विशिखात्रुप्रवेश न करने से उसमें निम्न दोष आ जाते हैं—  
(1) उराल्यातः—यह दोष शास्त्र का अच्छी प्रकार से ज्ञान न हीन से होता है।

(2) मिथादृष्टा :—यह दोष शाल्य कर्म को ठोक प्रकार से न देखे रहने के कारण होता है।

(3) उत्परिमुख्या :—चिकित्सा अचार्त शाल्य कर्म के पूर्व यदि अच्छी प्रकार से विचार न किया गया हो तो चिकित्सक रोगी को देखकर मोहित (Puzzle) हो जाता है। उपरोक्त दोषों के कारण कर्म ठीक प्रकार से न होने से चिकित्सक को धर्म, धर्म, मोक्षादि फल प्राप्त नहीं होते।

**शाल्य चिकित्सक के गुण—**

(1) मेधावी :—अच्छी बुद्धि वाला।

(2) कृतयोग्य :—जिसने कर्माभ्यास (Operative surgery) भी अच्छी प्रकार से किया हो।

(3) बहुचृत :—जिसने चिकित्साशास्त्र की अन्य प्रणालियों (Other systems of medicine) को अच्छी प्रकार से जान लिया हो।

(4) शास्त्रज्ञ :—जिसने शास्त्र (Literature) को समझकर पूरा अध्ययन किया हो।

(5) कर्म निष्ठात :—जिसने अपने कार्य में पूर्ण कुशलता प्राप्त की हो।

(6) शोयंवान् :—चिकित्सक को भीरु नहीं होना चाहिये (शोयंयुक्त होना चाहिये)।

(7) आगुक्षिया (Fast surgeon) :—चिकित्सक को अति शोघ शाल्य क्रिया करने में अभ्यस्त होना चाहिये।

(8) उपकरणयुक्त :—चिकित्सक के सब आवश्यक उपकरण (Armamentarium) उनके पास रहने चाहिये।

(9) अस्त्रेव :—उसे शाल्य कर्म करते हुए घरेलूकर पसीना नहीं आता चाहिये।

(10) अवेष्टु :—शाल्य कर्म करते हुये उसके हाथ कापने नहीं चाहिये।

(11) शोहरहित :—रोगी की गम्भीर अवस्था को देखकर चिकित्सक को भोहित नहीं होना चाहिये।

**चिकित्सा से स्थानि प्राप्त करने के नियम**

(Principles to achieve good reputation) —

(1) पर स्त्रियों के साथ हँसी मजाक (Loose talk or jokes) नहीं करने दोष आ जाते हैं—  
(1) उराल्यातः—यह दोष शास्त्र का अच्छी प्रकार से ज्ञान न हीन से चरित्र पर धन्वा नहीं लग सकता।

(2) जब रोगी को देखने जाना हो (During visits) तो शकुनों का ध्यान रखना चाहिये। सुगन्धित तथा अनुकूल वायु, मार्ग में भरे हुए घड़ों का मिलना स्पष्टादि युग्म शकुन होने पर ही चिकित्सा कर्म में सफलता मिलती है, अन्यथा रोगी की स्थिति पर पुनः विचार कर लेना चाहिए कि कहाँ चिकित्सा से अपयोग तो नहीं मिलने वाला है।

(3) रोगी के पास जाकर पहले स्पर्शन दर्शनादि ज्ञानेन्द्रियों से परीक्षा (Examination) करनी चाहिये।

उपरोक्त परीक्षा कर लेने पर रोगी बूत (History taking) पूछना चाहिये जाता है। इसमें व्याधि का निश्चय हो जाने पर ही चिकित्सा करनी चाहिये। चिकित्सक को अपनी छापाति (Reputation) बताये रखने के लिये निम्न विषयों पर भी ध्यान देना चाहिए—

(i) साध्य रोगों की चिकित्सा करनी चाहिये। परन्तु राजा, राजसेवक, स्त्री, वालक, बुद्ध, डुर्बल, क्षोधी, अनाश, अजितेन्द्रिय, व्याधि छुपाने वाला तथा केवल निरक्षकार करने वाले रोगियों के साध्य रोग भी कुछ भूल साध्य होते हैं, इसलिये ऐसे रोगियों की चिकित्सा विचार करके ही प्रारम्भ करनी चाहिये।

(ii) याप्य रोगों को बढ़ने नहीं देना चाहिये। (iii) असाध्य तथा एक वर्ष पुराने रोगियों को छोड़ देना चाहिये या फिर उसे व्याधि के सम्पादित परिणाम (Consequences) बताकर चिकित्सा प्रारम्भ करनी चाहिये।

## 18 संज्ञानाश

(Anaesthesia)

संज्ञानाश का प्रयोग शाल्य कर्म से उत्पन्न वेदना को हरने के लिए किया जाता है।  
 प्राक् भास्त्रकर्मणा श्वेठं श्वेषेवसमातुरम् ।  
 शान्तं पायमेन्मध्यं तीक्ष्णं यो वेदनाक्षमः ।  
 न मूर्खं श्वलं संयोगान्मतः शस्त्रं न बृद्धयते ॥

अर्थात् मध्यपात करने वाले रोगी को तीक्ष्ण मध्य भिलाकर शस्त्र कर्म करने पर उसे वेदना की अनुभूति नहीं होती। शाल्य कर्म के पूर्व शोजन करा देने से रोगी मूर्खच्छ नहीं होता। प्राचीन काल में शाल्य कर्म जन्य वेदना हरने के लिए तीक्ष्ण मध्य ही एकमात्र औषधि प्रयोग की जाती थी। परन्तु आजकल अनेक तरह की संज्ञानाशक औषधियों के आविष्कार हो जाने से बड़े-बड़े शाल्यकर्म भी वेदना राहित समझ किए जाते हैं।

व्याल्या—सब प्रकार की उत्सेजनाओं की ग्रहण शक्ति के अभाव को ही संज्ञानाश (Anaesthesia) कहते हैं।

संज्ञानाश दो प्रकार का होता है।

I. सार्वदेहिक संज्ञानाश (General anaesthesia)

II. स्थानीय संज्ञानाश (Local anaesthesia)

### I. सार्वदेहिक संज्ञानाश :

जब सम्पूर्ण शरीर की जानेन्द्रियों तथा कर्मन्द्रियों के कार्य के साथ-साथ चेतना शक्ति का भी नाश हो जाए, परन्तु हृदयादि अङ्गों की अनैन्दिक शक्ति अब तीर्ती रहें, तो इस अवस्था को सार्वदेहिक संज्ञानाश कहते हैं।

सार्वदेहिक संज्ञानाश औषधियाँ मस्तिष्क तथा सुषुम्ना केन्द्रों को अवसादित (Depress) करके अस्थाई अव्यतीतता (Unconsciousness), ऐन्झिक् तथा प्रत्यावर्त कियाओं का नाश करके (Loss of voluntary actions and reflex

सीवेदनात्का नाइरु (Sedentary loss) मात्र्य विज्ञान  
अथवा नाइरु के अधीन अवस्था में पहले जैतना का  
actions (Unconsciousness) होता है फिर संवेदना का नाग (Sensory loss),  
इसके पश्चात् बैल्टनाश (Motor loss) और अन्त में सुषुम्ना केन्द्र के प्रभावित  
होने से घास घात (Respiratory failure) तथा केशकाओं के विस्तार से स्तनधाता (Breast  
उत्पात होकर मृत्यु हो जाती है।

### सार्वदैहिक संज्ञानाश की अवस्थाएँ :

सार्वदैहिक संज्ञानाश से प्रभाव से संवेदना तथा चेठावह नाड़ियों  
की क्रिया शक्ति का नाश, उपर बताए विशेष क्रम से होता है। इस क्रम को चार  
भागों में बांट कर संज्ञानाश की चार अवस्थाएं बनाई गई है। इन चारों अवस्थाओं  
का प्रत्यक्षीकरण के लिए ईथर तथा क्लोरोफार्म (Ether and chloroform) के  
प्रयोग करने से होता है। शोषण क्रिया करने वाली अन्य संज्ञानाश का परिवर्तन क्रम इतना तीव्र होता  
ना इद्दस अंक्साइड ( $N_2O$ ) इत्यादि से संज्ञानाश का परिवर्तन क्रम इतना तीव्र होता  
है कि संज्ञानाश की सब अवस्थाएं प्रत्यक्ष नहीं की जा सकती। एट्रोपीन (Atropine  
जैसी कुछ औषधियाँ जिन्हें प्रबंध-औषध-प्रयोग (Preadmission) के लिये दिया  
जाता है, वे भी संज्ञानाश की अवस्थाओं के चिह्नों में मुधार (Modify) कर देती  
हैं, इससे इन अवस्थाओं की पहचानने में थोड़ी कठिनाई होती है [एट्रोपीन से ऑब  
का तारामण्डल (Pupil) विस्फारित हो जाता है तथा क्लोर संज्ञानाश की विभिन्न  
अवस्थाओं में तारामण्डल के परिमाण में कोई अन्तर नहीं आता है]।

प्रथमावस्था— इसे बेतना हुर अवस्था (Stage of analgesia) भी कहते  
हैं। इस अवस्था में विभ्रम [(Hallucination) जैसे कानों में आवाजों का अना,  
आंखों में रोशनी दिखलाई देना, तथा उष्णता का अनुभव होना इत्यादि] होता है।  
इस अवस्था में रोगी को हँस्ती सी चेतना रहती है जिस कारण वह प्रश्नों के उत्तर  
ठीक से नहीं दे पाता। बेदना तथा जानेन्द्रियों की अनुभूति क्रम हो जाती है, परन्तु  
रोगी थोड़ा उत्सेजित रहता है, इस कारण लालालाल (Saliva) तथा अन्य ग्रनिथियों  
के निकाल (Secretions) बढ़ जाते हैं। आंख का तारामण्डल विस्फारित हो जाता  
है। शबास की गति अनियमित हो जाती है तथा थोड़ी सी बढ़ जाती है। बेहरा  
(Face) लाल हो जाता है तथा रक्तभार थोड़ा बढ़ जाता है।

द्वितीयावस्था— यह अवस्था जैतना नाश से प्रारम्भ होती है। बच्चों में  
नियन्त्रण (Self control) जो देता है जिससे वह अपनी प्रकृति के अनुसार  
चिल्लता, हंसता, रोता व हाथ पांव पटकता है (घरन्तु इसका रोगी को जान  
नहीं होता) इसलिए इसे प्रलाप अवस्था (Stage of delirium) कहते हैं। इस  
अवस्था में नाड़ी गति में तो जैतना तथा वह पूर्ण परिमाण (Full volume) में होती है।

सार्वदैहिक संज्ञानाश की अवस्थाएँ एवं उपअवस्थाओं की तालिका

संज्ञानाश की अवस्थाएँ	I	II	III शल्य क्रम की अवस्था			IV सुषुम्ना घातावस्था
	संवेदनाहुरण अवस्था	प्रलाप अवस्था	i	ii	iii	vi
स्थास गति	सामान्य	विषम	नियमित एवं गम्भीर	नियमित एवं गम्भीर	तीव्र एवं क्षीण	तीव्र एवं क्षीण
माझी गति	अधिक	अधिक	सामान्य	सामान्य	न्यून	न्यूनतर
रक्त भार	अधिक	अधिक	अधिक	अधिक	अल्प	अनुपस्थित
गरीर के निकाल, जैसे लाला लाल	अधिक	अधिक	अधिक	अधिक	गतिहीन	गतिहीन
तारामण्डल का परिमाण	सामान्य	विस्फारित	संकुचित	हधर-उधर घूमता है।	मध्य विस्फारित	अतिविस्फारित
मेन गोलक की गति	ऐच्छिक	हधर-उधर घूमता है।	हधर-उधर घूमता है।	गतिहीन	गतिहीन	गतिहीन

BP↑ Resp↑ Drift of pupillary

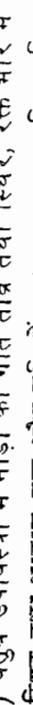
रक्त भार बढ़ जाता है, श्वास गति तीव्र, तारामण्डल (Pupil) विस्फारित तथा प्रश्नियों से छलेष्मसाच (Mucous secretion) अधिक होने लगता है । ये लक्षण अनुकूली तंत्रिका (Sympathetic nerve) के उत्तर दिए होने से उपत्पन्न होते हैं । रक्ती के नेत्र गोलक इधर-उधर झूमते हैं (Moving eyeballs) । इस अवस्था में प्रश्नावर्तन की सब क्रियाएँ उत्प्रेरित रहती हैं ।

**तृतीयावस्था** :—यह अवस्था प्रबलिका में उत्तरे जित हुए केन्द्रों के अव-  
साधन (Depress) होने से प्रारम्भ होकर, श्वास की गति रुक जाने तक रहती है।  
(उष्मा केन्द्रों के अवसाधन होने से)। इसमें चार उपावस्थाएँ होती हैं।  
(i) प्रथम उपावस्था में श्वास की गति गहरी (गम्भीर), तारामण्डल थोड़ा  
संकृचित और अकिञ्चित इधर-उधर घूमते रहते हैं अकिञ्चित स्थिर हो जाने पर  
रोधी आगे की उप-अवस्था अर्थात् द्वितीय उपावस्था में बदला जाता है।

(ii) द्वितीय उपावस्था में मांस पेशियों में शिथिलता आ जाती है (इससे रागों की शाखावाये आसानी से मोड़ी जा सकती है) और बहु की प्रकाश प्रत्यावर्तन किया (Light reflex) मनद पड़ जाती है। पर्युद्ध प्रत्यावर्तन (Peritoneal reflex) की अतिरिक्त अत्य सब न्रत्यावर्तन कियावे समाप्त हो जाती है। शरीर के निलाव कम हो जाते हैं, तथा तारामण्डल का परिमाण (Size) सामान्य रहता है।

(iii) तृतीय उपायस्था उदर गत घात्य कर्मों के लिए सर्वश्रेष्ठ है। इसमें सब गम्भीर प्रत्यावर्तन क्रियायें समाप्त हो जाती हैं। इस अवस्था में ब्रह्मण्ट क्रिया कर्म तथा उदरात घवास क्रिया अधिक हो जाती है। अक्षिगोलक स्थिर, आरामड़ल विस्फारित, रक्त भार कर्म, नाड़ी की गति अधिक तथा तापमान कम होता है।

(iv) चतुर्थ उपावस्था में नाड़ी की गति तीव्र तथा स्थिर, रक्त भार में हास, किया स्थिर तथा आवाज युक्त और गति में कम, तारामण्डल विस्फारित और ऊँचे की प्रकाश प्रत्यावर्तन (Light reflex) किया समर्पित हो जाती है।

—यह सुषुप्ता के केन्द्रों के घात की अवस्था है। इसमें मास-चतुर्थवस्थ स्थिर रहता है जब तक वह शिखिल हो जाती है इस कारण रोगी का मन मुकादि स्वतः ही रुक जाते हैं। नाड़ी की गति तीव्र तथा अड्डार्हीरा (Rapid and immovable)

(advice) एवं रक्त भार अत्यधिक न्यूर हो जाता है, तबचा योगीन तथा धूम्र वर्ण की, स्थिर तथा शुष्क और इवास की गति बन्द हो जाती है। हृदय के विस्फारित समस्या में रक्त जाने से मृत्यु हो जाती है।

संज्ञानाश के उपद्रव तथा उनकी चिकित्सा

(क) संज्ञाहरण औषधि के प्रयोग काल में उत्पन्न उपद्रव :—

(i) श्वासावरोध

(iii) आमा से डुर्खटना  
(iv) आक्षेप

(ii) हृदयगत विकार

(iii) अम्ल विषाक्तता  
(iv) आधमान

(ब) रोगी के चेतनावस्था में आने पर उत्पन्न उपद्रव :

(i) वमन

(ii) कास

(क) संज्ञाहरण औषधि के प्रयोग काल में उत्पन्न उपद्रव :—

(i) श्वासावरोध :—यह अनेक कारणों से हो सकता है जैसे—

[1] उपजिल्हिका के एडन से (Spasm of epiglottis)

[2] जिहा के स्वर यंत्र पर गिरने से (Prolapse of tongue)

[3] भावा पर बाह्य दाढ़ से

[4] मस्तिष्क रक्तालगता या हृदय दौबेल्य से

[5] श्वास वह लोत में फ्लेल्मा के अधिक निलाव के कारण

(ii) हृदयगत विकार :—

[1] ईश्वर के अधिक वाष्प आकस्मिक मुच्छा देने से हृदय में विकल्पन

(Fibrillation) हो सकती है।

[2] संज्ञाहरण औषधि के द्वारा श्वास वह लोत (Respiratory tract)

के उत्तेजित हो जाने पर चागस तंचिका (Vagus nerve) विकल्पन

होकर हृदयावरोध उत्पन्न कर सकती है।

[3] हृदय विकृति में संज्ञानाश से हृदयगत (Cardiac failure) होने की सम्भावना रहती है।

[4] आंकसीजन की कमी से स्तनधाता हो सकती है और उत्तेजना से रक्त भार बढ़कर मस्तिष्क में रक्त भाव हो सकता है।

(iii) आम से उच्चटना :—ईश्वर जैसी तीव्र अग्नि विस्फोट (Highly inflammable) औषधियों के अग्नि के सम्पर्क में आने पर विस्फोट होकर वही पर जल्दी कक्ष में नहीं करना चाहिए।

(iv) आक्षेप :—बच्चों में ज्वर होने पर या रोगी में कोई मस्तिष्क सम्बन्धित व्यक्तियों की मृत्यु हो सकती है। ईश्वर प्रयोग करने समय कोई भी अग्नि का उपचार नहीं करना चाहिए।

(ख) रोगी के चेतनावस्था में आने के पश्चात् उत्पन्न उपद्रव :

(i) वमन :—आमाशय अवरोध, मस्तिष्क सम्बन्धी (केल्वोय) कारणों से

फिर भलोरोफाम संज्ञाहरण औषधि के अधिक प्रयोग से वमन हो सकती है।

(ii) कास :—तीक्ष्ण संज्ञाहरण औषधि के वाष्पों के कारण कास तथा फूफ्फुसों में अधिक निसान होता है।

(iii) अम्ल विषाक्तता (Acidosis) :—संज्ञाहरण के पश्चात् रक्त में अम्लता बढ़कर तीव्र वमन तथा हृदय, वृक्ष यक्षत इत्यादि में बसीय-ब्यप्लन (Fatty degeneration) होकर मृत्यु हो जाती है।

(iv) आधमान :—संज्ञानाश के पश्चात् आन्त्र में शिथलता आ जाने से प्रायः आधमान हो जाता है।

**उपद्रवों की चिकित्सा**—(i) श्वासावरोध होने पर या श्वास की गति रुक जाने पर सर्वप्रथम इसके मूल कारण को दूर करना चाहिए; आंकसीजन देने चाहिए;

तथा श्वासाग्नि उत्तेजक औषधियाँ जैसे—नेकाथेमाइड (Nekathemide), लैप्टाजोल (Leptazol) इत्यादि को सूचीबंध से देना चाहिए। आवश्यकता होने पर कृत्रिम श्वास विधि का प्रयोग करना चाहिए।

(ii) हृदय प्रकम्पन (Cardiac fibrillation) होने पर संज्ञाहरण औषधि का प्रयोग बन्द कर दें, ऑक्सीजन दें, कृत्रिम श्वासविधि से श्वास दें, हृदय का मदन पर इसके लिए विद्युत प्रकम्पहरण यन्त्र (Electric defibrillator) का प्रयोग करें।

(iii) आक्षेप आने पर कुछ भण्डों के लिए कैरोटिड (Carotid) वमनी पर दाढ़ जाने, मुख पर शीतल जल का प्रसेप करें, सिर ऊंचा उठा दें तथा सिरा द्वारा सूची वेध से पैन्टोथल सोडियम (Inj. Pentothal sodium 0.25 gm. I. V.) दें।

(iv) परिसंचरण मिथिलता (Circulatory failure) होने पर संज्ञाहरण औषधि देना बन्द कर दें, आंकसीजन, कृत्रिम श्वास एवं नोरएड्रेनलिन (Inj. noradrenaline in glucose I. V. drip द्वारा) दें तथा रक्तालगत करें या न्यूकोस बोल इन्ज. glucose solution) को सूची वेध यन्त्र द्वारा सिरा में दें।

### संज्ञानाश विधि :

संज्ञाहरण औषधियों प्रायः उड़नशील तरल (Volatile liquids) होती है, इसीलिए इनका प्रयोग श्वासवह संस्थान द्वारा किया जाता है। दैन्दीयत सोडियम (Inj. Pentothal sodium) जैसे बेसल संज्ञाहरण पदार्थ (Bisalalanesthetics) को सिरा में सूक्ष्मता से दें या फिर इसे मताशय द्वारा दें।

उड़नशील संज्ञाहरण औषधियाँ देने की विधियाँ

(i) अनावृत विधि (Open method)

(ii) अद्वृत विधि (Closed method)

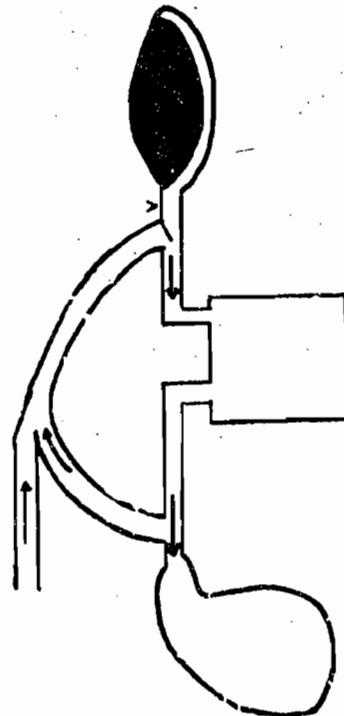
(i) **अनाबृत विधि:**—इस विधि में, रोगी को लिटाकर उसकी औबों को कपड़े से ढक दें। उसके मुख तथा नासिका को एक लोहे की जाली से बने मास्क से ढककर मास्क के ऊपर कपड़ा रख दें। अब उस कपड़े पर बूँद-बूँद करके संज्ञाहरण तरल (जैसे ईथर) को डालें; ईथर नर्खे कि कागड़ा गीला न होने पाए, ईथर उतनी ही मात्रा में डालें जो साथ की साथ सुखता रहे। पहले इस तरल की एक दूँद प्रति प्रशास्त की गर्भ से डालता प्रारम्भ करें (अधिक डालने से तीव्र वाणियों के कारण स्वर्यन्व में दौड़न आ जाती है या रोगी श्वास रोक लेगा है), फिर 5-7 बूँद डालने के पश्चात बूँदों की मात्रा प्रति श्वास बढ़ा देनी चाहिए। रोगी के दूरीयावश्या में पहुँचने पर संज्ञाहरण और श्वास की दूरी की मात्रा को कम कर देना चाहिए। संज्ञाहरण और विधि के बाब्यों की अन्तःश्वसन में सान्दर्भ अधिक लाने के लिए मास्क के बारे और तौलिया लेने (तीनिए से डक दें) तथा और ग्रहि के बल मास्क के ऊपरी भाग में डालें, जहाँ तौलिया नहीं रहता। इसे आणिक अनाबृत विधि (Semi open method) कहते हैं। इस विधि को भी आदर्श विधि नहीं कहा जा सकता क्योंकि इसमें अनेक कमियाँ रह जाती हैं जैसे:—

(क) संज्ञाहरण और विधि का अधिक व्यय।

(ख) संज्ञानाश की अवस्थाओं पर नियन्त्रण का अभाव।

(ग) संज्ञाहरण और विधि के विस्फोट के भय से शात्य कर्म में अधिकर्कम का प्रयोग नहीं किया जा सकता।

(ii) **आबृत विधि:**—इस विधि में एक रबड़ के मास्क से रोगी के मुख तथा नासिका को ढकते हैं (ताकि वाणि वाहर न आ सके), फिर उसे एक नलिका द्वारा गैंत यन्त्र (Gas machine) से जोड़ देते हैं। गैंत यन्त्र के एक रास्ते से संज्ञाहरण और विधि के वाष्प आते हैं तथा हमसरी और से ऑक्सीजन आती है। अंक्सीजन तथा गैंस



रबड़ बैग

(ii) **संज्ञानाश के पूर्वकर्म:**

संज्ञानाश के योग्य तथा अयोग्य व्यक्तियों को जानने के लिये पहले रोगी की भौतिक परीक्षा की जाती है तथा फिर विशेष रूप से आतुरवृत्त पूछा जाता है—  
(i) **भौतिक परीक्षा—** इसमें निम्न परीक्षायें की जाती हैं।  
श्वासवह संस्थान की विशेष परीक्षा में—श्वास, कास, हृदय दौर्बल्यता, रक्त-भार तथा अस्थियों की परीक्षा [गर्दन की अस्थियाँ जकड़ी न हों (Stiff neck)]. करनी चाहिये।

रोगी के हिलते हुए दांत या कुचिम दांत, जब तथा मधुमेह इत्यादि व्यक्तियों के बारे में भी जानकारी प्राप्त करनी चाहिये, क्योंकि इन अवस्थाओं से ग्रस्त रोगियों में संज्ञानाश से अनेक घातक उपद्रव हो सकते हैं।  
(ii) **आतुर बूँद—**रोगी को कार्टिकोस्ट्रायडज (Corticosteroids) लेने का सोबत या रोगी को किसी औषधि की मूँझम ग्राहिता (Sensitivity) के बारे में तथा अपमार या अन्य प्रकार के बेंगों (Fits) का दृत भी पूछना चाहिये। इससे रोगी के संज्ञानाश के योग्य या अयोग्य होने का पता छल जाता है। इस परीक्षा से यदि रोगी संज्ञानाशक के अयोग्य सिद्ध होता है तो पहले उस रोगी को संज्ञानाश के योग्य ताता चाहिये, अन्यथा रोगी को संज्ञानाश देते समय मृत्यु हो सकती है।

### पूर्वं औषध प्रयोग (Premedication) :

पूर्वं औषधियों का प्रयोग संज्ञानात्मा के सम्भावित उपद्रवों को रोकने के लिए किया जाता है जैसे—

(i) घबराहट (भय) हुर करने के लिये।

(ii) ख्वासवह लोतों के निःशाव कम करने के लिये।

(iii) प्रत्यावर्तन कियायें (Reflex actions) कम करने के लिये।

(iv) मधुमेह के रोगियों में संज्ञानात्मा से रक्त में ग्लूकोस की कमी (Hypoglycaemia) हो सकती है, इसलिये इसकी व्यवस्था (control) पहले से ही बनार लेनी चाहिये।

(v) गल प्राणिय कियाधिक्य (Hyperthyroidism) के रोगियों में संज्ञानात्मा से ख्यापचय (Metabolism) की किया में बढ़ि होने से आंकड़ों जीन की संज्ञानात्मा अवस्था में आक्षेप आते की संभावना कम हो जाती है। इनकी मात्रा हो सकती है, इसकी व्यवस्था भी पहले से ही कर लेनी चाहिये।

**ओषधियाँ**—उपरोक्त उपद्रवों के लिये प्रायः निम्न औषधियों का प्रयोग किया जाता है।

(1) बेदनाशामक—मारफीन एवं पैथाडीन (Morphine and Pethidine)

(2) निराकारी एवं शामक (Hypnotics and sedatives)—बाराबिचुरेट्स, (Barbiturates as Soneril and Siquil) और फिनोथायाजीन (Phenothiazine derivatives, like Largactil)।

(3) पराजुकमी सलायी (Parasympatholytic)—एट्रोपीन एवं हेपोसीन (Atropine and Hyocine) जैसी ओषधियाँ।

(1) बेदनाशामक—

(i) मार्फीन (Morphine hydrochloride)—यह तीव्र बेदनाहर, आशक (Apprehension) नाशक तथा संज्ञाहरण ओषधिय की मात्रा कम करने में सहायता हीती है, परन्तु यह ख्वास केन्द्र को अवसादित करती है एवं आत्म की गति को बढ़ाती है। इसके प्रयोग से धमन होने की मम्भात्वा रहती है और यह मिचली अथवा उत्स्वेष (Nausea) उत्पन्न करती है।

युवा व्यक्ति में इसकी मात्रा सूचीवेध से  $1/5$  से  $1/4$  में (10 से 15 mg) बच्चों में 0.1 mg प्रति किलोग्राम वजन के अनुसार इसे अधः त्वं-सूचीवेध हाल करने से 1 से 1½ घण्टा पूर्व है देना चाहिये।

(ii) पेथाडीन (Pethidine hydrochloride)—यह मार्फीन से कम होने तथा पराजुकमी सलायी (Parasympatholytic) कियाकारक औषध।

यास केन्द्र को बढ़ात कम अवसादित करती है। आत्म की गति को भी बढ़ात भी कम करती है। यह ख्वासवह लोतों के सावों को तथा उनको प्रत्यावर्तन कियाओं की तीव्र करती है, जिस कारण यह इनकी मात्रा की कम करने में समर्थ नाश—100 मिंग्रा० (1½ ग्र०) दूची द्वारा मांसतेशी में प्रधान कम से 1 से बढ़ने पूर्व देनी चाहिये।

### निराकारी एवं शामक औषधियाँ (Hypnotics and Sedatives)

(i) बाराबिचुरेट्स (Barbiturates)—इनका प्रयोग उत्सेजित तथा अग्रांति (Irritant and apprehensive) व्यक्तियों में किया जाता है। इनके प्रयोग संज्ञानात्मा अवस्था में आक्षेप आते की संभावना कम हो जाती है। इनकी मात्रा या किया अवधि पर विषेष ध्यान देना चाहिये जैसे—(Intermediate barbiturates, as amobarbital or butabarbital should be given in a dose of 1½ to 3 grains orally, one night before operation. But short acting barbiturates, as Quinal barbital or pento-barbital could be given in the dose of 3 grains orally, 2 to 3 hours before operation, and in children the dose should be 2 mg/Kg of body weight).

(ii) फिनोथाइजीन (Phenothiazine)—इसके अन्तर्गत फिनोरप्रोमाजीन फ्रोमियाजीन (Chlorpromazine hydrochloride as Largactil or promethazine hydrochloride as Phenergan) आते हैं। यह चार्किशाती तादक ओषधियाँ हैं। इनके प्रयोग से संज्ञानात्मा में मुरामता आ जाती है तथा उत्पन्न ओषधि की मात्रा का भी कम प्रयोग होता है। इसके प्रयोग में रक्त थोड़ा कम हो सकता है एवं उत्स्वेष तथा बनमादि उपद्रव भी नहीं होते। इस कम से 1½ घण्टा दूर्वे, 25 से 50 मिंग्रा० (ग्रा०) की मात्रा में पेगो गन मुचीवेध से जाता है।

पराजुकमी सलायी (Parasympatholytic) ओषधियाँ—

हेलोयेन एवं नाइट्रल ऑक्साइड (Halothane and N<sub>2</sub>O) को छोड़कर तब संज्ञाहरण पदार्थ ख्वासवह लोतों को बढ़ाते हैं, जिसके उत्पन्न उत्पन्न हो सकते हैं। इसलिये इन लोतों को कम करने के लिये उक्सी मात्री (Parasympatholytic) ओषधियों का प्रयोग किया जाता है,

(i) एट्रोपीन (Atropine sulphate)—यह गारीर गत ख्वास नियन्त्रण करती है, ख्वास केन्द्र को बोझा उत्स्वेष करती है। स्वर यन्त्र तथा उदास

प्रणाली में एंठन (Spasm) नहाँ होने देती । यह स्वेद, वसन्त तथा उत्क्षेप करती है, परन्तु तापमान को बढ़ा देती है । इससे हृदय की अनियमितता (Arrhythmia) कम होती है तथा यह औब के तारा मण्डल (pupil) को विस्फारित होती है । इसको 0.6 mg (1/100 gr.) की मात्रा में पेशीगत सूचीवेद्ध द्वारा कम के 1—1½ घन्टा पूर्व देना चाहिये ।

(ii) ह्योस्कोलिन (Hyocine scopolamin)—यह एटोपीन की अनेकांत तथा आशंका को निवृत्त करते में अधिक सर्वेष्ट है । इससे थोड़ी निद्रा आती है । इसके अन्य कर्म एटोपीन (Atropine) के सदृश होते हैं परन्तु प्रभाव में उससे कम होते हैं । इसे 0.4 मि० ग्रा० (1/150 ग्र०) की मात्रा में अधः त्वक् में द्वारा दिया जाता है ।

### संशाहरण अधिकारी (Anaesthetics)—

सार्वदैहिक संज्ञाहरण के लिये निम्न संज्ञाहरण औषधियाँ मुख्य रूप से प्रामाणी जाती हैं—

#### (i) छलोरोफार्म (Chloroform).—

इसका प्रयोग कुछ बर्बं पूर्व बहुत अधिक हुआ करता था, परन्तु आज इसका प्रयोग इससे उत्पन्न विषाक्त प्रभावों के कारण पूर्णतः बन्द हो गया है । इससे रोगी 1 से 5 मिनट में चेतनाहीन हो जाता है । यह ताप नियन्त्रण को अवसादित करने के कारण तापमान को कम कर देती है तथा वेगस (Vagus) को उत्तेजित करने के कारण हृदय की गति को कम कर देती है । यह रक्त को कम करती है, श्वास केन्द्र को व्यवसादित करती है, यकृत किया को कम करती है, श्वासवह खोलों के निक्षाव बढ़ाती है तथा दृक्कों के रक्त संचार को कम करती है,

#### (ii) इथर (Ether or anaesthetic ether).—

यह उड़नशील तथा तीव्र अग्नि विस्फोटक द्रव है, इसलिये इसे हमेशा तथा अन्धेरे कमरे में रखना चाहिये । यह जीवाणु नाशक तथा संजाहित करने में भी समर्प है । इसमें प्रेरणा (Induction) तो देर से होती है, पूरुष अधार कम होते हैं । यह मांसपेशियों को शिथिन (Relax) करती है, आगे तिक्का तथा नहीं बढ़ते, नाड़ी की गति तीव्र हो जाती है, रक्तभार बढ़ जाता है, गति तथा निक्षावों को कम करती है, श्वास केन्द्र को थोड़ा अवसादित करती है, दृक्कों में रक्त संचार कम करती है तथा श्वासवह खोलों में स्नावाधिनय करती है, इसका हृदय पर कोई सोधा दुरा प्रभाव नहीं होता । संजानाश की हुनीपावस्तु इसके कारण गम्भिय की क्रिया कम हो जाती है । इसके प्रयोग से यकृत का लहास हो जाता है तथा रक्त में ग्लूकोस का स्तर (Level) बढ़ जाता है ।

#### (iii) हथार्फल अल्लोराइड (EthyI-chloride).—

यह क्रुवार (Spray) के रूप में प्रयोग होता है । इससे प्रेरण (Induction) अधिक होती है से 2 मिनट में हो जाता है तथा इसका प्रयोग बाहर करने पर रोगी लाग्वस्था (होश) में भी 2 से 5 मिनट में आ जाता है । इसमें सुरक्षा सीमा Safety margin) कम होती है तथा यह हृदय की मांसपेशी को अवसादित करती है हृदय पेशी को एड्नेलिन (Adrenalin) के प्रति सूक्ष्मग्राही (Sensitive) देती है, जिसके कारण प्रकम्भन (Fibrillation) तथा हृदयावरोध (Cardiac arrest) उत्पन्न हो जाता है । इसके द्वारा वेगस (Vagus) के उत्तर जित होने से यह गति कम हो जाती है । इससे परिसरीय रक्तवाहिनियों का विस्फार (Peripheral vasodilatation) होकर रक्तभार कम हो जाता है, इसलिये इसे केवल गति (Induction) के लिये ही प्रयोग करते हैं तथा इसके पश्चात् रोगी को इथर प्रारम्भ कर देते हैं ।

#### (iv) हैलोथेन (Halothane).—

यह भी एक प्रभावकारी द्रव ओषधि है, परन्तु यह हृदय की गति को कम करती है एवं बाहिनियों को विस्फारित करके रक्तभार को कम कर देती है । यह को एड्नेलिन (Adrenalin) के प्रति सूक्ष्म ग्राही (Sensitive) कर देती है, जिसके लिये स्तरध्वता की अवस्था में, प्रभाव तथा हृदय के विकारों में इसे प्रयोग नहीं जाहाजिये । यह अत्यधिक मूल्यवान् (Costly) होती है तथा रबर और धातुओं गति (Induction) के लिये ही प्रयोग करते हैं तथा इसके पश्चात् रोगी को इथर

#### (v) नाइट्रस ऑक्साइड ( $N_2O$ ).—

यह रेस अमोनियम नाइट्रेट (Ammonium nitrate) की गर्मी करने से बनती है इसे लाफिंग गैस (Laughing gas) भी कहते हैं । इससे प्रेरण (Induction) देती है अर्थात् 1 से 2 मिनट में हो जाता है । इससे कोई उत्पादक उत्पादन करने वाला नहीं होता । इसमें यांद पहले से मार्फिन (Morphine) न दिया गया तो रोगी द्वितीयावस्था में थोड़ा उत्तर जित हो सकता है । यदि इसका प्रयोग बन्द करने वाला ही प्रयोग किया जाए तो रोगी ने मिनट में ही चेतनाहीन हो जाता है । इससे हाईपोक्सिया (Hypoxia) अथात् आचसीजन की कमी हो सकती है । निक्षाव नहीं बढ़ते, नाड़ी की गति तीव्र हो जाती है, रक्तभार बढ़ जाता है, गति तथा निक्षाव को कम करती है, श्वास केन्द्र को थोड़ा अवसादित करती है, दृक्कों में रक्त संचार कम करती है तथा श्वासवह खोलों में स्नावाधिनय करती है, इसका हृदय पर कोई सोधा दुरा प्रभाव नहीं होता । संजानाश की हुनीपावस्तु इसके कारण गम्भिय की क्रिया कम हो जाती है । इसके प्रयोग से यकृत का लहास हो जाता है तथा रक्त में ग्लूकोस का स्तर (Level) बढ़ जाता है ।

### सिरा सूचीबेध द्वारा संज्ञानशास्त्र (Intravenous anaesthesia) :-

थायोपेटोन सोडियम (Thiopentone sodium) इसे 1½ से 8 मेंन या 0.1 से 0.5 भास की मात्रा में सिरगत सूचीबेध से दिया जाता है। इससे उत्तर संज्ञानशास्त्र हो जाती है। इसमें पूर्ण औषधि-प्रयोग में मार्फेन तथा विषाहोन (Morphine and pethidine) को देना चाहिये। इसका प्रभाव बहुत कम समय के लिए (15 मिनट से भी कम) रहता है। यह एवासकेन्ड को अवसानित, हृदय की गति तीव्र तथा रक्तभार को कम करती है। इसका हृदय पर वर्किंग प्रभाव नहीं पड़ता। इससे उद्वर की ऐशिया शिथिल (Relax) नहीं हो पाती। यह औषधि मायः आव्याप्ति (Convulsions) के विकितसार्थी भी प्रयोग की जाती है, परन्तु इसे निम्न अवस्था में प्रयोग नहीं करना चाहिये—

#### (1) छोटे बच्चों में,

(2) संक्रमण होने पर,

(3) स्तनधन्ता में,

(4) हृदयगत व्याधियों में,

#### ईथर और क्लोरोफार्म (Ether and chloroform) में भेद :

#### ईथर

(1) इसकी किया मरणगति से होती है।

(2) संज्ञानशास्त्र, इसे अधिक मात्रा में प्रयोग करने से होता है।

(3) इनकी गत्थ को रोगी पसन्द नहीं करता (Disagreeable)।

(4) यह अग्नि विस्फोटक है।

(5) प्रलापावस्था दर्द तक बनी रहती है।

(5) प्रलापावस्था दर्द तक बनी समय के लिए रहती है।

#### इथर

#### क्लोरोफार्म

(6) मांसपेशी शिथिलता देर में आ जाती है।

(7) इससे यकृत तथा दूषक पर कोई दुष्कर प्रभाव नहीं होते।

(8) हृदय, ख्वास तथा धमनी-विस्फारण केन्द्र देर से प्रभावित होते हैं।

(9) हृदय ख्वासवह संस्थान के ऊपरने से इवासवह संस्थान में अधिक उपद्रव उत्पन्न होते हैं।

(10) रोगी को संज्ञानशास्त्र के प्रभाव ने तेतना अवस्था में अन्त में देर लगाती है।

(9) ख्वासवह संस्थान के ऊपर दब बहुत कम होते हैं।

(10) रोगी शोष ही चेतना-वस्था में आ जाता है।

(1) रोगी को संज्ञानशास्त्र के प्रभाव ने तेतना अवस्था में अन्त में देर लगाती है।

(2) संज्ञानशास्त्र को संज्ञानशास्त्र में प्रयोग करने से हो जाता है।

(3) इसकी गत्थ रोगी अप्रिय नहीं होती (Not disagreeable)।

(4) यह अग्नि विस्फोटक है।

(5) प्रलापावस्था दर्द तक बनी समय के लिए रहती है।

#### पेशी शिथिलन औषधियाँ (Muscle relaxants) :-

सावंदैहिक संज्ञानशास्त्र होने पर उद्वर की ऐशिया पूर्ण रूप से शिथिल नहीं होती। उन्हें शिथिल करने के लिये संज्ञानशास्त्र को अधिक गम्भीर (Deep) अवस्था में पहुंचना पड़ता है, इस कारण संज्ञानशास्त्र औषधियों के विषाक्त प्रभाव होने का भय जना रहता है। इनके दुष्कर प्रभावों से बचने के लिये (तथा साथ में मांसपेशी में शिथिलता भी आ जाये, इसके लिये) रोगी को संज्ञानशास्त्र की उपरिअवस्था (Light anaesthesia) में रखा जाता है तथा साथ में परिसरीय कियाकारी मेशी-शिथिलन औषधियों (Peripherally acting muscle relaxants) का प्रयोग किया जाता है, ये औषधियों निम्न हैं—

(i) ट्यूबोकुरारीन क्लोरोइड (Tubocurarine chloride or d-tubo-curarine chloride) :-

इसे सिरा सूचीबेध द्वारा शीघ्रता से देने पर हिस्टामिन जैसी किया (Histamine like action) होती है। इससे रक्तभार घिर जाता है एवं ऐल्ज़िक ऐशियों

(Voluntary muscles) में शात (Paralysis) हो जाता है। इस कारण श्वास किया बन्द हो जाया करती है। यह प्राणद तनिका की क्रियावरोध (Vagus block) करके हृदय गति को तथा श्वासह स्थान के निःखारों को अतिरिक्त बढ़ा देती है। इसे अधिक मात्रा में देने से आक्षेप (Convulsions) आने लगते हैं। इनका प्रभाव घन्टे तक बना रहता है। मात्रा—10 से 15 मि० ग्राम स्त्रिरागत सूचीवेध से 1 नियोस्टिग्मिन (Neostigmine 5 mg) या एट्रोपीन (Atropine 0.5 mg) को स्त्रिरागत सूचीवेध से देने पर यह डी-द्यूबोकुरारीन की क्रिया को तुरत समाप्त करके पेशियों को सामान्यावस्था में ले आती है।

### (ii) गोलेमीन ट्राईइथियोडोडाइड (Gallamine triethiodide i.e. Flaxedil) :—

यह ट्यूबोरीन के सदृश होती है; परन्तु इसका प्रभाव केवल 20 मिनट तक रहता है। इसकी क्रिया हिस्टामिन के सदृश नहीं होती, इसलिए इससे रक्तभार कम नहीं होता। यह प्राणद तनिका (Vagus nerve) का रोध (Block) कर देती है, जिससे हृदय की गति बढ़ जाती है। इससे श्वास प्रणालियों में ऐन्न (Spasm) नहीं आती, परन्तु लाल लाल अधिक होते लगता है।

### (iii) सक्सामिथोनियम ब्लोरोडाइड (Suxamethonium chloride i.e. succinyl chloride) :—

इसके प्रयोग से लालास्त्राव अधिक मात्रा में होने लगता है, परन्तु इसका हृदय तथा रक्तवह स्थान पर कोई दुष्कर प्रभाव नहीं होता। पेन्टोथल (Pentothal Sodium) से उत्तर स्फुरण (Twitching) प्रभाव को समाप्त करने के लिये तथा अन्तश्वास-नलिका-नाड़ीयन्त्र (Endotracheal tube) ढालते समय इस औषध का प्रयोग किया जाता है। इसका प्रभाव केवल 5—6 मिनट तक रहता है। इसके प्रभाव को देर तक रखने के लिये इसे 0.2 से 0.4% तक ग्लूकोस के 4% शॉल में डालकर स्त्रिरागत सूचीवेध से सतत दंड-बूँद के स्प से देना चाहिये।

## II स्थानीय संज्ञानाश (Local anaesthesia) :—

स्थानीय संज्ञानाश की विशिष्ट क्रियाविधि (Specific mechanism of action) का पूर्णतः ज्ञान तो नहीं हो पाया है, परन्तु ऐसा माना जाता है कि संज्ञानाश औषध का प्रयोग तनिका अर्थात् शातवह नाड़ी (Nerve) पर होने से उसके कोशिका द्रव (Cytoplasm) में परिवर्तनीय सूक्ष्म स्कर्बन (Reversible micro-

coagulation) हो जाता है। इससे शात नाड़ी (तनिका) में बेगों का बहन तानिका (Mixed nerves) में सर्वप्रथम संवेदनात्मक (Sensory fibres) प्रभावित होते हैं तथा उसके पश्चात् चेलावह तन्तु (Motor fibres) प्रभावित होते हैं। संवेदनावह या संज्ञावह तनिका (Sensory nerve) में पहले वेदना का अभाव होता है, फिर तापमान का अभाव तथा उसके पश्चात् स्पर्श ज्ञान का एवं अन्त में दाढ़ (Pressure) ज्ञान का और संक्षियों की संवेदना ज्ञान का अभाव होता है।

मेव :

### (1) तरीय संज्ञानाश (Surface anaesthesia)

- (1) सचरण संज्ञानाश (Infiltration anaesthesia)
- (2) अन्तः सचरण संज्ञानाश (Regional anaesthesia)
- (3) प्रादेशीय (क्षेत्रीय) संज्ञानाश (Spinal anaesthesia)
- (4) भृत संज्ञानाश (Spinal anaesthesia)

### (1) तरीय संज्ञानाश (Surface anaesthesia) :—

संज्ञाहरण औषध की जब घृष्ट त्वचा तथा श्लेष्मकरा (Mucous membrane) पर लगाया जाता है तो यह तनिकाओं के अन्तम प्रातंती (Nerve endings) को प्रभावित करके तलीय संज्ञानाश उत्पन्न करती है। इसे ब्रणों की वेदना शमनार्थ प्रयोग किया जाता है। इसके अधिक प्रयोग से ब्रणों में रोपण कर्म गुचाह रूप से नहीं हो पाता। इसका प्रयोग गला, नाक, कान, गुदा, योनि तथा श्लेष्मकरा के संज्ञानाश के लिए किया जाता है।

### भौषणियाः :—

(i) कोकेन (Cocaine)—इसका 5 से 10 प्रतिशत शोल, 5 से 10 मिनट तक घृष्ट त्वचा पर लगा रहने से 20 से 30 मिनट के लिए संज्ञानाश हो जाता है। ऑख के लिए 4 प्रतिशत शोल का प्रयोग करने और गले के छोटे-छोटे अद्वृद्धा गल गति गिरकर (Tonsils) के शाल्य क्षमा के लिए 10 से 20 प्रतिशत शोल का प्रयोग करने। इसके इकार विषाक्त प्रभाव होने से इसे सूक्ष्मीवेध द्वारा नहीं दूषित किया जाता।

(ii) बेनोक्सिनेट (Benoxydine Hydrochloride or Dorsocaine hydrochloride)—इसे 0.4 प्रतिशत शोल के रूप में ऑख के छोटे-छोटे शाल्य क्षमा के लिए (जैसे टोनोमीटर में) प्रयुक्त करते हैं। इसका प्रभाव बहुत कम समय के लिए रहता है तथा यह तीक्ष्ण (Irritant) भी नहीं होती।

(iii) प्रोपराकैन ट्राईइथियोडाइड (Proparacaine hydrochloride

१ घन्टे तक बोला रहता है। इसे उबाला भी जा सकता है।

**syn. Ophthaine**)—इसकी क्रिया शोध प्रारम्भ होकर शोध ही समाप्त हो जाती है, इसे ०.५ प्रतिशत घोल के रूप में और्थ के टोनोमीटरी (Tonometry, chlazian etc.) जैसे छोटे-छोटे शल्य कर्मों में प्रयोग करते हैं।

(iv) एमेथोकेन हाइड्रोक्लोराइड (Amethocaine hydrochloride, Ametnaine, Pentocaine) :—इसे ०.५ से १ प्रतिशत घोल के रूप में नेच, गला, कान तथा मूत्रमार्ग के लघु शल्य कर्मों में प्रयोग करते हैं।

(v) सिंचोकेन च्लोरोहाइड (Cinchocaine chloride)—Nupercaine or Dibucaine) :—इसे १ से २ प्रतिशत घोल के रूप में मूत्रमार्ग के लघु शल्य कर्मों (Catheterization, cystoscope etc.) के लिए प्रयोग करते हैं।

(2) अन्तः संचरण संज्ञानात्मा (Infiltration anaesthesia) :—

संज्ञानाश औषधियों के लवण जल को सूचीबेध द्वारा अधः त्वचा (Sub cutaneous) में संचरण (Infiltration) करते हैं। पहले बेघ स्थान को इन्फ्रट से गृद्ध करके संज्ञाहरण औषधि के द्वारा वहाँ पर छोटे विस्फोट अर्थात् चक्कर (wheel) उत्पन्न करता होने पर इसका गम्भीर अन्तियों (Deep tissue) में भी सूचीबेध द्वारा आवश्यकता होने पर इसका गम्भीर अन्तियों (Deep tissue) में भी सूचीबेध द्वारा संचरण करना चाहिए।

### ओषधियाँ :—

(i) प्रोकेन (Procaine)—इसे ०.५ से २ प्रतिशत घोल के रूप में (अधिक से अधिक १ ग्राम तक) दिया जाता है। इससे केशियाँ विस्फारित हो जाती हैं। इसमें १ : ५०,००० ऐड्रेनेलिन (Adrenaline) मिला जेने से कोशिकाओं में संकुचित होता है। इसके साथ में अन्तः संचरण संज्ञानात्मा (Infiltration anaesthesia) भी किया जाता है। इन दोनों के मिलने को प्रादेशीय संज्ञानाश कहते हैं। इससे संबद्धता के बेगों (Impulses) का संचारण रुक जाता है। इसे मेल नाड़ियों या (मेल तनिकाओं) की कशे रुक्काओं के रन्धों (Vertebral formen) में सूची द्वारा दिया जाता है जैसे—  
कुक्की जालिका (Coelic plexus) के पास ५% प्रोकेन को ऐड्रेनेलिन के साथ देने से, दोनों (Lessor and greater) कुक्कीय तनिकाओं में संज्ञानाश होने पर आमाशय के शल्य कर्म संकुचित होते हैं, परन्तु पहले उदर की त्वचा में अन्तः संचरण संज्ञानात्मा (Infiltration anaesthesia) कर लेना चाहिए। इन दोनों प्रकार के संज्ञानाश के लिए अन्तः संचरण संज्ञानात्मा (Infiltration anaesthesia) में प्रयोग किये जाने वाली औषधियों का ही प्रयोग होता है।

### (4) मेल संज्ञानात्मा (Spinal anaesthesia) :

इसमें उत्तरोक्त स्थानीय संज्ञाहरण औषधियों को सूचीबेध-से सुइन्झान (Spinal cord) तक पहुँचाया जाता है। इन औषधियों से प्रभावित तनिकाओं (Nerves) में बेगों (Impulse) का संचारण होना बन्द हो जाता है। औषधि कम मात्रा में देने से केवल संवेदना बेग (Sensory impulses) नष्ट होते हैं। इसे अधिक मात्रा में देने से बेघ एवं अनिच्छा (Motor and autonomic) बेग भी बन्द हो जाते हैं। संज्ञाहरण औषधियों द्वारा शोषित होकर यकृत में पहुँचती है, जहाँ पर उनका चयाप-चय (Metabolism) होता है। इसके पश्चात वह गरीर से बाहर निकल जाती है। घोल का प्रभाव में कोई अन्तर नहीं आता।

(ii) सिंचोकेन (Cinchocaine—Nupercaine)—यह सर्वाधिक प्रभाव कारी औषधि है तथा इसके विषाक्त प्रभाव भी अधिक होते हैं। इसमें 1 : 100,००० ऐड्रेनेलिन (Adrenaline) मिलाकर इसे ०.०५ से ०.१ प्रतिशत घोल के रूप में प्रयोग किया जाता है।

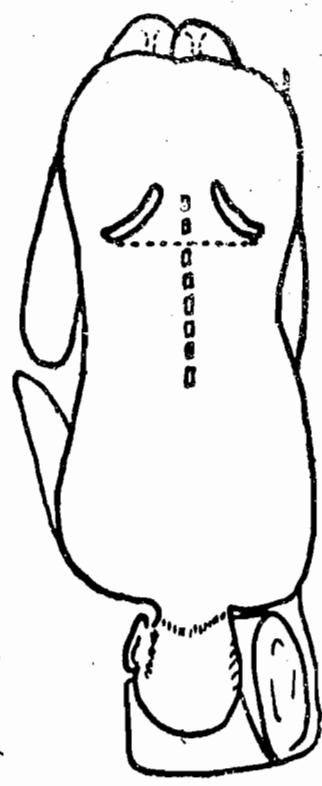
(iii) लिनोकेन (Lignoocaine or Xylocaine)—यह प्रोकेन से द्विगुणी प्रभावकारी औषधि है तथा इसमें विषाक्त प्रभाव भी अधिक होते हैं। इसका प्रभा-

(iv) बेंजिल एल्कोहॉल (Benzyl alcohol) :—इसे १ से ३ प्रतिशत घोल के रूप में प्रयोग करें। दात में पीड़ा होने पर इसे दांत की गुहा (Cavity) में डाल दें।

### (3) प्रावेशीय संज्ञानात्मा (Regional anaesthesia)

इसमें संज्ञाहरण औषधियों को निश्चित स्थान (जहाँ का संज्ञानाश करना हो) की ओर आते वाली तनिका अर्थात् बातवह नाड़ी के समोप एवं उसके अन्दर सूची-बेघ द्वारा पहचाया जाता है। इसे कन्डक्शन (Conduction) संज्ञानाश कहते हैं। इसके साथ में अन्तः संचरण संज्ञानात्मा (Infiltration anaesthesia) भी किया जाता है। इन दोनों के मिलने को प्रादेशीय संज्ञानाश कहते हैं। इससे संबद्धता के बेगों (Impulses) का संचारण रुक जाता है। इसे मेल नाड़ियों या (मेल तनिकाओं) की कशे रुक्काओं के रन्धों (Vertebral formen) में सूची द्वारा दिया जाता है जैसे—  
कुक्की जालिका (Coelic plexus) के पास ५% प्रोकेन को ऐड्रेनेलिन के साथ देने से, दोनों (Lessor and greater) कुक्कीय तनिकाओं में संज्ञानाश होने पर आमाशय के शल्य कर्म संकुचित होते हैं, परन्तु पहले उदर की त्वचा में अन्तः संचरण संज्ञानात्मा (Infiltration anaesthesia) कर लेना चाहिए। इन दोनों प्रकार के संज्ञानाश के लिए अन्तः संचरण संज्ञानात्मा (Infiltration anaesthesia) में प्रयोग किये जाने वाली औषधियों का ही प्रयोग होता है।

needle) द्वारा पृथक् विधि (Aseptic technique) से (पहले किसी मोटी



रेखाचित्र नू० 10

कठिवेध के लिए आवश्यक

सूची द्वारा त्वचा का बेध करें) कठिवेध-सूची को ठीक शारीर की मध्य रेखा में रखते



चित्र नू० 11

कठिवेध सूची

हुए, (त्वचा में किम्ये गये छंद से ले जाते हुए) उसे 80 हिस्पी के काण पर (शिर की कीम्य स्टाय (Spinus ligament) एवं स्नायु-फलेवम (Ligamentum flavum) का बेध करके अधः वेध करें। फिर दृढ़तानका अथवा ड्यूरामेटर (Duramater) का बेध करके अधः ए-रेक्नायइड (Sub-arachnoid) अवकाश (Space) में सूची को पहुँचायें [सूची के इस अवकाश में पहुँचते ही सूची से अवरोध (Resistance) तुरन्त कम हो जाता है]। फिर सूची की अन्तः शताका (Stilet) को निकालकर देखें, उसमें से प्रमास्टाइ-मेरुद्व (Cerebro spinal fluid) निकलना चाहिए, अन्यथा उसे थोड़ा-सा घुमाकर तथा तनिक सा बाहर निकाल लें तथा फिर से उसी सन्धि में थोड़ी दिशा (कोण) बदलकर पुनः बेघ करें या उससे ऊपर की कठिवेधका सन्धि में बेघ करें। जब मास्टाइक मेरुद्व (C. S. F.) आ जाये तो सूची को उसी स्थान में अच्छी तरह हाथ में स्थिर करें एवं सज्जाहरण औषधि को उसके द्वारा मेरु गुहा में पहुँचा देना चाहिए। सूची को निकाल-कर तुरन्त रोगी को सीधा या उसकी पीठ के बल आवश्यकतातुरार मोड़कर 5 मिनट तक उसी स्थिति में रखें (ध्यान रहे कि रोगी का चिर त्वयें द्वारा शरीर से ऊँचा उठा रहे, अन्यथा स्तिर के नीचे होने पर औषधि शिर की ओर जाकर श्वास पेशियों

का थात करके श्वास की गति बन्द कर देती है)। इससे औषधि बाल्यनीय स्थान पर स्थिर (Fix) हो जाती है। गुदा के शाल्य कर्मों के लिए रोगी को टेबल पर टार्गेनीचे लटकाकर 5 मिनट के लिये बैठकर औषधि को स्थिर होने दें। अन्य स्थानों के शाल्य कर्मों के लिये तदनुसार ही रोगी को विशेष स्थिति में लेतार्वे तथा उसे उसी स्थिति में 5 से 10 मिनट तक लेटार्वे रखें, ताकि औषधि उसी स्थान में स्थिर (Fix) हो जाए।

#### औषधियाँ—

प्रोकैन (Procaine 5-10 प्रतिशत)

सिञ्चोकेन (Cinchocaine 0.5% in dextrose)

लिग्नोकेन या एमिथोकेन (Lignocaine or Amethocaine 1% solution) उपचार—(1) एपिड्युरल (Epidural) रक्त वाहिनियों के बिन्दु हो जाने से अन्तः रक्त खाल हो सकता है।

(ii) कठिवेधकों की चकिकाओं में सूची से आघात होने पर रक्तिका की अग्नि (Prolapse) हो सकती है।  
(iii) प्रमास्टाइक मेरुद्व (C. S. F.) अधिक निकल जाने से तीव्र शिरः शूल उत्पन्न हो जाता है।

(iv) निर्जीवाणकरण विधि का ठीक से पालन न करने के कारणः संक्रमण होकर मस्तिष्काबरण शोथ हो जाती है।  
(v) तनिकाओं (बातवह नाड़ियों) में आघात होने से आन्तरायत (Paraplegia) के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।  
(vi) संज्ञानाश से प्रभावित प्रदेश की रक्तवाहिनियों के प्रसारित होने के कारण शरीर का रक्तधार गिर जाता है, इससे स्तब्धता उत्पन्न हो सकती है। इसके लिए रोगी को तुरन्त मैफन्टीन (Inj. mephentine) का सूचीबेध अन्तः तिरा में दें और फिर तिरागत सूचीबेध द्वारा गुकोस का धोल देते रहें।

(vii) औषधि के उच्चस्तर (High level) तक चले जाने से श्वास की पेशियों का थात होकर श्वास गति बन्द हो जाती है, इसलिए रोगी को कृत्रिम श्वास विधि से श्वास तथा ऑपसीजन तंब तक देते रहें जब तक कि औषधि का प्रभाव समाप्त न हो जाये।  
स्थानीय संज्ञाहरण औषधियों के सामान्य उपचार—(i) इन औषधियों को अधिक मात्रा में प्रयोग करने से सर्वप्रथम केन्द्रीय तनिका संस्थान (Central nervous system) उत्तेजित होता है। इससे उत्तेजना (Excitement), बैचीनी, कम्पन (Tremors), श्वास गम्भीर तथा गति में तीव्र, आक्षेप (Convulsions), नाड़ी की

परित में शिथितता (weak pulse), तारामण्डल विस्फारित (Dilated pupil), अचेतना (Unconsciousness) तथा ज्वास गति लक्ष-लक्षकर चलने लगती है और अन्त में मरत हो जाती है।

- (ii) यह हृदयपेशी (Myocardium) को अवसादित (Depress) करती है।
- (iii) इससे परिसरीय चाहिनिया (Peripheral vessels) प्रसारित हो जाती है जिस कारण रक्त भार गिर जाता है तथा हृदयगति भी जन्द हो सकती है।
- (iv) कुछ लोगों को प्रति ज्ञान प्रतिक्रिया (Allergic reaction) से विचरित्वका (Eczema), तमक ज्वास (Asthma) एवं तीखे चाहिका स्त्रवधता (Anaphylactic shock) इत्यादि के लक्षण उत्पन्न होने लगते हैं।
- (v) यदि इष्टंठानावासा इस औषधि का सिरा में सूचिवेध हो जाये तो इससे केव्रीय तनिका संस्थान (C. N. S.) गहसा उत्तेजित हो जाता है, इससे आसेप (Convulsions) आने लगते हैं। आसेप आने पर तुरत ज्वास द्वारा वैन्ट्रोथल सोडियम (Pentothal sodium) दे, आक्सीजन तथा क्रियम ज्वास विधि से ज्वास दे तथा रक्त परिश्रमण के शिथिल होने पर मैफेन्टीन (Mephentine) जैसी औषधियों का प्रयोग करें।

## 19 निजीवाणुकरण

शल्यकर्म सम्बन्धित उपकरणों एवं व्याप्र चिकित्सा सम्बन्धित वर्ध इत्यादि को जीवाणुरहित करने को निजीवाणुकरण (Sterilization) कहते हैं। वाम्बटु ने विकेशिका, पट्टादि व्याप्र बन्धन उपकरणों को धूपन कर्म (Fumigation) द्वारा शुद्ध करने के लिये कहा है जैसे—

“गुच्छ वल्क्मा दृढ़ा: कवला: सविकेशिका धूतिः”

मुझुत ने भी मांस भस्ती तथा अगरादि धूपन द्रव्यों के धूम (Fumes) से बचने के लिए शुद्ध करने के लिये कहा है। मुझुत ने जीवाणुओं को अनेक प्रकार के अपेसारिक रोगों को उत्पन्न करने वाला कहा है। यह जीवाणु सह भोजन (Eating together in a common pot) से, निःश्वास (Inhalation) से, गात्रस्पर्श (Physical contact) से तथा वस्त्र या माला इत्यादि के द्वारा एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को संक्रमित करते हैं जैसे—

प्रसारक् गात्रस्त्रयशरणिः व्याप्तात् सहस्रोजनात् ।  
सहस्रायासनात्त्वान्ति वस्त्रमाल्यात्त्वेष्वनात् ॥

कुर्ढं ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभ्यासन एव च :

ओपसारिकरोगाद्व लंकमन्ति नराभ्यरु ॥ शु० नि० ५

इसीलिए प्राचीन आचार्यों ने ब्रह्मित से सम्बन्धित सब वस्त्रों को धूपन निजीवाणुकरण करने के लिए गन्धक के धूम का बहुतायत से प्रयोग किया जाता था। इसके उपरान्त कई प्रभावकारी विधियों का अन्वेषण होने से आजकल धूम द्वारा निजीवाणुकरण नहीं किया जाता।

प्रकार—निजीवाणुकरण करने की दो विधियाँ हैं। ये निम्न (अनेक) भेदों में

## (I) निर्जीवाणुकरण की भौतिक विधि (Physical method of sterilization)—

- (क) ताप द्वारा (By heat)
- (1) रक्ष ताप (Dry heat)
- (2) आदृ ताप (Moist heat)

(ख) विकिरण द्वारा (By radiation)

(ग) नियन्दन द्वारा (By filtration)

## (II) निर्जीवाणुकरण की रासायनिक विधि (Chemical method of sterilization)—

## (1) भौतिक विधि (Physical method)

(क) ताप द्वारा निर्जीवाणुकरण (Sterilization by heat)

(1) रक्ष ताप (Dry heat)—विभिन्न वस्तुओं का निर्जीवाणुकरण विधियाँ

प्रकार के रक्ष ताप द्वारा करना चाहिये, जैसे रक्त वर्ण के ताप (Red-heat) द्वारा तार से निर्मित घन्त्र एवं संदर्भ घन्त्रों (Forceps) के अंग्रेजी भाग का निर्जीवाणुकरण करना इत्यादि।

ज्बलना (Flaming) द्वारा सूची (Needles), कांच की वस्तुमें (Slides etc.), बृह्दि पत्र (Scalpel), लोहे तथा इनामल के पात्रों का निर्जीवाणुकरण करना चाहिये। इस विधि में स्प्रिट का प्रयोग किया जाता है। पात्र को स्प्रिट द्वारा भिंडी कर इसे आग लगा दी जाती है।

उष्ण ताप (Hot air oven) द्वारा—इसमें ताप प्रायः 160°C तक (When indicator ink turns brown) रखा जाता है, इसमें वस्त्र (Linen), कांच का सामान (Glassware), बृह्दि पत्र (Scalpel), कर्तंसी (Scissor), पाउडर, वसा एवं तेल (Fats and oils) की 1.5 cm. मोटी तह इत्यादि को एक धन्ते तक रखने से इनका निर्जीवाणुकरण हो जाता है। 180° ताप पर केवल 20 मिनट ही पर्याप्त होते हैं, जबकि 120°C पर इन्हें 8 घन्ते तक रखना चाहिये।

## इन्फ्रारेड विकिरण (Infrared radiation) द्वारा—इस विधि से सूची वेष्य

घन्त्र (Syringes) का निर्जीवाणुकरण किया जाता है। जब घन्त्रों को ठन्डा करा हो, तब उन्हें नियन्दित नाइट्रोजन (Filtered nitrogen) का निर्जीवाणुकरण को (Sterilization chamber) में प्रवेश कर देना चाहिए, ताकि ऑक्सीडेशन (Oxidation) न होने पावे।

## विद्युत दहन (Electric cautery) द्वारा—जीर्ण व्यांगों का दहन करने

इनका शोधन एवं छेदन दोनों कर्म हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त नख के नीचे गाथ लगने से रख लाव होकर जो रखत इकट्ठा हो जाता है, उसका विस्तारण अप द्वारा लाल की गई सूची से नख में छेद करके करना चाहिये। तत्पश्चात् त छिद्र को पृथक विरोधी द्रव, जैसे Tr. Benzoin co. द्वारा बन्द (Seal) कर ना चाहिये। यह अपूरीक विधि अपनाने से अधः नख गत व्रण जीवाणु रहित बना जाता है।

(2) आदृ ताप (Moist heat)—घन्त्र (Blunt instruments) तथा वर (Rubber) की वस्तुओं, जैसे मृत विस्तारण नाड़ी घन्त्र (Catheters), निकाशनी वही घन्त्र (Drainage tube), दस्ताने (Gloves), इत्यादि को पानी में दो प्रतिशत (2%) मीठा सोडा अथवा अजिक्षार (Sodium bicarbonate) डालकर, 30 से 45 मिनट तक उबालना चाहिये।

उष्ण वालों का प्रयोग अधिक दाब (High pressure) पर तीन प्रकार जैसे—  
 (i) 00 डिग्री से कम ताप, परन्तु अधिक दाब रहने पर हँथ तथा दीके तापमान डिग्री में किया जाता है। बीजाणु उत्पन्न करने वाले जीवाणु (Vaccine) का निर्जीवाणुकरण किया जाता है।  
 (ii) 00 डिग्री से अधिक ताप पर  
 (iii) 100 डिग्री से अधिक भार पर बीजाणु न उत्पन्न करते वाले जीवाणु (Non spore forming bacteria) 5 से 10 मिनट में नष्ट हो जाते हैं। निर्जीवाणुकरण वस्तुओं को पकड़ने के लिये, लाइसोल के 3% (3% Lysol) Spore forming bacteria) इस ताप द्वारा नष्ट नहीं हो पाते।

(iv) 100 डिग्री ताप तथा अधिक भार पर बीजाणु न उत्पन्न करते वाले जीवाणु (Chittie forceps) का निर्जीवाणुकरण हुए चिट्टल के सांदर्भ यन्त्र (Chittie forceps) का निर्जीवाणुकरण वस्तुओं को लिये, लाइसोल के 3% (3% Lysol) में डुबा कर फिर सुखाए हुए चिट्टल के साथ हवा का प्रवेश नहीं होना चाहिये।  
 (v) 100 डिग्री से अधिक ताप अर्थात् 132 डिग्री ताप में आटोक्लेव उत्पन्न के लिये 15 पौण्ड के दाब (15 lb. Pressure) पर 2-3 मिनट 12-15 मिनट दें तथा 115 डिग्री ताप पर 30 से 45 मिनट दें। परन्तु ध्यान रखें कि जल वाष्पों के साथ हवा का प्रवेश नहीं होना चाहिये।

हई, कपड़ा, पाऊडर (Talcum powder), बैसलीन इत्यादि वस्तुओं निर्जीवाणुकरण इसी विधि द्वारा करना चाहिये। परन्तु रबर की वस्तुओं के निर्जीवाणुकरण इसी विधि से अधः नहीं हो पाया जाता है।

(ब) विकिरण द्वारा निर्जीवाणुकरण (Sterilization by radiation)—  
निर्जीवाणुकरण के लिये दो प्रकार की विकिरणों का प्रयोग किया जाता है।

(i) अल्ट्रावापलट विकिरण (Ultraviolet radiation)—इस विकिरण की तरंग की लम्बाई (Wave length)  $330\text{ m}\mu$  से कम होने पर ही यह जीवाणुओं को नष्ट कर पाती है। (पृथकी पर सामान्य रूप से इसकी तरंग की लम्बाई  $290\text{ m}\mu$  रहती है) पारा वाष्प लैम्प (Mercury vapour lamp) के द्वारा इस विकिरण को  $240$  से  $280\text{m}\mu$  की तरंग में प्राप्त किया जाता है। परन्तु इस लम्बाई की तरंग का प्रकाश विशेष कारक (Irritant) होता है, इसलिये इसके सीधे प्रकाश से त्वचा को, आंख के स्वच्छ मण्डल (Cornea) को तथा शल्यकर्म वाले स्थान (Operation area) को बचाना चाहिये।

(ii) आयनन् विकिरण (Ionizing radiation)—इन विकिरणों में 'ए-विकिरण' (X-rays) तथा 'गामा विकिरण' ( $\gamma$ -rays) का समावेश होता है। ये विकिरणों कोषों (Cells) तथा जीवाणुओं के लिये चातक (Lethal) होती है, इसलिए इन विकिरणों को केवल विस्तावण नाड़ी यन्त्रों (Catheters) तथा प्लास्टिक के सूची वेघ यन्त्रों (Plastic syringes) के लिये प्रयोग किया जाता है।

(ग) नियन्दन द्वारा निर्जीवाणुकरण (Sterilization by filtration)—नियन्दन विधि का प्रयोग जीव विरोधी औषधि के घोल की तथा सीरम को जीवाणु रहित करने के लिये होता है। परन्तु इस विधि से घोल को विषाणु रहित (Free from virus) नहीं किया जा सकता, क्योंकि इस विधि में प्रयोग होने वाले विशेष स्पन्दन यन्त्रों (Special filters) के छिद्र  $0.75\mu$  के प्रमाण के होते हैं। इनसे विषाणु निकल जाते हैं (Viruses cannot be checked by it), इसलिये इस विधि द्वारा निर्जीवाणुकरण सीरम सुरक्षित (Safe) नहीं माना जाता।

प्रकार—नियन्दन यन्त्र निम्न पाँच प्रकार के होते हैं।

(i) Ear barkfeld filter :—यह स्पन्दन यन्त्र Klesselguhr fossil diatomaceous से निर्मित होता है। यह V, W तथा N के नाम से 3 प्रकार का होता है। इस यन्त्र को प्रयोग करने से पूर्व इसका निर्जीवाणुकरण कर लेना चाहिए।

(ii) Chamber land filter :—यह खुदरे पारनलिन (Unglased porcelain) द्वारा निर्मित होता है। इसमें नीन और णियाँ अथात् L1, L2 तथा L3 होती हैं। इनका प्रयोग जीवाणु विषों (Bacterial toxins) से जीवाणुओं को अलग करने के लिये किया जाता है।

(iii) Sicetz filter :—इस नियन्दन यन्त्र का निर्माण Asbestos द्वारा होता है।

(iv) Sintered glass filter—यह यन्त्र अति सूक्ष्म कांच के कणों (Finely ground glass) द्वारा, उनको चिपकाकर बनाया जाता है।

(v) Cellulose membrane filter—यह स्पन्दन यन्त्र Cellulose acetate की परतों से निर्मित होता है। इसकी अमरी परत 5 से  $10\text{ m}\mu$  परमाणु के छिद्र वाली तथा नीचे की परत 3 से  $5\text{ m}\mu$  न्यास के छिद्र वाली होती है। इसको प्रयोग करने से पूर्व इसका  $121$  डिग्री तापमात्र ( $121^{\circ}\text{C}$ ) पर आटोक्लेव (Autoclave) द्वारा निर्जीवाणुकरण कर लेना चाहिये। इसमें स्पन्दन  $100$ - $200$  mm. Hg. के दाब पर किया जाता है।

(vi) Centrifugal filter :—इस विधि का प्रयोग तब किया जाता है जब नमूना द्रव (Sample fluid) की मात्रा बहुत ही कम हो।

II निर्जीवाणुकरण की रासायनिक विधि (Chemical method of sterilization)—निर्जीवाणुकरण के लिये दो प्रकार के पदार्थ प्रयोग में लाए जाते हैं।

(A) रासायनिक पदार्थ अति प्रभावकारी होते हैं, परन्तु उनका विषय प्राक भी साथ रहता है। इनका प्रयोग निर्जीव पदार्थों का निर्जीवाणुकरण करने के लिये किया जाता है जैसे—

(i) Volatile antiseptics—क्लोरोफार्म को  $0.25\%$  बल (Strength) में प्रयोग किया जाता है, फिर इसे  $56$  डिग्री तापमान पर उड़ा दिया जाता है। इस विधि से वर्धी जीवाणु (Vegetative bacteria) नष्ट हो जाते हैं।

(ii) Phenol group :—इसके अन्तर्गत (Lysol 3%, Creasol 0.1% तथा Phenol 0.5% के घोलों का समावेश होता है। इनसे सीरम तथा टीके (Seras and vaccines) का रक्षण (Preservation) किया जाता है। इनका प्रयोग शस्त्रों के निर्जीवाणुकरण के लिये भी किया जाता है।

(iii) Metallic salts—Mercuric chloride को  $1/10,000$  के घोल के रूप में प्रयोग किया जाता है। इनसे विष विरोधी द्रव (Antitoxins) तथा अन्य सीरमों (Other vaccines) का रक्षण (Preservation) किया जाता है।

(vi) Formaldehyde ( $40\% \text{ W/V}$ )—यह जल में घुलनशील गेस है जो कि विशेषक (Irritant) तथा जीवाणु (Spores) तक के लिये भी चातक (Lethal) होती है। यह अति प्रभावकारी होते हुये सस्ती तथा कपड़ों एवं बम्बई की हानिश्वद नहीं होती। इसको (जल में) घोल के रूप में प्रयोग किया जाता है।

(v) Ethylene oxide—यह गैस विस्फोटक होती है, इसलिए इसका

प्रयोग 10% कार्बनडाइ ऑक्साइड के साथ किया जाता है। इसका उबलने का तापमान केवल 10-7°C होता है इसलिये यह तुरन्त सूख जाता है। इसे प्लास्टिक तथा रबर के पदार्थों के Heart lung machine के निर्जीवाणकरण के लिये उपयोग किया जाता है।

(B) दूसरे वे रासायनिक (Chemical) प्रयोगिरीय पदार्थ होते हैं (Antiseptics) जो कि निर्विच होते हैं तथा जिनका प्रयोग जीवों (Animates) पर किया जाता है। ये प्रतिरोधी बीजाणुओं (Resistant spores) पर अपनी क्रिया करने में असमर्थ होते हैं। जैसे—

Acreflavin, Boric acid, Crystal violet, Potassium permagnate etc.

#### निर्जीवाणकरण के लिये प्रायः प्रयोग में लाई जाने वाली उपरोक्त विधियाँ का सारांश (Abstract)—

- (1) शाल्य कक्ष के लिये = 1 : 0 कार्बोफ्लिक अम्ल 1
- (2) कपड़ों को धोकी को देने से पूर्व शोधन करने के लिये = 1 : 20 कार्बोफ्लिक अम्ल ।

(6) लैम्प (Bulbs) इत्यादि के लिये=Spirit

- (4) रबर या कैन्वस के जूतों के लिए = 1 : 20 कार्बोफ्लिक अम्ल
- (5) शाल्य कक्ष की वायु शोधनार्थ = अल्ट्राकावाइलेट विकिरण
- (6) कपड़ों (Linens) के लिये= Steam in 20 lbs Pressure/Sq inch.
- (7) रबर के दस्ताने (Gloves) के लिये—5 lb. का दाब 15 मिनट के लिये या उन्हें 20 मिनट तक उबालें।
- (8) यन्त्रों (Blunt instruments) के लिये—प्रति लीटर जल में एक चम्मच मीठा सोडा डालकर उबालें या 15 lb दाब पर 20 मिनट तक आटोक्सेव करें।

(9) केटगट तथा तीक्ष्ण धार शस्ट्रो (Sharp instruments) के लिये इन्हें लाइसोल (Lysol) का स्प्रिट में 25% धोल बनाकर इसमें एक सप्ताह तक रखें, फिर साढ़ुन से धोकर 20 मिनट के लिये पानी में उबालें तथा फिर प्रयोग करने के लिये स्प्रिट तथा Lysol के 25% धोल में रख दें।

(10) धार्म अथवा सूत्र (Threads)—इन्हें 20 मिनट तक उबालें या फिर 20 lb दाब पर 20 मिनट तक आटोक्सेव करें।

(11) इनामल के पानी के लिये—इन्हें 20 मिनट तक उबालें।

(12) चिटन संदेश यन्त्र (Chittel forceps)—इसे 20 मिनट तक उबाल कर फिर 1% डिटोल के धोल में रख दें।

(13) निरानकीय उपकरण (Diagnostic instruments) :—इन्हें 12 घंटे कार्मलडिहाईड के वाष्पों में रखें।

(14) ब्रण बन्धनार्थ (Dressing) के लिए—1 : 1000 एकीकलेविन का धोल

(15) हाथ धोने के लिये—1 : 1000 Perchloride of mercury lotion or 1 : 160 dettol lotion

(16) मृत्राशय धारनार्थ 2% बोरिक अम्ल ।

(17) अरणित त्वचा के लिए—70% सुरा (Alcohol)

(18) चिकनाई हटाने के लिए—Solvent ether

NOTE :—Strong solution of tincher iodine should not be used for skin, especially on face, scrotum etc. i.e. on soft skin 1% mercurochrome in spirit should not be used in open wounds, as it precipitates proteins of the tissues.

भार-वोषः

अतिमादव शेत्योल्लय तेज्य वैचिक्षण्यसंपत्ता ।

## 20

अर्थात् अति कोमल, अतिशीतल, अतिउष्ण, अति तीख्य, अतिपिक्खल, बड़त फैलने वाला, अतिचर्ना, अपक्व एवं हीन द्रव्यों से बना हुआ भार दोषमुक्त होता है।

### भार-कर्म

"भूरणात् भणनाद् वा भारः" "जो शरीर की त्वक्, मासादि धातुओं का क्षरण या धाणन् अर्थात् नाग नष्ट करने के लिए किया जाता है। ऐसे ही कार्सिक सोडा, कार्सिक पोटाश इत्यादि तीव्र भार भी धातुओं का क्षरण करते हैं। भार (Caustics) स्वभाव से ही क्षरण करने (Corrosive action) वाले होते हैं। रजत भार (Silver nitrate) को उद्धारणीय भावों (Indolent ulcers), पोथकी (Trachoma), कणिका (Callus) इत्यादि आधियों में धातुओं का क्षरण करने के लिए प्रयोग किया जाता है।

### भार की प्रधानता :

(1) यह छेदन, खेदन तथा लेखन तीनों कर्मों को एक साथ करता है। यह

नासार्सं, नासार्वद इत्यादि संकीर्ण स्थानों (Narrow cavities) का आधियों को नष्ट करने में समर्थ होता है, जहाँ पर कि गास्त्र की पुरुष

भी कठिन होती है।

(2) यह विभिन्न औषधियों से निर्मित होने के कारण तीनों दोषों को नष्ट

करने में सक्षम होता है।

(3) भार उन मर्म स्थानों में भी प्रयोग किया जा सकता है जहाँ पर यानि

कर्म से मर्माभिघात होने का भय रहता है।

(4) पानीय भार का अनेक सावंदेहिक रोगों में मुख द्वारा प्रयोग किया जाता है।

(5) भार में नष्ट धातुओं को गोधता से नष्ट करने का सामर्थ्य होता है।

### भार के प्रकार :

भार दो प्रकार का होता है—

(1) प्रतिसारणीय भार—इसका बाह्य रोगों में स्थानीय प्रयोग होता है।

(2) पानीय भार—इसका प्रयोग आम्लत्वर रोगों में मुख द्वारा लिया जाता है।



Alkali + Acid = Neutral salt + Water

भार में अम्ल रस को छोड़कर अन्य सब रस होते हैं। शीत स्पर्श वाले अम्ल भार की दरध लेण में अम्ल रस से प्रक्षालन करने प्राप्त हो जाता है। अम्लहठी एवं तिल कल्क का लेप करें। रोगी को दीधि, मासादि अधिक्षयनी पदार्थ खाने को न दें। वात दुष्टि में भार से लेखन करना चाहिए। पित दुष्टि में घर्जन तथा कफ दुष्टि में भार को, पाञ्चले लगाकर शलाका से लगाना चाहिए।

सम्प्रद् वाय के लक्षण—सम्प्रद् वाय रोग पर रोग की शान्ति होती है, लाव का अभाव हो जाता है, अङ्गों में लक्षता आ जाती है, दरध स्थान निम्न तथा पक्व जामून फल यदृश झूँझ वर्ण का हो जाता है।

हीन दरध के लक्षण—रुग्ण स्थान पर तोद, कण्डु तथा जड़ता रहती है एवं रोग बढ़ जाना है। स्थान का वर्ण तांबवर्ण मर्दू द्वारा जाता है। हीन दरध होने पर स्थान पर युन भार से दरध करना चाहिए।

अतिवाय के लक्षण—भार द्वारा रुग्ण स्थान की स्वस्थ धातुओं के नष्ट होने पर दाह, पाच, नालिया (Inflammatory signs), शोथ, स्नाव, अज्ञान, रुग्ण, मुच्छर्दि तथा, मृत्यु भी हो सकती है। वाम्पटानुमार अतिवाय में ज्वर तथा सूधिर

### भार निर्माण विधि :

भार का निर्माण दोष तथा व्याधि के अनुसार, फ्रिक्स-फ्रिक्स और प्रधि दृष्टों से किया जाता है। मुख (मोखा), कुट्ठ, पलाश, अबद्वक, फिरहद, आरवद्व तिलकों की किया जाता है। मुख (मोखा), कुट्ठ, वासा, चिक्क, कदली, अग्निमय इत्यादि के अर्क स्तुही, अपामार्द, पाटला, करड़ज, वासा, चिक्क, लेकर एवं छोटे-छोटे टकड़े बरके शुष्क लेते हैं। मुखने पर अग्नि द्वारा जलाकर इनकी भस्म बना लै। शर्तिशाती क्षार के निर्माणार्थ तिल नाल को भी इनके साथ जलाना चाहिए। अब दो भाग शुष्क भस्म तथा एक भाग कुट्टादि किसी अन्य औषधि की भस्म को लेकर छँगुना जल अग्नि मूत्र में भिलाकर इसे इक्कीस बार कपड़े से ढान लै। इस विलयन को लौहे के कड़ही में डालकर अग्नि पर रखकर दर्द (कड़ही) से हिलान्त हुए पकायें। जब इसमें से उग्र गन्ध आने लगे तथा यह निर्मल और चिपचिपा बन जावे तब इसको वर्द्धनक दो भाग कर लै। एक भाग क्षारोदक तथा हसरा भाग नीचे बैठा हुआ किट्टपूत क्षार होता है। अब नितारे हुए स्वच्छ श्वारोदक को पुनः पकावें तथा उसमें से एक कुड़व (आठ पल) क्षारोदक को लौह पान में, शुक्ति इत्यादि बुझाने के लिए पूरक रख लै। इसमें शेख नाशि, जलशुरुति, कटशुरुति या सुधा शर्करा की कुल आठ पल लेकर, अग्नि में खबू गर्म करके बार-बार बुझायें। इसकी भस्म हीने पर या यदि कुछ छोटे-छोटे टकड़े सेप रह जायें तो उन्हें पीसकर क्षारोदक में मिलाकर ६ोड़ा धना होने तक पकावें। अब इसे लोहे के घड़े में मुख बन्द करके रख दें। इस तरह मध्यम क्षार बनता है। यदि समय के प्रभाव से यह क्षार मृदू हो जाए तो इसमें उपरोक्त विधि से बनाए क्षारोदक को डालकर पकाने से इसमें पुनः तीक्ष्णता आ जाती है। उपरोक्त विधि से प्रतिसारणीय क्षार बनाया जाता है। यदि इसमें शब्दादि को न डाला जाए तो मृदू क्षार (संधृहित क्षार) बनता है। यदि मध्यम क्षार में रहने तक तीक्ष्ण औषधि-चूर्णों का प्रक्षेप मिलाकर पकाया जाए तो तीक्ष्णक्षार (पाक्य क्षार) बनता है।

**प्रक्षेप ब्रह्म**—दन्ती, द्वजनी, चित्क, लाहू-लो, पूतिक, प्रवाल, मुसली, विडनमक, सज्जी क्षार, स्वर्णक्षीर, वच तथा अतिविषा, प्रत्येक का शूकित प्रमाण में चूर्ण मिलाना चाहिये।

**क्षार के गुण :**

नंवातितीक्षणो च मृदुः मृदतः इत्यतः इत्यतः प्रिद्युम्निः ।  
अविष्वन्दी शिव शीधः क्षारो द्वृष्टगुणः स्मृतः ॥

अर्थात् न अति तीक्ष्ण, न अति मृदु, यह गर विष, अजीर्ण, अरोचक, आनाह, यांकरा, अमरी, आश्यन्तर-विद्युधि, कृष्णि, विष, अर्थ तथा कफादि को नष्ट करने के लिये, भी प्रयोग में लाया जाता है।

### विषय :

**नासाबूद्व—**इसमें नासा को उपर उठाकर क्षार लगाया जाता है। पोथकी—पोथकी इत्यादि वर्तमान रोगों में अक्षिगोलक को ढककर क्षार लगाया जाता है।

अर्थ—अर्थ में रत्तसाव रोकने के लिए तथा अर्थ के मरसों के क्षरण के लिए क्षार का प्रयोग करें [इसका प्रयोग आश्यन्तरिक अर्थ में ही करना चाहिए। व्यांकिक इन्नेट रेखा (Dentate line) के नीचे के अर्थ (बाह्यार्थ) में क्षार लगाने से अत्यधिक बेबना होती है]। एक बार में अधिक क्षार का प्रयोग करने से गुद चिकार या मृत्यु [प्राणदा नाड़ी (Vagus) के संक्षोभ (all of a sudden stimulate) होने से] भी हो सकती है। अतः यदि अधिक क्षरण करना हो, तो थोड़ा-थोड़ा करके कहीं बार क्षार पानन करना चाहिए।

**भ्रान्तदर—**क्षार द्वारा भ्रान्तदर नाड़ी को नष्ट करें। कुट्ट, उष्टुष्णार्व में क्षार से दृट धातुओं का क्षरण होता है। उपजिह्विका, अधिजिह्विका, चर्मकील इत्यादि ध्याधियों को भी क्षार नष्ट करता है। क्षार, भीरह एवं बाल रोगियों में प्रक्षवशोष का दारण करने के लिये प्रयोग किया जाता है।

### पानीय क्षार—

पानीय क्षार का प्रयोग सार्वदैहिक रोगों में मुख द्वारा किया जाता है। पानीय क्षार का निर्माण प्रतिसारणीय क्षार की भाँति होता है, विंतु इसे पकाकर बना नहीं किया जाता तथा न हो इसमें प्रक्षेप दव्य मिलाये जाते हैं। दो पल, एक पल या आधा पल (तीक्ष्ण, मध्यम या मृदू क्षार के अनुसार) क्षार दव्यों की भस्म को लेकर छँगे जल में मिलाये, फिर इसकीम बार द्वारा द्यानकर, पान में 1/3 भाग थोथ रहने तक पकाए। मृश्रूत ने गुलम चिकित्सा में लेहा (पानीय) क्षार निर्माण करने को कहा है। इसमें अपेक्षाकृत मृदू प्रक्षेप दव्य मिलाये जाते हैं, जैसे-तिल, तालमबाना इत्यादि। पलाशादि दव्यों को जलाकर उनकी भस्म को चार गोप्तृ में धोत-कर द्यान ले, फिर इसमें कुट्ट, संधा नमक, मुतहरी, विड्ह तथा समुद्र नमक का प्रक्षेप डालकर लेहा क्षार की तरह गादा (घन) होने तक पकाए।

**मृदु पानीय क्षार** (Dilute alkali) को आमाशय की अस्तरता के लिए प्रयोग किया जाता है।

**विषय—**पानीय क्षार का मृदवस अधिक प्रयोग उदर तथा गुलम रोगों में किया जाता है। इसके अतिरिक्त यह गर विष, अजीर्ण, अरोचक, आनाह, यांकरा, अमरी, आश्यन्तर-विद्युधि, कृष्णि, विष, अर्थ तथा कफादि को नष्ट करने के लिये, भी प्रयोग में लाया जाता है।

पाण्डुता, खालित्य तथा पालित्य रोग उत्पन्न होते हैं। चिप्पली तथा लवण की भाँति इसका भी अत्यधिक प्रयोग नहीं करना चाहिए।

“अथ छतु चोण द्रव्याणि नायुपमुञ्जीताधिकः ।”

भार निषेध—अतिशीत, अति उषण, वर्षाकाल, आकाश के मेघाच्छादित होने पर; दुर्बल, बालक, भीउ, गम्भीणी, स्थावर विषयुक्त, उदर रोगी, स्वीकृ शोष के पीड़ित रोगी, रक्तपित, जबर, प्रमेही, रुक्ष, अतशीण, अतिसार, पाण्डु, तृष्णा, मूच्छी जैव्य, अण्ड या योनि किकार, वमन-विरेचन द्वारा संयोगित पुरुष में, मर्म, सिरा, धमनी, साध्य, तखणास्थ एवं तेवनी के रोग में; गल, नाभि, तखात, उपरथ भाग, जानू, ललाट तथा अल्प मासयुक्त स्थानों में भार का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

अग्नि से तप्त किए हुए अंडक प्रकार के उपकरणों द्वारा, यारी रुग्ण व्याधि को नष्ट करने के लिये जो दहन कर्म किया जाता है उसे अग्नि-कर्म (Cautery) कहते हैं। ड्लॉण ने अग्नि से सम्बन्धित सब चिकित्सा कर्मों को अग्नि कर्म कहा है। आजकल अनेक रेनो में विद्युत दहन (Electric cautery) द्वारा अग्नि-कर्म किया जाता है, जैसे नासार्ण, गम्भीर्य-ग्रीवा-त्रण तथा रक्त रक्तनादि के लिए। धातुओं का वेदन तथा भेदन करने के लिए तीव्र विद्युत दहन (Diathermy cautery) का प्रयोग किया जाता है। कार्बनडाइऑक्साइड स्नो (Carbon dioxide snow) द्वारा गीतदध्य उत्पन्न होता है। ड्लॉण के मतानुसार योत दग्ध भी दाह के सूक्ष्म ही होता है।

“हिमदरधेष्ठि दाह सादृश्यमस्ति ।”

अग्नि-कर्म की प्रधानता :

भार कर्म को अनुशस्त्रों में श्वेष माना जाता है। अग्नि-कर्म को निम्नलिखित गुणों के कारण भार से भी श्वेष माना जाता है।

- (i) अग्नि-कर्म द्वारा एक बार नष्ट हुए रोग पुनः उत्पन्न नहीं होते।
- (ii) औषध द्वारा असाध्य रोग अग्नि-कर्म द्वारा साध्य होते हैं।
- (iii) अग्नि तप्त शस्त्र (Diathermy knife) द्वारा वेदन कर्म भी किया जाता है (इस विधि से वेदन कर्म करने पर रक्त लाव नहीं होता) जैसे—

“अग्नि तप्तेन शस्त्रेण छिन्द्याम् ।”

- (iv) अग्नि तप्त शस्त्र से वेदन करने पर पाक (Infection or pus) का भय नहीं रहता अन्यथा ‘अतप्तशस्त्रच्छेदने पाकशयस्यात्’ अर्थात् बिना अग्नि तप्त शस्त्र द्वारा छेदन कर्म करने पर पूर्य पड़ने का भय रहता है।

दहन-उपकरण तथा दहन विधि :

भिन्न-भिन्न प्रकार के रोगों में अग्नि कर्म करने के लिए कम या अधिक अग्नि की आवश्यकता होती है, जैसे—त्वचा में कम अग्नि से दग्ध हो जाता है, मांस

शृंखला विज्ञान को पुष्टिकर एवं पिण्डित अत्र बिलाने के उपरान्त, पूर्व दिशा में प्रकाश की ओर मुख करके बैठाये। अब निर्घूम अग्नि में दहन उपकरणों को तप्त करके समयक्रम के लक्षण उत्पन्न होने तक दध्य करें। रोग का शान्त हो जाना, खाल का नाट हो जाना तथा अङ्गों में लवृत्ता का आ जाना इत्यादि सम्यक् दध्य के लक्षण हैं।

#### दध्य के लक्षण :

(i) त्वक् दध्य :—इसमें शब्द होता है, त्वक् संकोच होता है तथा दुर्गंध आती है।

(ii) मांस दध्य :—इसमें वेदना तथा अल्प शोथ के साथ ब्रण संकुचित शुक्र

तथा कपोत वर्ण का हो जाता है।

(iii) सिरा दध्य :—इसमें राधिर का स्वावर रुक जाता है। सिरा उक्त तथा

वर्ण कुण्ड वर्ण का हो जाता है (कुण्ड वर्ण स्कन्दित रक्त के कारण होता है)।

(iv) स्नायु दध्य :—इसमें ब्रण स्थिर, कर्कश तथा अरुण वर्ण का होता

महर्षि कथ्यम के काल में सिरा एवं स्नायु दध्य को (सन्धि तथा अस्थि मर्म के दध्य की भाँति) वर्जित कहा गया था, परन्तु युश्त काल में सिरा एवं स्नायु का

दध्य किया जाता था।

#### विषय (Indications) :

अयमरी में [शस्त्र कर्म के एक सद्तोह के उपरान्त (ड्लूग)] तथा मूत्र लावी वर्णों में दध्य कर्म करें। कर्कश, कठोर, मिश्र तथा पथु अर्थ, भग्नदर के भेदनापरान्त, प्लीहा वृद्धि, अर्चुद, प्रस्त्रि, अपची, गलगण्ड, मशक, तिलकालक, आन्त्रवृद्धि, वल्मीक, अधिदन्त, दन्तनाडी, शीतदन्त, अधिमास, वातवेदनाये तथा विषज द्रग के शस्त्र कर्म के पश्चात भी दध्य कर्म न करें।

#### अप्योग (Contra-Indications) :

पित्त प्रकृति में, भिन्न कोण्ठ होने पर एवं रक्त-पित में दध्य कर्म न करें। चरके के अनुसार तृष्णा, ज्वर, सविष शल्य, स्नायु तथा मर्म स्थित वण, तेव्र ब्रण, कुण्ड ब्रण तथा गम्भीरी में दध्य कर्म न करें।

में इससे अधिक तथा अर्द्धदादि के अग्नि कर्म करने के लिए सबसे अधिक अग्नि की आवश्यकता पड़ती है। अतः अग्नि कर्म अग्नि के लिए अनेक प्रकार के उपकरणों का वर्णन किया गया है, जैसे—पिपली, अजाशाकुद् (बकरी की मीगण), गोदन्त, शार, शलाकाएं (जैसे जाम्बवौल, इतर लोहादि), मधु, गुड, स्नैह तथा रुज़रस। अटाङ्ग संग्रह के अनुसार सूर्यकात्त मणि, कांस्य एवं स्वर्ण की सूची, धूत-वसादि दाह कर्म के लिए प्रयोग किए जाते हैं।

भिन्न-भिन्न उपकरणों का प्रयोग आवश्यकतानुसार भिन्न-भिन्न रोगों में किया जाता है। जैसे—

(i) मशक, तिलकालक इत्यादि त्वचा विकारों में सूर्यकात्त मणि, पिपली,

अजाशाकुद्, शर-शलाका या गोदन्त का प्रयोग करें।

(ii) मांस दध्य के लिए—जाम्बवौल-शलाका, इतर लोह या बराका प्रयोग करें।

(iii) सिरा-स्नायु तथा सम्झित रोगों के लिए—मधु, गुड तथा स्नैह का प्रयोग करें।

शलाकाओं द्वारा अग्नि कर्म अनेक प्रकार के चिन्ह अंकित करके किया जाता है, जैसे—

(i) चलय—(३) यह दध्य कर्म अर्द्ध दध के घारों और सुद्रिका का चिह्न बनाकर किया जाता है।

(ii) चिकुड़—(४) इसमें दध कर्म बिन्दु के आकार में किया जाता है।

(iii) विलेषा—यह दध अनेक प्रकार की रेखाएं बनाकर किया जाता है।

(iv) प्रतिसरण—इसमें तप्त शलाकाओं से घर्षण किया जाता है। अटाङ्ग संप्रहकार ने तीन प्रकार के अन्य दध भी बताए हैं, जैसे—

(i) अर्धचन्द्र—(U) इसमें आधे चन्द्रमा के आकार में दध किया जाता है।

(ii) स्वस्तिक—(५) यह दध स्वस्तिक के आकार का होता है।

(iii) अटापव—(६) यह दध आठ चिन्हों वाला होता है।

विधि :

शुभ दिन, शुभ नक्षत्र एवं मुहूर्त को देखकर मूँह गर्भ अस्मरी, भग्नदर तथा मुख रोगों से प्रस्त रोगियों को बिना कुछ खिलाए अग्निकर्म करें। अन्य व्याधियों से श्रस्त

## 22

### रक्त विलावण

रक्त प्रदर, गुद, मुख, एवं मेड़ पाक इत्यादि रोग दृष्ट रक्त से उत्पन्न होते हैं। इसके अतिरिक्त चरक ने उपमुख, विसर्प, रक्तपत्ति, वातरक्त, विद्रधि, गुल्म, रक्त मेह, प्रदर, कण्ड, कोठ, मिङ्गिका तथा कुड्डादि अनेक रोगों को रक्तज रोग माना है।

शरीर में रक्त की उत्पत्ति देशसात्म्य, कालसात्म्य तथा ओक्सात्म्य (सम्प्रक्ष आहार-विहार) से होती है।

“रक्त जीव इति स्थितिः” मु० श० १४

यह रक्त जीवन देने वाला एवं इन्द्रियों पर्याप्त या गुड्डजा के सदृश लाल बर्ण का होता है। इससे रक्तज-वस्त्र धोने के बाद साफ हो जाते हैं (यह शुद्ध रक्त का लक्षण है)। शुद्ध रक्त (Oxygenated blood) स्वाद में मधुर तथा लवण रस वाला, अग्नीतोष्ण स्पर्श वाला, असंहत (न पतला न गाढ़ा) अथवा 1055 आवेदिक घनत्व वाला, 78% जल तथा 22% धन भाग वाला होता है।

“त्वं द्वेष्य यज्ञयम् योक्ता: रोगः शोणितज्जग्न दे ।

रक्तमोक्षणयोनं च भवन्ति कदचन ।” मु० श० १४

रक्त मोक्षण करने से त्वचा के रोग, भृणियाँ, शोफ एवं रक्त जन्य रोग नहीं होते।

इटि के हेतु :

दृष्टि, उड़ान एवं तीक्ष्ण, मद्दसेवन करने से; भार तथा कट्ट रस के अधिक सेवन करने से; तिल तैल एवं कुलधारि देवि, विरुद्ध आहार से, स्निग्ध या रुक्ष एवं गुह भोजन के पश्चात् दिन में सोने से, वायु एवं धूप का अधिक सेवन करने से, खट्ट का वेग रोकने से, अजीर्ण से एवं स्वभाव से ही शरद कट्ट में रक्त दृष्टि हो जा ता है, दृष्टि रक्त में दोषानुसार निम्नलिखित लक्षण मिलते हैं—

बात डूळ्ठ—इसमें रक्त केन्द्र, अरुण या कुछ बर्ण का (पाकाभिमुख पर), पल्प (कम पिण्डिल), तंदु, शीघ्रधारी (अधिक संवित होने वाला) तथा अस्कन्दी (जमने की कम प्रवृत्ति वाला) होता है।

पित्त डूळ्ठ—पित्त से दृष्टि रक्त नील, हरित, पीत एवं श्वार बर्ण का, विलावण करने से; तिल एवं कुलधारि देवि, विरुद्ध आहार से, स्निग्ध या रुक्ष एवं गुह भोजन के पश्चात् दिन में सोने से, वायु एवं धूप का अधिक सेवन करने से, खट्ट का वेग रोकने से, अजीर्ण से एवं स्वभाव से ही शरद कट्ट में रक्त दृष्टि हो जा ता है, दृष्टि रक्त में दोषानुसार निम्नलिखित लक्षण मिलते हैं—

बाल्लनो बुद्धोष्टस वयस्त्वय शरीरेणः

परं प्रदाणामच्छन्ति प्रस्यं शोणितमोक्षणे ॥ मु० शा० ३ ॥

गांध युक्त, अनिट (चिक्किटियों में ज़ोंय) तथा अस्कन्दी होता है। इसलेक्ष्म डूळ्ठ—सेलेम। ते दृष्टि रक्त पाण्ड-तोहित बर्ण का, त्तिर्ण, शीतल, बहल (बन), पिच्छेस, चिरन्त्रावी तथा गाढ़ा होता है।

रक्तज रोग—  
त्वक् दोष, मधक, मन्त्रिरोग, नीलिका, न्यून्ड, दम्ग, इन्द्रजूल, लीहा बृद्ध,

(१) प्रस्थ = १३½ पल, एक पल = ४ तोला, १½ तोला = १०२ अधिक रक्त भार (High B.P.) होने पर १२—२५ OZ रक्त वाला निकाला जा सकता है। रक्त विलावण के पश्चात् अग्नि मन्द हो जानी है (क्योंकि अग्नि रक्त के सघर्मों हांस से निकलते हैं)। अतः रक्त विलावणोपरान्त रोगी को दीपनीय द्रव्यों का सेवन करना चाहिये।

## रक्त-विकावण के भेद :

## I अशस्त्र विकावण—

1. जलौका—दुष्ट रक्त के गम्भीर धातुओं में (अवगाढ़) रहने पर तथा पित्त दोष से हृषिक होने पर जलौका द्वारा रक्त निकाले। यह एक हस्त परिमाण तक का हृषिक रक्त निकाल सकती है।

2.. दुम्बी—यदि दुष्ट रक्त अवगाढ़तर हो या वह कफ दोष से हृषिक हो तो उम्बी से रक्त निकाले। तुम्बी 12 अंगुल तक का रक्त स्ववित कर देती है।

3. श्याङ्ग—यदि दुष्ट रक्त अवगाढ़तम हो तथा बात दोष से हृषिक हो तो श्यांग से रक्त निकाले। यह 10 अंगुल तक का रक्त निकाल देता है।

## II शस्त्र विकावण—

“शस्त्र विकावण द्विविधं प्रचल्यात् भिरात्यधनं च ॥”  
1. प्रचल्यात्—रक्त के पिण्डीभूत होने पर या अत्यदोष उक्त होने पर (जैसे अद्य कुट्ठ में) रक्त विकावण के लिये प्रचल्यात विधि का प्रयोग करें।

2. सिरवेध—अवगाढ़तम या सर्वशरीरगत दोष होने पर (जैसे महाकुठों में) सिरवेध द्वारा विकावण करना चाहिये।

## त्राव्य व्याधियाँ :

निम्न व्याधियों की शाँस्ति के लिये रक्त विकावण कर्म करना चाहिये—  
सत्त्विपातज की छोड़कर अन्य सब विद्धियाँ, शोथ, श्लीपद, विष, कुच, विदारिका तथा कण्ठशालकादि में रक्त विकावण करायें।

## अत्राव्य अवस्थायाँ :

मद, मूर्च्छा एवं कास से पीड़ित रोगी में तथा मस-मूत्र एवं वायु का अवरोध होने पर रक्त विकावण नहीं करना चाहिए। अस्युण काल में, अत्यधिक स्वेदन देने के पश्चात् (रक्त स्वात्र अधिक होने की सम्भावना रहती है, जिससे अन्यतत्त्वों पर प्रद्रव हो जाते हैं), सर्वधि शोथ होने पर, अल्प भोजन से उत्पन्न शीण रोगी में, पाण्डु, अर्ण, शोथ, उदररोग, शोष रोगी तथा गर्भिणी में विकावण नहीं करना चाहिये। अत्यधिक शीत झूटु में तथा भोजन के पश्चात् रक्त विकावण न करायें क्योंकि रक्त के आश्यन्तरिक अवयवों में चला जाने से वह कम वर्चित होता है।

## सम्प्रक विकावण :

लाघव वेदनाशान्तिव्यधिवेगपरिक्षयः ।

सम्प्रिक्षिकावितेलिङ्गं प्रसादो भनतस्तथा ॥ सु० स० 14

अच्छी प्रकार से रक्त विकावण होने पर शरीर में लघुता, वेदना शांस्ति, रोग वेग का हास्य और प्रमत्तता होती है।

## जलौका

जलौका (Leech) को सर्वश्रेष्ठ अनुशस्त्र माना है। जल में रहने के कारण जलौका कहते हैं। जल में रहने के कारण पित्तदोष में इसका प्रयोग किया जाता है। जलौका द्वारा रक्त विकावण विशेषकर बालक, बृद्ध, भीरु, स्त्री, नृप, घनी तथा लोपल प्रकृति वाले व्यक्तियों में करना चाहिये।

भेद :

भेद :

जलौकायें दो प्रकार की होती हैं—

(1) सविष जलौका

(2) निरिष जलौका

(1) सविष जलौका—सविष जलौकायें विवैती मछलियों एवं कीट-कादि के मृत एवं पुरोष युक्त तथा मृड़े व गन्दे जलाशयों में गाई जाती हैं। सविष जलौकायें दो प्रकार की होती हैं—

- (i) कृष्णा, (ii) कर्विरा, (iii) अनगदि, (iv) इन्द्रायुधा, (v) गोचन्दना,
- (vi) सामुद्रिका ।

(i) कृष्णा—यह कृष्ण वर्ण की स्थूल शिरवाली जलौका होती है।

(ii) कर्विरा—यह बड़ी मत्स्य की तरह चिर्षतृत तथा कुक्षि से ऊँची नीची

होती है।

(iii) अनगदि—इसका मुख काला तथा शरीर बालों से युक्त होता है।  
(iv) इन्द्रायुधा—यह इन्द्र धनुष की तरह बहुवर्ण युक्त होती है।  
(v) गोचन्दना—इसका मुख सूक्ष्म होता है तथा यह नीचे से अण्डकोष की ओर दो भागों में विभक्त होती है।

(vi) सामुद्रिका—कालापन लिये हल्के रंगीन धब्बों वाली सामुद्रिका जलौका

होती है।

(2) निरिष जलौका—स्वच्छ, कमल, पुण्डरीक पुष्प तथा फौवाल से

युक्त जलाशयों में रहती है। इन पर नीली धारियाँ रहती हैं तथा उदर पोलापन लिये होता है। यह छः प्रकार की होती है—

- (i) कपिला, (ii) पिगला, (iii) शङ्कुमुखी, (iv) मूषिका, (v) पुण्डरीकमुखी
- (vi) सावरिका।

(i) **कपिला**—इसका वर्ण पाश्व से मनः शिला की तरह रहता है तथा उदर पीत वर्ण का होता है।

(ii) **पिगला**—यह गोल जारीर बाली, लाल एवं पिगल वर्ण की तथा तीव्रता से चलने वाली होती है।

(iii) **शङ्कुमुखी**—यह यकृत की तरह मलेटी वर्ण की, लम्बे एवं तीव्रण मुख बाली तथा रक्त का शीघ्रात करने वाली होती है।

(iv) **मूषिका**—मूषिका (चूहे) की तरह भूरे रंग की एवं उसकी पूँछ के समान आकार की तथा अप्रिय गंभीर से मुख होती है।

(v) **पुण्डरीक मुखी**—यह मंग के समान हरे रंग की तथा कमल पुष्प के समान विस्तृत मुख वाली होती है।

(vi) **सावरिका**—सावरिका जलोका बड़े आकार की अर्थात् 18 अंगुल लम्बी तथा कमल के पत्र की तरह गहरे हरे वर्ण की होती है।

### पालन विधि—

जलोका को पालने के लिये इन्हें शारद और उसके पकड़ना चाहिये। जलोका को चमड़े पर घृत लगाकर पकड़े तथा इनको कीचड़ एवं जल से युक्त घड़ में डाल दें। इनके विश्वास के लिये घट में कुछ तुप डाल देने चाहिये। प्रत्येक दो या तीन दिन यस्थान् इस घट का जल बदलते रहें। इनके खाने के लिये युष्म मास तथा जल में उत्पन्न बनस्पतियों के कन्दों का चूर्ण घट में डाल देना चाहिये।

### अयोग्य जलोका—

सविष जलोकाओं के अतिरिक्त निम्न गुणों वाली जलोकाओं को विद्यावण के अयोग्य समझना चाहिये।

जो मध्य से स्थूल हों, विस्तीर्ण हों, मन्द गति वाली हों, देखने में विशेष आकार वाली तथा न लगने वाली हों और अत्यं रक्तपान करने वाली जलोकाओं का प्रयोग नहीं करना चाहिये। इनसे अनेक तरह के रोग उत्पन्न होते हैं—जैसे तीव्रशोफ, कण्ड, जरूर, दाह, छादि, मद, अंगसाद तथा मूच्छर्दि। इन्द्रायुधा रोगी का असाध्य अवस्था में पहुँचा देती है। इनकी विकितसा के लिये जिष्य चिकित्सा में विणत महामदों का प्रयोग करना चाहिये।

### बैष्य

भूर कुछड़, विद्धि, रधिर विकार, वातरक्त तथा वैत्तिक ग्रन्थि में जलोका ग्राहण किया जाता है। आयुर्विक चिकित्सा पद्धति में इसका प्रयोग अधिक रक्त-प्रति (High blood pressure), हृदय रोग, तीव्र शुष्क पाश्व-शूल (Acute dry pleurisy) तथा कुरुक्षुप रक्ताधिक्य (Hyperaemia of lung) में करते हैं।

जलोका लगाने से पूर्व उसे सरसों या हल्दी के कल्कोदक से अच्छी तरह से नियंत्रित किए गए तथा उसे उसकी धक्का द्वारा लगाने से लग जाती है।

जलोका लगाने से पूर्व उसे सरसों या गोबर से रुक्ष कर दें, फिर उस स्थान को एक छिद्र युक्त कागज या कपड़े से ढक दें। उस छिद्र में से जलोका ने (गले तथा मृदु कपड़े से पकड़कर) लगायें। यदि जलोका रक्त का पान न करे तो उस स्थान पर रक्त, भीर (डुध) या धूत की एक बूँद लगा दें। यदि जलोका फर भी रक्त का पान न करे तो डूसरी जलोका का प्रयोग करें। जब जलोका रक्त करती है तो वह अशवुर की भाँति गोता तथा मुख को ऊपर को ऊपर लगाने पर वह शुद्ध रक्त का पान करती है। जब वह शुद्ध रक्त का पान लगाहिये। जलोका पहले द्वितीय रक्त का पान करती है। तो उस स्थान पर तोट और कण्ड होने लगती है; ऐसा होने पर जलोका को हटा देना चाहिये। यह जलोका खीचने पर न होते तो उसके मुख पर बण तथा हीरिदा चूर्ण डाल दें, इससे वह उत्तर हट जाती है। एक समय में 10 ग्राम तथा लामाई जा सकती है। यदि एक ही जलोका हो तो उसकी पुच्छ में सुई से इससे जलोका को बाब-बार बमन कराने की आवश्यकता नहीं रहती।

जलोका पुच्छ में छिद्र करने पर जितने रक्त का वह पान करती है उतना ही रक्त उस द्वार से निकल जाता है। ब्रण में यदि कुछ अशुद्ध रुधिर शेष रह जाये तो उसके दंश एवं पर हिरिद्राचूर्ण, गुड़ और मधु लगाकर मदन करके वहाँ से कुछ रक्त निकाल हिल्डीन (Hirudine) पदार्थ जलोका की लार से निकलता है। उसके ब्रण में ने पर अत्यधिक रक्तस्राव हो सकता है।

3 grams of hirudine is anticoagulant for 100 c. c. of blood) रक्त रोकने के लिये उस स्थान का शीतल जल से सिचन करें या रक्तस्कन्दन की अन्य धियों का प्रयोग करें। जलोका को हटाकर दंश स्थान पर तपड़ल त्वक् का चूर्ण इकैं तथा तैल और लवण से मदन करें। जलोका को बमन कराने के लिये उसे उसे उपकृत कर दूने से हाथ की अंगुली तथा अंगुष्ठ द्वारा पूँछ से मुख की ओर तो जाये। [क्षयोंके जलोका के आमाशय के विवर (Cavities) आम मध्य की ओर बो झूलते हैं (Stomach opens anteriorly and

medially] अधिक जोर से मसल हेतु से जलौका की मूल्य हो जाती है, इसलिए श्युंग, जलौका एवं अलाहू को क्रमशः वात, पित एवं कफ दोषों में एवं बम्बन कराते समय उसे अधिक जोर से नहीं दबाना चाहिये। समयक दमन हेतु पर जलौका होने पर उसका पुनः प्रयोग एक सप्ताह के पश्चात कराना चाहिये। जलौका पानी में छोड़ने पर यदि डब जाये तो उसे और अधिक वमन कराना चाहिये। जलौका अल्प दोषयुक्त तथा अल्प कार्तीन व्याधियों में श्वी जाति की जलौका लगायें। इसका फिर छोटा तथा शरीर का उद्दंभाग बड़ा होता है और त्वचा पतली होती है। अधिक दोष होने पर तथा चिक्रकालीन रोग में पुरुष जाति की जलौका लगायें। इसका सिर बड़ा तथा शरीर का ऊर्ध्व भाग छोटा और त्वचा मोटी होती है।

### श्वृङ्ग (Cupping by horn)

श्युंग शब्द से गो-श्युंग को ही लेना चाहिये। यह 18 अंगुल लम्बा तथा इसका लगाने वाला भाग 3 अंगुल का होता है। इसके आचरण करने वाले भाग पर चूच्चक के समान या सरसों के बीज के बराबर छिद्र होता है। श्युंग उष्ण, मधुर और प्रक्षय होने से इसे वात प्रधान रोगों में प्रयोग किया जाता है। वाम्पटन के बात के साथ पित दोष होने पर तथा वात रक्त के कारण अंगों में कण्ठ और प्रश्ना हो जाने पर दीपक बुझ जाता है। इस अलाहू में आंशिक निवात स्थिति उत्पन्न हो जाती है। अलाहू को इस स्थिति में 10 से 15 मिनट तक रखा जाता है। इससे वहाँ की त्वचा ऊपर की खिच जाती है और वहाँ पर रक्तिमा उत्पन्न हो जाती है। यदि व्याधि प्रस्त स्थान पर प्रच्छिन लगा करके अलाहू को रखा जाए तो वहाँ से रेधिर भी निकल जाता है। आजकल अलाहू के स्थान पर दीपक पर शीशों का गति सकता है। इसे Cupping कहते हैं।

### प्रयोग विधि :

जिस स्थान पर आचूषण लगाना हो वहाँ पर प्रच्छान लगाकर उस पर शुरू रख दें। फिर उसके सूक्ष्म छिद्र में से बलपूर्वक आचूषण करें। इससे वहाँ पर निवात पर प्रच्छान कर्म किया जाता है। इसके अतिरिक्त इन्द्रिय, वातरक, शुद्धकुण्ठादि स्थिति (Vacuum) उत्पन्न हो जाती है। अब उसके मुख का बन्द कर देना चाहिए रोगों में जिनमें कि दोष या व्याधि अत्यधिक बढ़ी हुई हों, उनमें प्रच्छान द्वारा रक्त निकालना चाहिए।

### विधि—

### प्रच्छान (Scarification)

अलाहू अथवि घटिका, (वाम्पट के अनुसार) का प्रयोग निवात स्थिति के सिद्धांत पर किया जाता है। पहले रुण स्थान पर एक दीपक जला देते हैं। किर उस दीपक के ऊपर अलाहू (घटिका) को उतारा करके रख देते हैं। कुछ समय तक वात के दीपक जलता रहता है, परन्तु अलाहू के अन्दर स्थित वायु (Oxygen) का उपयोग हो जाने पर दीपक बुझ जाता है। इस अलाहू में आंशिक निवात स्थिति उत्पन्न हो जाती है। अलाहू को इस स्थिति में 10 से 15 मिनट तक रखा जाता है। इससे वहाँ की त्वचा ऊपर की खिच जाती है और वहाँ पर रक्तिमा उत्पन्न हो जाती है। आजकल अलाहू के स्थान पर शिरा, स्नायु, अरिश इत्यादि मर्म को बचाकर सम्यक् प्रकार इसलिये वह केवल अवगाहतर हृषित रक्त को ही निकाल सकता है। जलौका आचूषण शक्ति और भी कम होने से, वाम्पट रक्त को ही निक-

लीक्षण शस्त्र से सिरा, स्नायु, अरिश इत्यादि मर्म को बचाकर सम्यक् प्रकार

साहिती है, इसलिये दुष्ट रक्त के गम्भीर न होने पर जलौका को प्रयोग करना चाहिए। श्युंग, जलौका एवं अलाहू को क्रमशः वात, पित एवं कफ दोषों में एवं लगाया जावाहत, अवगाहत, अवगाहत तथा अवगाहत अवस्थाओं में प्रयोग करना उचित प्रतीत होता है।

### अलाहू (Cupping by gound)

अलाहू यन्त्र की लम्बाई 12 अंगुल तथा व्यास 3-4 अंगुल होता है। इसमें अलाहू अर्कोटर (Cavity) रहती है तथा दूसरी ओर यह खुला रहता है। अलाहू (लोकी) कट्ट, रक्ष एवं तीक्ष्ण होने से कफ दोषों में रक्त विस्तारण के लिए प्रयोग में लाई जाती है। कफ और वायु से डुष्ट रक्त में, वात-रक्त में तथा दो दोनों के अवगाहतर या त्वचा में होने पर इनको प्रयोग करना उचित होता है। जिस स्थान पर अलाहू लगाया जाता है वहाँ रक्तिमा उत्पन्न हो जाता है तथा इस प्रतिक्षोभक (Counter irritant) प्रभाव से गम्भीर स्थानों में रक्ताधिक्य (Hyperaemia) कम हो जाता है।

### प्रयोग विधि—

अलाहू अथवि घटिका, (वाम्पट के अनुसार) का प्रयोग निवात स्थिति के सिद्धांत पर किया जाता है। पहले रुण स्थान पर एक दीपक जला देते हैं। किर उस दीपक के ऊपर अलाहू (घटिका) को उतारा करके रख देते हैं। कुछ समय तक वात के दीपक जलता रहता है, परन्तु अलाहू के अन्दर स्थित वायु (Oxygen) का उपयोग हो जाने पर दीपक बुझ जाता है। इस अलाहू में आंशिक निवात स्थिति उत्पन्न हो जाती है। अलाहू को इस स्थिति में 10 से 15 मिनट तक रखा जाता है। इससे वहाँ की त्वचा ऊपर की खिच जाती है और वहाँ पर रक्तिमा उत्पन्न हो जाती है। आजकल अलाहू के स्थान पर दीपक पर शीशों का गति सकता है। अरिश इत्यादि मर्म को रक्तिमा उत्पन्न हो जाता है। आजकल अलाहू के स्थान पर शिरा जाए तो वहाँ से गति सकता है। अरिश इत्यादि मर्म को रक्तिमा उत्पन्न हो जाता है। आजकल अलाहू के स्थान पर दीपक पर शीशों का गति सकता है।

### प्रच्छान (Scarification)

प्रिण्डित रुधिर का अवसेचन करने के लिए तथा व्याधि के त्वचा गत होने पर प्रच्छान कर्म किया जाता है। इसके अतिरिक्त इन्द्रिय, वातरक, शुद्धकुण्ठादि (स्लाइटिकादि त्वचाकर मुख बन्द करने से उसमें निवात स्थिति बनी रहती है)। जलौका श्युंग को हटाना होता है तो उसका मुख खोल देना चाहिये। मुख के द्वारा आचूषण के स्थान पर आचूषण यन्त्र (Suction balls or pump) का भी प्रयोग किया जाता है। श्युंग में अधिक निवात स्थिति उत्पन्न होने पर यह अवगाहतम स्थान सकता है। श्युंग को खीच लेता है। अलाहू में इससे कम निवात स्थिति उत्पन्न होती ही रक्त को खीच लेता है। अलाहू में इससे कम निवात स्थिति उत्पन्न होती ही रक्त को खीच लेता है। अलाहू के स्थान पर यह अवगाहतर हृषित रक्त को ही निकाल सकता है। जलौका आचूषण शक्ति और भी कम होने से, वाम्पट रक्त को ही निक-

में (न बहुत गहरा हो, न बहुत पास-पास हो, न अधिक तिर्यक् (oblique) हो अंग के उपर दूसरा प्रच्छान लगा हो) नीचे से ऊपर की ओर को प्रच्छान लगाने का होता है।

### सिरावेध (Venection or venepuncture)

शर्य चिकित्सा में सिरावेध को चिकित्सा का आधा भाग माना जाता है।

(सिरावेधचिकित्साएँ शृंखला प्रक्रितिः)

बाख्द ने तो इसकी प्रधानता दिखाते हुये इसे विभिन्न रोगों की समृद्धि चिकित्सा ही कह दिया है।

**विधि—**

बर्षी अहु में जब बादल न हों, गीष्म अहु में तीसरे पहर में (जब उड़ाता अत्यधिक न हो) तथा शीत अहु में जब अत्यधिक शीत न हो, रोगी को स्नेह, स्वेदन देकर तथा द्रव बाहुल्य यवागु को खिलाकर मत्स्य समान चञ्चल सिराओं को उपयुक्त स्थानों से बोधकर स्थिर करें।

"भोणस्य बहुप्रथम सूचिष्ठाऽप्यत्यहृत्य च ।

भूयोऽपराह्न खिलाव्या साऽपरेणुस्यहृत्य चा ॥" शु० शा० ४  
शीण, अधिक दोष वाले एवं मूँछार्दि से पीड़ित रोगी में सिरावेध अपराह्न में हमरे या तीसरे दिन करना चाहिये।

**सिरा बांधने के स्थान—**पाद सिरावेध से जानु सन्धि के नीचे, परन्तु व्यथ

स्थान से 4 अंगुल ऊपर से बांधें। हस्त सिरावेध में कूर्मर सन्धि के नीचे से बांधें। न बौध सकने वाले स्थान पर (जैसे कंधा, चक्ष, नीठादि) रोगी को ऐसी स्थिति में बैठाना या खड़ा करना चाहिए जिससे व्यथ स्थान खिल जाये, जैसे श्रोणि, पीठ एवं कंधे की सिरावेध में रोगी को झुकायें, गिर नीचे बोकर तथा रोगी को बैठाकर तिरावेध करें। ऐसे ही पेट या बक्ष में वेधन करने के लिए छाती या नेट को कुलाकर गिर को ऊपर को तथा घोड़ा पीछे को हटाकर सिरावेध करना चाहिये। मेड़ में दूका कर, तालु में मुख खोलकर तथा अधोजिह्वा में जिह्वा को मोड़कर सिरावेध करें।

उत्तमाङ्ग की सिराओं के लिए रोगी को बैठाकर, गिर तथा घुटनों को इतना समीप लायें ताकि गर्दन पर मुट्ठी बन्द करके हाथ रखने से कूर्मर सन्धि स्थान घुटनों तक पहुँच जाए, या फिर शटक यन्त्र को गोचा तथा घुटनों में डालकर उसे कपड़ा निचोड़ने की तरह तब तक एंठते जायें जब तक कि सिरा का उत्थान न हो जाये। इस समय रोगी को अपने मुख में हवा भर लेनी चाहिए। इन उपरोक्त उपायों से सिराओं का उत्थान तथा नियन्त्रण करके ही सिरावेध करना चाहिये।

**सिरावेध विधि—**

सिराओं का अच्छी प्रकार से उत्पन्न तथा उन्हें नियन्त्रित करके, शीहि मुख

ग्रस्त या कुठारिका से (सिराओं के गम्भीर या उत्तान स्थिति के अनुसार), आधे व्यवहार के बराबर सिरा वेधन करें। ठीक परिमाण में वेधन करने के लिए ग्रस्त का तीसरा होना (पायना द्वारा साधित ग्रस्त) तथा ग्रस्त कर्म में हस्त कुशलता (Balanced hand) का होना अत्यावश्यक होता है। रक्त के अल्प मात्रा में लवित होने पर सिरा मुख पर तेल, लवण व तगरादि का दूर्ण मलना चाहिये या रोगी के पूँछ के मध्य भाग का पीड़न करना चाहिए। कुमुम पुष्प को तोड़ने से जैसे उससे पहले पीत लाल होता है वैसे ही सिरावेध में सर्वप्रथम उष्टु रक्त का लाल निकलता है। रक्त खिलावण के पश्चात् व्यण का शीतल जल से प्रशालन करना चाहिये तथा फिर सिरा के मुख पर तेल का प्लोट रखकर उसे बांध देना चाहिए।

**सुविद्धा सिरा—**ग्रस्त से सिरावेधन करने पर यदि रक्त धार ल्प में निकलने लगे तथा एक मुहर्ते समय में रक्त लाल रुक जाये (अर्थात् एक मुहर्ते समय के बाद तबाव हटाने पर रक्त लाल रुकता बन्द हो जाता है) तो इसे सुविद्धा कहते हैं। इसके पश्चात् रोगी प्रसन्नचित रहता है, जठराग्नि सम्म् रहती है तथा रोगी अपने को स्वस्थ एवं बलशाली अनुभव करता है। रक्त खिलावण के पश्चात् रोगी को अनुभव शीत, दीपनीय एवं लाल भोजन देना चाहिए।

**डुष्ट व्यधन—**अनुपयुक्त ग्रस्त से, अनुपयुक्त समय में तथा कार्य कुशलता विहीन बैच्च द्वारा किया गया सिरावेध डुष्ट व्यधन कहलाता है। इससे 20 प्रकार के सिराओं के दोष उत्पन्न हो जाते हैं।

- (1) डुष्टिद्वा—अल्प मुख ग्रस्त में कम वेधन होना।
- (2) अत्युद्वीप्त—बड़े (दीर्घ) ग्रस्त के कारण सिरा का अधिक कट जाना।
- (3) कुटिरता—हस्त कौशल न होने के कारण सिरा का दोनों ओर से वेध हो जाना।
- (4) पिच्छता—कुण्ठित ग्रस्त से सिरा का कुचला जाना।
- (5) अत्युद्वीप्त—सिरा का अधिक कट जाना।
- (6) ग्रस्तहता—तीक्ष्ण ग्रस्त से सिरा का पूर्ण रूप से कट जाना।
- (7) तिर्यक् विद्धा—सिरा का तिरछा कट जाना (Oblique cut)।
- (8) अपविद्धा—अनेक छिद्र युक्त विद्ध होना।
- (9) पुतः पुनर्विद्धा—कम छिद्र होने पर पुनः वेधन करना।
- (10) घुटुका—सिरा का नीचे से ऊपर की ओर की अनेक स्थानों से विद होना।

(11) अन्तः विद्धा—सिरा के अन्तः भाग (Inner side) से वेधन होने के कारण रक्त का कम मात्रा में ख्रिवित होना।

(12) कृषिता—यदि शस्त्र ठीक प्रकार से न चलने पाए तो सिरा का 1/4 भाग ही कटता है।

(13) कुछिक्षता—अधिक कटने से अधिक रक्त खाल का होता।

(14) अप्रब्रूता—अति शोत अहु में या मूँछड़ीद रहने पर सिरा में बेधन करने से रक्त का कम परिमाण में निकलता।

(15) परिशुल्का—वायु के कारण पतली तथा अत्प रक्त वाली सिराओं का बेधन करता।

(16) अव्यव्या—अवेद्य सिराओं का बेधन करता।

(17) बेपिता:—सिरा के ठीक से नियन्त्रित न होने पर हिलती हुई सिरा को कटने से उनका विषम (Irregular) रूप में कट जाता।

(18) अनुच्यत विद्या—बिना उत्थान किये सिरा का बेधन करने से ठीक से बेधन नहीं होता।

(19) बिदूता:—सिरा को चंचलात्मका में अर्थात् बिना नियन्त्रित किए बेधन करता।

#### दोणानुसार सिरबेध—

(1) पादवर्ष, अचबाहुक, खड्ज, कोठुपीर्ष, विसर्प, बातरक्त, बातकण्टक एवं विचाकिका रोगों में पैर के क्षित्र मर्म से 2 अंगुल ऊपर की सिरा अथवा शुष्किका सिरा जाल (Dorsal venous plexus) का बेधन करें।

(2) खड्ज, कोठुपीर्ष, पंझ, एवं बात बेदनओं में—गुलफ से 4 अंगुल ऊपर हस्तबोताना सिरा (Small saphenous vein) का बेधन करें।

(3) अपच में—इन्द्रवस्त मर्म से 2 अंगुल नीचे हस्तबोतान सिरा का बेधन करें।

(4) विरवाची तथा रूधसी में—कूपर/जानु मन्थ से 4 अंगुल ऊपर या नीचे की सिरा का बेध करें।

(5) गलगण्ड में—अंसमूल में स्थित और्वीसिरा का बेध करें।

(6) ल्लीहा बूढ़ि में—बाम भुजा के दो स्थानों पर बेध करें। कूपर रान्धि के सामने की मध्य बाह की योजनी सिरा (Median cubital vein) में या कनिष्ठिका एवं अनामिका अंगुली में स्थित मध्य सिरा (First dorsal metacarpal vein) में बेध करें।

(7) यहुल्युदर, कास तथा इवास रोगी में—उपरोक्त ल्लीहा बूढ़ि बाली दण्डिण और की सिराओं का बेध करें।

(8) प्रवाहिका जन्यसूत से—शोण प्रदेश में चारों ओर की दो अंगुल लेने में स्थित सिराओं (Superficial circumflex iliac veins) का बेधन करें।

(9) परिककिका, उपरंभा, शूक दोष एवं शूक सम्बन्धी विकारों में:—

पृष्ठिका सिरा (Superficial dorsal vein of penis) का बेध करें।

(10) पारबंधल एवं अल्पिक्किमि में—वामपार्श्व का कक्षा और स्तन के मध्य की सिरा (Long thoracic vein) का बेधन किया जाता है।

(11) बाहुपोष एवं अचबाहुक में—अंसों के मध्य स्थित सिरा का बेध करें।

(12) तटीयक ऊवर में—त्रिक्सिन्थि के मध्य स्थित सिरा का बेधन करें।

(13) चटुर्यक ऊवर में—अश सन्धि अधि: स्थित किसी भी पाश्वर्की शिरा का बेध करें।

(14) अपस्मार में—हुस्तन्थि के मध्य की सिरा का बेध करें।

(15) उन्माद में—शांख प्रदेश तथा केशान्त सन्धिगत सिरा (Superficial temporal vein) या उर, अपांग या ललाट की सिरा का बेध करें।

(16) दत्त व्याधि या जिहा रोगों में—अधो जिहा सिरा (Sublingual vein) का बेधन करें।

(17) तालू गत रोगों में—तालूवीय सिरा का बेधन करें।

(18) कर्ण रोगों में—कान के ऊपर या आस-पास की किसी सिरा का बेधन करें।

(19) नासागत रोगों में—नासा-प्रसन्निका सिरा का बेधन करें।

(20) तिमिर तथा नेत्रविकावि नेत्र विकारों में—उपनासिका सिरा का, ललाट की सिरा का या अपांग की सिरा का बेधन करें।

(21) शिर के रोग तथा अधिमध्य में—उपनासिका सिरा का अथवा ललाट या अपांग की सिरा का बेधन करें।

बारभट के अनुसार यदि उपरोक्त सिराये दिखाई न दें तो उस स्थान के मर्मों को बचाते हुए सभी की किसी अन्य सिरा का बेधन करता चाहिए।

पूर्व बाणित रोग, जैसे महाकृष्ण, ल्लीहा बूढ़ि, विसप, विसहट, रसी-पित, विद्यथि तथा अन्य रस्तज रोगों में जबकि व्याधि बहु गई हो या दोष अत्यधिक दृष्ट हो त्रुके हों या वितपदि तथा रक्त भाराधिक्य रोगों में जब व्याधि का तत्काल शमन करना हो तो सिराबेध द्वारा रक्त निकालना चाहिए। आजकल भी रक्तमाराधिक्य (High blood pressure) तथा रक्ताधिक्यजन्म हृत्कायानिरोध (Congestive cardiac failure) में रक्तविकावण (Venesection) करया जाता है।

## 23

(4) अस्थि मर्म  
(5) सन्धि मर्म

कुल योग 107

8  
20

### मर्म

#### (VITAL ORGANS)

"मारणतीर्ति मर्मणि"—आचार्य डल्हण के मतानुसार जिन स्थानों पर आधात लगने से मृत्यु होती है उनको मर्म कहते हैं। मर्मित्रात से तन्त्रका के प्रभावित होने से बड़ी हुई (प्रबृद्ध) वायु इन मर्मित्रात प्रायः मृत्युकारक होता है, परन्तु यदि मर्मित्रात का रोगी बच भी जाये तो मर्म में विकलता आ जाती है या कुच्छ साध्य रोग उत्पन्न हो जाते हैं। चर्म—मर्म महत्वपूर्ण स्थान होते हैं। इनमें प्राण विशेष रूप से रहते हैं तथा ये मांस, सिरा, स्नायु, अस्थि और सन्धि के मिलने से बनते हैं।

#### मर्म के भेद :

मर्म संख्या में 107 होते हैं। मर्मों का वर्गीकरण अनेक प्रकार से किया गया है।

- (I) संरचना के अनुसार मर्म भेद।
- (II) शारीर भागानुसार मर्म भेद।
- (III) आधात परिणामानुसार मर्म भेद।
- (IV) चरक मतानुसार मर्म भेद।
- (V) परिमाणानुसार मर्म भेद।

#### (I) संरचना के अनुसार मर्म भेद :

सब प्रकार के मर्म मांस, सिरा, स्नायु, अस्थि और सन्धि के संयोग से बनते हैं। संरचना की दृष्टि से उनका नाम उस धातु के नाम पर रखा जाता है जिस धातु की संरचना (जो धातु) उस मर्म में अधिक रहती है। संरचना के आधार पर मर्म प्रकार के होते हैं।

- (1) मांस मर्म
- (2) सिरा मर्म
- (3) स्नायु मर्म

शारीर भागानुसार विभाजित मर्मों के नाम, रोग एवं संख्या का वर्णन आगामी मर्म विज्ञान तालिका में किया गया है।

- (III) आधात परिणामानुसार मर्म भेद—  
मर्मों पर आधात होने के परिणाम के अनुसार मर्म निम्नलिखित पांच प्रकार के होते हैं।

- |                            |    |
|----------------------------|----|
| (1) सद्धःप्राण हर मर्म—    | 19 |
| (2) कालान्तर प्राणहर मर्म— | 33 |
| (3) विशल्यच्छ मर्म—        | 3  |
| (4) वैकल्यकर मर्म—         | 44 |

11  
41  
27

## (5) रुजाकर मर्म

(1) सद्यः प्राणहर मर्म—ये मर्म आगेये गुण प्रधान होते हैं। इन पर आधात लगने से शरीर से अग्नि गुणों का शीघ्रता से हाल हो जाता है तथा इससे रोगी सात रात्रि से पहले ही मर जाता है। मृत्यु से पूर्व रोगी को तीव्र बेदना होती है, लम्प रसादि इन्द्रियों के विषयों के ज्ञान का नाश हो जाता है तथा मन एवं तुष्टि में विपरीतता आ जाती है। ये संख्या में १९ होते हैं। जैसे—

“शुगाटकान्यधिष्ठितः गांड्यो कण्ठसिरण्डुम् ।  
हृदयं बस्तिनाम्भो च धमन्ति सद्योहतान्ति तु ॥ शु० शा० ६

अधिष्ठिति	—१	गुद	—१	मातृका (कंठसिरा)	८
हृदय	—१	बास्ति	—१		
नाभि	—१	शांख	—२		
शुगाटक	—४				

आचार्य चरक ने इनमें से हृदय, मस्तिष्क तथा बास्ति को मुख्य मर्म माना है। (C.e Tripod of life) कुम्भकुस का भी हृदय में ही समावेश समझना चाहिए। निम्न नाम भी दिया गया है। अन्य मर्मों पर आधात से मृत्यु का कारण इनको विषमं रूप से (Indirectly) ये तीनों ही मर्म होते हैं। इन तीनों में भी हृदय अप्रत्यक्ष रूप से अर्थात् तद्दृढ़ विशेषण ज्ञेयता का विशेष श्यान कहा गया है अर्थात् “तद्दृढ़ विशेषण ज्ञेयता को ज्ञेयता का विशेष श्यान”।

स्थानम् । हृद्. कार्यं नष्ट (Heart failure) होने से मृत्यु होती है। जिन स्थानों पर वेगस तर्णिका (Vagus nerve) के तन्तु अधिक रहते हैं (जैसे-गुदा, पृथुदया कला, नाभि तथा कण्ठ) उन स्थानों पर तीव्र आधात होने से, वेगस के अत्यधिक उत्तेजित होने के कारण हृदय गर्भि में अवरोध होकर तुररत्न मृत्यु हो सकती है।

(2) कालान्तर प्राणहर मर्म—ये मर्म सौम्य तथा आगेय गुण प्रधान होते हैं। इन पर आधात होने से व्यापि अन्तिन शीघ्रता से क्षीण हो जाती है, तथापि सौम्य गुण उसे क्षीण होने से कुछ देर तक रोके रखता है, इसलिए रोगी की कालान्तर में (१५—३० दिन में) मृत्यु होती है। इन मर्मों पर आधात लगने से धारुक्षण के लक्षण तथा बेदना होती है। ये संख्या में ३३ होते हैं जैसे—

नितम्ब	—२	वृहती	—२
कटिक तरुण	—२	पाष्ठर्ब सर्विद्य	—२
कित्रि	—५	इन्द्र वर्सित	—४
सीमन्त	—५	तद्दृढ़ हृदय	—४

## बक्ष के मर्म—

स्तन मूल—२  
अपलाप —२

(यदि इनसे मर्म आधात के कारण निरन्तर कई दिन तक थोड़ा-२ रक्तस्राव होता रहे तो यह रक्तस्राव मृत्यु का कारण होता है।) इनमें से शल्य को बाहर निकालते समय मर्म की वायु भी बाहर निकल जाती है, इस कारण रोगी की मृत्यु हो जाती है (शल्य रहने पर मृत्यु नहीं होती) इन मर्मों पर आधात होने से विकलता (Deformity) उत्पन्न हो जाती है। ये मर्म मारक बहुत कम होते हैं। ये संख्या में ३ होते हैं।

## “उत्क्षेपी स्थपती चैव विशल्यत्वानि निहितेत् ।”

उत्क्षेपी—२  
स्थपती—१

(3) विशल्यधन मर्म—यह वायव्य गुण प्रधान मर्म होते हैं। इनमें से शल्य को बाहर निकालते समय मर्म की वायु भी बाहर निकल जाती है, इस कारण रोगी की मृत्यु हो जाती है (शल्य रहने पर आधात होने से विकलता (Deformity) उत्पन्न हो जाती है। ये मर्म मारक बहुत कम होते हैं। ये संख्या में ३ होते हैं।

कणा	—२
कुकुन्दर	—२
कक्षाधर	—२
विधुर	—२
कुकाटिक	—२
आवर्त	—२
कर्व	—४
आणि	—४
लोहिताश	—४
मणिबन्ध	—२

(4) देंकल्यकर मर्म—ये मर्म सौम्य होने के कारण आधात होने पर भी प्रणों को सहारा देते रहते हैं। इन पर तीव्र आधात से कदाचित् ही मृत्यु होती है। इनमें आधात से स्थाई विकलता (permanent disability) उत्पन्न हो जाती है। ये संख्या में ४ होते हैं, जैसे—

बाह्यी	—२
जान्	—२
उर्बा	—२
विटप	—२
कूर्पर	—२
अंस	—२
अंसफलक	—२
अपांग	—२
नीला	—२
मन्या	—२

(5) लुजाकर मर्म—ये मर्म आगेय तथा वायव्य गुण प्रधान होते हैं, इस कारण इनमें पीड़ा विशेष रूप से होती है। इनमें आधात लगने पर यदि चिकित्सा की व्यवस्था ठीक से न की जाए तो विकलांगता उत्पन्न हो जाती है। इन मर्मों पर आधात से मृत्यु कदाचित् ही होती है। इनसे मृत्यु केवल तीव्र आधात के कारण ही होती है। ये संख्या में ८ होते हैं, जैसे—

कूर्वशिर	—२
मणिबन्ध	—२
गुरुक	—२

(iv) चरक भट्टानुसार मर्म भेद :

मर्म दो प्रकार के होते हैं।

(1) स्कन्धाश्रित मर्म (2) शाखाश्रित मर्म

इन दोनों में स्कन्धाश्रित मर्म ही प्रधान माने जाते हैं, क्योंकि शाखागत मर्म इन्हें पर आधित होते हैं।

(1) स्कन्धाश्रित मर्म—स्कन्धाश्रित मर्म में निम्नलिखित तीन मर्म ही प्रधान हैं, इन तीनों मर्मों पर सम्पूर्ण देह इन्द्रियों आधित हैं।

(क) हृदय (ख) शिर (मध्य) (ग) वर्सित

(क) हृदय—इसमें 10 धमनियाँ होती हैं जो प्राणादि का बहन करती हैं जैसे—

(1) प्राण (2) अपान (3) मन (4) तुर्णिंदि

(5) पाँच महा भूत (आकाश, वायु, जल और पृथ्वी)।

हृदय के दोषाकाल होने पर लक्षण—कास, घ्वास, बलौनीता, कठं का सखना, कलोम का नीचे की खिच जाना, जिह्वा का बाहर को आना, मुख एवं तालुक का सुखना, अपस्मार, उत्तमाद, प्रलाप तथा चेतना नाश होकर अन्त में मृत्यु हो जाती है। परन्तु इस पर अधिक आधात के कारण मृत्यु तुरन्त हो सकती है।

(ख) शिर—इन्द्रियों, इन्द्रिय-बहु ग्रोत और प्राणवह-छोत शिरके आधित रहते हैं।

शिर के दोषाकाल होने पर लक्षण—मन्त्यारतम्भ, अर्दित, नेत्र-विघ्रह, मोह, बेल्डन, चैत्यनाश, कास, घ्वास, हृत्यह, मुक्ता, अत्प्रष्ट भाषण, नेत्र बन्द, रहना, गङड स्फङ्गन, जूँभा, मुख से लालानाव तथा मुख का एक पारचं को हो जाना।

(ग) वर्सित—यह जलवह स्रोतों का स्थान है।

वर्सित के दोषाकाल होने पर लक्षण—मुत्र एवं मल में रक्कावट, वृक्षण, मूत्रेन्द्रिय तथा वर्सित में शूल, मण्डल, उदावर्ती, गुल्फ, बाताल्डीता, उत्सर्तम्भ, नाभिप्रहर, गतयह तथा श्रोणि-ग्रह इत्यादि लक्षण होते हैं।

आचार्य चरक ने मुख्य रूप में उपरोक्त तीन ही मर्म माने हैं, परन्तु इन मर्मों पर आधात होने से उनमें वेदना, रक्तस्राव, विकर्णीगता इत्यादि लक्षणों का वर्णन नहीं किया है। चरक ने मर्मों के दोषाकाल होने पर केवल मात्र इनसे उत्पन्न व्याघियों तथा उनकी चिकित्सा का ही वर्णन किया है।

आचार्य चरक ने मुख्यतः हृदय, शिर एवं वर्सित ये तीन मर्म माने हैं। नामिक नामक मर्म का इप्पमें समावेश नहीं किया गया है। शिर में अनेक प्रकार की दीर्घ

(टुफ्कर व्याधियाँ) होने के कारण चरक ने शिर मर्म को प्रधानता दी है। आचार्य मुश्तुत ने सम्भवतः इसे इसलिए प्रधानता नहीं दी कि शिर पर थोड़ा सा आघात लगने पर मजबूत अस्थियाँ उसे रोक लेती हैं और आघात शिर मर्म तक नहीं पहुंच सकता, जबकि मुख्य मर्म पर थोड़ा सा आघात भी मृत्यु कारक होता है। नाभि में कोई विशेष दोषज रोग के न होने के कारण आघात दृष्टि कोण से इस मर्म को विशेष मर्म नहीं माना। परन्तु मुश्तुत ने आघात दृष्टि कोण से इस मर्म को भयानक अवस्थायें उत्पन्न हो सकती हैं (मुश्तुत एक शत्य चिकित्सक होने से उसने शत्य प्रधान अवस्थाओं को मुख्य माना है)।

(v) परिमाणानुसार मर्म भेद :

परिमाण भट्टानुसार मर्म पाँच प्रकार के होते हैं। परिमाण मनुष्य की स्वयं की अंगुनी के अनुसार लिया जाता है।

(1) चार अंगुली परिमाण के मर्म—यह हयेली के गढ़दे के बराबर होते हैं, जैसे—हृदय, नाभि, वर्सित, गुद, कूचं, नीला, मन्या तथा मातुका धमनियों एवं शिर के श्याटक तथा सीमत मर्म।

(2) तीन अंगुल परिमाण के मर्म—कूपर एवं जान मर्म।

(3) दो अंगुल परिमाण के मर्म—मणिवन्ध एवं गुल्फ मर्म।

(4) एक अंगुल परिमाण के मर्म—कशवर, विटप, स्तनमूल, कूचं शिर, ऊर्मी एवं बाढ़ी।

(5) आधा अंगुल परिमाण के मर्म—उपरोक्त मर्मों के अतिरिक्त अन्य मर्म आधा अंगुल परिमाण के होते हैं।

		प्रा. प्रा.		प्रा. प्रा.		प्रा. प्रा.		प्रा. प्रा.		प्रा. प्रा.		प्रा. प्रा.	
		प्रा. प्रा.											
9	41	27	8	20									

## प्रा. प्राचीन शिल्प

नाम	मांस मर्म	सिरा मर्म	स्नायु मर्म	अस्थि मर्म	सन्धि मर्म
टांग में 11 X 2 बाहू में 11 X 2	इन्द्रवस्ति = 2 + 2 तलहृदय = 2 + 2	उर्वी = 2 + 2 लोहिताक्ष = 2 + 2	कूच = 2 + 2 कूचशिर = 2 + 2 आण = 2 + 2 क्षिप्र = 2 + 2 विटप या कक्षाधर = 2 + 2		जानू, गुल्फ या मणिबन्ध = 2 + 2 जानू या कूर्चर = 2 + 2
उदर में = 3 तथा वक्ष में = 9	गुद = 1 स्तन रोहित = 2	नाभि = 1 हृदय = 1 स्तन मूल = 2 अपलाप = 2 उपस्तम्भ = 2	वस्ति = 1		
पीठ के मर्म 14		पाश्व सन्धि = 2 वृहती = 2	अंस = 2	कटिकतरुण = 2 नितम्ब = 2 अंसफलक = 2	कुकुन्दर = 2

नाम	मांस मर्म	सिरा मर्म	स्नायु मर्म	अस्थि मर्म	सन्धि मर्म	म.
जनु में = 37		मातृका = 8 कणा = 2 अपांग = 2 स्थपनी = 1 शृंगाटक = 4 नील धमनी = 2 मन्या = 2	विधुर = 2 उत्केप = 2	शंख = 2	अधिपति = 1 आवर्त = 2 कृकाटिका = 2 सीमन्त = 5	
सद्यः प्राणहर मर्म = 19	गुदा = 1	हृदय = 1 नाभि = 1 मातृका = 8 शृंगाटक = 4	वस्ति = 1	शंख = 2	अधिपति = 1	
कालान्तर प्राणहर मर्म = 33	तल हृदय = 4 इन्द्रवस्ति = 4 स्तनरोहित = 2	वृहती = 2 अपलाप = 2 उपस्तम्भ = 2 पाश्व सन्धि = 2 स्तनमूल = 2	क्षिप्र = 4	कटिकतरुण = 2 नितम्ब = 2	सीमन्त = 5	

सिरा मर्म	यह भ्रुवों के बाह्य छोर पर, तीव्र की ओर तथा आखों के बाहर की ओर होता है।	विवरण
सन्धि मर्म	यह मर्म भ्रुवों में नीचे की ओर रहता है।	
अस्थि मर्म	यह मर्म भ्रुवों में ऊपर की तथा कान और मायें के नीचे में स्थित होता है।	
स्नायु मर्म	भ्रुवों के ऊपर बालों के सिरे पर उरक्षे प मर्म होता है।	
सिरा मर्म	— यह दोनों भ्रुवों के दोनों में होता है।	
सन्धि मर्म	शिर की 5 सन्धियों में 5 ही सीमांत मर्म होते हैं।	
सिरा मर्म	ये मर्म नासिका, कान, ताक, जिहा को पोषण देने वाली सिराओं के मध्य में रहते हैं।	
सन्धि मर्म	मर्मिटाक के अन्दर ऊपर की ओर सिराओं के सन्धि स्थान (बालों के अन्दर अर्थात् भंवर चक्र के समान) को अधिक पति मर्म कहते हैं।	

संख्या संकेत	नाम	संख्या परिमाण	मर्द भेद
१	संक्षिप्त तथा बाहु के मर्म	४	५ अंगुल कालान्तर प्राणहर

स्थिति	आधार परिणाम
रचनात्मक	स्थिति वर्णन तालिका

वक्तव्य Probabilities
-----------------------

संख्या संकेत	नाम	संख्या परिमाण	मर्द भेद	स्थिति	आधार परिणाम	वक्तव्य Probabilities
१	संक्षिप्त तथा बाहु के मर्म	४	५ अंगुल कालान्तर प्राणहर	स्नायु मर्म	यह मर्म अंगुल और मध्यमा के बीच में स्थित होता है।	अक्षेप आते हैं, इसे रोगी की मृत्यु हो जाती है।
२	तलहृदय	४	४ अंगुल	माँस मर्म	यह तल्बे में मध्यमा अंगुली की खेबा में स्थित होता है।	तेलना के कारण मृत्यु होती है।
३	कूच	४	४ अंगुल वैकल्यकर	स्नायु मर्म	यह क्षिप्र मर्म से ऊपर दोनों ओर रहता है।	तेलना के कारण मृत्यु होती है।
४	कूच शिर	४	१ अंगुल रुजाकर	स्नायु मर्म	पैर में गुलक या मणिबन्ध संधि के स्नायु मर्म नीचे दोनों ओर होता है।	तेलना के कारण मृत्यु होती है।
५	गुलक/मणिबन्ध	४	२ अंगुल रुजाकर	अस्थि मर्म	जंधा, पैर/बाहु और हाथ की संधि को नीचे दोनों ओर होता है।	तेलना के कारण मृत्यु होती है।
६	इन्द्र वर्त	४	१ अंगुल कालान्तर प्राणहर	मांस मर्म	यह यांत्रिक के मध्य में स्थित होती है (पार्टिंग से १३ अंगुल ऊपर, जंधा में)।	इसमें वेदना, अंग में स्तनधरा तथा विकलांगता हो जाती है।
७	जानु/कूर्दर	४	३ अंगुल वैकल्यकर	संन्धि मर्म	जंधा और उरु, बाहु और अंग बाहु की संन्धि को कहते हैं।	इसमें वेदना, अंग में स्तनधरा तथा विकलांगता हो जाती है।
८	आणि	४	— वैकल्यकर	स्नायु मर्म	यह जानु/कूर्दर, संन्धि के ऊपर ३ अंगुल स्थान में दोनों ओर रहता है।	इसमें जिससे लंगड़पन या हस्त में क्रिया हीनता हो जाती है।
९	उर्वो/बाह्वी	४	१ अंगुल वैकल्यकर	सिरा मर्म	यह उर्वो/बाह्वी के बीच में होता है।	इसमें रक्त शय से टांग सूख जाती है।
१०	लोटिताथ	४	५ अंगुल वैकल्यकर	सिरा मर्म	यह उर्वो/बाह्वी की ऊपर में अर्थात् चक्षण/कक्षा में होता है। यह संन्धि के ऊपर या नीचे तथा उर्वो/बाह्वी के ऊपर रहता है।	Paralytic or ischaemic due to involvement of biceps brachialis, radial and ulnar nerves.
११	विटप्प/कक्षधर	४	१ अंगुल वैकल्यकर	स्नायु मर्म	यह चक्षण और चृष्ण, कक्षा और नीचे तथा उर्वो/बाह्वी में होता है।	Femoral/axillary vessels

## मासं विकास तालिका

क्रम संख्या	नाम	संख्या परिमाण	मासं भेद	स्थिति		आधारत पाणीम	वक्षतव्य Probabilities
				आधारत पाणीम	रचनात्मक		
1	दिप्प	4	½ अंगुल कालान्तर प्राणहर	स्नायु मर्म स्थिति	यह मर्म अंगूठे और मध्यमा के बीच में स्थित होता है।	आंखेप आते हैं, इससे रोगी की मृत्यु हो जाती है।	It is the main site for tetanus infection viz. 1st dorsal metacarpal/metatarsus ligament, deep peroneal nerve, muscles & tendons.
2	तलहृदय	4	4 अंगुल	स्नायु मर्म सांस मर्म	यह तलबै में मध्यमा अंगुली की रेखा में स्थित होता है।	वेदना के कारण मृत्यु होती है।	Palmar/Plantar aponeurosis and muscles.
3	कूर्च	4	4 अंगुल वैकल्यकर	स्नायु मर्म सांस मर्म	यह क्षिप्र मर्म से ऊपर दोनों ओर रहता है।	अंग में तिरछापन तथा कम्पन होता है।	Tendons of tarsometatarsal intertarsal/carpal, metacarpal & inter carpal ligaments.
4	कूर्च शिर	4	1 अंगुल रुजाकर	स्नायु मर्म सन्धि मर्म	पैर में गुलफ या मणिबच्च सन्धि के नीचे दोनों ओर होता है।	इसमें वेदना और सूजन होती है।	Sprain of the lateral ligament or the ankle/wrist.
5	गुलफ/मणिबच्च	4	2 अंगुल रुजाकर	अस्थि मर्म सांस मर्म	जंचा, पैर/बाहु और हाथ की सन्धि को कहते हैं।	इसमें वेदना, अंग में स्तब्धता तथा विकलांगता हो जाती है।	Ankle/wrist joint.
6	इन्ह वर्फ त	4	½ अंगुल कालान्तर प्राणहर	सांस मर्म सन्धि मर्म	यह शाखा के मध्य में स्थित होती है (पाणीम से 13 अंगुल ऊपर, जंचा में)।	इससे रक्त क्षय से मृत्यु होती है।	Lower part of the cubital/popliteal fossa.
7	जानु/कूर्पंर	4	3 अंगुल वैकल्यकर	सन्धि मर्म सांस मर्म	जंचा और उरु, बाहु और अग्र बाहु की सन्धि को कहते हैं।	जिससे सन्धियों की कार्यहीनता होती है जिससे लगड़ापन या हस्त में क्रिया हीनता हो जाती है।	Knee/elbow joint.
8	आणि	4	— वैकल्यकर	स्नायु मर्म सिरा मर्म	यह जानु/कूर्पंर, सन्धि के ऊपर अंगुल स्थान में दोनों ओर रहता है।	इसमें शोफ की वृद्धि एवं टांग/बाहु में स्तब्धता हो जाती है।	Tendons of quadriceps femoris or femoral nerve. Tendons of biceps brachialis, median, radial and ulnar nerves.
9	उर्वी/बाही	4	1 अंगुल वैकल्यकर	सिरा मर्म सिरा मर्म	यह उरु/बाहु के बीच में होता है।	इसमें रक्त क्षय से टांग सूख जाती है।	Paralytic or ischaemic atrophy due to involvement of brachial artery, basilar vein and femoral vessels.
10	लोहिताद्ध	4	½ अंगुल वैकल्यकर	स्नायु मर्म	यह उरु/बाहु की जड़ में अर्थित वेणु कक्षा में होता है। यह सन्धि के ऊपर या नीचे तथा उर्वी/बाही के ऊपर रहता है।	Femoral/axillary vessels.	
11	विटप/कक्षधर	4	1 अंगुल वैकल्यकर	स्नायु मर्म	यह वंशक्षण और वृषण, कक्षा और कक्ष के बीच में रहता है।	इससे न्युक्सकता या पक्षाचात (बाहु में) हो जाता है।	Spermatic cord/brachial plexus.

## भूमि विज्ञान तालिका

संख्या संकेत	नाम	संक्षया परिमाण	अधारत परिणामाभ्यास		स्थिति	आधारत परिणाम	वर्तमान Probabilities
			मापदंड	रचनाभूमि			
<b>उदार के मर्म-</b>							
12	गुद	1 4 अंगुल	सच्च प्राणहर	मांस मर्म	यह वायु और मल की निकालते वाला स्थूलान्तर से सम्बन्धित मर्म है।	इसमें उरन्त मृत्यु होती है।	Anus and anal canal, it is supplied by vagal fibres which on stimulation or reflexly causes cardiac arrest.
13	वस्ति	1 4 अंगुल	सच्च प्राण हर	स्नायु मर्म	थोड़े मांस एवं थोड़े रक्त युक्त कटि में स्थित, मूत्र का स्थान वस्ति होती है।	अधारत से एक ओर ब्रण होने पर तथा अपमरी से दोनों ओर ब्रण (बेघन) हो जाने पर उरन्त मृत्यु होती है।	Urinary bladder (its walls are thin & less muscular)
14	नाभि	1 4 अंगुल	सच्च प्राण हर	सिरा मर्म	पवाणशय और आमाशय के बीच में सिराखों का उत्पत्ति स्थान नाभि माना जाता है।	अधारत से उरन्त मृत्यु होती है।	Umbilical region
<b>वक्ष के मर्म-</b>							
15	हृदय	1 4 अंगुल	सच्च प्राण हर	सिरा मर्म	यह स्तनों के मध्य में वक्ष के भीतर तथा आमाशय क्षार के पास होता है।	सत्त्व, रजव तम का तथा प्राणों का स्थान होने से उरन्त मृत्यु हो जाती है।	Heart.
16	स्तनमूल	2 1 अंगुल	कालान्तर प्राण हर	सिरा मर्म	ये स्तनों के 2 अंगुल नीचे दोनों ओर रहता है।	इनमें कफाधिक्य से कास या श्वास द्वारा मृत्यु होती है।	Basal part of the lungs.
17	स्तन रोहित	2 2 अंगुल	कालान्तर प्राण हर	मांस मर्म	यह स्तन चूचकों के 2 अंगुल ऊपर दोनों ओर रहता है।	इसके रक्त के भर जाने से कास या श्वास द्वारा मृत्यु होती है।	Apex of lungs, subclavian vessels & Pectoralis major muscles
18	अपलाप	2 1 अंगुल	कालान्तर प्राण हर	सिरा मर्म	यह मर्म दोनों ओर अस-कूट के नीचे तथा पाष्ठों के ऊपरी भाग में होता है।	इसमें रक्त के रूप में बदलने से मृत्यु होती है।	Axillary lymph nodes, thoracic & sub scapular vessels.
19	अपस्तम्भ	2 2 अंगुल	कालान्तर प्राण हर	सिरा मर्म	वक्ष में दोनों ओर वात को ने जाने सिरा मर्म वाली 2 नाइयाँ अपस्तम्भ मर्म हैं।	इसमें वात के भर जाने से कास या रक्त के कारण दोनों की मृत्यु हो जाती है।	Both bronchii.
<b>पृष्ठ के मर्म-</b>							
20	कटोक तरण	2 ½ अंगुल	कालान्तर प्राण हर	मर्त्य मर्म	यह पृष्ठवंश के दोनों ओर प्रत्येक श्रोणिकाएँ में होता है।	इसमें दोनों रक्तस्थय से पाण्डु वर्ण का (विवर्ण) एवं हीन रूप चाला हो होकर पर जाता है।	Sacro iliac joint, iliac bones.
21	कुकुन्दर	2 ½ अंगुल	वैकल्यकर	मर्त्य मर्म	यह मर्म पाण्डु एवं जघन के बाल्य पृष्ठवंश के दोनों ओर रहता है।	इसमें शरीर के निचले भाग में स्पर्श जात की अप्रतीति तथा चेष्टा का नाश होता है।	Sciatic notch, ilio-ischial union.

वक्तव्य  
Probabilities

क्रमांक	नाम	संख्या	परिमाण	मर्म भेद	आधात परिणाम	स्थिति	आधात परिणाम		
अस्थि मर्म	अस्थि मर्म	अस्थि मर्म	अस्थि मर्म	अस्थि मर्म	अस्थि मर्म	अस्थि मर्म	अस्थि मर्म		
22	नितम्ब	2	१ अंगुल	कालान्तर प्राणहर	अस्थि मर्म	यह शोणीकांड के ऊपर, आमाशय को डकने वाले, पाइवों के बीच के स्थान से सम्बन्धित मर्म हैं।	इनसे शरीर के निचले भाग में शोष एवं निर्बलता से मर्यु होती है।	Floating ribs or ala of ilium.	
23	पाइवं सरिय	2	१ अंगुल	कालान्तर प्राणहर	सिरा मर्म	पाइवों के नीचे लगे हुए जघन और पाइवों के बीच में जघन के ऊपर की ओर तिरछी पाश्वं सट्ठि होती है।	इसमें रक्त के अतिसाव से उत्पन्न उपदर्वों के कारण रोगी मर जाता है।	Common iliac vessels & renal vessels.	
24	बहती	2	१ अंगुल	कालान्तर प्राणहर	सिरा मर्म	स्तन मूलों के समानान्तर, पृष्ठ वंश के दोनों ओर बहती मर्म रहता है।	इसमें रक्त के अतिसाव से इनसे बाहुओं में मुक्ता और शोष होता है।	Hilum of liver & spleen, sub scapular & trans thoracic arteries.	
25	अंसफलक	2	१ अंगुल	वैकल्यकर	अस्थि मर्म	यह पीठ के ऊपर पृष्ठ वंश के दोनों ओर त्रिक से सम्बद्ध रहता है।	इनसे बाहु में मुक्ता और शोष होता है।	Spine of scapula.	
26	अंत	2	१ अं	वैकल्यकर	स्नायु मर्म	यह मर्म स्कन्थ को बांधने वाला होता है।	इनसे बाहु क्रियाहीन (जड़) हो जाते हैं।	Coracohumral & glenohumeral ligaments.	
<b>ऊर्ध्वजन्तु के मर्म</b>									
27	नीला तथा मर्या	4	४ अंगुल	वैकल्यकर	सिरा मर्म	ये कण्ठ नाड़ी के दोनों ओर 4 धमनियां होती हैं।	इनसे गंभीरन, स्वर विकृति तथा रस्त्रांत का नाश होता है।	Superior laryngeal nerve, glossopharyngeal nerve, hypoglossal nerves & lingual vessels.	
28	मातृकाये	8	४ अंगुल	स्व प्राणहर	सिरा मर्म	ये गीवा के दोनों ओर की 4-4 सिराये होती हैं।	इनसे तुरन्त मर्यु होती है।	Carotid arteries & Jugular veins.	
29	कुकाटिका	2	२ अंगुल	वैकल्यकर	सन्धि मर्म	यह शिर एवं गीवा की सम्मिलित होता है।	इनसे शिर हिलता है।	Atlento occipital joint.	
30	विद्युर	2	१ अंगुल	वैकल्यकर	स्नायु मर्म	यह कान के पीछे नीचे की ओर होता है।	इनसे बहरापन होता है।	Posterior auricular vessels, & branches of 6th cranial nerve.	
31	फणा	2	१ अंगुल	वैकल्यकर	सिरा मर्म	यह नासिका मार्म के दोनों पाइवों में सोत मार्म से सम्बद्ध अन्दर की ओर रहता है।	इससे गऱ्ब जान का नाश हो जाता है।	Olfactory region of the nasal cavity.	

## मासं विज्ञान तालिका

मासं	संख्या	नाम	परिमाण	स्थिति		आधात परिणाम	वर्कल्प Probabilities
				मासं भेद	अधात परिणामानुसार		
3.2	अपांग	2	½ अंगुल	बैकल्यकर	सिरा मर्म की ओर तथा आंबों के बाह्य छोर पर, नीचे होता है।	यह ध्रुवों के बाह्य छोर पर, नीचे होता है।	Outer canthus of the eye, zygomatic and temporal vessels. It involves the branches of 6th cranial nerve.
3.3	आवर्ते	2	½ अंगुल	बैकल्यकर	सन्धि मर्म यह मर्म ध्रुवों में नीचे की ओर रहता है।	यह मर्म ध्रुवों में नीचे की ओर रहता है।	Junction of frontal, molar & sphenoid bones.
3.4	शब्द	2	½ अंगुल	सद्य प्राण हर	अस्थि मर्म यह मर्म ध्रुवों में ऊपर की ओर और माथे के नीचे में स्थित होता है।	इसमें अन्धापन तथा इटि में विकृति हो जाती है।	junction of fronto-nasal & sphenoid bones.
3.5	उत्सेप	2	½ अंगुल	विश्वलयन	स्नायु मर्म शंखों के ऊपर बालों के सिरे पर उत्सेप मर्म होता है।	इसमें से श्वल निकलते ही मृत्यु हो जाती है, परन्तु श्वल रहने पर या उसके पक्कार निकलने पर मृत्यु नहीं होती।	इसमें उत्तर मृत्यु होती है।
3.6	स्थिपनी	1	½ अंगुल	विश्वलयन	सिरा मर्म यह दोनों ध्रुवों के बीच में होता है।	श्वल निकालते ही रोगी मर जाता है।	Temporal fascia & muscles.
3.7	सीमांत	5	4 अंगुल	कालात्तर प्राणहर	सन्धि मर्म शिर की 5 सन्धियों में 5 ही सीमांत मर्म होते हैं।	इनसे उत्तमाद, भय, चिरता तथा चित्त का नाश होकर मृत्यु होती है।	Nasal arches of frontal vein & at glabella.
3.8	श्वेषाटक	4	4 अंगुल	सद्य प्राण हर	सिरा मर्म ये मर्म नासिका, कान, नाक, जिहा को पोषण देने वाली सिराओं के मध्य में रहते हैं।	इनसे उत्तर मृत्यु होती है।	Cranial sutures.
3.9	अधिपति	1	½ अंगुल	सद्य प्राण हर	सिरा मर्म मरितल्क के अंदर डप्पर की ओर अर्थात् भवर चक्र के समान) को अधिपति मर्म कहते हैं।	इसमें उत्तर मृत्यु होती है।	Cavernous & inter-cavernous sinuses.

### आधात परिणाम

### बक्टन्य

### प्रबलिटीज के सामान्य लक्षण :

इसमें अन्धापन तथा दृष्टि में गति हो जाती है।

इससे तुरन्त मृत्यु होती है।

Junction of frontal, molar & sphenoid bones.

इससे तुरन्त मृत्यु होती है।

इसमें से शत्य निकलते ही हो जाती है, परन्तु शत्य रहने या उसके पक्कर निकलने पर नहीं होती।

शत्य निकलते ही रोगी मर जाती है।

इनसे उत्साद, भय, चिंता चित्र का नाश होकर मृत्यु है।

मर्मों के अतिरिक्त स्थान पर आधात होने से या इसके (बाहु व टांग के) बट जाने पर भी मनुष्य जीवित रहता है। परन्तु भर्मों पर आधात होने से उनमें तल, रज, तम तथा अग्नि, सोम, बायु और जीवात्मा (अर्थात् वहां पर प्राण विवरण रूप से रहने से) रहने के कारण प्रणी प्रायः मर जाता है, या फिर विकलांगता (अल्पत कष्टदायक अवस्था) उत्पन्न हो जाती है। मर्म स्थान पर आधात होने से बहां की सिराये संकुचित हो जाती है जिस कारण उनसे होने वाले रक्त स्राव को असानी से बहां नहीं किया जा सकता। मर्म स्थान पर (जैसे तल हृदयादि में) आधात के परिणाम स्वरूप उत्पन्न होने वाले रक्तस्राव एवं पीड़ा की शीघ्रता से बहां कठिन (Difficult) होता है तथा ये सिरपर स्वयं संकुचित नहीं होती, इसके उत्पन्न स्वरूप वेदना एवं रक्त स्राव के कारण रोगी की मृत्यु हो जाती है। मर्म पर अथवा पित्त, करु तथा रक्त की वहन करने वाली (Nerves, blood vessels, Sympathetics) बार बाहिनियों के आधात से, अत्यधिक रक्तस्राव होने से बात बुद्धि कर अत्यन्त वेदना तथा पित्त के कारण तुणा, चोष, भ्रम, मद, निर्वलतादि लक्षण उत्पन्न होकर रोगी की मृत्यु हो जाती है।

**सामान्य लक्षण—**शोथ, शून्यता, मूँछड़ी, शीत की इच्छा, स्वेद, वमन, श्वास का फूलना, श्रम, प्रलाप, अभिहत, अंगों का पतन, उणता की प्रतीति, विकृत चेष्टा, तिलयन, स्थिराङ्गता, ऊर्जाभाव, वातरक, तीव्र वेदना, मांसोदक सदृश्य रक्त लावा आदि। या इत्यर्थों के विषय महण शक्ति का नाश, ये मर्माधात के सामान्य लक्षण हैं।

### चिकित्सा :

मर्म स्थानों पर आधात होने पर मुख्यतः तीन प्रकार की चिकित्सा करनी चाहिए।

- (1) रक्तस्राव की चिकित्सा
  - (2) व्यं की चिकित्सा
  - (3) लाक्षणिक चिकित्सा
- (1) रक्तस्राव की चिकित्सा—रक्तस्राव को रोकने के बार उपयोग मुख्य है, जैसे—

- (a) सन्धान
- (b) स्कन्दन
- (c) पाचन
- (d) वहन

(a) सन्धान—पचवल्कल, शीरीहुश, चत्वन, लोध तथा कपाय रस प्रधान थों से सेवन करें, इनमें धातुओं का संकोच होकर रक्तस्राव बन्द हो जाता है। इत्यर्थों की दवाकर (By Pressure) तथा उद्दं बांध र (Ligation) भी रक्तस्राव बन्द किया जा सकता है।

*106*

Confluence of sinuses.

इससे तुरन्त मृत्यु होती है।

Cavernus & intercavernous sinuses.

- (b) स्कन्डन—गोतल जल या हिम से रक्त सांब बन्द करें।  
 (c) पाचन—क्षीम, शोख, शुक्रित इत्यादि को भस्म या आर लगाने से भी रक्त बन्द होता है।

- (d) बहन—यदि बहुत छोटी-छोटी वाहिनियों से रक्तसांब को बन्द करें।  
 (e) बहन—क्षीम, शोख, शुक्रित इत्यादि को भस्म या आर लगाने से भी रक्त बन्द हो तो बहन कर्म (Electric cautery) से रक्तसांब को बन्द करें।

इसके लिए दन्ती, द्ववन्ती, चिक्कादि तीक्ष्ण द्रव्यों से तथा कासीस, गतधक, हारिताल, गुत्थादि जीवाणु नाशक द्रव्यों से ब्रण का शोधन करें। शोधन के लिए द्रव्यों को रोगी को बाने के लिए स्कन्ड-शोधक औषधियों (गुम्बुल, सारिचा, शिलाजीत, खदिर, बाकुची, गन्धकादि) दें।

भृत लगाकर बन्धन बांधें।  
 (3) लास्फिक्सन—  
 (i) दाह—सौफ़ चूर्ण और घृत या कल्याण घृत खाने को दें।  
 (ii) दूषण—तरबूज का रस, बन्धन बायथ तथा नागर मोथा दें।  
 (iii) ऊपर—विड्युपात्रीय के साथ मृत्युज्यम रस दें।  
 (iv) बैठना—गोजिहा, शताब्दी तथा उशीर से सिद्ध दूध दें या गिलोय शताब्द और दूध की धारा से या बन्धन, शताब्द, बलादि के क्षीर कथाय से सिद्ध करें करें तथा उशीर, लोध और अजवायन का लेप करें।  
 (v) शिर: गूत—चिजात द्रव्यों का लेप या बलान्त को स्वीकृत दूध में चिस कर बन्धन के साथ माथे पर लगाएं।  
 (vi) हिष्का—सहवेदी को दूध में मिलाकर दें।  
 (vii) ब्रसाय—तगर तेल, दूध, नारियल जल, बन्धन तथा कमलादि द्रव्यों का गोदीर पर लेप करें।

ध्यालय :

"मनः गरोराबाधकराणि शल्यानि"

मन एवं शरीर को दुःख देने वाले पदार्थ को शल्य कहते हैं। शरीर में प्रवृद्ध मल एवं दोष तथा स्थावर या जंगम विष शल्य कहलाते हैं।

(अर्थात् प्रवृद्ध भल्दोपञ्चवा शरीरिणं स्थावरंगमानम् ॥)  
 यांत्रिक्तिवदाधकरं शरीरे तत्स्वर्वेवप्रवदिति शल्यम् ॥) (इल्हण)  
 'शल' शब्द से शल्य बनता है। 'शान्त' का अर्थ होता है शोधन गमन करना। जिसमें समृण शरीर में पीड़ा होती है उसे शल्य कहते हैं, [अर्थात् शरीर में अवश्य हुए (Retained) विजातीय तत्व को शल्य कहते हैं।]  
 भेद :

शल्य दो प्रकार के होते हैं—

- (1) शारीरिक  
 (2) आगन्तुक

(1) शारीरिक शल्य—इसके अन्तर्गत शरीर की विकृत धारुओं तथा मर्त्तों का समावेश होता है, जैसे—नख, लोम, विकृत दांत, विकृत दृई रसादि धारुएँ, मूत्र, गूत तथा दोष।  
 (2) आगन्तुक शल्य—इसके अन्तर्गत उपरोक्त शारीरिक शल्यों से भिन्न पदार्थ अर्थात् बाह्य पदार्थों का समावेश होता है, जैसे—बांस, वृक्ष, शूग, अस्थि, लौहादि धातु, मुँह, यन्त्र, शस्त्र तथा काङ्ग के टूकड़े इत्यादि

शल्य की गति :

- शल्य के शरीर में प्रविष्ट होने पर इसमें 5 प्रकार की गति हो सकती है—  
 (i) कङ्खं गति (जब शल्य शिर की ओर ऊपर की गतिशील होता है)।  
 (ii) अधः गति (यह गति पैर की ओर अर्थात् नीचे की ओर होती है)।

## 24

प्रनष्ट शल्य  
 (Foreign bodies)

(iii) अवचीन गति (जब गतिमान शाल्य अस्थि से टकराकर अपनी दिशा बदल दें।)

(iv) तिर्यक् गति (जब शाल्य एक पार्श्व से दूसरे पार्श्व को जाता है।)

(v) ऋत्तु गति (आगे से पीछे का जाने वाली गति)।

#### बाहर अंकुरों (Exuberant granulation)

शारीर में उपरोक्त गति से जाने वाले शाल्यों की गति का देख कम हो जाते पर शाल्य शरीर में रुक जाते हैं। इनसे अनेक प्रकार के लक्षण उत्पन्न होते हैं—  
शाल्य युक्त स्थान में श्याव वर्णिता, पिङ्किकाओं से व्याप्त, शोफ युक्त, बेदनावन, बाल-बार रक्त लाव का होना, बायु का बुद्ध-बुद्ध के रूप में ब्रण से निकलना एवं ब्रण के बाहर अंकुरों (Exuberant granulation) की उपस्थिति i. e. Sprouting granulation।

#### शाल्य के स्थानानुसार विवेच लक्षण :

(i) त्वचा—त्वचा में शाल्य होने पर विवर्णिता, कठिनता तथा दीर्घ शोफ उत्पन्न होती है।

(ii) भाँस—शाल्य के मांस गत होने पर ब्रण का रोपण नहीं हो पाता, उसमें अधिक शोफ, दर्शन असहिता (Tenderness), चोष और पाक हो जाता है (यदि शाल्य दो दोषियों के मध्य भाग में पड़ा हो तो शोफ और चोष नहीं होता)।

(iii) सिर—इसमें शाल्य होने पर सिरा कली हुई, शोफ तथा शूल युक्त होती है।

(iv) स्नायु—स्नायु में शाल्य होने पर स्नायु समूह ऊपर को उठ आता है शोफ तथा तीक्र वेदना होती है।

(v) लोत—शाल्य जिस लोत में रहता है उस लोत के कार्य नष्ट हो जाते हैं।

(vi) धमनी—धमनी में शाल्य होने पर वर्हा से ज्ञान्यवृत्त रक्त तथा बाल बाहर निकलती है। रोगी अंगमर्द, दृष्टा तथा बमन से पीड़ित रहता है।

(vii) अस्थि—अस्थि में शाल्य होने पर शोफ तथा अनेक प्रकार की तोद भेदादि वेदनायें होती हैं।

(viii) अस्थि बिवर—इसमें शाल्य होने पर अस्थि में पूर्णता का अनुप्रवृह होता है पीड़ा तथा बेचैनी रहती है।

(ix) सच्चि—सच्चि में शाल्य होने पर चेष्टाओं में हास तथा अस्थिगत शाल्य के सदृश लक्षण रहते हैं।

(x) कोण्ठ—यहाँ पर शाल्य होने से आटोप, आनाह, ब्रण मुख से मलमूत्र का निकलना (आन्त्र या नुकाशय का भेदन होने पर) इत्यादि लक्षण होते हैं।

(xi) घर्म—इगमें शाल्य होने पर मर्मविद्व के समान लक्षण भिजते हैं।

शाल्य के शुद्ध होने पर तथा दोषों के सामादस्था में रहने पर शाल्य युक्त ब्रण का भी रोपण हो जाता है, परन्तु दोष प्रक्रोप होने से या आघातादि लगने से या फिर अन्य विक्षेपक कारणों से शाल्य पुनः पीड़ा की तथा शोफादि लक्षणों को उत्पन्न कर देता है। इसीलिए शरीर में नष्ट (Retained) शाल्य के स्थान का पता लगाना तथा फिर उस शाल्य का निर्वहण करना अति आवश्यक होता है।

#### नष्ट शाल्य को जानने के उपाय :

अनेक प्रकार की विक्षेपक f. यांओं से जब शाल्य हिलता है तो शाल्य युक्त स्थान पर वेदना होती है। इससे शाल्य युक्त स्थान का ज्ञान हो जाता है। ब्रण के आकार को देखकर शाल्य के बृत्त या निकोणाकार इत्यादि आँकड़ित का भी अनुमान कर लेना चाहिए या फिर एकसे द्वारा इसका ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

- (i) त्वचा गत शाल्य—त्वचा पर उत्पन्न का पतला लेप करने से जहाँ पर लेप शीघ्र सूख जाए या इहूं पर लगने से जहाँ पर घृत जलदी पिघल जाए या फिर अभ्युक्त मर्दनादि करने से जहाँ पर दाढ़ हत्था शोफ उत्पन्न होने लगे उस स्थान पर शाल्य की उपस्थिति समझनी चाहिए (लेप के शीघ्र सूखने तथा घृत के शीघ्र पिघलने का कारण शाल्य स्थान पर शोफ की उम्मा होती है)। मर्दन से वेदना होती है तथा शाल्य के हिलने के कारण पास की धातुओं में आसात होने से शोफ उत्पन्न होती है।
- (ii) पेशी तथा कोठागत शाल्य—बमन तथा विरेचनादि कियाओं ते (कोच्छ तथा उरर की मांसभेदियां के कियागील होने से) शाल्य विशुद्ध होकर वेदना उत्पन्न करता है, जिससे शाल्य के स्थान का पता चल जाता है।
- (iii) अस्थिगत शाल्य—उपरोक्त विधियों से या अस्थि पर बन्धन, पीड़ा मर्दनादि कर्म करने से शाल्य स्थान पर (उसके क्षुद्ध होने अथवा हिलने से) पीड़ा होने लगती है।
- (iv) साधिगत शाल्य—साधिगत शाल्य होने पर इहूं जानने के लिए अस्थिगत शाल्य सदृश अभ्यंग एवं मर्दनादि कर्म करने साथी सांकेच तथा प्रसार करें। शाल्य के विशुद्ध होने पर शाल्य स्थान पर पीड़ा होती है।
- (v) घर्म, सिरा एवं स्नायुगत शाल्य—मर्म स्थानों पर शाल्य होने पर रोगी को हटे हुए पहिए वाले रथ पर बैठाकर उच्च नीचे स्थान से दौड़ाने से, हाथी या बोड़े की सवारी से या पर्वत पर चढ़ने से शाल्य स्थान पर पीड़ा होने लगती है। इसके अतिरिक्त डकार मा छोड़ी आने से भी शाल्य क्षुद्ध होकर पीड़ा करने लगता है।

शारीरणत शाल्य में परिवर्तन (Fate of foreign bodies)  
शारीरणत शाल्य की रचना के अनुसार उसमें विभिन्न प्रकार के परिवर्तन होते हैं, जैसे—

(i) अर्थि जैसे भंगुर पदार्थों के शत्य शारीर में प्रविष्ट होने पर वे अनेक टुकड़ों में टूट जाते हैं।

(ii) लौहादि धातुओं के शत्य अन्दर जाकर मूँड जाते हैं। (iii) शृंग, अस्थि, हस्त, केश, नख, चक्षादि जीवीय तत्व (Organic matter) शारीर में जाकर वहाँ मांस, रक्तादि की डरमा से पक्कर (उनका दूधभवन होकर) ढीले होने पर पूर्य के साथ बाहर आ जाते हैं।

(iv) ताप्त, लौहादि धातुओं उल्मा से पिघलकर (Corrosive action के कारण) शारीर में बिल्ली हो जाती है या फिर ये शत्य युक्त व्यष्ट भर जाने पर शत्य शारीर के भीतर बिना पीड़ा किए पड़ा रहता है। इस शत्य युक्त स्थान पर तुनः आघात होने से शोकादि लक्षण फिर से उत्पन्न हो जाते हैं।

### शत्य निहंरण के सिद्धान्त :

शत्य निकालने से पूर्व उनकी आकृति एवं स्थानादि का जान, एष्ण कर्म द्वारा (Probing से) करना चाहिए। व्रण की आकृति से या फिर ज्ञान में धातुओं से निर्मित शत्य होने पर, 'क्स' किरण (X-Ray) द्वारा भी शत्य का ज्ञान किया जाता है।

- (i) अनुलोम विधि।
- (ii) प्रतिलोम विधि।
- (iii) अन्य विधियाँ।

(i) अनुलोम विधि—शत्य के शारीर में प्रविष्ट होते समय जिस दिशा में उसकी गति हो रही थी उसी दिशा में एक नया भार कार करके हुए शत्य को निकालने की विधि को अनुलोम विधि कहते हैं। 'प्राचीन शत्य' अर्थात् जो शत्य शारीर में बहुत गहराई या दूर तक प्रविष्ट हो चुके हों उनको अनुलोम गति से (प्रब्रेष्ण मार्ग से विपरीत दिशा में) तथा त्वचा मांसादि में उभार के रूप में दिखाई दे रहे शत्य के ऊपर भेदन करके उसे निकालना चाहिये। परन्तु यदि 'प्राचीन शत्य' किसी कोष्ठ या मर्म रथान में पड़ा हो तथा उसे निकालना आवश्यक हो तो यह 'प्राचीन शत्य' होते हुए भी इसे अनुलोम विधि से नहीं निकालना चाहिये (व्यायोक इसके लिए मर्म या कोष्ठ में दूसरे स्थान पर अन्य भेदन बनाना पड़ता है), उसे आगे वर्णित प्रतिलोम विधि से निकालना चाहिए।

(ii) प्रतिलोम विधि—जिस मार्ग से शत्य शारीर में प्रविष्ट होता है, उसे उसी मार्ग से वापिस निकालने की विधि को प्रतिलोम विधि कहते हैं। 'अवचिन शत्य' अर्थात् जो शत्य शारीर के अन्दर दूर तक प्रविष्ट न हुआ हो, उसे प्रतिलोम विधि से (प्रब्रेष्ण मार्ग से) बाहर निकालना चाहिए। यदि अवचिन शत्य का अप्रभाग किणिका युक्त या तीर के समान आकार का हो तब शत्य के अवचिन होते हुए भी

इसे प्रति लोम विधि से नहीं निकालना चाहिये श्यांकिं वह बड़िया सूदूर (Hook like) होने से धातुओं में फंसने के कारण प्रतिलोम निकालने से धातुओं का नाश करता है, ऐसे शत्य को अनुलोम विधि से निकालना चाहिए।

(ii) अन्य विधियाँ—दिखाई दे रहे शत्य को, यदि वह ढीला हो तो हाथ से तथा यदि फैसा हुआ हो तो मिहमुख यन्त्र (Lion's forceps) या अन्य हिस्क पश्चिमों के मुख के आकार के स्वरूपक यन्त्रों से पकड़कर प्रतिलोम विधि से निकालना चाहिए।

यदि शत्य दिखाई न दे रहा हो और वह गम्भीर (गहराई में) या संकीर्ण बण (Narrow and deep wound) में पड़ा हो (जैसे नाड़ी बण में) तो उसे कम-मुख या अन्य हिस्क पश्चिमों के मुख के आकार के स्वरूपक यन्त्रों के द्वारा प्रतिलोम गति से निकालना चाहिए।

शत्य के अस्थि में फंसे होने पर, शत्य को हाथ से पकड़कर तथा शत्य युक्त अंग को पैरों से विपरीत दिशा में रोककर (Counter pressure देकर) निकालना चाहिए। या फिर इस शत्य को जटके से निकालना चाहिए, जैसे—(i) शत्य को पञ्चांगी बन्ध में बोधकर उसे घोड़े की कविका या शिर से बोध दें, फिर घोड़े को चाबुक मारने पर जब घोड़ा जटके से शिर ऊपर करता है तो शत्य जटके द्वारा बाहर निकल आता है (ii) वक्ष की दृढ़ शाखा को नीचे झुका कर उससे शत्य को रस्सी से बोध दें और फिर शाखा को एक दम से छोड़ने पर जटके के साथ शत्य बाहर निकल जाता है।

लाक्षा (Sealing wax) का शत्य गले में फंसने पर, गर्म शालाका को निकाली नाड़ी यन्त्र में डालकर लाक्षा शत्य पर रखें फिर उसे पानी से सेचन करके ठंडा करें। शालाका के ठंडा होने पर वह शत्य से तुड़ जाती है, अब शालाका को खीचकर शत्य को बाहर निकाल लें। यदि शत्य लाक्षा न होकर किसी धातु या पाषाणादि का हो तो गर्म शालाका पर लाक्षा को लगाकर उसे नाड़ी यन्त्र में रखकर शत्य से जोड़ें और उस शालाका को पानी से ठंडा करें। जब शत्य शालाका पर लगी हुई लाक्षा से जुड़ जाए तो शालाका को खीचकर शत्य को बाहर निकाल लेना चाहिए।

### शत्य निहंरण के १५ उपाय—

विभिन्न प्रकार के शत्यों को निकालने के लिए निम्नलिखित १५ उपायों में से जो उपाय ठोक प्रतीत हो उसके द्वारा (उपरोक्त बताए यिद्वान्तों के आधार पर) शत्य को निकालना चाहिये।

- (i) स्वभाव (ii) पाचन (iii) भेदन (iv) दारण (v) पीड़न (vi) प्रभावन
- (vii) निष्परिण (viii) वमन (ix) विरेचन (x) प्रकालन (xi) प्रतिमर्ण (xii) प्रवा-

हण (xiii) आतृषण (xiv) अयम्फार्टस (xv) हर्ष तथा अन्य उपाय ।

(i) स्वभाव—बाहर खुलने वाले स्रोतों में स्थित शल्य स्वाभाविक वैरों (Natural urge) के द्वारा बाहर आ जाते हैं, जैसे आन्त में स्थित धूल-तथा फलों के बीच और अपान वायु गुदा द्वारा से, नाक में स्थित शल्य छोड़कर द्वारा, अथवा रूपी शल्य मूत्र द्वारा और पुरीष रूपी शल्य गुदा द्वारा से बाहर आते हैं ।

(ii) दाढ़न—मांस में स्थित अदृष्ट तृणादि जीवीय (Organic) शल्य उपनाहादि कर्मों द्वारा पाचन होने पर दौले होकर पूय के साथ बाहर आते हैं ।

(iii) खेदन—(Incision)—शल्य स्थान पर पूय बनने पर, पूय स्थान का ऊस्त्रों द्वारा खेदन करके पूय के साथ पहुंचे शल्य को भी निकाल दें । ये शल्य गुहा में पहुंचे भिलते हैं ।

(iv) दारण—(Counter irritation)—बाल, बूँद, राजा एवं स्त्री में शल्य स्थान पर पूय पड़ने पर उसका दर्ती एवं कलिहारी, शारादि दारण द्रव्यों से दारण (फाड़ना) कर्म करना चाहिए ।

(v) धोड़न—द्रण में शल्य होने पर उस पर गेहूं, न्ययोधादि पीड़न द्रव्यों (Which contract on bryrig) वा मोटा लेप हगादर पिर उसे सुखाकर या त्रण को चारों ओर से हाथ से दबाकर शल्य को बाहर निकाला जाता है ।

(vi) ब्रमार्जन (Broom like action)—द्रण में एवं आंख में अनेक छोटे-छोटे धूल के कण शल्य रूप में रहने पर उन्हें बालों की बत्ति या कोमल वस्त्र से प्रमार्जन (पोंछ) करके निकालना चाहिए ।

(vii) निधमापन (Blow like action)—नासादि विवर युक्त अंग में फंसे हुए शल्य को मुख से फूँक कर या नाड़ी यन्त्र द्वारा वायु के देण से निकालना चाहिए ।

(viii) बमन (Vomit)—भोजन द्वारा खाए गए शल्य दो गले में अंगुली से घर्षण करके एवं बमन करवा कर बाहर निकालना चाहिए ।

(ix) विरेचन (Purgation)—यदि शल्य पकवाशय तक पहुंच गया हो तो उसे विरेचन और धूप मार्ग से बाहर निकालना चाहिए ।

(x) प्रश्नालन (Irrigation)—द्रण में स्थित पूय या अन्य धूलादि सूक्ष्म शल्यों को क्वाशादि से प्रश्नालन करके निकालना चाहिए ।

(xi) प्रतिमर्श (To clean by rubbing)—द्रण में स्थित सूक्ष्म शल्य जैसे कान्त्र के छोटे-छोटे टुकड़े जो दिखाई नहीं देते उन्हें अंगुली द्वारा अनुभव करके (स्पर्श करके), अंगुली की रगड़ (प्रतिमर्श) द्वारा निकालते हैं ।

(xii) प्रवाहण (To increase intra abdominal pressure)—मल, मूत्र, गंभीर शल्यों को कुन्धन (प्रवाहण) द्वारा निकालना चाहिए ।

(xiii) आचृषण (Suction)—क्वण गत स्वाव को, दृष्ट स्तरय को तथा वक्ष वैरों (Natural urge) के द्वारा बाहर आ जाते हैं, जैसे आन्त में स्थित धूल-तथा फलों के बीच और अपान वायु गुदा द्वारा से, नाक में स्थित शल्य छोड़कर द्वारा, अथवा रूपी शल्य मूत्र द्वारा और पुरीष रूपी शल्य गुदा द्वारा से बाहर आते हैं ।

(xiv) अयस्कान्त (Magnet)—क्वण या नेत्र में से लौहादि धातुओं के चूर्ण को अयस्कान्त द्वारा निकालना चाहिए ।

(xv) हर्ष (To make happy)—रोगी के मन से दुःख रूपी शल्य को उसे हर्षित (prascr) करके निकालना चाहिए ।

(xvi) अन्य उपाय—(क) ग्रास रूपी शल्य के ग्रासनिका में फंसने पर रोगी को पानी पिलाकर या उसकी ग्रीवा पर जाने:- २ मुळिं प्रहार से शल्य को निकालना चाहिए ।

(ख) भंगुर या डंबल शल्य जिसको कि निकालते समय टूट जाने का शय हो, उसे पहले गहराई में (शल्य को उसकी ग्रीवा स्थल से) बाँधकर फिर उसे बर्चिकर निकालना चाहिए ।

(ग) मछली के काटे गले में फंसने पर रोगी को धागे से बाँधा हुआ बालों का गुच्छा खिलाना चाहिए । जब उस गुच्छे के बालों में बह काटा फंस जाये तो उसे बिलयन (dissolve) करके निकालते हैं । शल्य बड़ा होने पर उसे उदर पाठन कर्म, जैसे भुवरा पियुबिक लियोटामी (Supra pubic lithotomy) द्वारा निकालना चाहता है ।

(ह) आधुनिक उपाय—(i) मूत्राशय में श्लिष्ट विजातीय तत्वों (Foreign bodies) की मूत्राशय-दर्शक नाड़ी यन्त्र (Cystoscope) द्वारा, या मूत्र के वेग द्वारा, उनका विलयन करने के पश्चात् उन्हें निकालें (जैसे—मोम की जाइलील और पानी में विलयन (dissolve) करके निकालते हैं) । शल्य बड़ा होने पर उसे उदर पाठन कर्म, जैसे भुवरा पियुबिक लियोटामी (Supra pubic lithotomy) द्वारा निकालना चाहिए ।

(ii) प्राणवह स्रोतों (Larynx and pharynx) के शाह्य तीव्र कास के वेग के साथ या कफ के साथ मिलकर बाहर निकालते हैं । बड़े शल्यों को तुरंत लिर्कोटोमी या ट्रिक्वोस्टमी कर्म (Laryngotomy or tracheostomy) द्वारा या हार निकालना चाहिये, अन्यथा इनसे श्वासावरोध होकर मृत्यु हो सकती है । शल्य के उद्वास प्रणाली (Bronchii) में रहने पर श्वास प्रणाली दर्शक ताड़ी यन्त्र (Bronchoscope) के द्वारा, या श्वास नलिका को भेदन करके (Bronchotomy), या किरणकुमों का छेदन कर्म (Lung resection) करके शल्य को निकालना चाहिये ।

(iii) आत्मवह स्रोत—यहाँ का शल्य यदि विषमाकार परन्तु कुप्रित हो तो उसे केला जैसे विष्टमिं पदार्थ खिलाकर गुद मार्ग से मल के साथ निकालना चाहिये । यदि शल्य तीक्ष्ण काटक युक्त हो तो उसे आमाशय का भेदन (Gastrotomy) करके निकालना चाहिये । बालों के गुच्छे (Trichobezoar) को भी इसी

विधि से निकालें। यह बालों का गुच्छा पारगत रोगियों में बाल छाने से बन जाता है। गुदा में स्थित गोल शत्र्य को मृद गर्म में भ्रकृत होने वाले स्थानिक गन्डों (Obstetric forceps) द्वारा निकालें। काल्च के टुकड़ों को एंरिस के ल्लाटर (Plaster of paris) में जमा लेने के पश्चात निकालें। गुदा में स्थित तीर सदृश पहले उदर का भेदन करें (Laparotomy) फिर शत्र्य को गुद द्वार से ऊपर को धकेल और उसे आन्त का भेदन करके निकालना चाहिये।

## त्रण बनधन (Bandages)

ब्रणों को ढकने के लिए जो उपकरण किया जाता है उसे ब्रणबनधन कहते हैं। पट्टी बांधने से ब्रण का शोधन होता है। अथवा ब्रण शुद्ध रहता है, कोमल बनता है तथा उपद्रव राहित रोपित होता है।

यस्मान्तु ब्रणों याति च मार्दवम् ।

रोहत्यनि च निःशङ्कुत्तमाद्वन्धो विधीयते ॥ शु० चि० 1

### बनधन ब्रण (Material for bandaging)—

- (1) शोम (सन्)
- (2) कापरिस (रुई)
- (3) आविक (ज़नी वस्त्र)
- (4) डुक्ल (पट्ट वस्त्र)
- (5) कोषिय (रेषम)
- (6) चीन पट्ट (चीन में बना पट्ट)
- (7) चम्प (मृग का चम्प)
- (8) अन्तर्वल्कल (गुलर वृक्ष की अन्दर की पतली छाल)
- (9) अलाबृशकल (लोकों का टुकड़ा)
- (10) लता (बेल)
- (11) बिदल (बौस या बिल का खरपर)
- (12) तुलफल (सिंघवल फल)
- (13) रञ्जु (रसी)
- (14) सलानिका (दो या तीन गुणा मोटा रञ्जु)
- (15) लौह (स्वपर्णिदि धातुमें)

आजकल बनधन कर्म के लिये लिनिन (Linon), फ्लैनल (Flannel), मलमल (Muslin) तथा लई (Cotton) का प्रयोग किया जाता है।

### कवलिका (Cotton pad)—

“बहुवस्त्र छूटमुट विवर्तिता कवलिका” “द्विगुण चतुर्गुण मुट्टपट विरचिता कवलिका”

ब्रण को आचातादि से बचाने के लिये, ब्रण के ऊपर दो या चार तह करके जो कोमल वस्त्र रखा जाता है उसे कवलिका कहते हैं। सुख्त ने ब्रण पर धनी

कवचिका रबकर बन्धन करने को कहा है। आजकल इसके स्थान पर ही अर्थात् कपास (Cotton pad) का प्रयोग करते हैं।

**विकेशिका (Medicated gauze piece)**—“कल्कमधुवृत्ताभ्युक्त वस्त्रस्य सूनस्य वा बर्ति विकेशिका”।

कल्कमधुतादि औषध को जिस वस्त्र या सूनादि पर लगाकर ब्रण पर रखा जाता है उसे विकेशिका कहते हैं।

#### सप्तूतमासं सोत्तंगसांति दूषणमिणम् ।

ब्रणं विशेषेत् शीद्य दिष्टता हृत्तनाविकेशिका ॥

विकेशिका को ब्रण में रखने से पूत्रिमास सुकृत ब्रण, कोटर युक्त ब्रण तथा अन्तःपूय वाले ब्रण शीघ्र ही शुद्ध हो जाते हैं [आजकल भी Gauze पर औषध लगाकर उस Sinus cavity में भरने (Packing) के लिये प्रयोग करते हैं]।

**पिच्छ (Swab)**—“पिच्छ स्थूल कवलिका” यह विकेशिका के सदृश होती है, परन्तु यह स्थूल कपड़े की बनी होती है, इसे औषध युक्त तैल या चूत में भिसोकर योग्यी में रखा जाता है।

**दबोत (Swab or pack)**—पानी या कपाय से भीगा हुआ कपड़ा (Swab)

जो ब्रण को धोने तथा नाफ करने के काम आता है उसे लालत कहते हैं।

#### बन्धन विशेष (संकेत, योग्य) —

(i) औषधिक ब्रण पर मात्रत नगाए रखने के लिए।

(ii) अस्थि धनत तथा मर्त्तिय मोक्ष (Fracture and dislocation) में स्थिरना लाने के लिये।

(iii) धूनी, शीत वायु, धूप तथा मक्खियां से ब्रण को युद्ध रखने अर्थात् इनसे ब्रण की रक्षा करने के लिए।

(iv) रक्तनाद रोकने के लिये।

(v) ब्रण की आथात से रक्षा करने के लिये।

(vi) ओछ तथा नामादि के सम्बन्धन के पश्चात्।

(vii) मर्दंश विष को फैलने से रोकने के लिये।

(viii) श्वयश्च निया रणार्थ (To reduce oedema)।

(ix) विकलांगता की चिकित्सार्थ जैसे, पादवक्ता (Talipes equinovarus), में।

(x) धनत स्थान या ब्रण स्थान को विश्वास देने के लिये।

(xi) त्वचा, मांस, मिरा, सायु, अस्थि एवं सत्त्वि के आश्रित ब्रणों में बन्धन किया किनारे आपस में जुड़े हैं। ब्रण, विकेशिका तथा कवलिका का

कुठिठनमग्निवरधानां पंडिका मधुसेहिनाम् ।

कर्णिकारश्चोन्दुर्विषे विषज्ञु ध्वाच ये ब्रणः ॥

मांसपाके न बधनते गुप्तपाके च शारणे । सु० सु० 18  
शाल्य युक्त ब्रणों में, डूष्ट ब्रणों में, पूय या सूतोतकादि से युक्त ब्रणों में जैसे—  
कुठिठन ब्रण, अग्नि दरध ब्रण, मधुमेही के ब्रण, प्रमेह पिंडिका, सूक्षक विष जन्य ब्रण,  
दूषित मांसांकुर युक्त ब्रण, विषज्ञ ब्रण, मांस पाक तथा गुदपाक एवं ब्रण पाक की  
अवस्थाओं में बन्धन नहीं बांधना चाहिए।

#### ब्रण बन्धन के नियम :

ब्रण बन्धन कर्म में नन्मन क्रम का अनुसरण करना चाहिए।  
(i) ब्रणों में से दोधों (प्रयादि) को निकालें (प्रितज तथा रक्तज ब्रणों में एक ही बार में दोष निकाला है, कफ तथा वातजन्य ब्रणों में दोष बार-बार निकालें, क्योंकि इन ब्रणों में पाक की किया मान होती है तथा पूय धीरे-धीरे बनती है)।  
(ii) ब्रण को पङ्कवक्तीरिचक्षों की छाल के क्रात्र से प्रकालन करें।  
(iii) कूर्ण, धूत, तेल, रसाक्षियादि आवश्यकता के अनुसार बोधन औषधियों को न अतिरिक्त तथा न अति स्थग्न अथवा कल्पना बनाकर विकेशिका (Gauze) द्वारा ब्रण पर रखें।

(iv) गुहायुक्त ब्रण में बर्ति (Packing) रखें (इसे बनाकर न रखें) बर्ति को अधिक दबाकर रखने (Right packing) से ब्रण ताव अन्दर ही लका रहता है तथा अत्यधी ब्रण में भी लाव होने लगता है एवं ब्रण विस्तृत तथा विस्तृत तथा विकेशिका के ऊपर कदली पत्र रखें। इससे औषधि की रक्षा होती है।

(v) विकेशिका के ऊपर कदली पत्र रखें। इससे औषधि बन्धन पर नहीं लगती।  
(vi) पत्र पर बनी कवलिका (Cotton pad) रखें।  
(vii) अन्त में कवलिका के ऊपर से पट्टी बांध देनी चाहिए।

#### बन्धन की विधिः :

पट्टी गोलक (Roller) को दक्षिण हाथ में इस प्रकार से पकड़ें जिससे कि उसे ब्रण के ऊपर सीधा लगेने से वह अपने से ही खुलती जाए तथा पट्टी के लपेट भीतर से बाहर को (Outwards) आने चाहिए। पहले पट्टी को ब्रण के समीप के स्थान पर कुछ एक लपेट देकर स्थिर (Fix) कर लें, फिर उसे घुमाते हुए ब्रण के ऊपर ऐसे ले जाएं जिससे कि पट्टी क्वार्टु, अनाविद तथा असंकुचित रूप में बनी रहे। इसके द्वारा ब्रण स्थान को विश्वास देने के लिये।

किन्तु

कोई भाग बन्धन से बाहर न रहने पावे । बन्धन की जन्मणा (Knot) अर्थात् गाठ को उच्च-अधः या तियक अर्थात् ब्रण से हटकर बांधना चाहिए (ताकि गाठ से रोगी को बैठते, लेटते या चलते समय कष्ट न हो) । बन्धन को दोषानुसार हीं बदलना चाहिए जैसे—

- (i) रक्त तथा पित दोष में एवं शराद् या ग्रीष्म कष्ट होने पर पट्टी को दिन में दो बार बदलें, क्योंकि स्वेद तथा ब्रण के निष्ठावों से ब्रण किसी तरह हो जाता है ।
- (ii) कफज तथा वातिक व्याघों में, हेमन्त तथा वसन्त कष्ट में बन्धन प्रति तीसरे दिन बदलें क्योंकि इन अवस्थाओं में ब्रण विलम्ब नहीं होता ।
- (iii) कफज ब्रण में ग्रीष्म तथा शराद् कष्ट होने पर बन्धन प्रति दूसरे दिन बदलें । इसी प्रकार से चिकित्सक स्वयं कल्पना करके आवश्यकता अनुसार बन्धन विधयं करें ।

### बन्धन अन्ताह (Width)—

0-75 इक्कचाज का बन्धन—अंगुली, शिशन तथा पाद अंगुली के लिए ।

- |     |   |   |                                    |
|-----|---|---|------------------------------------|
| 1   | “ | “ | —हाथ के लिए ।                      |
| 2-5 | “ | “ | —भूजा, घिर, जंधा तथा स्तन के लिए । |
| 3-4 | “ | “ | —बक्ष, ऊर तथा उदर के लिए ।         |

### बन्धन द्रव्यों का अवस्थानुसार प्रयोग :

- (i) बात दोष, कफ दोष, शीत कष्ट तथा गाढ़ रसानों पर ब्रण (Thick)
- तथा उष्ण वीर्यं (चर्म, रेखामादि) बन्धन द्रव्यों का प्रयोग करें ।
- (ii) पित दोष, रक्त दुष्टि तथा उष्ण कष्ट में तंतु (Thin) एवं शीत वीर्यं बन्धन द्रव्यों का प्रयोग करें, जैसे भोम ।

- (iii) सर्पदंश में कृत्तु का प्रयोग करें ।
- (iv) रक्तसाव रोकने के लिए सन्तानोंका का प्रयोग करें ।
- (v) दन्त भ्रान्त में लोहे से निर्मित तार का प्रयोग करें ।
- (vi) घिर के ब्रण में अलादू यक्कल को बांधें ।
- (vii) भ्रान्तज ब्रण में स्वपर्णिद धारुओं की कुशा (Splint) को लगाएं ।
- (viii) चिकुक या नासा ब्रण में तूल फल का प्रयोग करें ।

भेद :

- (क) स्थानानुसार—
- (i) गाढ़ बन्ध
- (ii) समबन्ध
- (iii) चियिल बन्ध

### (ब) आकारानुसार—

तुम्भुत ने 14 प्रकार के बन्ध बताए हैं, परन्तु वाभट ने उत्सङ्ग बन्ध अधिक बताया है, इससे बन्ध 15 प्रकार के हो जाते हैं ।

- |              |                 |
|--------------|-----------------|
| (1) कोण      | (9) स्प्रिंगिका |
| (2) स्वरितक  | (10) वितान      |
| (3) मुतोली   | (11) पञ्चांडी   |
| (4) दाम      | (12) गोफणा      |
| (5) अनुबंधित | (13) यमक        |
| (6) चीन      | (14) मण्डल      |
| (7) खट्का    | (15) उत्संग     |
| (8) विवन्द्य |                 |

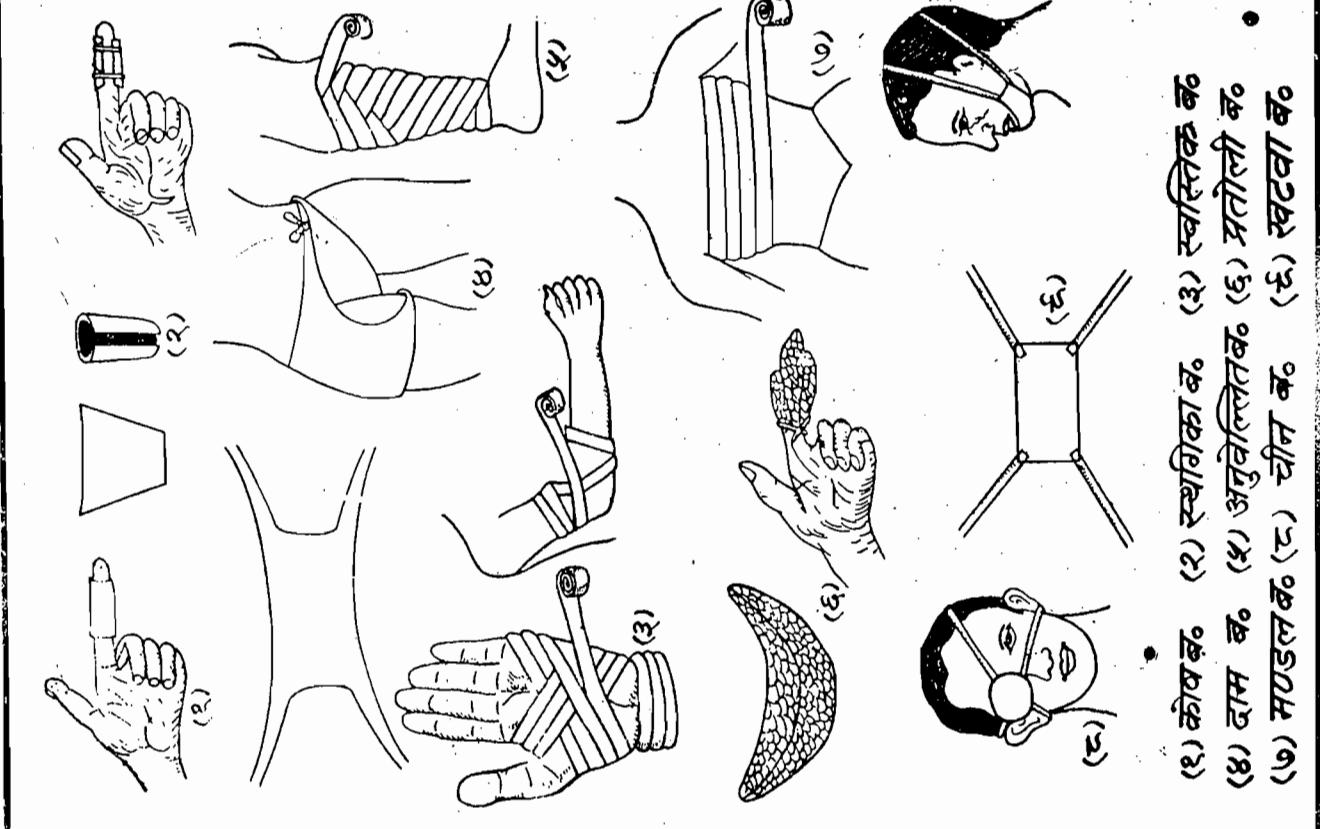
### (1) स्थानानुसार भेद—

पोड्यन्नलूजो गाढ़: सोच्चचास: शिथिल: स्मृतः ।  
तंच गाढो न शिथिल: समो बन्ध: प्रकोपितः ॥ उ ३० स ० १८

(1) गाढ़ बन्ध (Tight bandage)—इस बन्ध पर दाब डालने से ब्रण में गोड़ा नहीं होती । इसका प्रयोग स्फिक जैसे मांसल भागों में, कक्षा, बंकण, ऊर एवं गाँध जैसे विषम स्थानों पर होता है । यदि तम तथा शिथिल स्थानों पर गाढ़ बन्ध गाँध दें तो औषधिक निरर्थक हो जाती है और ब्रण पर शोफ तथा बेदना होती है । यदि बात या कफ दोष अधिक हों तो सम के स्थान पर गाढ़ बन्ध तथा गाढ़ के स्थान पर और अधिक गाढ़ बन्ध बांधना चाहिए । परन्तु इसे 24 घण्टे पश्चात् दीना कर लेना चाहिए अन्यथा कोथ या शोफ उत्पन्न होने का भय रहता है ।

(2) समबन्ध (In between loose & tight bandage)—यह गाढ़ तथा शिथिल बन्ध के बीच की स्थिति है । इसे शाखा, मुख, कान, गह्न, शिशन, अष्टकोष, पीठ, पाष्वं, उदर, वज्र एवं पाष्वं इत्यादि स्थानों में बांधते हैं । गाढ़ तथा शिथिल बन्ध के स्थानों पर सम बन्ध बांधने से बन्ध गुण हीन हो जाता है । पित दोष होने पर गाढ़ बन्ध के स्थान पर सम बन्ध बांधें तथा कफ और बात दोष अधिक होने पर शिथिल के स्थान में भी सम बन्ध बांधना चाहिए ।

(3) शिथिल बन्ध (Loose bandage)—जो बन्ध श्वास लेते समय हिले जाए तो शिथिल बन्ध कहते हैं । इसे अतिकोमल स्थानों पर तथा चेष्टावान् सम्बन्धों पर बांधना चाहिए (ताकि जलनी भाज न हो) । गाढ़ तथा समबन्ध के स्थान पर



स्थिति बन्ध बांधने से विकेशिका से औषधि गिर जाती है। बन्ध के हिलने के कारण मुख पर आधात (Friction) होता है। यदि ब्रां में पिण दोष हो तो सम के सामन पर शिथिल बन्ध बांधना चाहिये तथा शिथिल के स्थान पर बन्ध नहीं बांधना चाहिये।

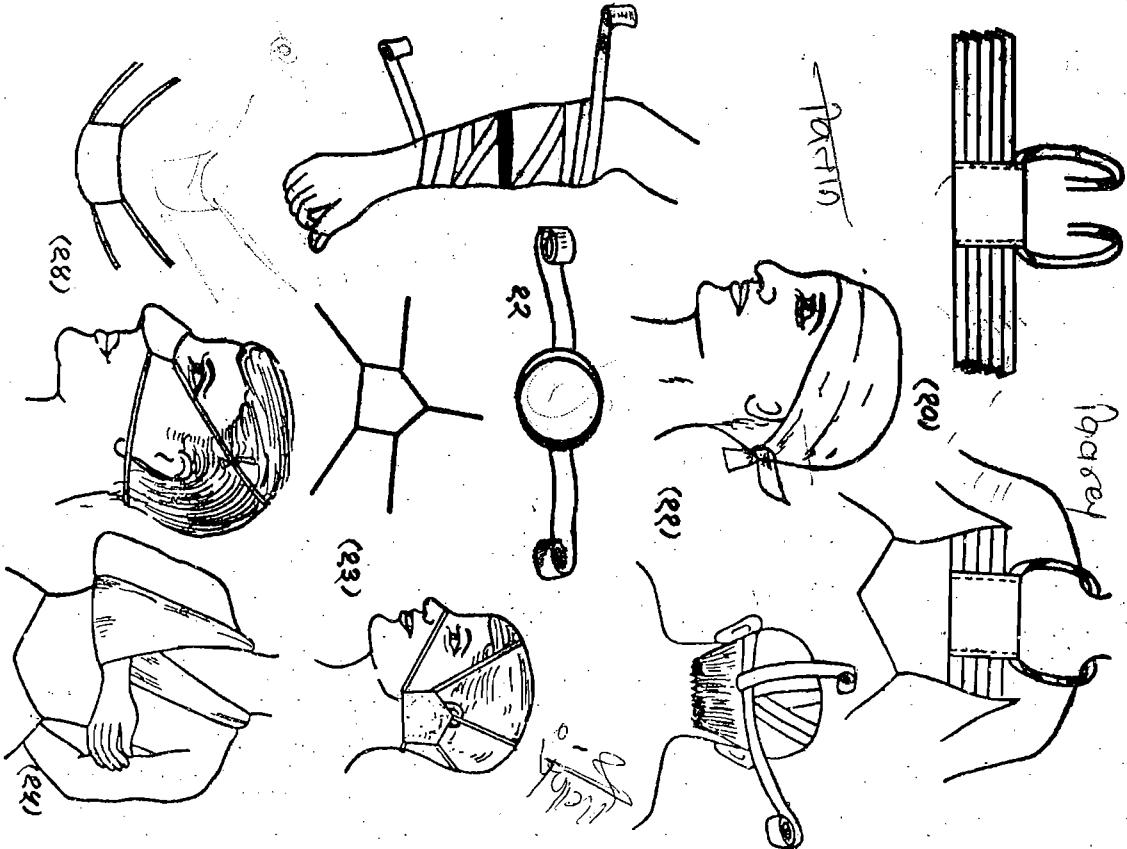
### (ii) आकारानुसार भेद :—

(1) कोश बन्ध (Sheath of sleeve bandage)—यह रेशम के कीट के लिए या तलवार की म्यात (कोष) की तरह होता है जो कि चर्म से बना होता है। इस पर औषधि तथा कवलिका रखकर, कोश बन्ध को ब्रां स्थान पर बढ़ा देते हैं। इसे अंगुली, अंगुल के पवां में, कूचं, कूपर एवं जानु के ब्रां में तथा शाखा के ब्रां में प्रयोग करें।

(2) स्विस्टिक बन्ध (Cross or figure of eight bandage)—इसकी लकड़ित स्विस्टिक चिन्ह की तरह “**8**” या आठ के चिन्ह “**8**” की तरह होती है। इसे पट्टी के 2-3 लघेट सन्धि के नीचे देकर उसे स्थिर कर लें, फिर पट्टी को सन्धि के पीछे से बाहर को लायें तथा लघेटे हुये उसे सन्धि के ऊपर ले जायें। फिर लघेटे ए जब इसे सन्धि के पीछे को लाते हैं तो इसे पुनः सन्धि के अधः भाग की ओर लाकर पट्टी को छले की तरह से हर बार-ऊपर को ले जाते हैं इस तरह पहने लघेट का 3/4 भाग ढकते हुए तथा बार-बार इसी विधि से लघेटे हुए सम्पूर्ण सन्धि को लेकर ले। इस तरह सन्धि की पट्टी बार-बार लगाने से सन्धि से पीछे की ओर ले लकड़ितकार या कास (Cross) का चिन्ह बनाता जाता है। इस कास को सीधा खांचा में ही बनाते जाना चाहिए।

स्थान—सन्धि, कूचं, भ्रूमध्य, स्तन, स्तन-मध्य, हाथ एवं पांव के तलुवे में लगायें। अण दस ते इसे कथा, तेच, कपोन और कर्ण में बांधने के लिये कहा है। (3) प्रतोली बन्ध—यह जाल सदृश छिद्रयुक्त (It is a loosely woven bandage, like a net) तथा पर्याप्त डीला बन्ध, प्रतोली (मुतो नी) बन्ध होता है। इसके डीला होने से मलमूत्र लाया करने में सुविधा रहती है तथा यह पूरे अङ्ग को लेता है। इस बन्ध को मेढ़, ग्रीवा तथा ललाट में बांधते हैं।

(4) दामनबन्ध (Four tailed bandage)—यह चार प्रान्त बाला बन्ध होता है। अन्य बन्धों के असफल होने पर इसे बाधना चाहिये। अशकास्थ के लिए इसमें लोड़ भाग को अस्थि पर रखकर दो प्रान्तों को ग्रीवा तथा कक्षा में से ब्रूमाकर पीठ पर बांधें तथा अन्य दो प्रान्तों को दोनों कक्षाओं में से ले जाकर पीठ पर बांध दें। (5) अनुबेलित बन्ध (Spiral bandage)—यह बन्ध लता की तरह शाखाओं के चारों ओर घूमता हुआ आगे को बढ़ता जाता है। इसका प्रयोग कठब



(१०) विकल्प बन्ध (११) वितान बन्ध (१२) यस्ट कंड (१३) यज्ञारुद्धि बन्ध (१४) गोकरणा कंड (१५) उत्सर्जन कंड

तथा अधि: शाखाओं के ब्रणों में होता है। विषरीत अनुवेलित बन्ध (Reversed spiral) में पट्टी जब एक लपेट पूरा करके शाखा के आगे की ओर पहुँचती है तो उसे पलट देते हैं। इससे पट्टी का बाह्य तल अन्दर तथा अन्तः तल बाहर को आ जाता है हर बार पट्टी को उसी रेखा के पास पहुँचते ही उलट दें। इससे शाखाओं की बढ़ती हुई गोलाई के साथ-साथ पट्टी को उलटते रहने से हर लपेट कसा जाता है अर्थात Tight हो जाता है तथा पट्टी ढीली नहीं हो पाती है।

(६) चीन बन्ध (Many tailed bandage for eye)—यह बीच से कम चीड़ा (जिससे नेत्र अच्छी तरह से आच्छादित हो सके) वस्त्र का खण्ड (Piece) होता है। इसके चारों ओर अनेक पट्टियां अधित् सन्तानिकायें लगी रहती हैं। इन्हें शिर के पीछे बांधकर बन्ध को नेत्र पर स्थिर किया जाता है। इसका प्रयोग नेत्रगत ब्रणों में होता है।

(७) छटवा बन्ध (Four tailed bandage)—हाराण चन्द्र ने इसे चतुष्पाद बतलाया है अर्थात् इसके मध्य के वस्त्र खण्ड के चारों कोणों पर एक-एक पट्टी लगी रहती है। इन्हें शिर के ऊपर बांधकर मध्य वस्त्र खण्ड से ब्रण को ढक दिया जाता है (बैतरण ने इसे अनेक पट्टियों बाला बन्ध कहा है)। इसका प्रयोग हज़ार शाख प्रेण एवं गाइस्थन में होता है। यह दाम बन्ध सदृश होता है, परन्तु इसका मध्य का वस्त्र-खण्ड दाम बन्ध के वस्त्र-खण्ड की अपेक्षा छोटे आकार का होता है।

(८) चिबन्ध बन्ध (Many tailed bandage)—इसमें एक आयताकार मध्यस्थित वस्त्र-खण्ड में प्रायः छः पट्टियां लगी रहती हैं। इनमें से पांच पट्टियों का ऊपर नीचे तथा तियंका रीति से कक्षादि अङ्गों के पीछे के भाग में बांध देते हैं फिर दोनों ओर की ओर एक पट्टी को ऊपर की धूमाकर स्कन्ध की ओर ले जायें तथा दोनों ओर से उन्हें भीवा के पीछे लाकर बांध दें। इससे बन्ध गुरुत्वाकरण (Gravity) के कारण नीचे को नहीं निर सकता। इस बन्ध को ऊदर, बक्ष तथा पीठ के ब्रणों में बांधते हैं।

(९) स्थगिका बन्ध—इसकी आकृति स्थगिका की तरह एक ओर से अधिक चाड़ी तथा हूसरी ओर से कम चाड़ी होती है। इसे अंगुली, अङ्गूळ तथा मेढ़ की अंगभाग में बांधते हैं। मुश्तुत ने इसे मुत्र वृद्धि में इव निहरण के पश्चात् बांधने को कहा है। इसका निर्माण, वस्त्र को एक ओर से अधिक तथा हूसरी ओर से कम काटकर करते हैं। यह कोप बन्ध का भी कार्य कर सकता है, इस कारण इसे अण्डोष तथा स्थूणक (Stump) पर भी बांधा जा सकता है।

(१०) वितान बन्ध (Cephalic bandage)—यह बन्ध शिर को वितान (शमियाना) की तरह सब ओर से ढक लेता है, यह बन्ध अनेक प्रकार से बनाया जा सकता है जैसे—

(i) एक चकोर वस्त्र खण्ड से शिर की डक्कर (हमान की तरह) उसके दो कोणों को माथे पर बांध दें तथा अन्य दो को शिर के पीछे बांध दें।

(ii) एक त्रिकोणःकार पट्टी (Triangular bandage) लेकर उसका चौड़ा भाग माथे (लताट) की ओर रखते हुए रोगी के शिर को ढक दें, किर आगे के दोनों किनारों को शिर के पार्श्व से होते हुए पीछे की ओर ले जाकर पीछे बाते किनारे के ऊपर से बांध दें। अब पीछे बाले किनारे को ऊपर से घुमाकर शिर डकने वाली पट्टी के साथ सेफ्टी पिन (Safety pin) से जोड़ दें।

(iii) दो पट्टी गोलकों को लेकर उनके किनारों को एक दूसरे से जोड़ दें तथा एक पट्टी को तो शिर के ऊपर से पहले पीछे फिर आगे ले जाते हुए पूरे शिर को ढक लें तथा दूसरी पट्टी को शिर के चारों ओर इस तरह से घुमाते रहें ताकि पहली पट्टी जब पीछे से आगे को आ जाती है तो ललाट के ऊपर दूसरी पट्टी उसके ऊपर से लगें, फिर जब पहली पट्टी पीछे को जाए तथा पीछे भी इसे दूसरी पट्टी के लपेट से ढबा दें इस तरह पहली पट्टी का शिर के आगे तथा पीछे की ओर लगाकर हर बार दूसरी पट्टी के लपेट से ढबाते रहें। इस तरह करते हुए पूरे सिर को ढक दें।

(11) पञ्चाहुँी बन्ध (Five tailed bandage) —यह 5 प्रान्त काला बन्ध है। इसे शिर तथा आनन (Face) जैसे गोल स्थानों पर बड़ी आसानी से बांधा जा सकता है। इसका प्रयोग हानि सन्धि के च्युत होने पर (Dislocation) तथा ऊर्ध्वजुगत क्षणों में होता है।

(12) गोकणा बन्ध —इसका आकार पाणी के चार सन्तानिका वाले यन्त्र के समान होता है। इसमें मध्यस्थित वस्त्रखण्ड आधे तूलफल के समान गहराई युक्त (Concave) होता है। इसमें नासिकादि उभार युक्त अंग ठीक से बैठ सकते हैं। इसका प्रयोग चिक्कु, अंस, वस्त्र, नासा एवं ओष्ठादि के ब्रणों पर तथा गुदाखण में किया जाता है। इसके मध्य वस्त्र-खण्ड का आकार स्थानानुसार छोटा या बड़ा बना-लेना चाहिये।

(13) चम्पक बन्ध (Bandage for two wounds) —यह मध्य से मण्डला-कार बन्ध, एक साथ दो झण स्थानों को आच्छादित करता है। पहले दोनों ब्रणों के मध्य में वस्त्र का छल्ला (मुद्रिका) बनाकर ढाल दें, फिर उसके दोनों ओर एक-एक पट्टी का गोलक (Roller bandage) बांध दें तथा इन दोनों गोलकों द्वारा दोनों ब्रणों को अलग-अलग बांधें।

(14) मण्डस बन्ध —इसके लपेट गोलाई लिये रहते हैं तथा इसे गोल स्थानों के ब्रणों पर प्रयोग करने के लिये कहा है, जैसे वश, उदर, यूँठ तथा बाहु में। वश तथा उदर में झण सामने या पीछे की ओर होने पर विवर्ण बन्ध बांधना

चाहिए। यदि ब्रण पार्श्व (Axillary line) में हो तो मण्डल बन्ध उपयुक्त होता है।

(15) उत्सङ्गः बन्ध (Sling bandage) —भग्न के कारण लटकी हुई बाहु को सहारा देने के लिए जो बन्ध बांधा जाता है, उसे उत्सङ्ग बन्ध कहते हैं। आजकल इस तरह के बन्ध के लिए त्रिकोणाकार पट्टी (Triangular bandage) का प्रयोग किया जाता है। त्रिकोणाकार बन्ध के दो प्रान्तों को बांधकर इसे गते (शीवा) में डाल देते हैं। इसके तीसरे प्रान्त से कूपर और सन्धि को आच्छादित करते हुए चौड़े भाग में हाथ की लाकर मुख्य पट्ट से सेफ्टीपिन (Safety pin) लगाकर जोड़ दें।

## 26 रोगी की सेवा

(Patient's care)

व्याधि को शीघ्रातिशीघ शमन करने के लिए औपचार्य ध्वनस्था के साथ-साथ रोगी की विशेष सेवा (Special care) की आवश्यकता होती है। यह सेवा अनेक प्रकार से की जाती है, जैसे—

(क) परिचारक द्वारा (By nurse)

(ख) वैद्य द्वारा (By doctor)

(क) परिचारक द्वारा (By nurse) :

परिचारक को स्निग्नध (ग्रीटिंग्युल्ट), अज्ञुग्यु (लोभ रहित), बलचारि, रोगी की रक्षा करने में तत्पर, वैद्य की आज्ञा के अनुसार कार्य करने वाला/बाती एवं उसे इस रहित होना चाहिए ।

स्निग्नधीज्ञुग्युबंलचारि युक्तो व्याधितरक्षणे ।

बलचारयुक्तदध्यात्मः पादः परिचरः स्मृतः ॥ सु० स० ३४

परिचारक को रोगी की विशेष सेवा के लिए ही रखा जाता है। वह रोगी का हर समय ध्यान रखती है और रोगी को अधिकारी धक्क मुदिधाये प्रदान करती है। इस कारण रोगी को कम से कम कष्ट होता है तथा उसका मन भी प्रसन्न रहता है।

रोगी की सेवा में निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए ।

(i) उपचार-परिचारक को रोगी के लिए प्रत्येक आवश्यक भोजन सम्बन्धी जानकारी होनी चाहिए [आजकल इस कार्य के लिए आहार शाता (Dietician) को रखा जाता है], जैसे यूष, विलेपि इत्यादि को बनाना, कृषि रोगियों के लिए पाचक तथा बलवद्धक भोजनों [जैसे प्रोटीन (Proteins), दूध तथा विटामिन्स] की जानकारी, स्थूल रोगियों के लिए हड्के तथा लेबन भोजन की जानकारी, मधुमेही के लिए शक्करा तथा कार्बोहाइड्रेट (Carbohydrate) से रहित भोजन इत्यादि की जानकारी ।

जैसे रोगी को करबट दिलाने, उठाने, बैठाने, पकड़कर चलाने तथा मल-मुचादि तथा करवाने की विधियों की पूर्ण जानकारी होनी चाहिए। रोगी के कमरे में

कितना प्रकाश चाहिए, रोगी के लिए आरामदायक तथा देखने में मुद्रर बिस्तर की व्यवस्था इत्यादि पर पूर्ण ध्यान देना चाहिए। रोगी को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाने में कोई त्रिप्यम किया (Jerky movement) नहीं होनी चाहिए। विषम किया से शाय कर्म द्वारा कुछ हुआ रोगी स्तब्धता (Shock) में पहुँच सकता है।

(ii) चतुराई (Intelligence) : परिचारक को रोगी पर अच्छे मनोवैज्ञानिक दंग से प्रभाव डालना चाहिए। रोगी के साथ ऐसी बातचीत करनी चाहिए तथा इस दंग से अपने आपको उसके सामने प्रस्तुत करना चाहिए जिससे रोगी का मन अपनी व्याधि से दूर रहे। रोगी के गम्भीरावस्था में होते हुए भी उसे अपनी व्याधि की गम्भीरता का लेशमान भी ज्ञान नहीं होने देना चाहिए।

(iii) प्रेम-भाव (Affection) :—रोगी की सेवा के बलमात्र अपना कर्तव्य (Duty) समझकर ही नहीं करनी चाहिए, परन्तु सेवा में प्रेम-भाव भी होना चाहिए जिससे कि रोगी परिचारक को अपना हितेजी समझने लगे तथा उसे देखते ही अपने दुःख को भूल जाए।

(iv) पवित्रता (Cleanliness) :—रोगी को हमेशा पवित्र स्थान पर रखना चाहिए। उसके बल्कि तथा भोजन पात्रों को पवित्र रखें। रोगी के शारीर को स्नान या स्पंज (Sponging) करवाकर साफ रखना चाहिए।

(v) रोगी के बारे में जानकारी :—परिचारक को रोगी के दिन भर की कार्यक्रम, नाड़ी की गति (Pulse rate), रक्त भार (Blood pressure), मल-मूत्र की प्रवृत्ति तथा रोगी को बमन आने या क्षुधा लगने इत्यादि की जानकारी।

(ख) वैद्य द्वारा (By doctor) :

वह वैद्य ही रोगी की सेवा उत्तम रूप से कर सकता है जो शास्त्र को अच्छी प्रकार से जानता हो, जिसने शल्य कर्मों देखा हो या स्वयं किया हो, लघु (संतुलित) हाथ वाला, पवित्र, शुरु, यन्त्र, स्वस्त एवं भैषजादि से युक्त, प्रत्युत्पन्नमति, बुद्धिमान, उत्साही, पण्डित, सत्यनिष्ठ एवं धर्मपरायण हो—

तत्त्वाधिगतसारथार्थे दृष्टकर्म स्वयंकृती ।

लघुहस्तः युच्चिः शूरः सज्जोपस्करभेषजः ॥

प्रत्युत्पन्नमतिर्थीमान् ध्यवसायी विशारदः ॥

मत्यधम्परो यस्त स भिषष्क् पाद उच्चये ॥

सु० स० 34

वैद्य को चाहिए कि वह रोगी की पुत्रवत रक्षा करे।

(तस्मात् पुत्रवदेवते वास्तविक्तुरं भिषष्क् ॥)

सु० स० 25

वैद्य को बाल तथा बृद्ध अवस्थाओं पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

(i) बालवाचस्था—बच्चों में कुछ एक व्याधियाँ ऐसी होती हैं जिन पर यजोष ध्यान देने की आवश्यकता होती है, जैसे बमन या विरेचन होने पर बच्चों में शीघ्र निर्जलीकरण की अवस्था (Dehydration) उत्पन्न हो जाती है, शरीर भार का 6% जल निकल जाने से निर्जलीकरण जन्य शाल्यता (Dehydration embolous) उत्पन्न हो जाती है। ऐसी स्थिति में उसे न्यूकोस सेलाइन (Inj-glucose saline, I.V. drip) सूखी वेघ द्वारा सिरा में देना चाहिए।

(ii) बृद्धावस्था (Old age)—बृद्धावस्था में कुछ एक अङ्गों में विकार विशेष रूप से उत्पन्न होते हैं इसलिए उन स्थानों पर विशेष ध्यान रखना चाहिए, जैसे हृदय, रक्तबहन-संस्थान, श्वासबह-संस्थान तथा मूत्रबह-संस्थान। इनमें विशेषकर प्रोस्टेट (Prostate) से मूत्राधारा, स्थूल रोगी में मधुमेह, हृदयरोग से पीड़ित रोगियों में श्वासबह संस्थान, हृदय तथा रक्त भार इत्यादि के रोगों पर विशेष ध्यान देना चाहिए। स्वासबह या रक्तमूत्रता होने पर रोगी के पेर मिर से  $\frac{1}{2}$  से 1 फुट ऊपर कर दें (Trendelenburg's position)। परन्तु हृदय रोग या डिडोदर होने पर उसे फाऊलर अथवा ऊर्ध्व देहार्थी आसन (Fowler's position) में रखें।

(i) निदा :—रोगी को यदि रात्रि को निदा न आती हो तो उसे अहिनेया सब्स्ट्रेट 1.0 बैंद या बार बिचूरेट्स (Barbiturates) देकर सुलाना चाहिए।

(ii) बेबना :—रोगी को यदि तीव्र बेबना हो रही हो तो निदाजनक औषधि अकेली काम नहीं करती, इसके लिए रोगी को गोदन्ती, अश्वगन्धा, जटामासी या निदाजनक तथा बेबनाहर (Analgesics and narcotics) औषधियाँ देनी चाहिए।

(iii) बमन :—सार्वदैहिक संज्ञानाश के पश्चात् प्रायः बमन होती है। इस पर कोई विशेष ध्यान देने की आवश्यकता नहीं होती, परन्तु यदि 12 घण्टे के पश्चात् भी बमन होती रहे तो पर्युद्धर्या शोषः (Peritonitis) या तीव्र आमाशय विस्फार (Acute dilatation of stomach) जैसी तीव्र अवस्थाओं को ध्यान में रखना चाहिए।

(iv) द्रव तथा लवणों का सन्तुलन :—अधिक बमन या अतिसार होने पर रोगी में जल तथा लवणों की पूर्ति कर देनी चाहिए।

(v) आहार (Diet) :—शाल्य कमों के उपरान्त रोगी का रावंप्रथम आहार द्रव या तरल पदार्थ (Liquid diet) होने चाहिए।

(vi) गतिविधि (movements) :—शाल्यकमों के उपरान्त रोगी को यथासम्भव शीघ्र गति करने (Early movements) के लिये प्रेरित करना चाहिए निर्जलीकरण की अवस्था (Dehydration) उत्पन्न हो जाती है, शरीर भार का 6% जल निकल जाने से निर्जलीकरण जन्य शाल्यता (Dehydration embolous) उत्पन्न हो जाती है। ऐसी स्थिति में उसे न्यूकोस सेलाइन (Inj-glucose saline, I.V.

drip) सूखी वेघ द्वारा सिरा में देना चाहिए।

(vii) आधमान (Distention) :—उदर के शाल्यकमों के पश्चात् आधमान उत्पन्न होने पर आन्त्रमध्यात (Paralytic ileus) तथा आमाशय विस्फार (Dilatation of stomach) की ओर तुरन्त ध्यान देना चाहिए।

(viii) हिक्का (Hiccough) :—हिक्का के कारणों की जाँच करके तुरन्त चिकित्सा करनी चाहिए।

(ix) संक्रमण (Infection) :—शाल्यकर्म के पश्चात् रोगी में संक्रमण होने पर (Wound infection, cellulitis, or stich abscess) उसकी तुरन्त आवश्यक चिकित्सा करनी चाहिए।

(x) निकास नलिका (Drainage tube) तथा सीवन कर्म :—निकास नलिका को 48 घन्टे के पश्चात् निकाल देना चाहिए। सीवनकर्म (Stiches) के धारणों को 6 से 8 दिन के पश्चात् काट देना चाहिए।

रोगी गृह के गुण (Qualities of hospital ward or patient's room) :—

(1) स्थान (Site) :—रोगी का घर प्रशस्त प्रदेश में एवं समतल भूमि (जो ऊँची-नीची न हो) पर होना चाहिए। घर के आपस निर्झर्णी, बिल्लादि के बृक्ष होने चाहिए ताकि गृह में शुद्ध, ताजी एवं अच्छी गत्थ युक्त हवा आ सके।

(2) गृह व्यवस्था (House Condition) :—घर पवित्र, स्वच्छ और देखने में सुन्दर तथा खुला होना चाहिए। इसमें धूप तथा वायु सीधी (Direct sun light or direct strong wind) नहीं आनी चाहिए। सतावन का प्रबन्ध उचित रूप में होना चाहिए (Ventilation should be perfect)।

(3) शर्या (Bed) :—शर्या समतल, पीड़ारहित तथा असंकुचित होनी चाहिए अर्थात् पर्याप्त विस्तृत हो जिस पर रोगी अच्छी प्रकार से करवट ले सके। शर्या के कोमल गहे एवं चादर रसणीय (देखने में सुन्दर) तथा आरामदायक (Comfortable) होने चाहिए। शर्या का मुख (शिर) धूर्वं दिशा की ओर रखें, इससे प्रातः की धूप आंखों पर नहीं पड़ती तथा देवताओं का बास भी इसी दिशा में आता जाता है।

(4) अन्य :—रोगी के गृह में प्रिय वाणी वाले मित्रों को रहना चाहिये जो कि रोगी को सांत्वना देकर उसके कष्ट को कम करते रहें। रोगी को स्वास्थ्यप्रद गृह में यथोच्च समय (Required period) तक रखना चाहिये।

#### रोगी की आचार विधि (Do's and don't's for patients)

रोगी को शीघ्र स्वास्थ्य लाभ प्राप्त करने के लिये निम्न आचार विधि का पालन करना चाहिये—

(1) निम्न सम्बन्धी (Sleeping habits)—रोगी को दिन में नहीं सोना चाहिये, दिन में सोने से कफ प्रकृष्टित होता है। इससे अङ्गों में गौरवता, वण में कण्ठ एवं शोथ तथा अति श्वासदि लक्षण उत्पन्न होते हैं।

(2) निषिद्ध कर्म (Prohibited actions)—रोगी को विषम आसन, विषम अधिक एवं ऊँचा बोलना) इत्यादि क्रियाओं का त्याग करना चाहिये। रोगी का श्वास जल का स्पर्श भी न करे। उसे ऊँण जल से स्नान करना चाहिये तथा उसे मानसिक एवं मत मूल्कादि वेगों को रोकना नहीं चाहिए।

#### (3) अतिक्रिया का त्याग (Prohibition of excessive actions)—रोगी

जो कोई भी क्रिया अति मात्रा में नहीं करनी चाहिए, जैसे अधिक देर खड़े रहना या बैठे रहना अथवा बिस्तर पर एक ही स्थिति में लेटे रहना, इससे शर्का वण (Bed sore) हो सकते हैं। इन कारणों से वायु प्रकृष्टित होकर वह शूल उत्पन्न करती है तथा एक ही अंग में थकावट (Fatigue) हो जाती है।

(4) वायुस्थलीय स्थिति (Atmospheric conditions)—रोगी के शरीर को कम से कम कष्ट हो इसके लिये रोगी को वायु (उत्तर तथा दक्षिण की वायु हितकारी तथा पूर्व एवं पश्चिम की अहितकारी होती है), धूल, धूप, धुआ एवं ओस का अधिक सेवन त्याग देना चाहिये।

भारतीय जलवायु के अनुसार वायु के गुण निम्न हैं।

#### हितकारी :—

- (i) उत्तर की वायु के गुण :—गह मधुर, कीमल, क्षमाय, शीतल, क्लेद

वर्धक होती है तथा यह क्षीण, क्षय व विष के रोगियों के लिये हितकारी तथा दोषों को प्रकृष्टित न करते वाली होती है।

(ii) विक्षिण की वायु के गुण—यह मधुर, क्षमाय, अविदाही एवं लघु होती है। यह नेत्रों के लिये, वात प्रकृति तथा क्षीण पुरुषों के लिये हितकारी एवं बलवर्धक होती है।

#### अहितकारी :—

(i) शुद्ध की वायु के गुण—यह वायु मधुर, स्त्रिय एवं लवण रस युक्त, गुरु, विदाही, रक्त पित्त कारक, कफवर्धक तथा व्रण, क्षत् एवं विष रोगियों के लिये हानि-कारक होती है।

(ii) पश्चिम की वायु के गुण—यह वायु कफ एवं मेद शोषक तथा रक्त पित्त हर एवं वात का प्रकोप करने वाली नाशक तथा कफ एवं मेद शोषक तथा रक्त पित्त हर एवं वात का प्रकोप करने वाली होती है।

(5) ब्रह्मचर्य (To preserve semen)—ग्राम्यग्रंथ (Sex) के विचारों की मन से दुर रखने के लिये स्त्रियों से वातालाप तथा उनका दर्शन, स्पर्शना द्वारा भी त्याग करना चाहिये। ब्रह्मचर्य का पालन न करते पर रात्रि को स्वयमेव शुक्र लाव (Night discharge) होकर शारीर में स्फूर्ति (Activeness) नहीं रहती एवं रोगी डुबलता अनुभव करता है।

(6) मानसिक स्थिति (Mental condition)—रोगी का मन प्रसन्न रखने के लिए बुरी वात का मुन्नना या मन को धूँधा करने वाले दृश्यों को देखना, ईर्ष्या, भय, शोक, चिंता एवं क्रोधादि का त्याग करना चाहिये। ऐसा न करते से रोगी डुखी होता है तथा उसे अजीर्ण रोग होने का भय रहता है (In such conditions secretions are less secreted)। इससे वात, पित्त, कफ अपने स्थान को छोड़कर अन्य स्थानों में चले जाते हैं। आमरस आमाशय में रहता है, इससे कफ बनता है, इससे अनेक विकार (जैसे वण में सूजन, पीड़ा, रक्तलाव, विदाह एवं पाकादि उपचर) उत्पन्न हो जाते हैं।

मानसिक सन्तुलन बनाये रखने के लिये आहुणों (विद्वानों) तथा गुरुओं की सेवा करनी चाहिये, इससे मनोवैज्ञानिक रूप से (Psychologically) मन में शान्ति बनी रहती है तथा रोगी प्रसन्नचित्त होकर शीघ्र भारोग को प्राप्त होता है।

ब्रह्म से निषेध क्रियाओं के सेवन करने से होने वाले दुष्प्रभाव (Bad effects of prohibited actions on the wound)

रात्रि जागाण से—ब्रह्म में सूजन एवं लालिमा होती है।

विवास्वप्तन—ब्रह्म में सूजन, लालिमा एवं बेदना होती है।

मैथुन करने से—उपरोक्त तीनों उपद्रव एवं मृतु हो सकती है।

अम करने से—सूजन (Oedema) होती है।

निषेध कर्मों को त्याग देने से ब्रह्मित शोध स्वस्थ होता है अर्थात् उसका जल्दी भरता है।

### आहार विधि तथा पच्याप्रयः (Indicated & Contra indicated diet)

(1) जल—(Drinking water)—पहले जल को गर्म करें फिर उसे ठंडा करके पीना चाहिए। उबालने से पानी बिशुद्ध (Sterilize) हो जाता है तथा इससे कफ गुण का नाश होते से जल लघु (Soft water) बन जाता है।

(2) प्रोटीन का आहार (Proteinous diet)—जांगल मांस रस का सेवन पुराने चावलों के साथ करना चाहिए। यह भोजन पौष्टिक (Full of Proteins) तथा हल्का (Easily digestible) होता है।

(3) द्रवधूल भोजन (Liquid or semi solid diet)—व्रणित को द्रव पदार्थ ही अधिक लेने चाहिए।

(4) भोज्य पदार्थ—ये स्निग्ध, अल्प उष्ण, लघु, दीपनीय एवं पाचक होने चाहिए। चौलाई, जीवन्ती, बच्चुआ, परबल (पटोल), बैंगन, करेला, इत्यादि पदार्थों को घृत में भूतकर तथा आंबला, अनारदाना, सेंधा नमक से संस्कृत किए भात खाने चाहिए।

पच्य द्रव्य :—निम्न भोज्य पदार्थ पद्य द्रव्यों के अन्तर्गत आते हैं। घृत, द्रव—

शूक धान्य—चावल, जी, गेहूं, लाल चावल, बेवत साठी, काङ्गनी, काले साठी, पाण्डुक (पीले धान्य), सुगन्धिक (देवदाली), कालक, पीतक, प्रमोहक, आसनक, कमल, कौदो, श्यामक इत्यादि शूक धान्य हैं।

जांगल मांस—एन दूरिण, (काला हरिण), कुरंझ, कस्तूरी, मृग, कर्कटक, ज़रूर, बट्टर, तीतर एवं कपिचल का मांस जंगल मांस कहलाता है।

बाल एवं शाक—मृग, बनमूग, मोठ, कलाय, मसूर, चना, अरहर, बच्चुआ, चौपतिया, जीवन्ती, चौलाई एवं मण्डकपर्ण पद्य हैं।

घृत—गो घृत।

नमक—सेंधा नमक।

फल—आंबला, अनार।

सातस्य—रोग, देश, काल एवं देह अग्नि, इनके सातस्य होने पर विष भी (उचित रूप से एवं अल्प मात्रा में) औषध का काम करता है।

अपथ्य द्रव्य—  
जो द्रव्य रोगी एवं स्वस्थ पुरुष दोनों के लिए अहितकारी होते हैं वे अपथ्य द्रव्य कहलाते हैं। निम्नावस्थाओं में अपथ्य द्रव्यों का भी सेवन किया जा सकता है—

(i) स्निग्ध द्रव्य सेवन करने वाला एवं बलवान् पुरुष।

(ii) युवा तथा व्यायाम करने वाला पुरुष, तीव्र पाचका भिन वाला तथा स्निग्ध द्रव्यों को सेवन करने वाला पुरुष।

(iii) अपथ्य द्रव्यों की अल्प मात्रा।

(iv) अपथ्य द्रव्यों का किसी की प्रकृति के अनुकूल होना।

अपथ्य द्रव्य निम्न हैं—

(क) अतिशीत जल एवं नव धान्य।  
(ख) पिष्ठिक्षुल द्रव्यः—अधिक दूष्य, दधि व तक, उड़द, तिल, कुलत्थी, गुड़, पिष्ट, खीर, कुशरा अमल, लावण एवं कटु रस युक्त द्रव्य।

शुक पदार्थः—शुक मांस एवं शाक, भेड़ या बकरी का मांस, आत्पूर औदक मांस तथा बक्स।

जलपरोक्त द्रव्य त्रण में पूर्य उत्पन्न करते हैं इसलिए ये हृष्पित कहलाते हैं। जल रोगी त्रण (मुरा, सीधु आस्तक, अरिष्ट, मैरेय अर्थात् मुरा + आस्तक) का त्रण करने। यह पदार्थ ओज नाशक है तथा अम्ल, तीक्ष्ण, रक्त, उंडण होने से झरने में शीघ्र व्याप्त होकर त्रण को हृष्पित करते हैं। अति भोजन, गरिष्ठ भोजन, विलुद भोजन, उपवास, अति उंडण, अति शीत, अति रक्त, अति वित्तध, अनिन, क्षीर तथा विष (इनका प्रयोग केवल दाह, पाक या मारने के लिए करना चाहिए) का त्रयाग करना चाहिए।

अल्प संयोग से अहितकर द्रव्यः—

बलसीफल (लौकी, तौरई इत्यादि), कवक (छतरक), करीर, आम्रफल,

**तदण्ड, दृत्यन्ती, दधि, तिलपिण्ड, तैल, आनूप मास, ओदक मास, शुष्क शाक, बकरी या भेड़ का मास, महाजन्मुक, चिलचिम मत्स्य, गोधा एवं वराह ।**

उपरोक्त द्रव्यों को दूध के साथ सेवन करने पर इनका विष के समान प्रभाव होता है ।

### संयोग से अहितकर द्रव्यः—

(1) केलाफल + तालफल, दूध, दधि एवं धात्वा ।

(2) दूध के थोड़ी देर पहले या पछात में लक्ख (बड़हल) का प्रयोग । दूध, दधि एवं उड़द की दाल को एक साथ लेना ।

(3) दूध + मूली, आम, जामुन, शुकर, गोह एवं सब सब्जियाँ ।

(4) रोहिणी शाक, पुष्कर शाक + दूध एवं घृत ।

(5) नाड़ी एवं प्रत्व शाक, कुब्कुट + दधि ।

(6) मुरा + कुशरा (तिल, तण्डुल एवं मास से निर्मित यवागु) खीर ।

(7) शहद + गर्म अनुपान (जैसे द्रुधादि) ।

(8) मूली + मधु ।

(9) विरुद्ध आहार + मधु ।

(10) वराह + गुड़ ।

(11) मकोत + गुड़ ।

(12) मत्स्य सेवन + ईश्वरस से निर्मित वस्तुएँ ।

(13) तिल की पूड़ी + कांजी ।

(14) मदिरा, अर्ध स्विवन गेहै + बलाका पक्षी (काला बक) ।

(15) कन्चा मास + पित ।

(16) अंकुरित धान्य या उड़द, दूध, गुड़, शहद, वसा + आम्य, आनूप एवं जलचतरों का मास ।

### संस्कार-कर्म से अहितकर द्रव्यः—

(1) सरसों के तेल में भूता (पक्व) कृत्तर मास ।

(2) एरण्ड की लकड़ी या एरण्ड के तेल में भूता (पक्व) कपर्जिल, मोर बटेर, तीतर या गोधा का मास ।

इसी प्रकार वराह की वसा में पकाए बलाका पक्षी को नारियल के साथ खाना ।

(3) कांसे के पात्र में 10 दिन तक रखा रहा ।

(4) उष्ण कोल तथा उष्णवीर्य द्रव्यों के साथ मधु ।

(5) काकमाची या मछलियों के पकाए पात्र में सोंठ (शुण्ठी) ।

(6) उपोदिका शाक के तिल कल्प में सिद्ध होने पर ।  
(7) भास पक्षी की शूल में बीघिकर पकाकर खाना ।

**मास विशद द्रव्य—** निम्न द्रव्य हमान मात्रा में लेने पर अहितकारी होते हैं ।

गहद + जल  
गहद + घृत  
मधु + सोंठ

सोंठ + जल

रस, बीर्य एवं विपाक विशद द्रव्य—इन द्रव्यों का सेवन करने से विभिन्न व्याधियाँ, इत्तिय दौर्बल्य तथा मृत्यु भी सम्भव है ।

बीर्य विशद—  
रस बीर्य एवं विपाक में विशद  
मधुर + अम्ल रस  
मधुर + लवण

रस एवं विपाक में विशद  
रस में विशद  
मधुर + जवण  
अम्ल + लवण

रस, बीर्य एवं विपाक में विशद  
अम्ल + कट्ट  
लवण + कषाय

रस एवं बीर्य तथा विपाक में विशद  
लवण + कषाय  
लवण + कषाय  
अम्ल + कट्ट

रस एवं बीर्य में विशद  
कट्ट + तिक्क  
कट्ट + कषाय

लवण + कषाय  
तिक्क + कषाय

रस एवं बीर्य में विशद  
तिक्क + कषाय

लवण + कषाय  
तिक्क + कषाय

मधुर + कषाय  
गुड + हरण्ड

अम्ल लवण  
अनार चटनी

उपरोक्त विशद द्रव्यों से उत्पन्न रोग विरेचन से नहीं होते हैं ।

बनवान रोगी को वमन एवं विरेचन करायें तथा निवाल में पूर्व ही शमन चिकित्सा कर देनी चाहिए । स्वप्नादि धारुओं का पहले से ही सेवन करने से पुरुष रोग से ग्रस्त नहीं होता ।

### "रक्षा करें"

शल्यतन्त्र में अनेक प्रकार के ब्रणों की चिकित्सा की जाती है। रोगी में ब्रणों की उत्पत्ति मुख्यतः राक्षसों (जीवाणु, संक्रमण) से होती है। राक्षसों (जीवाणु) तथा अन्य दोषों (Contaminations) से ब्रण की रक्षा करने के लिए निम्न विधियों का प्रयोग करें।

ब्रण से रक्षा करने के लिए शुल्क, कुबेर, कार्तिकेय की आज्ञा का प्रयोग करते हैं, इन्होंने और मांस जिनको प्रिय है—(भोज्य है), वे ब्रणित के पास रक्त भक्षणार्थ आते हैं। ब्रणों का महेश, कुबेरादि राक्षसों को, रोगी से अपनी पूजा करवाने के लिये या उसके होने के कारण उसे भेजते हैं या फिर उसको आयु समाप्त कर्मात्मक रक्षा करते हैं के लिए, रोगी के पास भेजते हैं या फिर उसके होने के कारण उसे मारने के लिये भेजते हैं।

कर्मात्मक रक्षा करने के लिए—  
 (i) राक्षसों अथवा जीवाणुओं से बचने के लिये सदा तर्ख एवं बाल कटवाक रक्षात्मक रक्षा करें।

(ii) शहीर की सफाई (Cleanliness) रखनी चाहिए।

(iii) छत्र, अतिथ्य (दोण पुष्पी), लाङ्गूली, जटामांसी, सरसों, ब्रह्मचारिणी, छलपणी, पृथिव्यपर्णी तथा इवेत हूर्वा औषधियों को शिर पर धारण (चंदनादि), शालपणी, ब्रह्मचारिणी इत्यादि रोगी से दूर रहें।

(iv) चमर से ब्रणित को हवा करते रहें, इससे मक्खियाँ रोगी से दूर रहती हैं (अत्यथा वे ब्रण पर बौद्ध देती हैं और इससे कृमि उत्पन्न होते हैं)।  
 (v) रोगी को सूची या हाथ से खुजलाना नहीं चाहिए। इससे ब्रण प्राची आंचात होता है तथा ब्रण में तखादि की या खुजलाने वाली वस्तु की गंदगी प्राची हो जाती है।

(vi) सुश्रुत में औपसर्गिक रोगों के प्रसार (Spread) की निम्न विधि बताई है। इनके निवेद्य से सब प्रकार के संक्रमणों से रोगी की रक्षा हो सकती है। जैसे ब्रणित रोगी को किसी अन्य औपसर्ग प्रस्तुत रोगी के साथ भोजन नहीं करता है, उसके श्वास से दूर रहता चाहिए तथा उसके स्पर्श (Physical contact) में भी नहीं जाना चाहिए। साथ सोने से, उत्तमी मालादि पहनने से तथा मैशुन के से रोगी में उपर्युक्त होता है।

प्रसङ्गाद् गात्रस्पर्शान्तिःश्वासात् सहस्रोजनात्।  
 वस्त्रमाल्यातुलेपनात्।।।  
 सहस्रयास्त्राच्चापि नेत्राभ्युपद एव च।।।  
 कुठं ऊवरश्च शोषरच औपसर्गिक रोगाश्च संक्रमन्ति नरान्तरम्।।। सु० नि० ५

### रोगी की सेवा

341

Cure—जो रोगी निम्न कर्मों का प्रालृत करता है, उसके पास राक्षस (जीवाणु) नहीं होता है।

(vii) राक्षसों से मुक्ति के लिये धूप, होम व पूजनादि करना चाहिए। इससे

हिंडा, कुबेरादि प्रसान्न होकर राक्षसों को ब्रापस बुला लेते हैं [होमादि के धूम से हुत से जीवाणुओं का नाश होता है तथा रोगी के गूह की वायु शुद्ध होती है।]

(viii) गुण्डुल, अगर, देवदार जैसे द्रव्यों के धूम से पट्ट, कवलिका एवं रोगी के बिस्तर एवं ब्रणादि को शुद्ध कर लेना चाहिए। (It was one of the aseptic procedure during accident times)। सरसाँ, निम्न पत्र, घृत एवं मैत्रधा नमक से ब्रणित को 10 दिन तक लगातार प्रातः एवं सायं धूप देनी चाहिए [दस दिन तक सूज पर कणाकुर (Granulation tissues) उपर तक आ जाने से, उससे निकले प्रोटोलायटिक एंजाइम जो जीवाणु-नाशक होते हैं, इनके कारण ब्रण शुद्ध (Autosterilized) रहता है (अर्थात् उसमें संक्रमण नहीं होता)]। सरसों तथा निम्ब का धूम थोड़ा विक्षोभक (Irritant) होता है। इससे रोगी गृह के जीवाणु भी नष्ट हो जाते हैं तथा अन्य जीव (Insects) भी गूह में नहीं आते।

(ix) संदृष्टण निषेध (Avoid contaminations)—बायु, धूप, धून्ति, तिनके तथा नवादि वस्तुओं से ब्रण की रक्षा करने के लिए ब्रण स्थान पर बन्धन (Bandage) बाधकर रखना चाहिए।

## 27

V पक्षत क्रिया परीक्षा  
VI आमचारात्मक क्रिया परीक्षा  
VII प्रस्तुति-तंत्र-तत्त्व परीक्षा

## प्रयोगशालीय परीक्षण

रोगियों में विविध प्रकार के शल्य कर्मों के पूर्व जारीर के निकाबों एवं रक्त में घटकों की अनेक प्रकार से प्रयोगशालीय परीक्षायें की जाती हैं। इन परीक्षाओं में रोग चिनिशब्द के अतिरिक्त रोगी के शल्य कर्म के योग्य एवं अयोग्य होने की जानकारी भी प्राप्त होती है। यदि रोगी शल्य कर्म के अयोग्य होते तो उसे शल्य कर्म के पार आवंदित रोगी के योग्य बनाने के लिए उचित चिकित्सा की जाती है जैसे—

रोगी में हिमोलोजिन (Haemoglobin) द्वारा स्तर (मूल्य) सामान्य से न्यून होने पर उसे रक्ताधान (Blood transfusion) करना, मूत्र में शर्करा की उपास्थिति रहने पर मधुमेह की चिकित्सा करना इत्यादि। ये परीक्षायें निम्नलिखित हैं—

I पुरीष परीक्षा—पुरीष की अनेकविद् परीक्षायें होती हैं, परन्तु मुख्य परीक्षायें निम्न हैं—

1. वर्ण (Colour)
2. ज्लेट्मा पुरीष (Faecal mucus)
3. रूप पुरीष (Faecal pus)
4. वसा पुरीष (Faecal fat)
5. कृत्ति पुरीष (Helmenthiasis)

II मूत्र परीक्षा—शस्त्र कर्म के पूर्व मूत्र की निम्न परीक्षायें करनी चाहिये—

1. मूत्र का वर्ण (Colour of urine)
2. मूत्र की प्रतिरक्षया (Reaction of urine)
3. मूत्र का आपेक्षिक घनत्व (Sp. gravity of urine)
4. मूत्र में प्रोटीन (Proteins in urine)
5. मूत्र में शर्करा (Sugar in urine)

III रक्त परीक्षा—रक्त में शस्त्र कर्म के पूर्व किये जाने वाली परीक्षायें—

1. रक्त के घटकों का सामान्य स्तर (Values of blood constituents)
2. रक्त घटकों के विकार (Disorders of blood constituents)
3. श्वेत रक्तिर कोणिका परीक्षा (Test for white blood corpuscles)

IV जठर रस परीक्षा—आमाशय साव की निम्न 2 परीक्षायें ही मुख्य हैं—

1. जठर रस के साव की परीक्षा (Tests for gastric juice)
2. हिस्टामिन परीक्षा (Histamin test)

I पुरीष परीक्षा :

1. वर्ण—अनेक रोगों में रोगी के पुरीष का वर्ण विकृत हो जाता है।
- (i) पीताम (Pale)—सामान्यतः निरागावस्था में रोगी के पुरीष का वर्ण स्थित वस्तुओं के खाने से [जैसे चुकुन्दर, कुछ औषधियाँ (Brom sulphaleinect)] पीताम होता है।

(ii) लत (Red)—अधः आन्व (Lower gut) से रक्ताक्षर होने पर तथा कुछ वस्तुओं के खाने से [जैसे चुकुन्दर, कुछ औषधियाँ (Brom sulphaleinect)] पुरीष का वर्ण लाल हो जाता है।

(iii) काला मल (Malena)—अन्नवह-स्रोत के ऊर्ध्वे भाग (Upper gut) में स्थित वर्ण, अंगुली अर्वंद (Papilloma), रक्त अंकुर (polypus), आन्वान्च-प्रवेष (Intussusception) तथा वाताकार्ड (Malignant growth) के कारण या कुछ पदार्थों के भक्षण करने (खाने) से जैसे—लौहयुक्त पदार्थ, बिस्मिल्युक्त पदार्थ तथा कोमला इत्यादि से पुरीष का वर्ण काला (Tarry stool) हो जाता है। इसके लिए बैन्जडीन परीक्षा की जाती है (Benzidine test for occult blood).

(iv) मिट्टी के समान वर्ण (Clay colour)—अवरोध कामला (Obstructive Jaundice) में, पुरीष में पित्त की अनुपस्थिति (Absence of bile, in a healthy persons 100 grams of faeces contains 75-350 mg. of urobilinogen) से एवं बैरियम सल्फेट के खाने से पुरीष का वर्ण मिट्टी के समान हो जाता है।

(v) हरा (Green)—पारद युक्त औषधियाँ (Calomel) खाने से तथा हरी सब्जियों (पालक) के ठीक से पाचन न होने से पुरीष का वर्ण हरा हो जाता है।

2. ज्लेट्मा पुरीष—आन्व का अंगुली-प्रत्यन्ध-अर्वंद (Villous adenoma) एवं मलाशय में अर्वंद या शोष होने से पुरीष के साथ अवरोधिक ज्लेट्मा (3-4 लीटर 24 घण्टे में) आने लगता है। इससे निर्जलीकरण (dehydration) एवं कैल्सियम होस (Hypo calamia) की अवस्था उत्पन्न हो जाती है। पुरीष में ज्लेट्मा एवं रक्त रूप के साथ मिलकर अनेक अवस्थाओं में आसकता है जैसे—ज्ञान जन्य वृहदांत गोष (ulcerative colitis), बैसिलरी प्रवाहिका (Bacillary dysentery), आन्वक्षय (Tuberculosis of intestine) तथा तीव्र आन्व-विस्ट्री-गोष (Acute diverticulitis)।

3. पूर्ण पुरीष—बृहदान्त्र शोथ (Chronic ulcerative colitis), जीर्णप्रसाहिका (Bacillary dysentery), अमोबा जन्य बृहदान्त्र शोथ (Amoebic colitis) तथा भग्नात्मक रोगी, इनकी पुरीष में पूय की उपस्थिति रहती है।

4. वसा पुरीष—पित्त (Bile) या पाचक स्रोतों से कमी आ जाने से पुरीष में वसा की मात्रा अधिक हो जाती है, क्योंकि वसा का ठिक से पाचन न होने के कारण उसका शोषण नहीं हो पाता।

सामान्य (निरोग) अवस्था में 24 घण्टे से तुरीष में वसा की कुल मात्रा—अहार रूप में लिए गये वसा का 2.1% भाग, 4 ग्राम वसा ।

पुरीष में सामान्य से अधिक मात्रा में वसा की उपस्थिति—अभ्याशय की शोथ या धातक अर्द्ध द, कामला, यकृत की व्याधियाँ, आन्त्र गत व्याधियाँ (Spru, Glutten's disease) तथा आन्त्र के अधिक भाग का छेदन (Resection) कर देने से पुरीष में वसा अत्यधिक मात्रा में आने लगती है। इस कारण वसा में घुलनशील विटामिन (Vit. A, D, E, K) की पुरीष के साथ बाहर निकल जाते हैं। इससे इन विटामिनों की न्यूनता से अनेक लक्षण उत्पन्न होने लगते हैं।

### 5. कूमि पुरीष—

(i) जियारिया (Giardia)—यह कूमि प्रायः कोई विकार उत्पन्न नहीं करता, परन्तु कमी-कमी अतिसार उत्पन्न कर देता है।

(ii) पिन कूमि (Pin worm i. e. Oxyuris or enterobius vermicularis)—इन कूमियों के कारण गुदा में कण्ड (Prurius ani), उदर में ऐठन (Cramps), अतिसार तथा तन्त्रिका जाय विकार उत्पन्न होने लगते हैं।

(iii) विष कूमि (Worm or Tichuris)—इस कूमि से प्रायः कोई विकार उत्पन्न नहीं होता, परन्तु कमी-कमी उदर में मन्द वेदना, रक्त अलता, पुरीष रक्त युक्त, गुद भ्रंशा, (Prolapse rectum) इत्यादि विकार उत्पन्न होते हैं।

(iv) गोल कूमि (Round worm i.e. ascaris lumbricoid)—इस कूमि के कारण उदर में वेदना, आन्त्र में कूमियों द्वारा अवरोध, कुपकुस शोथ (Pneumonitis), प्रत्यूर्जी (Allergic) जन्य विकार एवं तन्त्रिका जन्य विकार (Nervous disorders) उत्पन्न हो सकते हैं।

(v) कीता कूमि (Tape worm i. e. cestodes)—यह कूमि प्रायः लक्षण नहिं आन्त्र में पड़ा रहता है, परन्तु कमी-कमी अतिसार, क्षुधा नाश, विषमयता (Toxaemia) एवं अतिवरोध के लक्षणों को उत्पन्न कर देता है। गाय का मांस खाने से प्रायः Taenia saginata का संक्रमण होता है। सूअर का मांस खाने वाले व्यक्तियों में Taenia Solium कूमि का संक्रमण होता है।

(vi) अङ्कुष कूमि (Hook worm, ankylostoma duodenale)—यह

कूमि आन्त्र में लक्षण रहित भी रह सकता है। कमी-कमी इससे न्यूमोनिया (Pneumonia), रक्ताल्पता (Anaemia), अनन्वर स्रोत के विकार एवं शरीर की वृद्धि में होस इत्यादि लक्षण उत्पन्न होने लगते हैं।

### II. मूत्र परीक्षा :

एक स्वस्थ व्यक्ति में 24 घण्टे में मूत्र की कुल मात्रा 600 से 1600 मिली। लीटर होती है। रक्जक द्रव (Phenol sulphonophthalein dye in 6 mg dose) को सूची द्वारा सिरा में देने पर यदि एक घण्ट की अवधि में उस घोल का 40-60 प्रतिशत भाग मूत्र द्वारा तिलावित न होने लगे तो दृवक को व्याधि ग्रस्त समझें।

1. मूत्र वर्ण—मूत्र में अनेक प्रकार के विकृत वर्ण मिल सकते हैं जैसे—

(i) सत्र वर्ण—मूत्रवह स्रोत से स्पष्ट रूप में रक्तजाव (Frank bleeding) होने पर मूत्र का रंग लाल हो जाता है।

(ii) धूसरा (भूरा) वर्ण—अम्ल प्रतिक्रिया वाले मूत्र में उपस्थित रक्त से लाल कणों का संरचय ( Destruction) होकर मूत्र धूसर वर्ण का (Brown) हो जाता है।

(iii) झींधिया वर्ण—मूत्र में पूय या काईल (Chyle) की उपस्थिति रहने पर मूत्र हृष्ट के समान श्वेताभ वर्ण का हो जाता है।

(iv) व्हर्च्चल (Watery clean)—बहुत्रू (Diabetes insipidus) होने पर मूत्र पानी के सदृश स्वच्छ हो जाता है।

(v) गम्भीर धूसर वर्ण (Dark brown)—मूत्र में पित्त कणों (Bile particles) के कारण मूत्र सान्द्र (गाढ़ा) होने से मूत्र गम्भीर पिघल अर्थात् धूसर वर्ण का हो जाता है।

(2) मूत्र की प्रतिक्रिया—सामान्यतः मूत्र की प्रतिक्रिया तनिक अम्लीय या तनिक शारीय होती है परन्तु विकृत अवस्थाओं में मूत्र की प्रतिक्रिया अत्यधिक अम्लीय या अत्यधिक शारीय होती है।

(i) अत्यधिक अम्लीय (4 or less than 4 pH)—मूत्र में अधिक अम्लता (Acidity), अतिसार, मधुमेह एवं क्षय रोग के कारण होती है।

(ii) अधिक शारीय (8 or more than 8 pH)—अधिक वस्त्र होने से या मूत्रवह संस्थान के प्रोटिअस बल्गेरस (Proteus vulgaris) द्वारा संक्रमित होने से मूत्र की प्रतिक्रिया अत्यधिक शारीय हो जाती है।

(3) मूत्र का आपेक्षिक घनत्व (Specific gravity)—एक स्वस्थ व्यक्ति में मूत्र का आपेक्षिक घनत्व 1010 रहता है। परन्तु मूत्र के आपेक्षिक घनत्व में होस (अर्थात् 1004 या इससे न्यून) बहुत्रूता अर्थात् उदक मेह (Diabetes mellitus) होता है।

insipidus) के कारण होता है। यह अवस्था बूक क नलिकाओं (Renal tubules) की विक्रिति (Due to less reabsorption) के कारण उत्पन्न होती है।

(4) मूत्र में प्रोटीन—मूत्र में सामान्यतः प्रोटीन की अनुपस्थिति रहती है परन्तु कुछ कारणों से मूत्र में प्रोटीन अस्थाई या स्थाई रूप में उपस्थित हो सकती है जैसे—

(i) अस्थाई (Temporary)—व्यायाम करने से, उत्तेजना से एवं शीत से मूत्र में अस्थाई रूप से प्रोटीन (Albumin) आने लगती है।

(ii) स्थाई (Permanent)—दूसरे में ग्लोमेरलस शोथ (Glomerulitis) होने से मूत्र में प्रोटीन स्थाई रूप से आने लगती है। मूत्र की प्रोटीन में Albumin ही अधिक होती है, कभी-कभी ग्लोब्युलिन (Globulin) भी आने लगती है।

(5) मूत्र में शक्कररा—मूत्र में निरोधावस्था में शक्कररा की अनुपस्थिति रहती है, परन्तु कुछ अवस्थाओं में शक्कररा मूत्र में स्थाई या अस्थाई रूप से आने लगती है।

(i) अस्थाई—अधिक शक्कररा खाने से मूत्र में अस्थाई रूप से शक्कररा निकलते लगती है।

(ii) स्थाई—मधुमेह एवं अन्यायाशय में विकार होने से (Insulin के कम मात्रा में निर्माण होने पर), मूत्र में स्थाई रूप से शक्कररा आने लगती है।

(6) मूत्र में एसिटोन—वसा का अनुर्ध्व चयापचय (Incomplete metabolism) होने से मूत्र में एसिटोन (Acetone=Acetoacetic acid + Hydroxybuteric acid) निकलते लगती है। इससे मूत्र की प्रतिक्रिया अम्लीय होती है तथा मूत्र से फलों के समान तुगड़ा आने लगती है। मूत्र में एसिटोन अनेक अवस्थाओं में आ सकता है; जैसे—उपचास काल में, जीर्ण मधुमेह में अम्लरक्ता में तथा निर्जलीकरण की अवस्था में।

(7) रक्त परीक्षा—

(i) रक्त के घटक—रक्त के घटकों (Blood constituents) का स्तर (मूल्य) विभिन्न व्याधियों के कारण बढ़ता या घटता रहता है। इन घटकों के सामान्य स्तर (मूल्य) की जानकारी प्राप्त करने के लिए अंग्रेजित तालिका दी गई है। इनका मूल्य (स्तर) बढ़ने या घटने पर तदनुसार ही व्याधि का ज्ञान करना चाहिए जैसा अग्रिम तालिका में दिखाया गया है।

### रक्त के घटकों के सामान्य स्तर (मूल्य) की तालिका

रक्त के घटक	सामान्य स्तर (मूल्य)	परीक्षण के लिए रक्त की आवश्यक मात्रा मिलीलीटर में	विधि एवं मूलिट
Amylase	6.0—15.0/100 ml of Blood	2.0	
Bilirubin [direct + ve indirect + ve	0.4 mg/100 ml 0.4 mg—8 mg/100 ml	" 2.0 2.0	Somogi method
Calcium	9.02 mg—10.5 mg/100 ml	" 2.0	
Chlorides	0.5 mEq—1.3 mEq/1,000 ml	" 0.5	
Cholesterol	115 mg—250 mg/100 ml	" 0.5	
Non Protein nitrogen	15 mg—35 mg/100 ml	" 0.5	
Acid phosphatase	0.5 units—2.0 units/100ml	" 1.0	
Alkaline phosphatase			
adult child	1.5 units—4.5 units/100 ml 5.0 units—14.0 units/100 ml	0.5] 2.0	Bodenski method
Phosphorus	3 mg—5 mg/100 ml	"	

प्रयोगशालीय परीक्षण	प्रयोगशालीय परीक्षण	प्रयोगशालीय परीक्षण	प्रयोगशालीय परीक्षण
प्रयोगशालीय परीक्षण	प्रयोगशालीय परीक्षण	प्रयोगशालीय परीक्षण	प्रयोगशालीय परीक्षण
प्रयोगशालीय परीक्षण	प्रयोगशालीय परीक्षण	प्रयोगशालीय परीक्षण	प्रयोगशालीय परीक्षण
प्रयोगशालीय परीक्षण	प्रयोगशालीय परीक्षण	प्रयोगशालीय परीक्षण	प्रयोगशालीय परीक्षण
प्रयोगशालीय परीक्षण	प्रयोगशालीय परीक्षण	प्रयोगशालीय परीक्षण	प्रयोगशालीय परीक्षण

### दृष्टि विकल्प विवरण (Disorders of blood Constituents) का विवरण

प्रयोगशालीय परीक्षण	प्रयोगशालीय परीक्षण	प्रयोगशालीय परीक्षण	प्रयोगशालीय परीक्षण
Creatinine (Serum)	Creatinine (Serum)	Creatinine (Serum)	Creatinine (Serum)
Glucose oral G.T.T.	Glucose oral G.T.T.	Glucose oral G.T.T.	Glucose oral G.T.T.
Glucose	Glucose	Glucose	Glucose
Uric acid male	Uric acid male	Uric acid male	Uric acid male
Urea	Urea	Urea	Urea
Sodium	Sodium	Sodium	Sodium
Globulin	Globulin	Globulin	Globulin
Albumin	Albumin	Albumin	Albumin
Proteins	Proteins	Proteins	Proteins
Potassium	Potassium	Potassium	Potassium

विकृति	लक्षण एवं सामान्य स्तर	हेतु एवं चिकित्सा
क्षार रक्तता (Alkalosis)	रक्त में क्षारता बढ़ने से रोगी का मूत्र भी अधिक क्षारीय हो जाता है।	अधिक वपन अन्ने पर आमाशय से लवण अम्ल (HCl) के अधिक निकल जाने से यह अवस्था उत्पन्न होती है। इसके लिए रोगी को Ammonium chloride देना चाहिए।
पोटैशियम (Potassium)	रक्त में पोटैशियम का ह्रास होने पर पेशी दौबल्य या पेशीधात, हृदय की गति में विषमता या हृदयपात (Cardiac failure) हो सकता है। परन्तु यदि रक्त में पोटैशियम का मूल्य (स्तर) बढ़ जाये तो इससे हृदय की गति में ह्रास (Bradycardia) हो जाता है।	ये लक्षण तुरन्त उत्पन्न नहीं होते क्योंकि पोटैशियम कोषों से निकल कर रक्त में आकर इसकी पूर्ति करता रहता है।
रक्त स्कन्दन की अवधि (Coagulation time)	रक्त स्कन्दन (Coagulation time) की अवधि सामान्यतः 3 से 5 मिनट होती है तथा Prothrombin time की अवधि 10 मिनट होती है।	हिमोफिलिया तथा Hypofibrinogemia में रक्त स्कन्दन (C.T.) की अवधि अधिक हो जाती है। प्रोथ्रो-मिन की अवधि स्कन्दन विरोधी चिकित्सा (Anti coagulants) से रक्त के V, VII एवं X घटकों (Factors) की कमी से एवं विटामिन K की कमी से बढ़ जाती है।
रक्त स्राव की अवधि (Bleeding time)	यह अवधि सामान्यतः 1 से 6.5 मिनट (डिस्क के अनुसार 1 से 6 मिनट) होती है।	रक्त स्रावी व्याधियों (Purpura i.e. thrombocytopenia) में यह अवधि बढ़ जाती है।

विकृति	लक्षण एवं सामान्य स्तर	हेतु एवं चिकित्सा
लोहित कोशिका मापी (Haematocrit)	रक्त में लोहित कोशिका मापी का मूल्य (Value) सामान्यावस्था में पुरुषों में 47% तथा स्त्रियों में 42% होता है।	अरक्तता एवं बहुलोहितकोशिका रक्तता (Polycythemia) में यह अवधि बढ़ जाती है।
रक्त बिम्बाणुओं (Blood platelets) की गणना	इनका मूल्य सामान्यावस्था (निरोपावस्था) में 3 से 5 लाख/c. m. m. होता है। इनका ह्रास होने पर इनकी मात्रा 1 लाख से भी कम हो जाती है।	इनकी गणना में ह्रास रक्त स्रावी व्याधियों में होता है।
लोहित कोशिका तलच्छट गति (E. S. R.)	पुरुषों में इनकी सामान्य गति 1-3 mm. तथा स्त्रियों में 4-7 mm. होती है।	जीर्ण व्याधियों (क्षय रोग, जीर्ण ज्वर, आमवातादि व्याधियाँ) में यह अवधि बढ़ जाती है।
हीमोग्लोबिन (Haemoglobin)	पुरुषों में इसका सामान्य मूल्य 14-17 gms./100 ml, स्त्रियों में 12 से 16 gms./100 ml, तथा बच्चों में 12-15 gms. per 100 ml. होता है।	रक्तल्पता के रोगियों में (All types of anaemias) हीमोग्लोबिन का मूल्य सामान्य से कम हो जाता है।
लोहित रुधिर कोशिका (R. B. C.) की गणना	स्वस्थ व्यक्ति में इनकी गणना 50 से 55 लाख तक रहती है।	Myeloid leukemia में R. B. C. की गणना एक लाख से भी कम हो जाती है। रक्त में सान्द्रता बढ़ने (Haemo concentration) से हीमोग्लोबिन तथा लोहित रुधिर कोशिका (R. B. C.) दोनों का मूल्य बढ़ जाता है।

लेक्टमा के अस्तित्व का अवलोकन (Variation in D.L.C.)		लेक्टमा के अस्तित्व का अवलोकन (Variation in D.L.C.)
लेक्टमा के अस्तित्व का अवलोकन (Variation in D.L.C.)	लेक्टमा के अस्तित्व का अवलोकन (Variation in D.L.C.)	लेक्टमा के अस्तित्व का अवलोकन (Variation in D.L.C.)
लेक्टमा के अस्तित्व का अवलोकन (Variation in D.L.C.)	लेक्टमा के अस्तित्व का अवलोकन (Variation in D.L.C.)	लेक्टमा के अस्तित्व का अवलोकन (Variation in D.L.C.)
लेक्टमा के अस्तित्व का अवलोकन (Variation in D.L.C.)	लेक्टमा के अस्तित्व का अवलोकन (Variation in D.L.C.)	लेक्टमा के अस्तित्व का अवलोकन (Variation in D.L.C.)
लेक्टमा के अस्तित्व का अवलोकन (Variation in D.L.C.)	लेक्टमा के अस्तित्व का अवलोकन (Variation in D.L.C.)	लेक्टमा के अस्तित्व का अवलोकन (Variation in D.L.C.)

## (IV) जठर रस परीक्षा

(i) जठर रस लाव परीक्षा—निरोगावस्था में जठर रस लाव की मात्रा 0—6 mEq. प्रति घण्टा होती है तथा जठर रस की अम्लता (pH of gastric juice) 2.0 pH. होती है। आमाशय रस के लाव की दो अवस्थाओं में विभाजित किया जा सकता है, (क) आमाशयिक अवस्था (ख) आनिक अवस्था।

(क) आमाशयिक अवस्था (Gastric phase)—भोजन की मुग्धता से आमाशय लाव की मात्रा 50 से 150 मि० लि० तक निकलती है। प्रोटीन युक्त खाद्य पदार्थ खाने पर आमाशय लाव की मात्रा 225 से 250 ml. तक निकलती है।

कार्बोहाइड्रेट के खाद्य पदार्थ खाने पर आमाशय लाव की मात्रा प्रोटीन के खाद्य पदार्थों की अपेक्षा कम होती है (अधिकता 225 ml. से कम)।

(ख) आनिक अवस्था (Intestinal phase)—भोजन के आमाशय से निकल कर आनन्द में प्रवेश होने पर जो आमाशय लाव निकलता है उसे आनिक अवस्था का जठर रस कहते हैं। इसकी अधिकतम मात्रा भोजन करने के एक घण्टे से 2½ घण्टे तक 3.5 से 7.0 यूनिट रहती है, तथा इसके पश्चात् 10 यूनिट कम हो जाती है। निम्नलिखित विकारों में इस अवस्था का लाव इसकी सामान्य मात्रा (3.5—7.0 units) से कम हो जाता है जैसे—

तीव्र आमाशय गोम्य (Acute gastritis)

युद्धर्य आमाशय व्रण (Benign gastric ulcer)

प्रारम्भिक कैंसर (Early carcinoma)

(ii) हिस्टामिन परीक्षा (Histamin test)—रोगी को हिस्टामिन देने पर, अमाशय (जठर) के उत्तेजित होने से जठर लाव युरेशी में 10 से 40 mEq. प्रति घण्टा स्तरों में 5 से 30 mEq. प्रति घण्टा की दर से निकलने लगता है। एक घण्टे पश्चात् लाव की मात्रा सामान्य स्तर पर आ जाती है। परन्तु कैंसर तथा चारक रक्ताल्पता (Pernicious anaemia) में हिस्टामिन देने पर भी जठर रस के लाव में वृद्धि नहीं होती।

जब आमाशय के सौम्य व्रण धारक विषों में परिवर्तित हो जाते हैं तब जठर रस में अम्लता तुर्ण रूप में लगातार अनुपस्थित (Continuous absence) मिलती है (It is called achlorhydria)। इस अवस्था में जठर रस में रक्त की उपरिथित रहती है, तथा इससे तीव्र अप्रिय गंध आती है।

जठर रस में अम्लता की अधिकता (Hyper acidity) रहने से हिस्टामिन देने पर (Injection of histamine in a dose of 0.5 mg./kg body weight) या Functional Test meal of 7% alcohol in 50 ml. dose देने से स्वतन्त्र अम्ल (Free HCl) की मात्रा 60 से 90 यूनिट तक पहुँच जाती है। यह स्थान हिस्टामिन सूचीबोध से 2 घण्टे के पश्चात् भी बना रहता है।

विभिन्न विकृतियों में हिस्टामिन के प्रभाव की तालिका

विकृति	अम्ल निकाल mEq. में		प्रति घण्टा की दर से	
	आधार स्तर		स्त्री	पुरुष
	स्त्री	पुरुष		
प्रहणीज व्रण (Duodenal ulcer)	4.2	7.1	25.7	35.2
आमाशय व्रण (Gastric ulcer)	1.6	2.9	19.6	25.7
आमाशय कैंसर (Gastric carcinoma)	0.7	1.5	3.0	6.7
स्वस्थावस्था में (Normal value)	1.0	4.2	15.0	22.6

## (V) यकृत क्रिया परीक्षा (Liver function test i. e. LFT)

यकृत शरीर में अनेक आवश्यक कार्य करने वाला अवयव है। इसमें विकृति होने पर इसकी कार्यक्षमता में गम्भीर प्रभाव पड़ता है, इसलिए इसकी विभिन्न विकृतियों की जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है, इसे अप्रतालिका में देखें।

পরীক্ষণ	মাপের পদ্ধতি	পরীক্ষণের ফল (ফল)	ক্ষেত্র
(Vendenhurg's reaction) বেন্দেনহুর্গ রিএক্শন	ডায়ালাগ্রাম মাপের পদ্ধতি Dialyse method	ডায়ালাগ্রাম মাপের ফল (ফল) Dialysis result	ক্ষেত্র মাপের ফল (ফল) Area measured result
ক্ষেত্র মাপের ফল (ফল) Area measured result	0.4 mg/100 ml 0.4 mg/100 ml	ডায়ালাগ্রাম মাপের ফল (ফল) Dialysis result	ক্ষেত্র মাপের পদ্ধতি Area measured method
ক্ষেত্র মাপের পদ্ধতি Area measured method	3.2-4.5 gms/ 100 ml 3.2-4.5 gms/ 100 ml	ক্ষেত্র মাপের ফল (ফল) Area measured result	ক্ষেত্র মাপের ফল (ফল) Area measured result
ক্ষেত্র মাপের ফল (ফল) Area measured result	2.3-3.5 gms/ 100 ml 2.3-3.5 gms/ 100 ml	ক্ষেত্র মাপের পদ্ধতি Area measured method	ক্ষেত্র মাপের পদ্ধতি Area measured method
ক্ষেত্র মাপের পদ্ধতি Area measured method	0-5.0 units 12-14 Seconds 0-5.0 units 12-14 Seconds	ক্ষেত্র মাপের ফল (ফল) Area measured result	ক্ষেত্র মাপের ফল (ফল) Area measured result
ক্ষেত্র মাপের ফল (ফল) Area measured result	115-250 mg/ 100 ml 115-250 mg/ 100 ml	ক্ষেত্র মাপের পদ্ধতি Area measured method	ক্ষেত্র মাপের পদ্ধতি Area measured method
ক্ষেত্র মাপের পদ্ধতি Area measured method	1.5-4.5 units/100 ml 1.5-4.5 units/100 ml	ক্ষেত্র মাপের ফল (ফল) Area measured result	ক্ষেত্র মাপের ফল (ফল) Area measured result
ক্ষেত্র মাপের ফল (ফল) Area measured result	40 ml 65 ml 40 ml 65 ml	ক্ষেত্র মাপের পদ্ধতি Area measured method	ক্ষেত্র মাপের পদ্ধতি Area measured method
ক্ষেত্র মাপের পদ্ধতি Area measured method	5 1 5 1	ক্ষেত্র মাপের ফল (ফল) Area measured result	ক্ষেত্র মাপের ফল (ফল) Area measured result
ক্ষেত্র মাপের ফল (ফল) Area measured result	15 ml 15 ml 15 ml 15 ml	ক্ষেত্র মাপের পদ্ধতি Area measured method	ক্ষেত্র মাপের পদ্ধতি Area measured method
ক্ষেত্র মাপের পদ্ধতি Area measured method	1 1 1 1	ক্ষেত্র মাপের ফল (ফল) Area measured result	ক্ষেত্র মাপের ফল (ফল) Area measured result
ক্ষেত্র মাপের ফল (ফল) Area measured result	2.7 ml 3.5 ml 2.7 ml 3.5 ml	ক্ষেত্র মাপের পদ্ধতি Area measured method	ক্ষেত্র মাপের পদ্ধতি Area measured method
ক্ষেত্র মাপের পদ্ধতি Area measured method	6 Gms of sodium benzoate is administered (6 Gms of sodium benzoate is administered)	ক্ষেত্র মাপের ফল (ফল) Area measured result	ক্ষেত্র মাপের ফল (ফল) Area measured result

परीक्षा/ पदार्थ	सामान्य मूल्य (स्तर)	विकृति
ब्रोम स्लफे- लिन परीक्षा (Brom sul- phalein test)	इसे 5 मिंटों प्रति से लेने पर 45 मिनट के पश्चात् रक्त में इसका स्तर (मूल्य) 10% से कम हो जाता है।	यादि 45 मिनट के पश्चात् इसका स्तर चाहिये । (यकृत पात में सच्चास, हृदय गति तो वा- कामता, ऊर्वर, पेशियों में शिथिलता एवं मुख से दुर्गन्धादि लक्षण होते हैं) इसके लिये रोगी को प्रोटीन रहित आहार एवं जीव विरोधी औषधियां (Antibiotics) दें।

## कान्तला विभेदक तालिका

कान्तला भेद	मूल में संतारीकामता (Haemolytic jaundice)	मूल में विषज्ञकामता (Toxic jaundice)	मूल में अवरोधक कान्तला (Obstructive jaundice)
सुरोबिलिनोजेन (Urobilinogen)	++	± (अत्यधिक मात्रा) (Bilirubin)	± (अत्यधिक मात्रा)

घटक (Constituents)	सामान्य मूल्य	विषमता हेतु
प्रमस्तिष्ठक-मेन-ड्रव घटक (C.S.F. Cell count)	7.0-18.0 m.m. $H_2O$	सिरा में आधात तथा प्रमस्तिष्ठकावरण में दण शोथ या अस्थ रोग के इण्डाणुओं का संक्षण होने से इस द्रव का दाढ़ बढ़ जाता है।
प्रमस्तिष्ठक-मेन-ड्रव कोरिस्का गणना (C.S.F. (In adult))	0.10 Cu.mm. mg/100 ml. (118-132 mEq/liter)	जिन व्याधियों में (नीचे बताई गई) प्रोटीन बढ़ जाती है उनमें कोरिस्का गणना भी 0.500 तक बढ़ जाती है (अड्डे को छोड़कर)।
लवण (Sodium chlorides)	7.20-7.50 mg/100 ml.	मास्टिष्ठकावरण शोथ में लवण की मात्रा 600 mg. से कम हो जाती है। मूल रक्ता (Uraemia) में लवण की मात्रा सामान्य स्तर से अधिक हो जाती है।
ग्लूकोस (Glucose)	4.5-7.5 mg./ 100 ml.	प्रस्तिष्ठकावरण शोथ में ग्लूकोस का स्तर सामान्य से कम हो जाता है तथा लिम्फो- साइटस की मात्रा बढ़ जाती है (Lymphocytosis)। परन्तु अस्थ रोग जन्य प्रस्तिष्ठकावरण शोथ में लिम्फोसाइट की मात्रा नहीं बढ़ती।
द्रव में जाले का निर्माण (Web formation)	द्रव निकलने के कई बटे पश्चात् बनता है।	द्रव निकलने के कई बटे पश्चात् बन जाता है।
कुल प्रोटीन (Total Proteins)	15-40 mg/ 100 ml.	प्रस्तिष्ठक रक्तसाख में यह जाला शोध मास्टिष्ठक रक्तसाख में यह जाला शोध बन जाता है।

(vii) प्रमस्तिष्ठक मेन-ड्रव (C. S. F.) परीक्षा—स्वस्थ पुरुष में इस द्रव की मात्रा 100 से 150 मिलीटर होती है। इसकी प्रतिशिया 7.35 से 7.40 pH तक रहती है तथा आवेदिक घनत्व (Specific gravity) 1.003 से 1.009 तक होता है। प्रमस्तिष्ठक मेन-ड्रव के घटकों के सामान्य मूल्य एवं विषमता के हेतुओं की तालिका
--

(viii) प्रमस्तिष्ठक मेन-ड्रव (C. S. F.) परीक्षा—स्वस्थ पुरुष में इस द्रव की मात्रा 100 से 150 मिलीटर होती है। इसकी प्रतिशिया 7.35 से 7.40 pH तक रहती है तथा आवेदिक घनत्व (Specific gravity) 1.003 से 1.009 तक होता है। प्रमस्तिष्ठक मेन-ड्रव के घटकों के सामान्य मूल्य एवं विषमता के हेतुओं की तालिका
---

## परिशिष्ट

घटक (Constituents)	सामान्य मूल्य	विषमता के हेतु.
आविलता (Turbidity)	अनुपस्थित अनुपस्थित	मस्तिष्काबरण शोथ के कारण इस द्रव में आविलता आ जाती है। चिकित्सार्थी इसे 20-30 ml. धीमे-धीमे निकालकर द्रव दाढ़ को सामान्य स्तर से अधिक बढ़ा द्ये स्तर के ३ मूल्य तक ले जायें।

(iii) शुक्र परीक्षा :— शुक्र की परीक्षा शुक्रकोट (Sperm) तथा अन्त कार्सेटेज के लिये की जाती है।		
शुक्र के परीक्षण परामर्श एवं उनके मूल्य की तालिका		
परीक्षन पदार्थ	सामान्य मूल्य	

अन्त फास्फेटेज (Acid phosphatase)	2500 K.A. units/ml. (very highly positive).	70 से 80%
गतिशील शुक्रकोट	60-150 million/ml. (Less than 20% are abnormal)	

शुक्रकोट गणना	60-150 million/ml. (Less than 20% are abnormal)	

विषय	स्थान	अध्याय	प्रतोक
अग्निकर्म (वर्णन)	सू	12	3—15
अग्नि दग्ध (सम्यक दग्ध)	सू	11	26
अग्नि दग्ध (प्रकार, लक्षणादि एवं चिकित्सा)	सू	12	16—29
अग्नि दग्ध (आतप दग्ध)	सू	12	38—39
अग्नि दग्ध (उच्छ वात, इन्द्रियन दग्ध)	सू	12	38—39
अजीर्ण रोग	सू	46	500—513
अतिसार एवं प्रवाहिका (चिकित्सा)	उ	40	3—136,
"	उ	40	150—162
अथर्ववेद (आयुर्वेद से सम्बन्धित)	सू	1	6
अध्यायों की संख्या एवं स्थान	सू	3	3—46
अध्ययन के लिये कात्त एवं स्थान	सू	2	9—10
अध्ययन विधि	सू	3	54—56
अधृष्ट (तालु रोग)	नि	16	42
अधृष्ट (चिकित्सा तालु रोग में देखें) —	—	—	—
अधिमांस (दर्ढ मूल रोग)	नि	16	25
अधिमांस (चिकित्सा)	चि	22	21—25
अधिजिह्विका (कठन रोग)	नि	16	52
अन्तपान (विष से रक्षा के उपाय)	क	1	1—85
आनाह	उ	56	20—27
अनुबन्ध दोष	सू	21	38

विषय	स्थान	अध्याय	स्तरोक	विषय	स्थान	अध्याय	स्तरोक
अनुग्रहस्त्र	सू	8	15—18	अस्थियां (प्रकार)	जा	5	20
अपची (रोग वर्णन)	नि	11	10—12	अस्थियां (आवात का प्रभाव)	नि	15	16
अपची (चिकित्सा)	चि	18	20—28	असुखदर चिकित्सा (रक्त पित्त सूक्ष्म)	उ	45	44
अपतन्त्रक (रोग वर्णन)	नि	1	64—66	आत्मार (स्वस्थ वत्त में देखें)	—	—	—
अपतन्त्रक (चिकित्सा)	चि	5	21	आध्यात एवं प्रत्याध्यात (रोग वर्णन) नि	1	88, 89	26
अपतानक (आधोपक रोग वर्णन)	नि	1	50—59	आध्यात (प्रत्याध्यात (चिकित्सा)) चि	5	35	29—32, 4—11
अपतानक (चिकित्सा)	चि	5	18	आयु परीक्षा	1	14—41	14—41
अपस्मार (रोग वर्णन एवं चिकित्सा)	उ	61	1—41	आयुवेद (प्रयोजन, पुण्य कर्म)	1	15	20
अमानुषोपसर्ग (देव, ग्रहादि)	उ	60	1—56	आयुवेद (निरुक्त)	1	4—21	48—53
अरिष्ट लक्षण (इच्छियों से सम्बन्धित)	सू	28	3—23	आयुवेद (इतिहास)	3	3—32	52
„ „ „	सू	30	3—23	आयुवेद (अध्ययन में हेतु)	4	3—81	3—15
अरिष्ट लक्षण (चाया एवं वर्ण सम्बन्धित)	सू	31	3—32	आलस्य	18	4, 5	4, 5
अरिष्ट लक्षण (हृत, शुकुन, स्वप्न सम्बन्धित)	सू	29	3—81	आलेप (वर्णन)	9	3—5, 8	3—5, 8
अरिष्ट लक्षण (अस्वाभाविक परिवर्तन) सू	उ	32	3—7	आहार (त्वर् रोग)	20	10—22	10—22
अरोचक (अनिममान्द्र)	उ	57	1—17	आहार (हितकर एवं विरोधी)	1	1—85	1—85
अदित (रोग वर्णन)	उ	1	58—73	आहार (विष से रक्षा)	18	21, 37—39	21, 37—39
अदित (चिकित्सा)	चि	5	22	आहार (बाणी के लिए)	19	16—22	16—22
अदुर्द (चिकित्सा)	चि	11	13—21	आहार (बाणी के लिए निषेध)	3	4—5	4—5
अदुर्द (तालु रोग)	चि	18	29—40	आहार (भज्ज रोगी के लिए)	1	50—59	50—59
अर्ग (रोग वर्णन)	नि	16	43	आधोपक (अपतानक रोग वर्णन)	5	18	4—12
अर्ग (चिकित्सा)	नि	2	2—26	आधोपक (चिकित्सा)	16	3—9	3—9
अर्ग (रोग वर्णन)	चि	6	3—22	ओष्ठ रोग (दोषज, रक्तज, मांसज एवं नि	16	32	32
अतात	उ	45	43	ओष्ठ संघात से)	चि	5	33—34
अवबाहुक (रोग वर्णन)	उ	13	4—8	ओष्ठ संघात कर्म	5	18	18
अवबाहुक (चिकित्सा)	चि	1	82	ओष्ठसर्ग (संक्रमण प्रकार एवं रोग वर्णन) नि	35	21—28	21—28
अभमरी एवं शक्तरा (चिकित्सा)	नि	5	23	ओज (वर्णन)	15	7—9, 17	28—32
अभट्टविध शर्वन कर्म (चिकित्सा)	चि	3	1—17, 26	ओषधियां (प्रकार एवं लक्षण)	1	33	7—9, 17
अभट्टविध शर्वन कर्म (चिकित्सा)	सू	7	3—37	ओषधियां (क्रिया शीलता, काल)	33	81	81
अभडीला एवं प्रत्याष्ठीला (रोग वर्णन) नि	25	1—29	ओषधियां (क्रिया विहीन होना)	38			
अभडीला एवं प्रत्याष्ठीला (चिकित्सा) चि	25	30—36					
„ „ „	1	91—92					
„ „ „	5	27					

विषय	स्थान	अध्याय	स्तरोक्त	विषय	स्थान	अध्याय	स्तरोक्त
औषधियाँ (कालकृत करना)	सू	1	33	कपालिका (दन्त रोग)	नि	16	33
औषधियाँ (संथह काल)	सू	38	5, 6, 9, 10	कपालिका (चिकित्सा)	चि	22	36—38
" "	सू	38	12—17	कफ (लक्षण, कार्य, स्थान)	सू	21	12—15
औषधियाँ (दोष संशोधनीय)	सू	39	3—6, 10	कर्ण गत रोग (कर्ण शुल, कर्ण प्रसाद, उ	21	3—6	
औषधियाँ (दोष संशमनीय)	सू	39	7—9, 11—14	वाधिय, इवेड, कर्ण खाच, कर्ण कण्ड,			
औषधियाँ (पार्श्व)	सू	1	32	कर्ण वर्च, कर्ण हृषि, प्रतिनाह, दो			
औषधियाँ (जंगम)	सू	1	30	विद्रधियाँ, कर्ण पाक, पूति कर्ण, अर्ण,			
औषधियाँ (गुण, ज्ञान)	सू	3	10	शोफ, अर्द्धद)			
अंग प्रत्यंग (प्रसाद)	सू	35	12	कर्ण पाली के रोग (परिप्रोट, उत्पात, चि	25	3—12	
उत्तर वर्त्त (वर्णन)	ति	37	3—127	उत्पात, दुख वर्धन, परिवैही)	चि	25	13—43
उत्क्षेप	शा	4	4—53	कर्ण वर्ध	सू	16	9—27
उदर रोग (रोग वर्णन)	नि	7.	4—25	कर्ण वेध	सू	16	3—8
" "	चि	14	1—3	कर्ण शूल	नि	1	84
उदर रोग (चिकित्सा)	चि	14	4—19	कर्ण क्षत	चि	3	45
उदर शूल (चिकित्सा गुल्म में देखें) —	—	—	कर्म (प्रकार)	सू	5	3	
उदावर्त (रोग वर्णन एवं चिकित्सा)	उ	55	1—53	कर्म (पूर्व)	सू	5	6
उत्माद (रोग वर्णन एवं चिकित्सा)	उ	62	1—34	कर्म (पश्चात्)	सू	5	17
उपतन्त्र (नामकरण में हेतु)	सू	3	43—46	कर्म (प्रधान)	सू	5	7
उपकुश (दन्तमूल रोग)	नि	16	21—22	कर्म (रक्षा)	सू	5	20—32
उपकुश (चिकित्सा)	ति	22	19—21	कर्म (शल्य कर्म)	नि	16	29
उपदंश (रोग वर्णन)	नि	12	7—9	कूपिदंत (दंत रोग)	चि	22	23, 38—40
उपदंश (चिकित्सा)	चि	14	25—51	कूपिदंत (चिकित्सा)	सू	54	1—40
उपसर्ग (अमानुषोपसर्ग से देखें) —	—	—	कूपि रोग (रोग वर्णन एवं चिकित्सा) उ	21	18, 27, 28, 33		
उपसर्ग रोग (औचसर्गिक रोगों में देखें) —	—	—	किया काल	सू	21	34, 35	
कण्ठ गत रोग (रोहिणी, कण्ठ आत्मक, नि	16	45—63	" "	सू	1	76	
अविजितिका, वलय, बलास, एक दूँद,			कोटु शीर्ष (रोग वर्णन)	नि	1	23	
वृद्ध, शारदी, गिलायु गलविद्रधि,			कोटु शीर्ष (चिकित्सा)	चि	5		
गलीध, स्वरदृन, मासतान, विदाही)			कल्प	शा	4	51	
कण्ठ गत रोग (चिकित्सा)	चि	22	59—69	कवल ग्रहण (चिकित्सा)	चि	40	58—71
कण्ठ घोटना (चिकित्सा)	सू	27	22	कवलिका	सू	18	20, 37
कण्ठ शारदूक (कण्ठ रोग)	नि	16	51	काय चिकित्सा (ऋषिगण)	उ	1	6
कण्ठ शारदूक चिकित्सा (कण्ठ रोग चिकित्सा में देखें) —	—	—	काल (ब्याड्या, भेद, विभाजन एवं	सू	6	3—10	
कण्ठ शुण्डिका (तालु रोग)	नि	16	41	ऋत वर्णन)			

विषय	स्थान	अध्याय	लोक
कार्य	मू उ	15 52	33, 35 1—47
कास (रोग वर्णन एवं चिकित्सा)	क	8	1—143
कीट दंष्ट (वर्णन एवं चिकित्सा)	—	—	—
कुत्ता दंष्ट (पशु दंष्ट में देखें)	नि	5	3—15
कुछ (महा)	चि	4	24
कुछमहां (चिकित्सा)	चि	10	3—15
कुछ (अुद्र)	चि	5	16—34
खज्ज (वंगु रोग वर्णन)	चि	1	77
खञ्ज (चिकित्सा)	चि	5	23
खालित्य, पालित्य (रोग वर्णन)	चि	13	33, 34, 37
“	चि	25	28—43
गण (37 द्रव्य समूह के गण)	चि	20	24—26
गर्भ उत्पत्ति (शुक्र शोणित वर्णन, रोग सु चिकित्सा एवं सहवासादि वर्णन)	चि	38	3—80
गर्भ (शुक्र व आतंक के गुण, गर्भधान, शा गर्भ अंग उत्पत्ति क्रम)	चा गर्भ (कलायें, त्वचायें)	2	1—58
गर्भ (अंग प्रत्यंग निर्माण)	चा	4	1—18
गर्भीयी (मासानुभास आहार व्यवस्था) शा गर्भीयी (प्रसव व्यवस्था)	गर्भीयी (स्तन्य पात व्यवस्था)	4 10 10	24—30 3—4 5—24 25—33
गर्भिणी (बालक की 25 वर्ष तक क्रमिक अवरथा)	शा	10	3—53
गर्भिणी (गर्भ को बलशालनी बनाना) शा गलगाहड (रोग वर्णन)	शा चि	10 11	54—70 22—29
गलगाहड (चिकित्सा)	चि	18	41—55
गलविद्धि (काठ रोग में चिकित्सा देखें) नि गलौध (काठ रोग में चिकित्सा देखें) नि	चि	16 16	59 60
गिलार (कण्ठ रोग में चिकित्सा देखें) नि	शा	4	54
गिलार (कण्ठ रोग में चिकित्सा देखें) नि	शा	16	58

विषय	स्थान	अध्याय	लोक
गुदभूंश (हेतु)	नि	13	61
गुलम (रोग वर्णन)	ज	42	1—15
गुलम (चिद्राधि से भेद)	नि	9	28—32
गुलम (चिकित्सा)	व	42	16—145
गुणों के कर्म (20 गुण)	मू	46	514—525
गोरक्षता	शा	4	55
गन्ध (रोग वर्णन)	नि	11	3—9
गन्ध (चिकित्सा)	चि	1	33
गह (अमानुषोपसर्ग में देखें)	—	—	—
गह (जृत्यति)	ज	27	1—22
गह (अन्ध पृतना)	ज	33	1—9
गह (पृतना)	ज	32	1—11
गह (नीगमेष)	ज	36	1—11
गह (मुखमण्डिका)	ज	35	1—9
गह (खेती)	ज	31	1—11
गह (रोग, बाल गह)	ज	27	3—21
गह (शकुनी)	ज	30	1—11
गह (शीत पृतना)	ज	34	1—9
गह (स्कन्ध)	ज	28	3—14
गह (स्कन्धापस्मार)	ज	29	1—9
गहनी (रोग वर्णन एवं चिकित्सा)	ज	40	166—182
गृध्रसी (रोग वर्णन)	नि	1	75
गृध्रसी (चिकित्सा)	चि	5	23
चर्म कील	चि	2	18—20
चिकित्सक (अच्छे चिकित्सक को गुण)	मू	3	47—53
“	मू	4	3—8
“	मू	5	10
“	मू	5	17
“	मू	6	6
“	मू	8	12—14
“	मू	34	17—21
चिकित्सक (कर्तव्य)	मू	25	43—45

विषय	स्थान	अध्याय	शलोक
चिकित्सक (मात्रधारिया)	सू	25	42
" "	सू	10	9
चिकित्सक (निन्दित)	सू	25	41
चिकित्सा (चिकित्सा कर्म में प्रवेश)	सू	10	1, 2
चिकित्सा (4 पाद)	सू	34	15—24
चिकित्सा (सूत्र)	सू	20	21
" "	सू	15	40
चिकित्सा (योग्य/अयोग्य रोगी)	सू	2	8
चिकित्सा (सीमा)	सू	35	48, 49
चिकित्सा (कठु. दोष एवं क्रियाकाल)	सू	35	19—22
अनुकूप चिकित्सा विधि)	उ	49	1—35
द्वदि (रोग वर्णन एवं चिकित्सा)	उ	5	13—15
छेदन विधि (स्थानानुसार उपयुक्त एवं सु	उ		
अनुपयुक्त विधि)	सू		
जंगम द्रव्य (प्रकार)	सू	1	30
जनपदोऽवम (वर्णन एवं चिकित्सा)	सू	6	16—20
जम्भाई	शा	4	50
जनैका (विषद वर्णन)	सू	13	3—30
ज्वर (रोग वर्णन)	उ	39	10—96
ज्वर (चिकित्सा)	उ	39	97—234
जिह्वा गत रोग (कण्टक, उपजिह्विका, नि	उ	16	36—40
अलास)			
जिह्वा गत रोग (चिकित्सा)	चि	22	43—48
डब्बना (जल में डब्बना)	सू	27	20
तन्त्र	शा	4	49
यन्त्र युक्तियाँ	उ	65	1—43
तन्त्र (आयुर्वेद के तन्त्र)	सू	1	6
तालू गत रोग (गल शूणिङ्का, तुण्डकरि, नि	सू	16	40—45
मांस कच्छप, अर्द्ध द, मांस संघात,			
तालूपुट, तालू शोष, तालू पाक)			
तालूगत रोग (चिकित्सा)	चि	22	49—58
हूनी/प्रहूनी (रोग वर्णन)	नि	1	86, 87
हूनी/प्रहूनी (चिकित्सा)	चि	4	25
तृष्णा (रोग वर्णन एवं चिकित्सा)	उ	48	1—33

विषय	स्थान	अध्याय	शलोक
दरध ब्रण	सू	12	16—39
दद् (रोग वर्णन)	नि	5	8
दद् (चिकित्सा)	चि	9	12—14, 40
देश (प्रवार)	सू	35	42
दंष्ट (सर्प दंष्ट, पशु दंष्ट एवं मुपक दंष्ट में देखें)	—	—	—
दंष्ट मूल रोग (शीताद, दस्त पुष्टु देख, शौधिर, महां शौधिर, परिदर उपकृष्ट, दंत वैदर्भ, वर्धन अधिमाल, नाडी)	नि	16	13—26
दंष्ट मूल रोग (चिकित्सा)	चि	22	10—33
दंष्ट रोग (दातन, कुमिंदन, दंत हर्ष, नि भजनक, दंत आर्करा, कागलिका, घयाव दंतक, हनुमोक्ष)	चि	16	27—35
दंत रोग (चिकित्सा)	चि	22	34—42
दृत (लक्षणों से माध्यमाध्यता)	सू	29	5—26
देश (प्रकार)	सू	35	42—45
दोष विकल्प (भेद)	उ	66	1—17
दोष (सांख्य, प्रकाश, प्रमार एवं संगोष्ठन)	सू	6	11—14
दोष (प्रकृत वार्य)	सू	15	4
दोष (कृहत अनुसार दोष शमन)	सू	6	38
दोष (स्थगन)	सू	21	6, 7
दोष (प्रकोप एवं चिकित्सा)	सू	21	19—39
द्रव्य (रस, गुण, वीर्य एवं विषाक वी प्रधानता)	सू	21	35—31
द्रव्य (गुणों के अनुकूप कर्म एवं पञ्च भौतिकता)	सू	21	6—38
द्रव्य (रस्ती/रस्ती का विवेचन एवं कार्य)	सू	40	1—40
द्रव्य (भोजन विधि एवं गुण दोष)	सू	41	3—12
द्रव्य वर्ग (रस पर आधारित)	सू	42	3—12
द्रव्य (रस पर आधारित)	सू	46	446—531
द्रव्य वर्ग	सू	42	11

विषय	स्थान	अध्याय	स्तरोक्त
द्रव्य वर्ग (वामक)	सू	43	3—11
द्रव्य वर्ग (विरेचक)	सू	44	3—91
द्रव्य वर्ग (जल)	सू	45	3—46
द्रव्य वर्ग (दुख)	सू	45	47—83
द्रव्य वर्ग (तक, दधि)	सू	45	84—95
द्रव्य वर्ग (चूत)	सू	45	96—111
द्रव्य वर्ग (तेल)	सू	45	112—131
द्रव्य वर्ग (मधु)	सू	45	132—147
द्रव्य वर्ग (इंड, गुणा)	सू	45	148—169
द्रव्य वर्ग (मद)	सू	45	170—216
द्रव्य वर्ग (मुन्न)	सू	45	217—228
द्रव्य वर्ग (धात्य कुधात्य)	सू	46	4—52
द्रव्य वर्ग (मास)	सू	46	53—138
द्रव्य वर्ग (फल)	सू	46	139—210
द्रव्य वर्ग (शाक, -कर्ण)	सू	46	211—312
द्रव्य वर्ग (लवण)	सू	46	313—330
द्रव्य वर्ग (सर्व शेष)	सू	46	331—339
द्रव्य वर्ग (कृतान्न वर्ग)	सू	46	340—418
द्रव्य वर्ग (अनुपान)	सू	46	419—445
धन्वन्तरी	सू	1	21
धमनी (वर्णन)	जा	9	1—11
धमनी गत वात (चिकित्सा)	जा	5	23
धातु (कार्य)	जा	15	15
धातु (बुद्धि व क्षय के लक्षण)	जा	24	9
धातु (विकार)	जा	19	28
धूपत कर्म	जा	5	18, 19
धूपत द्रव्य	जा	12	29—37
धूम द्रव्य	जा	40	3—20
धूम्रपान (चिकित्सा)	जा	40	21—57
नस्य कर्म (चिकित्सा)	जा	10	9—14
नाड़ी (रोग वर्णन)	जा	1	34, 41, 42
नाड़ी (चिकित्सा)	जा	17	17—41

विषय	स्थान	अध्याय	स्तरोक्त
नासा गत रोग (अपोनस, दूतिनास, उत्परक्त)	ज	23	3—21
नासापाक, रक्तपित्त, तृष्णरक्त	ज		
अन्द्रयु, अंशयु, दीप्ति, नासानाह	ज	24	3—12
प्रतिस्थाव, नासाज्वाष, नासा	ज	25	3—42
अर्णी, नासा शोफ, नासा अर्चुद	ज	16	27—31
प्रतिश्याय (चिकित्सा)	ज	4	31—47
नासा गत रोग (चिकित्सा)	ज	15	35
नासा गत रोग (प्रतिश्याय चिकित्सा)	ज	5	3—10
नासा सन्धान	जा		
निद्रा एवं चेतना स्थान	जा		
निनिदत् पुरुष	जा		
नेत्र कुण्ड गत रोग (मक्कण युक्त, अवण उ	ज		
युक्त, पाकात्यय, अजका)	ज	15	3—33
नेत्र छेद्य रोग चिकित्सा (अग्नवर्त्म, उ	ज		
युडकाश, अड्डै, सिरापिडिला,	ज		
सिराजाल, 5 प्रकार के अमे एवं	ज		
पर्विणिका)	ज		
नेत्र दृष्टिगत रोग [धूमदर्शी, पित्त उ	ज		
विदर्घ दृष्टि, कफ विदर्घ दृष्टि,	ज		
हेस्ट्रजाड्य, नक्तान्त्रय (रात्यन्त्र,	ज		
दिनान्त्र), गम्भीरिका, अरुण,	ज		
कांच, तिमिर, लिगनाग	ज		
(नीलिका)	ज		
नेत्र पटता गत रोग (तीन पटल तक उ	ज		
तिमिर, रोग, चोय में कांच, अट	ज		
पारमसाइं रोग, कफ एवं पित्त	ज		
विदर्घ दृष्टि, धूमदर्शी, हेस्ट्र-	ज		
जाड्य, नक्तान्त्रय, गम्भीरिका)	ज		
नेत्र पक्ष्य कोष (चिकित्सा)	ज	16	3—5
नेत्र खेत रोग चिकित्सा (ग्रोमापनाह, उ	ज	14	3—11
लगण, कृषि ग्रीव्य, अञ्जन-			
नार्मका द्विम-ग्रन्थि)			

विषय	स्थान	अध्याय	प्रतीक	विषय	स्थान	अध्याय	प्रतीक
नेत्र बहर्गत रोग (उत्संगिनी, कुम्भोका, पोथकी, वर्त्मणकर्णी, अणोवर्त्म, शुज्कार्णी, अञ्जनामिका, बहल बहर्म, बहर्म बन्धक, किलट बहर्म, यावबहर्म, प्रविलन्न बहर्म, अपरिक्लिन्नबहर्म, वातहत बहर्म, अर्द्धद, निमेष, शोणितार्ण, लवण, विस्तवर्म, पङ्गकोप)	उ	3	3—30	रोग चिकित्सा (उत्संगिनी, कुम्भोका, पोथकी, वर्त्मणकर्णी, अणोवर्त्म, शुज्कार्णी, अञ्जनामिका, बहल बहर्म, बहर्म बन्धक, किलट बहर्म, यावबहर्म, प्रविलन्न बहर्म, अपरिक्लिन्नबहर्म, वातहत बहर्म, अर्द्धद, निमेष, शोणितार्ण, लवण, विस्तवर्म, पङ्गकोप)	उ	19	3—7
नेत्र रोग (मङ्ख्या)	उ	1	21—45	रोग चिकित्सा (उत्संगिनी, कुम्भोका, पोथकी, वर्त्मणकर्णी, अणोवर्त्म, शुज्कार्णी, अञ्जनामिका, बहल बहर्म, बहर्म बन्धक, किलट बहर्म, यावबहर्म, प्रविलन्न बहर्म, वातहत बहर्म, अर्द्धद, निमेष, शोणितार्ण, लवण, विस्तवर्म, पङ्गकोप)	उ	19	8—20
नेत्र रोग (चिकित्सा मृत्रा)	उ	8	3—11	रोग चिकित्सा (रक्तांभिष्ठद एवं पिष्टक, प्रविलन्नबहर्म)	उ	18	3—106
नेत्र चिकित्सा (वातांभिष्ठद, वाताधिष्ठद, मन्थ मन्थ अन्यतोवात् एवं चात पर्याय)	उ	9	3—25	रोग चिकित्सा (रक्तांभिष्ठद एवं अधिमन्थ, शिरोतपात, सिराहर्ष, अर्जुन, शुक्र, सशोकपाक, पूयालस, प्रविलन्न बहर्म)	उ	11	2—18
नेत्र रोग चिकित्सा (धूमदशी, पित्ता- अधिमन्थ एवं अम्ताध्युपित, शुक्ति)	उ	10	3—16	रोग चिकित्सा (खड्ज रोग का वर्णन) (चिकित्सा)	नि	1	77
नेत्र लेड्य रोग चिकित्सा (उत्संगिनी उवहलबहर्म, कर्दमबहर्म, श्यावबहर्म, बद्धबहर्म, किलटबहर्म, पोथकी, कुम्भोका, बहर्मशक्करा	उ	13	3—18	रोग चिकित्सा (युण) दण्ड	नि	5	23
नेत्र शुक्ल गत रोग (प्रस्तारि अर्म, उशुक्ल अर्म, क्षत अर्म, अधिमांस अर्म, स्नायु अर्म, शुक्तिका, अर्जुन, पिष्टक, सिराजाल, सिरा पिडिका, वलाम ग्रन्थि)	उ	4	3—9	दाह (रोग वर्णन एवं चिकित्सा)	उ	34	24
नेत्र मन्धगत रोग (पूयालस, उपनाह, स्नाव, पर्वणिका, अलजी, कृष्ण प्रग्निः)	उ	2	3—9	द दाह (रोग वर्णन एवं चिकित्सा)	उ	7	43—64
नेत्र सर्व गत रोग (4 अधिष्ठद, 4 अधिमन्थ, वातपर्याय, शुज्कामिपाक, अन्यतोवात्, अम्ताध्युषित, चिरोत्तमात्, विराहर्ष)	उ	6	3—30	द हर्ष (चिकित्सा)	नि	5	—
नेत्र मन्धगत रोग (पूयालस, उपनाह, स्नाव, पर्वणिका, अलजी, कृष्ण प्रग्निः)	उ	3	10—20	द हर्ष (मदात्य में देखे)	नि	5	—
नेत्र मन्धगत रोग (पूयालस, उपनाह, स्नाव, पर्वणिका, अलजी, कृष्ण प्रग्निः)	उ	2	3—9	दात्य (मदात्य में देखे)	नि	5	12
नेत्र मन्धगत रोग (पूयालस, उपनाह, स्नाव, पर्वणिका, अलजी, कृष्ण प्रग्निः)	उ	3	—	यना (निर्देश विधि)	नि	5	11—12
नेत्र सर्व गत रोग (4 अधिष्ठद, 4 अधिमन्थ, वातपर्याय, शुज्कामिपाक, अन्यतोवात्, अम्ताध्युषित, चिरोत्तमात्, विराहर्ष)	उ	6	3—30	यना (लक्षण)	नि	5	22
नेत्र सर्व गत रोग (4 अधिष्ठद, 4 अधिमन्थ, वातपर्याय, शुज्कामिपाक, अन्यतोवात्, अम्ताध्युषित, चिरोत्तमात्, विराहर्ष)	उ	6	3—30	यनि (24 तत्त्व, पुरुष, लक्षण, सत्त्वाद युण, महभूतों के युण)	नि	5	6
नेत्र सर्व गत रोग (4 अधिष्ठद, 4 अधिमन्थ, वातपर्याय, शुज्कामिपाक, अन्यतोवात्, अम्ताध्युषित, चिरोत्तमात्, विराहर्ष)	उ	6	3—30	यनि (देह प्रकृति, लक्षण)	नि	5	1—22
नेत्र सर्व गत रोग (4 अधिष्ठद, 4 अधिमन्थ, वातपर्याय, शुज्कामिपाक, अन्यतोवात्, अम्ताध्युषित, चिरोत्तमात्, विराहर्ष)	उ	6	3—30	यां (शास्त्रादाद युण)	नि	5	63—99
नेत्र सर्व गत रोग (4 अधिष्ठद, 4 अधिमन्थ, वातपर्याय, शुज्कामिपाक, अन्यतोवात्, अम्ताध्युषित, चिरोत्तमात्, विराहर्ष)	उ	6	3—30	यां (शास्त्रादाद युण)	नि	5	8

विषय	स्थान	अध्याय	इत्तोक
प्रतिश्याय चिकित्सा	चि	24	3—42
प्रतिश्याय (रोग बर्णन, नासा रोग में देखें) —	सु	5	—
प्रथात कर्म	सु	1	7
प्रभाग	सु	16	1—15
प्रलेप	सु	3	—
प्रमेह (रोग वर्णन)	चि	19	—
“	नि	11	3—13, 22—27
प्रमेह (चिकित्सा)	चि	11	4—13
“	चि	13	3—35
प्रमेह पिडिका (रोग वर्णन)	चि	6	14—22
प्रमेह पिडिका (चिकित्सा)	चि	12	3
बालष (द्रव्य एवं प्रकार)	सु	12	4—20
“	चि	5	39
बत	सु	18	16—59, 44, 45
बल परीक्षा	सु	15	19, 29—31
बलास (कण्ठ रोग)	सु	35	33—38
बाधर्य (कण्ठ रोग)	नि	16	54
बाधर्य (चिकित्सा)	चि	1	83
ब्रह्मा	सु	5	23
मञ्जनक	सु	1	6
भगवन्दर (रोग वर्णन)	नि	16	31
भगवन्दर (चिकित्सा)	चि	4	3—13
भगवन् एवं मन्त्रिय मोक्ष (चिकित्सा)	नि	8	4—54
भगवन् एवं मन्त्रिय मोक्ष (चिकित्सा)	चि	15	3—16
भगवन् एवं मन्त्रिय मोक्ष (चिकित्सा)	चि	3	15
भगवन् एवं मन्त्रिय मोक्ष (आहार)	सु	3	6—70
भूमि (प्रकार)	सु	3	3—5
“	सु	36	1—4, 12—14
भेषज (गुण)	सु	34	42
भेषज (गुण)	सु	22—23	—

विषय	स्थान	अध्याय	इत्तोक
भोजन (विधि नियम)	सु	46	449—498
“	सु	46	524—527
भ्रूण (उत्पत्ति, शुक्र एवं आर्तव दोष शा	सु	2	1—58
भृत्य सहवास वर्णन)	—	—	—
मदत्य (पानाय के लक्षण, स्त्री सेवन) उ	—	47	1—81
मधुमेह (रोग वर्णन, प्रमेह में देखें)	—	13	3—35
मधुमेह (चिकित्सा)	चि	1	67
मन्या स्तम्भ (रोग वर्णन)	चि	4	20
मन्या स्तम्भ (चिकित्सा)	चि	6	1—43
मर्म (वर्णन एवं आधात के लक्षण)	शा	25	36—40
मर्म (चिकित्सा)	सु	7	38
मत (मलों की उत्पत्ति)	सु	46	528—529
मत (मलों के कार्यं)	सु	15	4, 11, 12, 15, 16
महा रोग (कण्ठ साध्य रोग)	सु	33	4
मांस कल्पय (तातु रोग)	नि	16	43
मांस तान (कण्ठ रोग)	नि	16	62
मात्रा	चि	39	677
मुख रोग (ओछल, दस्तमूल, दांत, जिह्वा, तातु, कण्ठ, मुख)	नि	16	3—66
मुख रोग (चिकित्सा)	चि	22	3—81
मुक्त रोग (चिकित्सा)	नि	1	85
मुक्त रोग (प्रकार, मृतगर्भ, प्रसाव में हेतु)	नि	8	3—14
मुह गर्भ	चि	15	3—47
मुह गर्भ	उ	46	25
मूळद्वा (रोग वर्णन एवं चिकित्सा)	क	7	1—42
मूषिका विष (लक्षण एवं चिकित्सा)	नि	3	20—23
मूत्र निर्माण	—	—	—

विषय	स्थान	अंडायम	इत्तोक	विषय	स्थान	अंडायम	इत्तोक
पूर्णाधात (रोग वर्णन एवं चिकित्सा)	उ	58	1-27	रोग (साध्यासाध्यता में दृत, शकुन, रवपन)	सू	29	3-81
यन्त्र (दर्णन)	सू चि	7	1-22	रोग (रोगों की साध्यासाध्यता)	सू	10	6
यन्त्र (अंशों यन्त्र)	उ	6	1-1	रोग (व्याधि में देखें)	—	—	—
युक्तियां (तन्त्र युक्तियां)	उ	6-5	1-43	रोगी (परीक्षा विधि)	सू	10	4-5
योनि (व्यापद एवं चिकित्सा)	उ	38	1-32	रोगी (आयु परीक्षा)	सू	35	3-38
योग्या (शस्त्र कर्मचार्यान्)	सू सू सू सू	9	1-6	रोगी (गुण)	सू	34	21
रक्त का भण्डार एवं उत्पाति	उ	14	4-5	रोगी (परीक्षा विधि)	सू	10	4
रक्त (गुण)	उ	21	16, 17	रोगी (आहार)	चि	39	3-39
रक्त (दोषों से दूषित रक्त के गुण)	उ	14	22	रोगी नखादि (बृद्धि)	चि	4	60-61
रक्त (महरद)	सू सू सू सू	14	21	रोहिणी (कण्ठ रोग चिकित्सा में देखें)	चि	16	47-51
रक्त (प्रकोपक कारण)	सू सू सू सू	2	26	रोहिणी (कण्ठ रोग चिकित्सा में देखें)	चि	—	—
रक्त (रक्त पान)	सू सू सू सू	2	54	वस्त विरेचन (व्यापद)	चि	34	3-22
रक्त (रक्तज रोग)	सू सू सू सू	24	9	वस्तन (चिकित्सा)	उ चि	49	1-32
रक्त (रक्त की निरुत्तिका)	सू सू सू सू	14	6	वस्तन (रोग वर्णन)	सू	33	3-19, 45, 46
रक्त (यज्ञ शौतिका)	सू सू सू सू	14	9	व्याधि (आश्रय)	सू	1	26
रक्त (चौथा दोष)	सू सू सू सू	21	3, 4	व्याधि (उत्पत्ति)	सू	24	10
रक्त (चौथा दोष)	सू सू सू सू	21	16-17	व्याधि (उपद्रव)	सू	33	4-33
रक्त पित्त (रोग वर्णन एवं चिकित्सा)	उ	21	16-17	व्याधि (कारण)	सू	10	6
रक्त विकावण (सिरा वेध में देखें)	उ	45	1-45	व्याधि (निप्रह हेतु)	सू	29	3-81
रक्त रोकने के उपाय	उ	13	23	व्याधि (परीक्षा)	सू	20	20
रस वर्णन	उ	14	36-45	व्याधि (प्रकार)	सू	1	27
रस विकल्प (भेद)	उ	14	3-4, 12-1	व्याधि (लक्षण)	सू	24	4-8
रसायन (अयोग्य एवं अंगूष्ठियां)	उ	6-3	1-17	व्याधि (साध्यासाध्यता)	सू	40	163-166
रक्षा कर्म	उ	27	3-12	—	—	1	23
राजयक्षमा (शोष में देखें)	उ	28	3-28	—	—	10	6-8
राजा की विष से रक्षा	उ	29	3-32	—	—	33	1, 2, 5-26
राक्षस (बणी की रक्षा)	उ	30	4-40	—	—	35	46, 47
राक्षस (बणी की रक्षा के उपाय)	उ	5	20-32	—	—	15	18
				—	—	1	9
				—	—	24	24
				—	—		

व्याधि (सात धारु की व्याधियाँ)

## प्रयोगशालीय परोक्षण

379

## विषय

## स्थान अध्याय इलोक

	स्थान	अध्याय	इलोक
वस्ति (शरीर)	नि 3	18—20	
वस्ति (उत्तर)	चि 37	3—127	
वस्ति (निरुह)	चि 38	3—118	
वस्ति नेत्र (वस्ति नेत्र व्यापद वर्णन	चि 36	3—51	
एवं चिकित्सा)	"	"	
वस्ति नेत्र (प्रमाण, निमणि, वस्तिकर्मादि)	चि 35	3—33	
वरण (अवैद्यकत वरण)	सु 22	9, 10	
वरण (अधिष्ठन)	सु 22	3	
वरण (आङ्गृतियाँ)	सु 5	8, 9	
वरण उपद्रव (अरिष्ट लक्षण में भी देखें)	सु 19	21, 22, 36	
वरण (चिकित्सा रोपण)	सु 1	63—73	
वरण (चिकित्सा)	सु 19	3—37	
वरण (दोपानुसार चिकित्सा)	सु 1	8—140	
वरण (दोपां की अच्य चिकित्सा)	सु 2	35—37	
वरण (रोपण वाधक कर्म)	सु 1	86—94	
वरण (तुष्ट वरण के लक्षण)	सु 23	77—80	
वरण (डुष्ट वरण की सोधन चिकित्सा)	सु 22	7—12	
वरण (रक्त कर्म)	सु 3	38—62	
वरण (व्याख्या)	सु 21	40	
वरण (वेदना, वर्णन)	सु 5	33	
वरण बन्धन कर्म (बन्ध में भी देखें)	सु 1	6	
वरण (गुण)	सु 22	11, 12	
वरण (वेदना, वर्णन)	सु 5	39	
वरण वन्धन कर्म (बन्ध में भी देखें)	सु 1	134	
वरण (गुण)	सु 5	9	
वरण (भेदन विधि)	सु 5	11—14	
वरण (युद्ध वरण)	सु 23	18—20	
" "	सु 3	18, 24	
वरण (साध्यासाध्यता)	सु 1	7	
वरण (सारांश)	सु 23	18—20	
वरण (साध्यासाध्यता)	सु 1	134	

## विषय

## स्थान

## अध्याय

## इलोक

	स्थान	अध्याय	इलोक
वरण (सत्त्व वरण वरण)	चि 2	5—22	
वरण (सत्त्व वरण)	चि 2	34—94	
वरण (सत्त्व वरण)	चि 2	51	
वरण सद्यः (उपद्रव, साध्यासाध्यता)	चि 1	130	
वरण सद्यः (चिकित्सा)	चि 1	123, 132	
वरणी (अहार व्यवस्था)	सु 1	138, 139	
वरणी (उपद्रव)	सु 1	38	
वरणी (वर्जित कर्म)	सु 5	4—5	
वार्ति	सु 18	21, 37, 39	
वृद्ध, एक वृद्ध (कण्ठ गत रोग)	सु 16	55, 56	
वृद्धि रोग (रोग वरण)	सु 12	3—6	
वृद्धि रोग (चिकित्सा)	सु 19	3—24	
वात कट्टक (रोग वरण)	सु 1	79	
वात रक्त (रोग वर्णन)	सु 5	23	
वात रक्त (चिकित्सा)	सु 1	40—49	
वात रक्त (चिकित्सा)	सु 4	3—17	
वात व्याधियाँ (चिकित्सा)	सु 4	3—45	
वात व्याधियाँ (रोग वरण)	सु 1	21—91	
वायु कर्म	सु 1	9, 10	
वायु गुण	सु 1	5—8	
वायु प्रकोप (लक्षण स्थानानुसार)	सु 1	21—30	
वायु प्रकोप (चिकित्सा)	सु 4	3—25	
वायु (धूत, स्थान, कर्म)	सु 1	12—20	
वायु (चिकित्सा)	सु 4	26	
वायु (दोष सम्पर्क से लक्षण)	सु 1	31—39	
वायु (दोष सम्पर्क चिकित्सा)	सु 5	29—45	
वायु गुण (दिशा के अनुसार)	सु 20	23—30	
विकेषणका	सु 17	21, 37—39	
विदेह	सु 1	5	
विदारी (कण्ठ रोग)	सु 16	63	
विदारी चिकित्सा (कण्ठ रोग में देखें)	सु 1	—	
विरोचन, वमन (व्यापद)	सु 34	3—22	

विषय	स्थान	अध्याय	इतिक	विषय	स्थान	अध्याय	इतिक
विरेचन कर्म	चि	33	3, 4, 19—16	शस्त्र	यतीपद (रोग वर्णन, चिकित्सा)	8	11—14, 19
" "	चि	36	51	शिरोरोग (रोग वर्णन, चिकित्सा)	12	10—15	
विद्धि (दोष, अन्तर विद्धि, गुलम से मेद)	चि	9	4-36	शिरोरोग (रोग वर्णन)	19	52—69	
" "	चि	16	3	शिरोरोग (चिकित्सा)	25	3—18	
विद्धी चिकित्सा	चि	16	4-43	शिष्ठ (गुण, उपतयन विधि)	26	3—45	
विद्धाची (रोग वर्णन)	चि	1	75	शीत दम्भ (चिकित्सा)	2	3—7	
विद्धाची (चिकित्सा)	चि	5	23	शीत दम्भ (चिकित्सा)	12	38	
विपूचिका (रोग वर्णन एवं चिकित्सा)	उ	56	1-19	शीत दम्भ (उत्पत्ति)	10	21—22	
विपूचिका (वर्णन एवं चिकित्सा)	क	2	1-55	" "	10	19—23	
विपूजगम (वर्णन एवं हृषीविषयचिकित्सा)	क	3	1-34	" "	4	21—23	
विषय (स्थावर)	क	10	3-8	" "	4	i 8	
विषय (रोग वर्णन)	चि	17	3	शुक्र (रोग एवं वाजिकरण)	14	3—39	
" "	चि	17	4-16	शुक्र दोष (रोग वर्णन)	14	3—18	
विसर्प (चिकित्सा)	चि	34	19, 20	शुक्र दोष (चिकित्सा)	21	3—18	
दंद के गुण	सू	5	10	शोफ चिकित्सा (व्रण शोफ में भी देखें)	23	4—13	
" "	सू	29	29-53	शोष (राज्यक्षमा रोग वर्णन)	41	1—31	
शबुन के साध्यात्साध्यता	नि	16	53	शोष (राज्यक्षमा चिकित्सा)	41	32—58	
शतहनी (काढ़ रोग)	सू	—" —	शूर्ग (वर्णन)	13	4—8		
शतहनी (काढ़ रोग की चिकित्सा में देखें)	शा	5	1-46	सर्वथान कर्म (कर्ण, नासा, ओठ)	16	9—32	
शरीर (अंग प्रत्यंग, रखना एवं संख्या)	सू	—" —	सर्विद्धि मोक्ष (भग्न में भी देखें)	15	3—16		
शत्त्वन्त्र (प्रधानता)	शा	1	17, 18	सर्विद्धि मोक्ष (हृत)	16	35	
शत्य (उत्तरी, भेद, गति)	सू	26	3—23	संक्रमण	3	69	
शत्य (तक्षण)	सू	26	16, 17	संक्रमण (प्रसार एवं रोग)	35	18	
शत्य (उपद्रव)	सू	27	4—26	संशोधन	5	33, 34	
शस्त्र (अनु शस्त्रादि)	सू	8	3—19	संशोधन श	1	27	
पित्र (किलास)	नि	6	17	संशोधन श	17	11—12	
" "	चि	9	13—40	सर्वसर रोग (मुख रोग)	16	64—66	
प्रवान् (रोग लक्षण एवं चिकित्सा)	उ	51	1—56	सर्वसर रोग (चिकित्सा)	22	67—76	
प्रचल्यदान (अंग प्रत्यंग जानार्थ)	शा	5	47—50	सर्व दंष्ट (सर्व प्रकार एवं दंष्ट के लक्षण) क	4	1—45	
शस्त्र कर्म	सू	5	16	सर्व दंष्ट (चिकित्सा)	5	1—32	
शस्त्र अनु	सू	8	15	शोष (वर्णन)	9	12—13	
" "	"	"	"	स्तन रोग (रोग वर्णन)	10	15—27	

## विषय

स्थान  
अध्यात्र  
स्रोत

स्तन रोग (चिकित्सा)	चि	१७	४२—४७	Human Anatomy Vol. 1-2-3
स्थावर (ओषधियां)	सु	१५	३२, ३५	Gray's Anatomy
रनेह (वण्णन, पात विधि, योग्य निषेध)	सु	१	२९	Human Anatomy Vol. 1-2-3
विद्धि (दृं)	सु	३१	३—५७	Human Embryology
स्वप्न (साध्यासाध्यता का ज्ञान)	सु	२९	५५—८१	Text Book of Human Neuroanatomy
स्वर भेद (रोग वण्णन एवं चिकित्सा)	नि	६६	६१	Text Book of Human Osteology
स्वेदन (प्रकार एवं वण्णन)	उ	५३	१—१७	Cunningham's Manual of Practical Anatomy Vol. 1-2-3
मदवृत्त (दैनिक कर्म, निद्रा, ब्रह्मचर्य, उ	चि	३२	३—३०	Sear's Anatomy and Physiology for Nurses
मैथुनादि)	सु	६४	१—८४	Anatomical Atlas of the Human Body
विष जंगा	चि	२४	३१—३३	—M.A.H. Siddiqi
विष (स्व)	सु	१५	३४, ३६, ४१	—C. C. Chatterjee
विमर्श (	सु	१४	१८	—Vidyaratan
वैद्य के	सु	२०	३९, ४०	—Samson Wright
यजुःन	सु	३५	१६	—Chaudhary
यत्नज्ञो	सु	१४	९	—Park
योवन कर्म	सु	१६	७	—K. D. Tripathi
योगदर्शन	सु	८	८	—Modi
योगीर	सु	८	९	—S. C. Basu
यत्यः	जि	७	१—२६	—Parik
यन्त्रज्ञा	जि	१—२३	०	—Reddy
यत्य	जि	२५	१—२८	—Satish Gupta
योग्य रोग (रोग वण्णन एवं चिकित्सा)	जि	२९	३—३२	—Anantha Narayanan
हृत्य रोग (रोग वण्णन एवं चिकित्सा)	जि	१६	३५	—A. C. Deb
हृत्य का (रोग वण्णन एवं चिकित्सा)	जि	२२	४१, ४२	—Shaw
हृत्य कर (द्रव्य)	जि	४३	१—२२	—C. S. Dawn
हृत्य रोग (रोग वण्णन एवं चिकित्सा)	जि	४६	५३०, ५३१	—D. C. Dutta
हृत्य कर, अहितकर (विहार)	जि	५०	१—३०	Text Book of Obstetrics
हृत्य कर, अहितकर (विहार)	जि	२०	३—५, ८, १०—३०	Text Book of Gynaecology
हृत्य कर, अहितकर (विहार)	जि	२०	३०	Text Book of Gynaecology
हृत्य कर, अहितकर (विहार)	जि	२०	६, ७	A Short Text of Pediatrics
हृत्य कर, अहितकर (विहार)	जि	२०	३१	Medical Emergencies in Children
भृद्ग रोग (रोग वण्णन)	सु	११	३—३१	Hutchison's Clinical Methods
भृद्ग रोग (चिकित्सा)	सु	१३	३—६१	Text Book of Pathology
भृतु (जुगा)	सु	२०	३४	Notes on Pathology Vol. 1-2
भृतु (वण्णन)	सु	६	३—६३	—An Experienced Teacher
भृतु (वण्णन)	सु	२	३५	Basic Pathology
भृतु (वण्णन)	सु	६	३६	Robbins Pathologic Basis of Disease
भृतु (वण्णन)	सु	६—१०	३७	Text Book of Pathology
भृतु (वण्णन)	सु	३८	३८	Text Book of Pathology
भृतु (वण्णन)	सु	३९	३९	Diseases of the Nose, Throat and Ear

शत्य विज्ञान

## MODERN BOOKS ARE AVAILABLE WITH US

—B. D. Chaurasia  
—Gray's

—I. B. Singh  
“

—Harsh Mohan  
—N. C. Dey

—Boyd  
—Robbins

—Meharban Singh  
—Suraj Gupta

—C. S. Dawn  
—O. P. Ghai

—C. S. Dawn  
—Robbins

—Meharban Singh  
—Suraj Gupta

—C. S. Dawn  
—O. P. Ghai

—Harsh Mohan  
—N. C. Dey

—Boyd  
—Robbins

—Meharban Singh  
—Suraj Gupta

—C. S. Dawn  
—Robbins

—Harsh Mohan  
—N. C. Dey

—Boyd  
—Robbins



- 40 Text Book of E. N. T. Diseases —Mohd. Maqbool  
 41 Fundamentals of E. N. T. Diseases —S. K. De  
 42 Diseases of the E. N. T. —B. K. Roychaudhuri  
 43 Diseases of E. N. T. —P. L. Dhingra  
 44 Hand Book of E. N. T. —Basu  
 45 Text Book of Surgery —Love & Beilly  
 46 A Manual on Clinical Surgery —S. Das  
 47 A Practical Guide to Operative Surgery —S. C. Basu  
 48 Hand Book of Surgery —S. K. Bhattacharya  
 49 Short Cases in Surgery —S. P. Gupta  
 50 Medical Emergencies —Davidson's  
 51 Davidson's Practice of Medicine —P. C. Das  
 52 Text Book of Medicine —P. J. Mehta  
 53 Practical Medicine —A. F. Golwalla  
 54 Medicine for Students  
 55 E. C. G.  
 56 Medical Emergencies  
 57 Practical Prescribers —Adams  
 58 Outline of Orthopaedics  
 59 Outline of Fracture  
 60 Text Book of Ophthalmology —H. V. Nema  
 61 H. B. of Ophthalmology —B. M. Chatterjee  
 62 Diseases of the Eye —Parson  
 63 Differential Diagnosis —L. C. Gupta  
 64 Practical Standard Prescriber  
 65 A Short Text Book of Psychiatry —Niraj Ahuja  
 66 Anaesthesia and Resuscitation for  
Medical Students —V. N. Sehgal  
 67 Dermatology Drug Directory —Kenneth A.  
 68 Manual of Dermatologic Therapeutics  
 69 Text Book of Dermatology —Behl  
 70 Manual of Skin Diseases —V. K. Jain  
 71 Skin Diseases —Pasricha  
 72 Medical Dictionary (English to Hindi) —Soc'd.  
 73 Dorland's Pocket Medical Dictionary  
 74 Taber's Medical Dictionary Vol. 1-2 —L. M. Harrison  
 75 The Pocket Medical Dictionary  
 76 C I M S  
 77 M I M S  
 78 M I M S Companions  
 79 Drug Today  
 80 I. D. R. (Indian Drug Review)  
 All others are also available with us :—  
 NATH PUSTAK BHANDAR  
 Railway Road, Rohtak-124001 (Haryana)



**COLLECTION OF VARIOUS**  
→ HINDUISM SCRIPTURES  
→ HINDU COMICS  
→ AYURVEDA  
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with  
By  
Avinash/Shashi

Icreator of  
hinduism  
server)



